विनय ।

प्रिय महाभाग पाठक, आज आपके सामने एक विशाल भेंट लेकर उपस्थित हूँ। इस बातका तो मैं दावा नहीं कर सकता कि मुझे अपने कार्यमें पूरी सफलता प्राप्त हुई है और वह आपका यथेष्ट मनोरंजन करेगी; परतु इतना जरूर है कि यह भेंट एक नये रूपमें है, अत एव बहुत आशा है कि आपकी दृष्टि इस ओर आकर्षित होगी। पांडव-पुराणका एक सुंदर अनुवाद स्वर्गीय कविवर बुलाकीदासजीका मौजूद है; और यह भी सच है कि उसकी सुंदरताको यह नहीं पा सकता। पर वह कवितामें है, अत एव उससे हर प्रान्तके भाई—जो व्रजभाषा नहीं जानते—लाभ नहीं उठा सकते। दूसरे आज-कल लोगोंका चित्त अपनी मातृभाषा हिन्दीकी उन्नतिकी ओर दिन पर दिन अधिकाधिक आकृष्ट होता जाता है। और इसमें भी संदेह नहीं कि यह एक शुभ चिह्न है। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि भारतके सब धर्मोका साहित्य एक ऐसी भाषामें हो जिसे साधारण प्रयत्नसे, सब प्रान्तके लोग, जिज्ञासा होने पर समझ सकें। ऐसी भाषा यदि कोई है तो वह 'हिन्दी' ही है। अत एव आवश्यकता है कि हम उससे अपने धार्मिक साहित्यका भी भंडार भरें।

इन्हीं एक दो बातोंको लेकर मैंने यह अनुवाद किया है। अनुवाद-कार्यमें मैं कहाँ-तक सफल हुआ हूँ, इसके विषयमें मुझे कुछ नहीं कहना है। सिर्फ यह निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ कि मेरा इस रूपमें यह प्रारंभीय प्रयत्न है। और इसी कारण भावोंका यथेष्ट व्यक्त करना तथा सुन्दर सुगठित वाक्य रचना करना आदिका इस अनुवादमें बड़ा अभाव है। वह आप जैसे विद्वोंके बहुत खटकेगा भी; परंतु फिर भी मैं निराश न होकर आपसे उत्साह पानेकी ही आशा करूँगा।

इस काममें मुझे अपने प्रिय-मित्र श्रीयुक्त उदयलालजी काशलीवालसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अत एव मैं उनका चिर आभारी हूँ।

विनीत,

घनश्यामदास न्यायतीर्थ।

प्रकाशककी दो बातें।

हमें इस बातका आज गौरव प्राप्त है कि हम वीर प्रभुकी परम दयासे अपने कार्य-क्षेत्रमें बराबर आगे बढ़ते जा रहे है । और यह आत्म-विश्वास हो गया है कि दिनों दिन हम अधिक अधिक क्षमताशाली हो सकेंगे । जिस समय हमने अपने कार्यालयका काम आरंभ किया था उस समय हमें एक छोटीसी पुस्तकके प्रकाशित करनेमें भी कठिनाईका सामना करना पड़ता था; परंतु आज हमने इतनी क्षमता प्राप्त कर ली है कि सौ सौ फार्मोंके महान् महान् ग्रंथोंके प्रकाशित करनेकी भी हम आयोजना कर सके है। हमें अपनी इस सफलताका अभिमान है; और इसके लिए हम प्रभुकी अनन्त दयाके ऋणी है । साथ ही हम अपने उन परम स्नेही बन्धुओंके भी आभारी है जिन्होंने हमें मौके मौके पर अपने हार्दिक स्नेहसे उत्साहित कर सब प्रकारसे आगे बढ़नेका अवसर दिया है । अपनी इस आत्म-कथाके बाद हमें जो खास बात कहना है वह यह है।

इस समय हमारे हाथमें दो महान् कार्य थे। उनमें आज पहला कार्य पाडव-पुराण-का छपाना समाप्त होता है; और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसे हम उदार ग्राहकोंकी सेवामें भेज रहे है । हमने जो सौ सौ रुपये कर्ज देनेवाली योजना प्रकाशित की है हमें विश्वास है कि उसके अनुसार यदि कुछ महानुभाव सज्जन इस कार्यमें हमारा हाथ न बटाते तो हमें अवश्य कठिनाईका सामना करना पड़ता । इसके लिए हम उन सज्जनोंके चिर कृतज्ञ रहेंगे।

दूसरा कार्य जो पद्म-पुराणके छपानेका है वह भी जारी कर दिया गया है। पहले हमारी इच्छा थी कि हम पद्म-पुराणका केवल हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित करें। पर बाद हमें अपनी यह इच्छा पूज्यवर श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी काशलीवाल तथा अन्य कई मित्रोंके सत्परामर्श देने पर बदल देना पड़ी । अब हमने निश्चय किया है कि पद्म-पुराणको हम मूल संस्कृत सहित ही प्रकाशित करेंगे । यह ठीक है कि इस योजनाके अनुसार हमारी कठिनाइयाँ कुछ बढ़ जायँगी; परंतु वीर प्रभुकी अनन्त दयासे हम उन्हें पार कर जावेंगे।

इसके लिए दो बातें हम निवेदन करना चाहते हैं । एक तो यह कि जिन सज्जनोंने हमें डेढ़ वर्षकी अवधिके लिए सौ रुपया कर्ज दिया है वे उस अवधिको बढ़ा

कर दो वर्षकी कर दें । कारण यह कि पहले विचारोंके अनुसार केवल हिन्दी भाषामें पद्म-पुराण छपवाया जाता तो वह कोई आठ महीनेमें समाप्त हो जाता और तब हम अपनी प्रतिज्ञाको ठीक समय पर पूरा कर देते; परंतु अब उसके संस्कृत सहित छपवानेमें सवा या डेढ़ वर्ष लग जायगा। पहले हमने अनुमान किया था कि सारा ग्रंथ कोई सौ फार्मोंमें समाप्त हो जायगा; पर अब देखते है कि वह लगभग डेढ़सौ फार्मोंसे कममें न होगा। इसी प्रकार उसके मूल्यमें भी हमें १०) की जगह १८) करने पड़ेंगे। ऐसी हालतमें हमें अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करनेमें कुछ कठिनाई पड़ेगी। अत एव हम आशा करते है कि हमारे सहायक-गण हमारी इस प्रार्थनाको अपनी उदार स्वीकृतिसे सफल करेंगे।

दूसरी बात यह है कि पहले हमने अपनी भेंटकी योजना * सिर्फ २० ग्राहकोंके लिए की थी; परंतु अब वह हमें ४० के लिए कर देनी पड़ी है। और यह प्रकट करते हमें बड़ी प्रसन्नता होती है कि हमारी योजनाके अनुसार हमें २८ ग्राहक मिल भी गये हैं। अब सिर्फ १२ और शेष है। हमें विश्वास है उदार महानुभावोंकी कृपासे हम बहुत शीघ्र सफलता लाभ कर लेंगे।

आपके कृपापात्र,

उदयलाल बिहारीलाल,

मालिक।

* इस योजनाको अन्यत्र पढ़नेकी कृपा कीजिए।

हमारे उदार सहायक-गण।

[उन सज्जनोंके शुभ नाम हम यहाँ पर बड़ी कृतज्ञताके साथ प्रकट करते हैं जिन्होंने हमें सौ सौ या इससे अधिक रुपया कर्ज देकर अपनी उदारसे चिर-बाधित किया है।]

२००) श्रीमान् सेठ गुरुमुखरायजी सुखानन्दजी, बम्बई।
१००) ,, पंडित रामप्रसादजी, बम्बई।
१००) ,, सेठ चिरंजीलालजी बडजाते, वर्धा।
१००) ,, सेठ लालचन्द्जी सेठी, सेठ बिनोदीरामजी बालचंदजी वाले झालरापाटन।
१००) ,, बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ा, बम्बई (महामंत्री बम्बई दि० जैन प्रान्तिक सभा)
१००) ,, सेठ नापूलालजी काला, बम्बई (हेड मुनीम रायबहादुर सेठ ओंकारजी कस्तूरचन्दजी सा०)
१००) ,, सेठ मोतीसिंगई रुखबसिगई, अंजनगॉव सुर्जी।
१००) ,, सेठ लल्लूभाई लखमीचंद चौकसी, बम्बई। (सहा० महामंत्री भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र-कमेटी)
१००) ,, सेठ गुरुमुखरायजी निहालचंदजी, बम्बई।
१००) ,, सेठ मोतीलालजी काशलीवाल, बम्बई (सेठ दौलतरामजी कुन्दनमलजी वाले)
१००) श्रीमती विदुषी मगनबाईजी, बम्बई (संचालिका श्राविकाश्रम बम्बई)
१००) ,, विदुषी कंकूबाईजी, शोलापुर (सुपुत्री सेठ हीराचंदजी नेमीचन्दजी)
१००) श्रीमान् सेठ बालमुकुन्दजी दिगम्बरदासजी, सीहोर कैंट
१००) ,, सेठ पदमचदजी भूरामलजी, बम्बई।
१००) ,, सेठ फूलचदजी पाटनी, बम्बई। (हेड मुनीम राय बहादुर सेठ तिलोकचंदजी कल्याणमलजी)
१००) ,, सेठ चुन्नीलाल हेमचद जरीवाले, बम्बई।
१००) ,, सेठ रामगोपालजी, बम्बई (हेड मुनीम दानवीर रायबहादुर सर सेठ स्वरूपचंदजी हुकमचंदजी नाईट)
१००) ,, सेठ हीराचन्द्रजी, सुपुत्र स्व० सेठ-माणिकचन्द्र लाभचन्द, बम्बई।
१००) ,, सेठ तलकचंद सखाराम, बम्बई।
१००) ,, बाबू मूलचंदजी साहब, दीवान मकड़ाई स्टेट।
१००) ,, सेठ हरीभाई देवकरण, शोलापुर।
१००) ,, सेठ रावजी सखाराम दोशी, शोलापुर (मंत्री बम्बई परीक्षालय)
१००) ,, रायबहादुर सेठ माणिकचन्द्र सेठी, झालरापाटन (सेठ विनोदीरामजी बालचंदजी वाले)
१००) ,, सेठ माणिकचंद पानाचंद एण्ड कम्पनी जौहरी, बम्बई।
१००) ,, सेठ शामलालजी दुलासा, कारंजा (बराड़)
१००) ,, शाह डाह्याभाई शिवलाल, गिरीडी।
१००) ,, सेठ मदनमोहनजी, पाण्ड्या (विनोद मिल उज्जैन)

आवश्यकीय निवेदन ।

लगभग ३३) रु० मूल्यके ग्रंथ बिना मूल्य ।

उन सज्जनोंको हम अपनी चरितमालाके निम्न लिखित ग्रंथ, जो कि प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं, बड़े आदरके साथ भेंट करेंगे; जो सिर्फ दो वर्षके लिए १००) रु० बतौर कर्जके हमें देंगे । इस अवधिके समाप्त होने पर उनका रुपया वापस कर दिया जावेगा । और सहानुभूतिके साथ उन्होंने जो हमारे काममें सहायता दी है उसके उपलक्षमें उन्हें लगभग ३३) मूल्यके १३ ग्रंथ भेंट किये जावेंगे । जो ग्रंथ तैयार हैं वे सहायताकी सूचना मिलते ही सेवामें भेज दिये जावेंगे और जो महान् ग्रंथ श्री 'पद्म-पुराण' संस्कृत सहित छप रहा है वह तैयार होने पर भेजा जावेगा । यह भेंट सिर्फ ४० महाशयोंके लिए हैं ।

भेंटके ग्रन्थ ।

१८) पद्मपुराण (छप रहा है)
५) पाण्डवपुराण
३) पुण्यास्रव-कथाकोष
२) नेमिपुराण
१॥) सम्यक्त्वकौमुदी
१) चन्द्रप्रभचरित

१) भक्तामरकथा
॥=) सुदर्शनचरित
।=) नागकुमारचरित
।) यशोधरचरित
।) पवनदूत
≡) श्रेणिकचरित
-)॥ सुकुमालचरित

हमारे यहाँ सब प्रकारके जैनग्रंथ हर समय विक्रयार्थ तैयार रहते हैं । हमारा नया सूचीपत्र छप कर तैयार है । उसे मँगा कर देखिए ।

निवेदक—

उदयलाल बिहारीलाल,

मालिक—जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय ।

कुछ अशुद्धियाँ ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	१९	जभिका	जृंभिका
१४	३	थीं	०
१६	१६	उसे	वह
१७	१	तॉबे	तॉबेका
२१	२५	करना	कहना
२४	२८	गये	हो गये
२५	९	मारसे	भारसे
३१	२७	सभासदों	सभासदोंने
३५	७	कर	कह
४२	७	सुनीम	सुनमि
५१	२६	पैदल	पृथिवीमें
५९	१९	ज्वलनटी	ज्वलनजटी
६८	२९	सुद्योष	सुघोष
६९	२१	भमवन्	भगवन्
७०	१४	हीं ये	ही
८७	४	करके द्वारा	द्वारा
८८	९	गणका	गण
९५	१३	सौ	सात सौ
१०१	११	राजाके	राजाके पुत्रके
१०१	१३	सांतनु	सांतनु पुत्र (पारासर)
१०७	२०	कामसे	०
१०९	१२	दिखा कर	नेत्र दिखा कर
१०९	१४	कहते	कह
१०९	१५	उसकी	उसके
११५	२२	प	पर
११५	२२	थी	न थी
१२०	१३	न	०
१२१	७	तिलोत्तमा	तिलोत्तमों
१२४	९	मडालाकार	मंडलाकार
१३६	२	है कि	कि
१६६	२५	तो भक्त लोग	भक्त लोग तो
१६७	१	शब्दावेधिनी	शब्दवेधिनी
१७३	१६	कंस	उस
१८३	१०	मायाभय	मायामय
१८६	३	पिताका	भाईका
२००	१९	अधे-जले	अध-जले
२०१	८	हस्तानापुरका	हस्तिनापुरकी
२०६	१४	उनके	उसके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२२८	२६	प्राणिग्रहण	पाणिग्रहण
२३८	८	आपने	अपने
२४१	११	योजना	योजन
२४४	१५	अष्टमीहे	अष्टमीके
२४४	२८	राजोंको	राजोंके
२४५	२	पुत्रष	पुरुष
२५१	९	और	ओर
२५२	१	कर्णकी	दुर्योधनकी
२५३	९	लिख	लिखे
२५८	४	पाडवकी	पाडवोंकी
२६२	४	कृष्ण	कृष्णसे
२६४	२२	स्वीकार करें	स्वीकार करें और साथ ही तेरहवें वर्षको कहीं गुप्त वेषमें बितावें।
२६६	५	केरते	करते
२६६	२५	कर्मको चेष्टाकी	कर्मकी चेष्टाको
२६७	११	सवता	सकता
२६९	१२	वचारे	विचारे
२७०	२	वहू	वह
२७०	५	विरुक्त	विरक्त
२७०	११	अखिर	आखिर
२७१	१	पुरुषों	पुरुष
२७६	२०	और	ओर
२७६	२६	चित्रांदग	चित्रांगद
२७७	८	पूछा	पूछी
२७७	२६	मै मै	मै
२८०	९	क्राध	क्रोध
२८३	१९	जो अधिक मासका	जो गुप्तवेषमें विताना
२८३	२०	युधिष्ठिरने कहा कि मै	युधिष्ठिरने कहा कि मैं धर्मोपदेशक पुरोहित बनूंगा। भीमने कहा कि मै
२९६	९	वाले	बोले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२९६	१९	गांगेयका	गांगेयके
२९६	२१	झुकता हूँ	झुकाता हूँ
३००	२१	धनुधर	धनुर्धर
३०२	१	अर्जुनको	अर्जुनके
३०३	५	प्रद्युम्र	प्रद्युम्न
३०७	२२	कृष्ण	चक्री
३१४	९	नत्योद्यत	नृत्योद्यत
३२५	३	बालक	बालक पर
३२५	१९	गिर पर	पर गिर
३३५	९	लौट	लोट
३३५	१६	है	हो
३३९	१९	गह	यह
३३९	२४	स्यल	स्थल
३४३	५	प्रतिक्षा	प्रतीक्षा
३४७	२	बल	बन
३५४	१६	सावधान	असावधान
३५४	२०	है	हो
३५६	२५	अमरकंकका	अमरकंका
३५७	२	अकेला	अकेले
३५७	७	विचार विचार	विचार
३५८	२	गुर्योधन	दुर्योधन
३६१	२६	पशुओं	पशुओंको
३७०	३	कहते कहते	कहते
३७२	२६	बष	विष
३७३	१३	शिला	शय्या
३७३	२५	परिग्रह	परिग्रह
३७७	१२	न	न सह
३७७	१८	जिवदत्त	जिनदत्त
३७९	७	भी	भीम
३७९	२८	दा	दो
०	२०	भारी	भरी

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीशुभचन्द्र भट्टारक विरचित

पाण्डव-पुराण

अथवा

जैन महाभारत ।

पहला अध्याय ।

श्री सिद्ध भगवानको प्रणाम है जो सिद्धिके दाता और भण्डार हैं, जिनके सभी कार्य सिद्ध हो चुके है तथा जो प्रमाण-नयसे प्रसिद्ध और सर्वज्ञ हैं। वे मेरे लिए सिद्धि प्रदान करें—मुझे सिद्धि दें।

श्री आदिनाथ प्रभुको नमस्कार है जो धर्मसे सुशोभित और धर्म-तीर्थके चलानेवाले है तथा जो बैलके चिह्नसे युक्त और कर्मभूमिके आरम्भमें सभी व्यवस्था बतानेके कारण आदि ब्रह्मा हैं। वे मेरे इस कार्यकी ठीक व्यवस्था करें।

चन्द्रमाकी कान्तिके समान ही जिनके शरीरकी कान्ति—आभा—है, जो चन्द्रमाके चिह्नसे युक्त और चन्द्र द्वारा पूज्य—स्तुत्य—हैं उन सदाचन्द्र चन्द्रप्रभ भगवानका मैं स्तवन करता हूँ।

शान्ति-स्वरूप और शान्तिके विधाता सोलहवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ। वे स्वयं निष्पाप हैं और भव्य जीवोंके कर्म-शत्रुओंको शान्त करनेवाले हैं तथा जिनके चरण-कमलोंमें हिरणका चिह्न है। वे शान्तिनाथ प्रभु मुझे शान्ति दें।

श्री नेमिनाथ भगवानको मैं स्मरण करता हूँ जो धर्म-रूप रथकी नेमि (धुरा) है, तीन लोकके स्वामी और कामदेवके मदको चकना-चूर करनेवाले हैं तथा जिनके शासनकी सभी सत्पुरुष प्रशंसा करते हैं—कीर्ति गाते हैं।

जो बाल-पनमें ही कामदेव पर विजय-लाभ कर महावीर, अतिवीर, वीर और सन्मति आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुए वे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी मेरी रक्षा करें।

चार ज्ञानोंके धारक गौतम नाम गणधरको नमस्कार है जो संघके अधिपति होनेसे गणनायक और गणेश कहे जाते हैं। तथा दिव्यवाणी द्वारा हमेशा तत्त्वोंकी गणना करते रहनेके कारण विद्वान् लोग जिन्हें वाचस्पति कहते हैं। वे प्रतिभाके पुंज मुझे प्रतिभा प्रदान करें।

जो कर्म-शत्रुओंके साथ लड़ाईमें स्थिर बने रह कर आत्म-स्वरूपमें स्थिर (लीन) हो चुके हैं वे परम पूज्य युधिष्ठिर मेरे मनोमन्दिरमें विराजें और धर्म अर्थकी सिद्धिमें मेरी सहाय करें।

उन भीम महामुनिको मै याद करता हूँ जो कर्म-शत्रुओंको जीतनेमें भीम—भयंकर योधा—धीरवीर और तेजवाले हैं। वे मेरे पापकर्मोंको हरें।

जो कामदेवसे रहित और कामदेवकी नाँई सुन्दर रूपवाले हैं, संसार-प्रसिद्ध और विशुद्ध परिणामी है वे आत्म-संयमी अर्जुन मुनि मेरे हृदयमें निवास करें।

देवता-गण जिनकी सदा सेवा करते हैं तथा जिनका शासन निर्दोष है वे नकुल और कुलके कलंकको दूर करनेवाले सहदेव भी मेरे हृदयमें विराजें।

उन भद्रबाहु श्रुतकेवलीकी जय हो जो महान् तपस्वी और कल्याणके पुंज हैं और संसारी दीन-दुखी जीवोंको सहारा देनेके कारण जिन्हें महाबाहु कहते हैं तथा जो इसी कलिकालमें ज्ञान-रूपी नौका पर सवार हो-श्रुतज्ञान सागरसे पार हुए हैं। वे मुझे ज्ञान-दान दें।

जिनकी शिष्य-परम्परा संसार-प्रसिद्ध है और जिन्हें सारा संसार हाथ जोड़-नमस्कार करता है वे स्वामी कार्तिकेय मुनि मेरी सहायता करें।

उन कुंदकुंद स्वामीकी जय हो जिन्होंने गिरनार पर्वतके शिखर पर पत्थरकी बनी हुई ब्राह्मी देवीसे यह साक्षी दिलवाई कि "दिगम्बर धर्म पहलेका है।"

देवागमके जैसा महत्त्ववाला स्तोत्र बना कर जिन्होंने देव—आप्त—विषयके सिद्धान्तको खूब ही माँज डाला—सन्देह-रहित कर दिया—तथा जिनके सभी काम कल्याण-रूप हैं वे भारत-भूषण समन्तभद्र स्वामी सारे संसारको सुखी करें।

पूज्य पुरुष भी जिनके पादों—चरणोंको पूजते हैं और इसी कारण जिनका "पूज्यपाद" नाम सार्थक है तथा जो न्याय-व्याकरण आदि अनेक शास्त्रोंके पूर्ण

ज्ञाता हुए हैं और जिनके उत्तम गुण पृथ्वी पर निर्मल चाँदनीकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं उन जगत्पूज्य पूज्यपाद स्वामीकी जय हो।

वे कलंक-रहित अकलंक देव मुझे ज्ञान-दान दें जिन्होंने घड़ेमें बैठी हुई मायादेवीको बातकी बातमें चुप कर दिया—हरा दिया और संसारमें जैनधर्मकी धुजा फहरा दी—प्रभावना की।

उन जिनसेन यतिकी जय हो जो वास्तवमें जिनसेन है—अर्थात् सम्यग्दृष्टि आदिमें मुख्य हैं तथा सरस्वतीके मन्दिर हैं। और जिन्होंने पुण्य-पुरुषोंके चरितोंको गूँथ कर अथाह पुराण-समुद्रको जन्म दिया।

वे गुणभद्र भदन्त मेरी सहायता करें जो पुराण-रूप पहाड़ पर प्रकाश डालनेके लिए सूरजके तुल्य हैं।

उनके पुराणको देख कर तथा अन्य संसार-प्रसिद्ध कथाके आधार पर यह पांडव-पुराण नाम ग्रन्थ लिखा जाता है। इसका दूसरा नाम भारत या महाभारत भी है।

इतना भारी गहरा यह पुराण-समुद्र कहाँ? और इसकी थाह लेनेको सर्वथा असमर्थ मेरी तुच्छ बुद्धि कहाँ? इन दोनोंकी कुछ भी बराबरी नहीं; तो भी इस ग्रन्थराजके कहनेका मैंने जो साहस किया है वह मेरा अति साहस है। इसे देख कर लोग हँसेंगे तो सही, परन्तु फिर भी शास्त्र-पारंगत पुराने जिनसेन आदि महाकवियोंका स्मरण करनेसे मुझे जो पुण्य-लाभ हुआ है उसके बलसे मैं इस ग्रन्थ-समुद्रमें अवगाहन करता हूँ—इसके लिखनेका साहस करता हूँ। जिस तरह बोलनेकी इच्छा करनेवाले गूँगे और भारी ऊँचे सुमेरु पर्वत पर चढ़ जानेकी इच्छा करनेवाले पंगु पुरुषकी लोग हँसी उड़ाते हैं उसी तरह इस अति साहसके लिए वे मेरी भी हँसी उड़ावें तो यह कोई नई बात नहीं। अथवा जैसे एक दुबली-पतली गाय भी दूध पिला कर अपने बछड़ेको पालनेका भरसक प्रयत्न करती है वैसे ही यद्यपि मैं अल्पज्ञ हूँ तो भी अपनी शक्तिके अनुसार इसके लिखनेका प्रयत्न करता हूँ। इस ग्रन्थमें जो कुछ भी लिखा जायगा उसमें यद्यपि पुराने महर्षियोंकी कृतिसे कोई नयापन न होगा तो भी इसकी उपादेयतामें कमी न आयगी; क्योंकि दीपक सूरजके द्वारा प्रकाशित पदार्थोंको ही प्रकाशित करता है और तब भी वह उपादेय होता है।

यद्यपि संसारमें पलाश आदिके निःसार और निरर्थक वृक्षोंके समान खोटे स्वभाववाले कवि बहुत हैं और आम आदि उत्तम वृक्षोंके समान उत्तम

स्वभाववाले कम; तो भी कितने ही सत्पुरुष अब तक मौजूद हैं जो सोनेमेंसे मैलको साफ करनेवाली आगकी भाँति कविताके दोषोंको छोड़ कर उसके गुणों पर ही दृष्टि देते है और उसका आदर करते हैं। परन्तु असत्पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सूरजको दोष देनेवाले उल्लू पक्षीकी नॉई दूसरोंकी कृतिको दोष-ही-दोष दिया करते हैं—उन्हें गुण तो सूझते ही नहीं; क्योंकि उनका स्वभाव ही उस आगकी तरह है जो जला कर दाह पैदा करती है। और सत्पुरुषोंका स्वभाव उन मेघोंके समान होता है जो निरपेक्ष भावसे लोगोंको ठंडा और मीठा जल पिला कर उनकी प्यासको बुझा देते हैं। दुष्ट पुरुष मतवाले पुरुषके समान होते है। वे कभी हेय-उपादेय और हित-अहितका विचार ही नहीं करते; किन्तु अपने दुष्ट स्वभावसे सारे संसारको दुष्ट बना डालनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। सज्जन पुरुष समय पर बरसनेवाले मेघोंके समान होते हैं। वे अपने अमूल्य और उदार उपदेशोंके द्वारा लोगोंको हितकी और झुकानेकी चेष्टा कर उन्हें सुखी बनानेमें लगे रहते है। तथा जिस तरह सॉप विष और चन्द्रमा अमृत देता है उसी तरह दुष्ट लोग संसारको दुःख और सज्जन लोग सुख देते हैं। इस प्रकार सुजन और दुर्जनके स्वभावका जो यह विचार किया गया है इस पर पाठक ध्यान देंगे और इससे वे बहुत लाभ उठावेंगे।

आचार्योंका मत है कि हर एक कथामें नीचे लिखी छह बातें अवश्य ही होनी चाहिए; क्योंकि इनके बिना कथाकी कुछ भी कीमत नहीं।

१ मंगल—जिनेन्द्रदेवके गुण-गानको मंगल कहते है, कारण मंगलका जो मल-गालन—पाप-विनाशन-रूप—अर्थ है वह उसमें मौजूद है। क्योंकि इस मंगलसे भव्य जीवोंका कर्म-मल धुल जाता है। यह मंगल इस इतिहास-समुद्रकी आदिमें किया जा चुका है।

२ निमित्त—ग्रन्थके रचे जानेका निमित्त पापका विनाश माना गया है और वह इस इतिहासमें मौजूद है; क्योंकि इसको बनानेसे मेरे और सुननेसे श्रोताओंके पाप-कर्म हलके होंगे।

३ कारण—ग्रन्थ-रचनाका कारण भव्य जीवोंके चित्तका समाधान हो जाना माना गया है। वह भी इस ग्रन्थमें विद्यमान है; क्योंकि यह कथा प्रसिद्ध श्रोता श्रेणिक राजाके प्रश्न करने पर उनके चित्तके समाधान करनेको श्रीमहावीर प्रभुने कही थी।

४ कर्ता—इस ग्रन्थके मूलकर्ता तो तीर्थंकर भगवान है और उत्तर-कर्ता गौतम स्वामी तथा विष्णुनन्दि, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु आदि श्रुतकेवली और ऋषि-गण है।

५ अभिधान—इस ग्रन्थका नाम पांडव-पुराण है, क्योंकि इसमें पुराण पुरुषोंकी कथा कही गई है, इस लिए तो यह पुराण है और वे पुराण-पुरुष पाडव हैं, इस लिए इसका नाम पांडव-पुराण पड़ा है।

६ संख्या—अर्थतः तो इसकी संख्या अनंत है; पर अक्षर-रचनाके हिसाबसे संख्यात ही है।

इन छह बातोंका विचार कर ही पुराणकारको पुराणकी रचना करनी चाहिए। इसी नियमके अनुसार यहाँ इन पर विचार किया गया है। पर ध्यान रहे कि ये बातें द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, और भावके भेदसे पाँच ही हैं। यह सब विचार कर ही पुराणकार अपने पुराणको आरम्भ करते हैं। और श्रोताओंके मनोविनोदके लिए उसकी आदिमें वक्ता, श्रोता और कथाका भी विचार कर लेते हैं। उसीके अनुसार यहाँ भी वक्ता आदिके स्वरूप पर विचार किया जाता है।

वक्ता—उपदेश देनेवाला—वह अच्छा है जो शुद्ध और साफ बोलनेवाला, व्याख्याता, धीरवीर, बुद्धिमान और साफ-स्वच्छ अभिप्रायोंवाला हो; जिसे लोक व्यवहारका पूरा पूरा ज्ञान हो; जो चतुर हो; पूरा विद्वान और शास्त्रोंके रहस्यको जाननेवाला हो; निस्पृह तथा मंद कषायोंवाला हो; जिसकी इंद्रियाँ वशमें हों और जो आत्म-संयमी हो; शान्त-मूर्ति, सुन्दर एवं मनोहर नेत्रोंवाला और देखनेमें प्यारा लगता हो; जिसे संसार-समुद्रसे पार करनेवाले तत्त्वोंका पूरा पूरा ज्ञान हो; जो छहों मत और न्यायका पूर्ण विद्वान हो; जिसके मतको सभी मानते हों; जो स्वयं व्रतोंका धारक और व्रती पुरुषों द्वारा मान्य हो, जिन आगमका प्रेमी, चतुर और उत्तम लक्षणोंवाला हो; राजा लोग जिसका सत्कार करते हों; जिसका पक्ष समर्थ—शक्तिवाला हो; जो प्रश्नोंका पहलेसे ही उत्तर जाननेवाला, सुन्दर और कुलीन हो; अपने देश और अपनी जातिका हो; प्रतिभावाला, शिष्टाचारी और अनिष्ट आपत्ति वगैरहसे रहित हो; सम्यग्दृष्टि और मीठा बोलनेवाला हो; सबको प्यारा और खूब समझानेवाला हो; गौरवशाली और प्रसन्नचित्त हो; वादियोंका स्वामी और उनके ऊपर अपना प्रभाव डालनेवाला हो;

जो कवियोंमें उत्तम और दूसरोंकी निंदा नहीं करनेवाला हो और शीलका सागर, गुरु और शास्ता हो ।

श्रोता—उपदेश सुननेवाला—वह अच्छा है जो शीलसे विभूषित और सम्यक्तसे युक्त हो; सुन्दर हो; दाता हो; भोक्ता और नाना लक्षणोंवाला हो; व्रतोंका धारक, धर्मात्मा पुरुषोंको आश्रय देनेवाला और परिपूर्ण इंद्रियोंवाला हो; उदार और पवित्र-चित्त हो; हेय-उपादेयका जाननेवाला हो; शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण और स्मरण इनमें प्रवीण हो; तर्क—वितर्कके द्वारा हर एक पदार्थका विचार करनेवाला हो; तत्त्वज्ञानी और तत्त्व-चर्चाका प्रेमी हो; कुलीन, प्रवीण और गुरुकी आज्ञाका पालक हो; एवं विवेकी और विनयी हो; स्वच्छ अभिप्रायोंवाला हो; सावधान और क्रिया-कांडका पूरा पूरा जानकार हो; सुन्दर और सम्यग्ज्ञानी हो; दयालु और दया कर दीन-दुखी और भूखे जीवोंको दान देनेवाला हो; जैनधर्मकी प्रभावना करनेवाला, सदाचारी, विचारवाला और धर्मज्ञ तथा धर्मात्मा हो; हर एक क्रिया आदि चारित्रके पालनेमें अगुआ हो; मीठा बोलनेवाला हो; जिसको सत्पुरुष मानते हों और जो अभिमान-रहित सरल स्वभाववाला हो ।

उस श्रोताके शुभ, अशुभ आदि बहुत भेद हैं । हंस, गाय आदिके स्वभाव-समान श्रोता उत्तम हैं । मिट्टी, तोता आदिके स्वभाव-समान श्रोता मध्यम तथा बिल्ली, बकरा, शिला, साँप, कौआ, छेदवाला घड़ा, चलिनी, डाँस, भैंसा और जोंक (गोंच) के स्वभाव-समान श्रोता अधम हैं ।

असत् श्रोताओंको उपदेश देना—शास्त्र सुनाना—व्यर्थ है; क्योंकि जैसे टूटे-फूटे घड़ेमें पानी नहीं ठहरता वैसे ही उनके हृदय पर उपदेशका कुछ भी असर नहीं होता; और सत् श्रोताओंको दिया हुआ उपदेश उपजाऊ भूमिमें बोये हुए बीजकी भाँति कई गुणा फलता है ।

कथा—वाक्योंकी रचनाके द्वारा किसी पदार्थके वर्णन करनेको कथा कहते हैं । कथाके दो भेद हैं; एक सत्कथा और दूसरी विकथा ।

सत्कथा वह है जिसमें व्रत, ध्यान, तप, दान और संयम आदि तथा पुण्य-पापका फल और चरम शरीरी आदि पुरुषोंके विचित्र चरितोंका वर्णन हो । सत्कथाको कहने या सुननेसे धर्म-अर्थकी वृद्धि होती है, सुख मिलता है । उसके चार भेद हैं । उनको भी सुनिए ।

जिस कथासे रागभाव घट कर संवेगकी वृद्धि हो वह संवेगिनी कथा है । जिसमें धर्म तथा धर्मके फलका और वैराग्यका कथन हो वह निर्वेगिनी कथा है । तथा

जिसमें तर्क-वितर्कके द्वारा स्याद्वाद कथंचित् मतका मंडन और दूसरे कपोल-कल्पित मिथ्या मतोंका खंडन किया गया हो वह आक्षेपिनी कथा है। इसको कहने या सुननेसे ज्ञानका विकाश होता है। और जिसमें रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) का निरूपण और मिथ्यात्व आदिका खंडन किया गया हो वह विक्षेपिनी कथा है । इन गुणोंकी खान कथाके कहने या सुननेसे गुणोंकी वृद्धि होती है।

विकथा—खोटी कथा—वह है जो मिथ्यात्वियों—व्यास आदि झूँठे लोगों-की गढ़ी हुई कपोल-कल्पित वार्तोसे भरी हुई हो। विकथाके कहने या सुननेसे पाप-बंध और पुण्य क्षीण होता है।

हर एक सत्कथाके आरम्भमें जिन सात अंगोंका होना अतीव उपयोगी और आवश्यक है वे ये है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तीर्थ, फल और प्रकृत। इसी नियमको लेकर यहाँ सब कुछ लिखा गया है। अब इस पवित्र पुराणका आरम्भ किया जाता है।

जम्बूद्वीप एक प्रसिद्ध और सुन्दर द्वीप है। वह सत्पुरुषोंका निवास और सम्पत्तिका खजाना है। उसमें भरत नाम एक पवित्र और मनोहर क्षेत्र है। वह भारती—सरस्वती—से विभूषित अतिशय शोभावाला है। इसके छह खंड है। उनमें एक आर्यखंड है। वह धीरवीर और इन्द्र जैसी विभूतिवाले परोपकारी आर्य पुरुषोंका निवास है। वहाँके आर्य पुरुष अभयदान देनेवाले और धर्मात्मा हैं। आर्यखंडमें विदेह नाम एक मनोहर देश है। वह भी सुन्दर और उत्तम गुणोंसे युक्त नर-नारियोंसे विभूषित है। वहाँके नर-नारियोंको किसी भी बातकी कमी नहीं है। वे हमेशा अमन-चैनसे अपना समय बिताते हैं। वहाँसे लोग सदा काल विदेह (मुक्त) होते है। वहाँके पुण्य-पुरुष ध्यानाग्नि और कठिन तपस्याके द्वारा कर्म-ईंधनको जला कर विदेह—मुक्ति—अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं और जान पड़ता है कि इसी लिए इस देशका नाम विदेह पड़ा है।

विदेह देशमें पृथ्वीका भूषण कुंडनपुर नाम एक सुन्दर नगर है। उसमें जो उत्तम उत्तम पुरुष निवास करते हैं उनसे वह ऐसा जान पड़ता है कि मानों वह इन्द्र आदि देवता-गणका निवास-स्थान अमरावती ही है। कुंडनपुरके राजा सिद्धार्थ थे। वे नाथवंशी थे। उनके सभी मनोरथ सफल थे—उन्हें किसी भी बातकी कमी न थी। उनकी रानीका नाम त्रिशलादेवी था। वे नदीकी तुलना करती थीं।

जिस भाँति नदी पहाड़से निकल समुद्रमें जाकर गिरती है उसी भाँति वे भी चेटक-रूप पहाड़से उत्पन्न हो सिद्धार्थ समुद्रमें जाकर मिल गई थीं। नदी समुद्रकी प्रिया होती है, वे सिद्धार्थ समुद्रकी प्यारी थीं और इसी कारण लोग उन्हें प्रिय-कारिणी भी कहते थे। वे उच्च कुलमें पैदा हुई थीं। उत्तम गुणोंकी खान और भंडार थीं। वे सभी कलाओंमें प्रवीण और हर एक काममें चतुरा थीं। भगवान महावीर छह महीने बाद उनके गर्भमें आनेवाले थे, पर इसके पहलेहीसे छप्पन देव-कुमारियाँ उनकी सेवा—उपासना—करती थीं। तथा कुबेर आदि देवता-गण भी भाँति भाँतिकी दिव्य वस्तुएँ ला-ला कर उनकी उपासना करते थे। एक समय त्रिशलादेवी अपने शयनागारमें पलंग पर सुखकी नींदमें सोई हुई थीं। रातका पिछला पहर था। इस समय उन्होंने सोलह स्वप्नोंको देखा।

वे स्वप्न ये थे। हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, माला-युगल, चंद्रमा, सूरज, मछली-युगल, कलश, तालाब, समुद्र, सिंहासन, व्योमयान (देवतोंका विमान), भूमि-गृह (धरणेन्द्रका विमान), रत्नराशि, और अग्नि।

प्रातःकाल महारानीने इन स्वप्नोंका फल सिद्धार्थ महाराजसे पूछा। उन्होंने उनका फल कह कर रानीको सन्तुष्ट किया।

इसी समय कोमल हाथ-पाँववाली और गजगामिनी त्रिशलादेवीने स्वर्गके पुष्पक विमानसे चय कर आये हुए एक भाग्यवान देवको अपने गर्भ-कमलमें धारण किया। उस दिन अषाढ़ सुदी छट और हस्त नक्षत्र था। इसके बाद वीर-प्रभुका गर्भोत्सव करनेके लिए इन्द्र वगैरह देवता-गण गजों तथा अन्य अन्य वाहनों पर सवार हो-हो कर स्वर्गसे कुंडनपुर आये और उन्होंने वहाँ भगवानका खूब गर्भोत्सव मनाया तथा भगवानकी माताकी भारी भक्तिसे पूजा की। धीरे धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए तब चैत सुदी तेरसके दिन त्रिशलादेवीने भगवान् वीरप्रभुको जन्म दिया; जैसे पूर्व दिशा सूरजको जन्म देती है। उससे दशों दिशायें उज्ज्वल हो गईं तथा सारे संसारमें आनंद-मंगल छा गया। चौदसके दिन बड़ी भारी विभूतिके साथ इन्द्र आदि देवता-गण स्वर्गसे कुंडनपुर आये और वहाँसे भगवानको सुमेरु पर्वत पर ले गये। सुमेरु पर उन्होंने भगवानका बड़े भारी ठाट-बाटके साथ अभिषेक किया और शत्रुओंके दल पर विजय-लाभ करनेवाले वीरप्रभुका वर्द्धमान नाम रख उन्हें दिव्य वस्त्र और आभूषण पहिनाये।

तीस वर्षकी अवस्था तक तो भगवान गिरस्ती रहे; पर बाद किसी वैराग्यके

कारणको पाकर वे विरक्त हो गये और उन्होंने अपने विरक्त होनेका समाचार अपने कुटुम्बी भाई-बन्धुओंको कह सुनाया।

इसके बाद भगवानको विरक्त हुए जान कर अपना नियोग पूरा करनेको पाँचवें ब्रह्म स्वर्गसे लौकान्तिक देव उनकी सेवामें आ पहुँचे और वे उनके वैराग्यकी प्रशंसा तथा भक्ति कर चले गये। पीछे थोड़ी ही देरमें इन्द्र आदि देवता-गण आये और उन्होंने प्रभुको भक्तिभावसे नमस्कार किया—उनकी स्तुति और पूजा की। इस समय प्रजा असीम आमोद-प्रमोदमें मस्त थी। बाद इन्द्रने भगवानको स्नान करा कर दिव्य-वस्त्र और आभूषण पहिनाये और भक्ति-भारसे नम्र हो उन सबने भूतल-भूषण भगवानकी फिर पूजा-स्तुति की तथा मुक्त कंठसे उनके वैराग्य और विचारोंकी प्रशंसा की। इसके बाद वे भाँति भाँतिके चित्रोंसे चित्र विचित्र और रंग-विरंगी तरह तरहकी कलशियोंसे विभूषित चन्द्रप्रभा नाम एक सुन्दर पालकीमें श्री वीरप्रभुको विराजमान कर नगरसे बाहर उद्यानकी ओर ले गये। वहाँ लोकोत्तम वीर भगवानने अगहन वदी दसमीके दिन, हस्त नक्षत्रमें, षष्ठ योगके बाद, दो पहरके समय, जिन दीक्षा धारण की और उसी समय वे चार ज्ञानके धारक हो गये। उन्हें मनःपर्यय ज्ञान हो गया।

इसके बाद वीरप्रभुने सभी देशोंमें विहार कर बारह वर्ष घोर तप किया। वे जहाँ जहाँ जाते थे वहाँ उन्हें लोग बड़ी भक्तिसे पारणा कराते थे। आलस और विषय-वासना तो उनके पास तक न फटक पाते थे। विहार करते करते कुछ दिनोंके बाद भगवान जंभिका नाम एक गाँवमें आये। उसमें बहनेवाली ऋजुकूला नाम नदीके किनारे तालका एक घना जँगल था। भगवान उस जंगलमें एक वृक्षके नीचे रक्खी हुई पवित्र शिला पर ध्यानस्थ हो गये। इसके बाद भगवान वैशाख सुदी दसमीके दिन, दो पहरके समय, षष्ठ योग और हस्त नक्षत्रमें, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। और अन्तर्मुहूर्त कालमें ही उन्होंने दुष्ट घाति-कर्मोंकी सैतालीस, आयुकर्मकी तीन और नामकर्मकी तेरह—कुल तिरेसठ—कर्म-प्रकृतियोंका नाश कर सब पदार्थों और उनकी अनंत पर्यायोंको एक साथ हमेशा जाननेवाले केवल-ज्ञानको प्राप्त किया।

इसके बाद वीर भगवान सारे संसारमें धर्मका उपदेश करते हुए विपुलाचल पर्वत पर आये। इस समय समवशरण उनके साथ ही था। उसकी विभूतिका कोई ठिकाना न था। छत्र, चँमर, सिंहासन, भामण्डल, (शरीरकी कान्तिका

पूर), फूलोंकी बरसा, अशोकवृक्ष, दिव्यध्वनि और हजारों दुन्दभी वाजोंका शब्द इन आठ प्रातिहार्योंसे वह और भी सुशोभित था। उसमें आने-जानेवाले लोगोंके कोलाहल शब्दसे दशों दिशायें गूँज रही थीं। और देवता-गण द्वारा ले आये गये गौतम आदि गणधर भी वहाँ भगवानकी सेवामें उपस्थित थे। तात्पर्य यह कि उस वक्तकी शोभा अपूर्व थी।

मगध उत्तम गुणोंसे भरपूर और एक मनोहर देश है। धर्मात्मा और सत्पुरुषोंका वह निवास है; अतः ऐसा जान पड़ता है कि देवता-गणका निवास-स्थान स्वर्ग-लोक ही है। उसमें राजगृह नाम एक सुन्दर नगर है। राजगृहमें भारी विशाल और मनोहर राज-मन्दिर बने हुए हैं, जिनसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों इन्द्रका पुर ही है। श्रेणिक वहाँके राजा थे। वे उत्तम श्रेणीके पुरुष थे, गुणोंके भंडार और सम्यग्दृष्टि थे। उदार-चित्त थे, प्रतापी और भारी ऐश्वर्यवाले थे। उनकी महारानीका नाम चेलिनी था। चेलिनी पर वे बहुत लाड़-प्यार करते थे।

एक दिन उनके पास यह खबर आई कि विपुलाचल पर्वत पर वीरप्रभु आये है। इस शुभ समाचारसे वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी वक्त वीरप्रभुकी वन्दनाको गये; जिस भाँति आदिनाथ प्रभुके शुभ आगमनको सुन कर उनकी वन्दनाको उदार आशय भरत चक्रवर्ती गये थे। इस समय चार प्रकारकी सेना या यों कि चतुरंगी सेना महाराजके साथ-साथ थी। सजे-धजे घोड़े, सुन्दर लम्बे मोटे दातोंवाले हाथी, भाँति भाँतिकी वस्तुओंसे सजे हुए रथ और मनोहारी नृत्य करते हुए पयादे थे। भाँति भाँतिके वाजोंकी ध्वनिसे सब दिशायें गूँज रही थीं। वन्दीजन महाराजके यशको गाते जा रहे थे। सारांश यह कि उस समयका दृश्य अपूर्व ही था। थोड़े ही समयमें महाराज वीरप्रभुके पास पहुँचे और वहाँ वे हाथी परसे उतर पड़े। एवं छत्र, चमर आदि राज-चिन्होंको वहीं छोड़ कर उनकी सभामें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने तीन लोकके नाथ वीरप्रभुको एक मनोहर सिंहासन पर विराजे हुए देखा। उनके शिर पर छत्र-त्रय सुशोभित थे। वे और और देवतोंसे भिन्न वीतराग रूपमें थे। और वहाँ सभी सभ्यगण उनकी और उनके तपश्चरण आदि कर्तव्योंकी पुनः पुनः प्रशंसा करते थे। एवं राजा-महाराजा और देवता गण उन्हें नमस्कार कर उनके चरणोंकी धूलिको अपने मस्तक पर चढ़ाते थे; उनकी पूजा-वन्दना करते थे। वीरप्रभुको देख कर महाराजने उनकी वन्दना की और भक्तिभावसे उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद स्तुत्य (स्तुति

योग्य), स्तोता (स्तुति-कर्ता), स्तुति (गुण-गान) और उसका फल इन चारों बातोंको जान कर उन्होंने स्तुति करना आरम्भ किया। हे तीन लोकके स्वामी और देवोंके देव वीरप्रभु! आपके गुण अपार है; अतएव उनको गानेके लिए इन्द्र जैसा भारी शक्तिवाला भी जब असमर्थ है तब मुझ जैसे मन्द बुद्धियोंकी तो ताक़त ही क्या है जो आपके गुणोंका गान कर सके; परन्तु तो भी आपकी भक्तिके वश हो मै आपके गुणोंका कुछ गान करता हूँ। हे देवाधिदेव भगवन्! आप चित्त-रहित होकर भी चैतन्य-स्वरूप हैं, इन्द्रियोंसे रहित और विभु हैं, कर्म-मल-रहित निर्मल है। रूप, रस, गंध आदिसे रहित होकर भी उनके जाननेवाले हैं। सभी पदार्थोंको हमेशा जाननेवाले सर्वज्ञ हैं। तीन लोकके पति हैं। हे वीर प्रभु! मैं आपकी वन्दना कर आपको नमस्कार करता हूँ। इस विपुलाचलको सुशोभित कर आपने यहाँ लोक अलोक प्रकाशित किया है, अतः आप जीव मात्रको पापसे बचानेवाले एक रक्षक हैं। हे प्रभु! मैं आपकी कहाँ तक तारीफ करूँ, आपने बालपनमें ही तो काम जैसे वीरको वशमें कर लिया और खेल-कूदके वक्त साँपोंका भेष बना बना कर जो देवता-गण आपके पास आये थे उन्हें तथा और और शत्रुओंको जीत कर आपने अपने 'वीर' नामको सार्थक कर दिखाया। हे भगवन्! एक दिन आप खेल रहे थे और इसी समय वहाँ आकाशगामी कोई योगीजन आ निकले। उन्होंने आपको खेलते हुए देखा और देखते ही उनका एक भारी सन्देह दूर हो गया, जो उनके हृदयमें कीलेकी भाँति चुभ रहा था। इसी कारण उन्होंने आपको सन्मति कहा और आपकी भारी भक्ति की—पूजा-प्रशंसा की।

इसी तरह मुनि-अवस्थामें आप एक दिन ध्यानस्थ थे। उस समय आपके ऊपर शंकरकी दृष्टि जा पड़ी। उसने क्रोधमें आ आपको भारी उपसर्ग किया, पर वह आपको रंच मात्र भी न चला सका। तब उसने आपको महावीर कहा और आपकी खूब स्तुति की। आपका ज्ञान-चंद्र पूर्ण वृद्धिगत है, इस लिए आप वर्द्धमान हैं। इस भाँति पूर्ण भक्तिभावसे भगवानका स्तवन कर श्रेणिक महाराज जाकर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। पश्चात् वीरप्रभुने कंठ, तालु आदिकी क्रियाके विना ही निरक्षरी दिव्यध्वनिके द्वारा धर्मका उपदेश करना आरम्भ किया। वे कहने लगे कि राजन्! धर्ममें जी लगाओ। धर्म दयाको कहते है। इस दयाधर्मके दो भेद हैं; एक मुनिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म। पहले धर्ममें तिल-तुष मात्र भी परिग्रह नहीं होता।

उसमें निर्ग्रन्थता ही प्रधान है। निर्ग्रन्थता—ममता-भाव—का अभाव ही मुनियोंका सर्वस्व है। वही दुर्द्धर तप है। वही उत्तम ध्यान है। निर्मल-ज्ञान और उत्तम गुण भी वही है। उसके विना मुनि मुनि ही नहीं कहला सकता; और इसी लिए मुनिधर्ममें उसे पहला स्थान मिला है। पर इसका धारण करना बहुत कठिन है।

अब श्रावकधर्मको सुनिए। इसके शील, तप, दान, और भवाना ये चार भेद हैं। इसको पालनेसे स्वर्ग-सुख मिलता है।

शील ब्रह्मचर्यको कहते है। यह आत्माका सच्चा स्वभाव है। इसके द्वारा और और व्रतोंकी रक्षा होती है। वहुत क्या कहा जावे, इसके होने पर और और गुण विना परिश्रम ही प्राप्त हो जाते है। इस कारण इसे अवश्य पालना चाहिए।

तप—इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटा कर वशमें करनेको या यों कि शरीरको वशमें कर लेनेको तप कहते हैं। वह वाह्य और अभ्यन्तर भेदसे छः छः प्रकारका है।

दान—मन-वचन-कायकी शुद्धि-पूर्वक उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रके अर्थ धन खर्च करनेको दान कहते हैं। इसके आहार, औषध, शास्त्र और अभय ये चार भेद है। इसका फल भोगभूमि है। पर इतना विशेष है कि जैसे उत्तम आदि पात्रोंके लिए दान दिया जायगा वैसा ही उत्तम आदि भोगभूमि-रूप फल भी मिलेगा।

भावना—जिनधर्मके मनन और चैतन्य-स्वरूप आत्माकी या यों कि हृदयकी शुद्धिका नाम भावना है। भावनासे आत्म-बल बढ़ता है।

इस भाँति प्रभुने धर्मका उपदेश किया। जिसको सुन कर भव्यजीव बहुत सुखी हुए। इसके बाद महाराजको नगर जानेकी इच्छा हुई और वे प्रभुको प्रणाम कर वापिस चले आये। बाद नरेन्द्रों और देवतों द्वारा सेवित वीरप्रभुने भी और और देशोंमें धर्मका उपदेश करनेके लिए वहाँसे विहार किया। कुछ काल बाद महाराज अपने नगरको जा पहुँचे और वहाँ वे चेलिनीके साथ आमोद-प्रमोदसे काल विताने लगे। चेलिनी रानी बड़े उदार दिलकी थी। वह चंचल स्वभाववाली और स्वभावसे ही हमेशा वीरप्रभुका ध्यान किया करती थी। इधर दीन-दुखी जीवोंको सुखी बनानेके लिए महाराज हमेशा दान देते थे और उधर संसार-तापसे संतप्त जीवोंको शान्ति पहुँचानेके लिए वीरप्रभु अपनी दिव्यवाणीके द्वारा धर्मका उपदेश करते थे। धीरे धीरे वीरप्रभुने बहुतसे आर्य देशोंमें विहार किया और

सब जगह धर्मका उपदेश कर संसार तापसे संतप्त जीवोंका ताप बुझाया—उन्हें शान्ति दी। वीर भगवानने जिन जिन आर्य देशोंमें विहार किया था वे ये हैं—

कोशल, कुरुजांगल, अंग, वंग, कलिंग काश्मीर, कोंकण, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र मेदपाट, सुभोटक, मालवा, कर्नाट, कर्णकोशल, पराभीर, सुगंभीर और विराट। इसके बाद मगधदेशको प्रतिबोधनेके लिए भगवान दुबारा विपुलाचल पर्वत पर आये और वहाँ वे ऐसे शोभित हुए मानों पूर्व दिशामें उदयाचल पर सूरजका उदय ही हुआ है।

कुछ समय बाद इधर उधर घूमता फिरता वनपाल वहाँ आया और वीर-प्रभुकी वचन-अगोचर विभूतिको देख कर अचम्भेमें पड़ गया। वह सोचने लगा कि यह क्या बात है! थोड़ी ही देरमें वह सब बातें समझ गया और सब ऋतु-ओंके फल-फूल लेकर इस शुभ समाचारके साथ राजमंदिर पहुँचा। वहाँ पुण्यवान महाराज एक मनोहर सिंहासन पर विराजे थे और देश-विदेशोंसे आई हुई भेटोंकी देख-भाल करते थे। उनके ऊपर एक अपूर्व छत्र लगा हुआ था, जो धूपकी बाधाको दूर करता था। उनकी लम्बी और मजबूत भुजाएँ उनके पराक्रमको कहती थीं। गायक-गण संगीत द्वारा उनका गुण-गान करते थे। सैकड़ों कुलीन राजा-महाराजा हाथमें तलवार ले-ले सेवामें उपस्थित हो उनका यश गाते थे। उनके दोनों कुंडल ऐसे जान पड़ते थे मानों वे चाँद और सूरज ही हैं। उनके मुकुटकी किरणें सब ओर फैल रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों महाराज उनके द्वारा आकाश-पट पर अपना चित्र ही लिख रहे है। उनके मनोहर हारकी कान्ति सब ओर विस्तृत हो रही थी, जान पड़ता था कि वह सब लोगोंकी हँसी उड़ा रही है। अपने कड़े, अंगद और बाजूबंदोंकी कान्ति द्वारा वे अँधेरेको दूर करते थे; और दाँतोंकी उज्ज्वल किरणोंसे पृथ्वी-तलको उज्ज्वल करते थे। इतनेमें द्वारपालकी आज्ञासे वनपाल भीतर आया। और सब ऋतुओंके फल-फूल महाराजकी भेंट कर तथा उन्हें नमस्कार कर हर्षके साथ बोला कि देवोंके देव! आज वनमें विपुलाचल पर्वत पर वीरप्रभु आये है। वे नाथवंशके दीपक है, पृथ्वीके तिलक और स्वामी है। राजन्! यह सब उन्हींका माहात्म्य है जो आज वनमें क्रूर-चित्त और जीवोंको महान् संकटमें डालनेवाली व्याघ्री भी अपने बच्चेकी चाहसे गायके बछवे पर प्रेम करती है। तथा सिंह और हाथीके बच्चे अपने जातीय वैर-विरोधको भूल कर सुखकी इच्छासे एक जगह खेलते है।

साँप और नौला हितकी इच्छासे एक दूसरेको अपने पास स्थान देते हैं—एक जगह किलोलें करते है। बिल्ली और चूहा भाई-बन्धुओंकी तरह साथ-साथ खेलनेको तैयार है! तथा यह थीं उन्हीं महात्माका प्रभाव है कि जो ताल-तलइयाँ बरसोंसे सूखी पड़ी थीं वे आज जलसे लबालब भर गई हैं। और कोक, हंस आदि पक्षी उन पर कलरव शब्द करते हैं। तथा बहुत दिनोंके सूखे हुए तालवृक्ष भी आज फल-फूल और पत्तोंसे लहलहा उठे हैं; फल-फूलोंके भारसे पृथ्वी तक नीचे झुक गये हैं। जान पड़ता है कि वे पृथ्वी तक नीचे झुक कर भगवानको नमस्कार ही करते है। इसके सिवा राजन्! यह जो और और सब वृक्षों पर अकालमें ही फल-पुष्प आ गये हैं इससे जान पड़ता है कि ये सब वृक्ष अपने-आपको अहमिन्द्र मान फल-पुष्प ले-ले कर प्रभुकी सेवा और भक्ति करनेको ही उपस्थित हुए हैं। महाराज! सब ऋतुओंके फल-पुष्पोंको एक साथ आया देख कर पहले तो मुझे अचंभा हुआ, पर पीछे उन प्रभुका माहात्म्य जान सब ऋतुओंके फल-फूलोंको लेकर मैं आपकी सेवामें आया हूँ। इस शुभ समाचारको सुन कर महाराजके हर्षका कुछ पार न रहा। उनके रोमाञ्च हो आये और मुँह प्रसन्न हो उठा। इस समय महाराजने संदेशा लानेवाले वनपालको खूब धन-सम्पत्ति दी—उसे मालामाल कर दिया। और आप सिंहासनको छोड़ जिस दिशामें वीरप्रभु थे उस ओरको सात पेंड़ आगे गये तथा वहाँसे उन्होंने अनेक राजोंके साथ-साथ वीरप्रभुको विनीतभावसे नमस्कार किया। बाद वे अपने स्थान पर आ बैठे। इस वक्त वीरप्रभुकी वन्दनाके लिए वे बहुत ही उत्सुक हो रहे थे।

वीरप्रभु गुणोंके आश्रय हैं, उनको गुणोंने इस अभिप्रायसे अपना आश्रय बनाया कि जिसमें वे (गुण) सारे संसारमें प्रसिद्ध हो जायँ। वीरप्रभुने ही व्रतोंका उपदेश किया है और उन्होंने ही धर्म-तीर्थको चलाया है। तथा वे सिद्धिके स्वामी और संसार भरके रक्षक हैं। एवं संसारी जीवोंके मोह-मदको उतारनेवाले हैं। उन वीरप्रभुके लिए स्वस्ति हो।

दूसरा अध्याय ।

उन परम पवित्र और महावीर वीरप्रभुको नमस्कार है जो सम्पूर्ण वैरियों पर विजय-लाभ कर संसार-समुद्रको पार कर चुके है ।

इसके वाद हर्षसे गद्गद हो महाराजने संसारको आनंद देनेवाली आनंद भेरी वजवाई और दान देकर सभी प्रजाको अमन-चैनमें कर दिया। भेरीके शब्द-को सुनते ही अपने अपने मनोरथोंकी सिद्धिकी इच्छासे सव लोग वस्त्र, आभूषण, गहने-गॉठे पहिन कर यात्राके लिए तैयार हुए। सईसोंने हर्षित होकर हलती-चलती हुई सुन्दर किसवारवाले घोड़ों पर मनोहर पलाण रखे। महावतोंने, दंत-प्रहारसे दिग्गजोंको भी डरानेवाले सुन्दर हाथियों पर मनोहर झूलें डालीं। सारथी-गण मनोहर पहियोंवाले रथोंमें सुन्दर सुन्दर घोड़ोंको जोत कर उन्हें राज मन्दिरमें ले आये। और पयादे-गण कोई पालकी पर, कोई वैलों पर और कोई ऊँटों पर सवार हो-हो कर सव राजवाड़ेके चौकमें आ उपस्थित हुए। उनके हाथोंमें ढाल, तलवार, माला और शक्ति आदि कई एक हथियार थे। और चॉद जैसे सुन्दर मुँहवाले, गर्व-युक्त नर्तकी-गण नटोंको साथ लिये हुए नृत्य करनेको तैयार हो-हो कर आये तथा महाराजके आगे नृत्य करने लगे। इस भॉति महाराजको सभी सामग्री सुलभ थी। उनका पराक्रम अद्भुत था और वे लक्ष्मीके स्वामी थे। अतः जान पड़ता था कि वे दूसरे कुवेर ही हैं। कारण कुवेर भी अद्भुत पराक्रमी और लक्ष्मीका पति होता है। इस तरह सज-धज कर तैयार हो वे निर्भय अभय-कुमार और पवित्र वारिषेण कुमारको साथ लेकर वीरप्रभुकी वन्दनाको गये। इस समय उनके साथ जिनभक्त चेलिनी भी थीं। जव उद्यान पास आ गया तव वे हाथी परसे उतर पड़े एवं जल्दीसे वीरप्रभुके समवसरणमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने वीरप्रभुको जी भर देख कर वार वार नमस्कार किया। वाद सवके सव अपने योग्य स्थानमें जा स्थिर-चित्त हो वैठ गये। और सवने ध्यान देकर धर्मका उपदेश सुना।

इसके वाद महाराज खड़े हुए और उन्होंने ज्ञानी गण-नायक गौतम गुरुकी वन्दना कर उनका यों गुण-गान आरम्भ किया। भगवन्! आप महाभूति है, राजा-महाराजा सभी आपकी पूजा-स्तुति करते हैं। आपके ज्ञान-रूप आलोकमें सभी पदार्थ एक साथ झलकते है, दीख पड़ते है। प्रभो आपके लिए कोई भी वस्तु

अगम्य नहीं है; क्योंकि आपका ज्ञान तो एक बड़े भारी समुद्रके बराबर है औ यह सारा संसार उसमें एक बूँद की नाँई है। हे नाथ! आपके पास वह उत्त- विद्या है जो सारे संसार पर अपना प्रकाश डालती है; उसमें यह सारा संसा हमेशा गायके खुरके बराबर झलकता है। तथा हे महर्षि! आप बहुतसी वृद्धि गत ऋद्धियोंके धारक हैं; बीज ऋद्धिसे युक्त और मनःपर्ययज्ञानी हैं; पादानु सारिणी ऋद्धिवाले और परमावधिज्ञानके धारक हैं। आपमें सभी पदार्थोंको जाननेवाली विद्या है जो निर्मल आकाशमें सूरजकी भाँति शोभा पाती है। सभ जीवोंके सभी रोगोंको दूर करनेवाली सर्वौषधिऋद्धिके आप स्वामी हैं। औ इसी लिए कहा जाता है कि आपकी परोपकारिता वचनातीत है। एवं आप चारण ऋद्धिके बलसे आकाशमें चलते हैं और मार्गके जीव-जन्तुओंकी पीड़ा बचाते हैं, अतः आप परम दयालु—दया-स्तंभ—हैं। इसके सिवा अक्षीण ऋद्धि भी आपको है। बहुत कहाँ तक कहें, आकाशके तारोंकी भाँति आपकी ऋद्धियोंकी कुछ गिन नहीं है। कृपासिन्धु भगवन्! मुझे एक सन्देह है, और साथ ही आशा त विश्वास है कि वह आपके प्रसादसे अब मेरे हृदयसे निकल जायगा, उसे अब मे हृदयमें स्थान नहीं मिलेगा; जिस तरह जलती हुई आगसे हर एक चीजका निकल जाता है और उसमें फिर उसे स्थान नहीं पाता। क्योंकि प्रभो, संसारमें आप ही उत्तम हैं; सबके गुरु और आश्रय हैं; महामुनि, सर्वज्ञ-पुत्र सर्वज्ञशिष्य हैं। हे सर्वज्ञ! आपसे मैं बहुत कुछ जानना चा हूँ और उस और लोगोंका भी हित होगा; क्योंकि वह सबके लिए उपयोगी है। हे पुरु त्तम! प्रसन्न हो कर मुझ पर दया करो। दयानिधे! मैं कुरुवंशके दीपव पाण्डवोंका चरित सुना चाहता हूँ। सुना जाता है कि पांडव लोग कौरव थे औ बहुतसे राजा महाराजा उनके सेवक थे। इसमें मुझे यह सन्देह है कि वे कौनसे वंश पैदा हुए? कुरुवंश किस युगमें हुआ या चला? इसके सिवा गुण और गौरवके धारक कुरुवंशमें पृथ्वी पर कौन कौनसे प्रसिद्ध पुरुषोंने जन्म पाया? और उस वंशमें धर्म-तीर्थके प्रवर्तक और जगत्-पूज्य कौन कौन तीर्थंकर, चक्रवर्त उत्पन्न हुए? नाथ! अन्यमतके शास्त्रोंमें जो पांडवोंका चरित पाया जाता है व तो सर्वथा वाँझ स्त्रीके पुत्रकी सुन्दरताका वर्णन है; मिथ्या है। उसमें कुछ भ सार नहीं है। सुनिए।

काशीका शांतनु राजा कहीं युद्धके लिए गया था। वहाँ उसे अपनी प्रियाके ऋतु समयकी याद हो आई। और उसने उसे रति-दान देनेके लिए अपना वीर्य भेज

नेका विचार किया । उसने एक ताँबे वर्तन मँगाया और उसमें वीर्य रख क
उसके मुँह पर अपने नामकी मुहर लगा दी। तथा उसको एक श्येन पक्षीके ग
बाँध कर अपनी प्रियाके पास ले जानेके लिए पक्षीको काशी भेज दिया
वह लीला मात्रमें ही मार्गको तय कर गंगा नदीके तट पर जा पहुँचा । उ
देख कर उस पर एक दूसरा श्येन पक्षी झपट पड़ा । दोनोंकी आपसमें खू
छेड़-छाड़ हुई और परस्परकी नूँचा-नूँचमें वह वर्तन उस पक्षीके गलेसे छूट क
गंगामें जा पड़ा और टूट-फूट गया। उसमें जो वीर्य था वह दैवयोगसे एक मछली
उदरमें चला गया; एवं उसके उदरमें ठहर कर वह गर्भके रूपमें परिणत हो गया

तात्पर्य यह कि उस वीर्यसे एक मछली गर्भवती हो गई। गर्भके नौ मही
पूरे हो ही चुके थे कि दैवयोगसे उस मछली पर एक दिन किसी धीवरकी दृ
पड़ गई । उसने उसे पकड़ कर चीर डाला । उस वक्त उसके गर्भसे ए
लड़की हुई जो कि संसारमें मत्स्यगंधाके नामसे प्रसिद्ध है। मत्स्यगंधाके शरीर
बदबू बहुत आती थी। इस कारण उस धीवरने उसे नदीके तट पर ही बसा दिय
था । वह वहीं रहती थी और नौका चला-चला कर अपनी उदर-पालना किय
करती थी । धीरे धीरे वह युवती हुई । दैवयोगसे एक दिन नौकामें जाते हु
पराशर ऋषिके साथ उसका समागम हो गया। उसने व्यास जैसे सुन्दर औ
वेद-वेदांगके ज्ञाता पुत्रको जन्म दिया । व्यास बालकपनमें ही तप तपनेके लि
अपने पिता पराशर ऋषिके पास चले गये।

एक दिन शांत-चित्त सांतनु राजाकी दृष्टि उस मत्स्यगंधाके ऊपर जा पड़
और वह उसके ऊपर निछावर हो गया । तथा मोहके वश होकर उसने उसके
साथ विवाह कर लिया। कुछ काल बाद शांतनुके सम्बन्धसे उसके दो पुत्र पैद
हुए । एक चित्र और दूसरा विचित्र । चित्रका व्याह अंबा और विचित्रक
व्याह अंबिकाके साथ हुआ। इन दोनोंकी अंबालिका नाम एक दासी थी।
दैवयोगसे थोड़े ही समयमें सांतनु राजाका परलोक हो गया और चित्र-
विचित्र दोनों भाई राज-पाटके मालिक हुए । कालकी गति विकराल है । उस
पर किसीका जोर नहीं चलता । वह दुष्ट कुछ ही कालमें चित्र विचित्रको भी
निगल गया। इनके कोई सन्तान न थी, अतः राज-पाट सब सूना हो गया। तब
मत्स्यगंधाने राज-काज चलानेके लिए व्यासको बुलाया। वे आये और राज-पाटका
सम्बन्ध पाकर उन्होंने भारी भारी कुकर्म किये। वे कहने लगे कि गान्धिके! मेरी

बात सुनो जो सभीके हितकी है। वह यह कि यदि तुम्हारी दोनों वधुएँ और उनकी दासी मेरे आगे हो लज्जा छोड़ कर नंगी निकल जायँ तो वे अवश्य ही गर्भवती होंगी या यों कि वे गर्भधारण करेंगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तुम मेरी बात पर विश्वास रख कर ऐसा करो। गन्धिकाने वैसा ही किया और वे तीनों गर्भवती हो गई। धीरे धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए तब अंबा और अंबिकाने धृतराष्ट्र, अन्धक और कुष्टरोगी पांडुको जन्म दिया तथा अंबालिकाने विदुरको पैदा किया। भगवन्! अब कहिए कि जो यह सुना जाता है कि अंबा-अंबिकामें आसक्त-चित्त व्याससे इनकी उत्पत्ति हुई, यह कहाँ तक सत्य है?

गांधारीका सौ अज आदि राजोंके साथ विवाह हुआ और फिर भी उसे सती कहा है, यह कहाँ तक ठीक है? तथा सुना जाता है कि अज आदिको उनके पिता यदुवंशी राजा भोजक-वृष्टिने मार डाला तब वे मर कर भूत हुए और भूतपर्यायमें ही उन्होंने गांधारीके साथ समागम किया। यह भी एक विचित्र बात है और प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्यनीके साथ देव भी समागम करते हैं? भारी अचम्भेकी बात तो यह कि भूतोंके समागमसे उसने गर्भ भी धारण किया, पर उसका वह गर्भ अधूरे दिनोंका ही गिर पड़ा। बाद वह कपासमें रख कर बढ़ाया गया और नौ महीने पूरे हो चुकने पर उससे दुर्योधन आदि कौरवोंकी उत्पत्ति हुई?

इसके बाद गांधारीका गोलक (विधवासे उत्पन्न हुए जार-पुत्र) धृतराष्ट्रके साथ पुनर्विवाह हो गया। हे देव! यह सब कथा आकाशके फूलकी प्रशंसाकी भाँति निष्फल—व्यर्थ है। इसके कहने या सुननेसे कुछ भी लाभकी आशा नहीं। पर न जाने लोग फिर भी ऐसी मनगढ़न्त कथा पर कैसे विश्वास करते हैं। एवं सफेद कुष्टवाले और गोलक पांडुका विवाह कुन्ती और माद्रीके साथ हुआ बताया जाता है। एक दिन इन्द्रके जैसी शोभाका धारक पाण्डु राजा अपनी दोनों भार्याओंको साथ लेकर वनमें शिकारके लिए गया और उसने हिरण जैसे गरीब और मूक पशुओंको मारनेका इरादा किया। हे प्रभो! यह बात बड़ी खटकती है कि कौरव लोग भारी दयालु और सज्जन थे; फिर भी वे दीन-हीन पशुओंको वध करनेका इरादा करें यह उनका काम कहाँ तक उचित है? उसी वनमें दो तपस्वी मृगका रूप धर कर मैथुन-क्रियामें आसक्त चित्त हो रहे थे। इतनेमें बाण-विद्या-विशारद पांडुने उन पर बाण छोड़ा। यहाँ यह शंका होती है कि क्या मनुष्य भी मृगका रूप बना सकते हैं? और एक धर्मात्मा राजा मृग जैसे मूक पशुओं पर

वाण चला कर उन्हें दुःख दे, यह कहाँ तक उचित कर्तव्य है? उस वाणके द्वारा वेधा जाकर जब मृग मारा गया तब मृगी बहुत ही दुखी हुई और मैथुन-क्रियामें आसक्त-चित्त उस मृगीने राजाको यह शाप दिया कि मेरे पतिकी नाँई तुम भी अपनी प्रियाके साथ समागम करते समय ही कालके मुँहमें जाओगे—मरोगे। इस शापको सुन कर राजाको बहुत दुःख हुआ और उसने उसी वक्त प्रतिज्ञा की कि मैं आजसे जन्मभर स्त्रीके साथ समागम ही नहीं करूँगा। भगवन्! और भी सुना जाता है कि सूरजके सम्बन्धसे कुन्तीने अपने कर्ण द्वारा कर्णको जन्म दिया, पर आज तक कहीं कानसे पैदा हुए मनुष्य देखनेमें नहीं आये। तब कहिए यह कहाँ तक सम्भव बात है?

इसके वाद कुन्तीका सधर्मके साथ समागम हुआ जिससे उसे गर्भ रहा और उसने युधिष्ठिर जैसे योधा पुत्रको जन्म दिया। एवं कुन्तीने वायुके समागमसे निर्भय भीम और इन्द्रके समागमसे अर्जुन (चाँदी) के समान प्रभावाले अर्जुनको पैदा किया। इसी प्रकार रूप-श्रीसे युक्त माद्रीने भी आश्विनेय सुरके सम्बन्धसे नकुल और सहदेवको जन्म दिया। ये दोनों उत्तम गुणोंके भंडार थे। इन सबको किसी भी वातकी कमी न थी। हे प्रभो! इस कहानीसे जान पडता है कि पांडव लोग कुंड थे—सधवासे उत्पन्न हुए जार-पुत्र थे। अब बताइए कि ऐसे सत्पुरुषोंकी इस भाँति उत्पत्ति क्यों हुई? यह वात सच्ची है या मिथ्या?

भीम भारी वलवान, समझदार और बुद्धिका सागर था तथा वास्तवमें उसका आहार भी बहुत कम था; पर न जाने लोग क्यों कहते है कि भीम दस मानी अन्न रोज खाता था!

और भी सुनते हैं कि गांगेय ऋषि गंगानदीसे पैदा हुए? परन्तु हे नाथ! यहाँ यह तर्क उठता है कि नदियोंसे यदि मनुष्योंकी उत्पत्ति होने लगे तो फिर कोई विवाह ही क्यों करेगा और घर-गिरस्तीके झंझटमें ही काहेको फँसेगा।

कहते हैं कि द्रौपदी बहुत ही सुन्दरी थी, सती थी, शीलको अखंड पालती थी। परन्तु फिर भी वह पाँचों पांडवोंको भोगती थी। हे नाथ! कहिए कि जब वह सती थी तो उसके पाँच पति कैसे हो सकते हैं? और कदाचित् हों भी तो ऐसी हालतमें वह सती कहाँ रही? यह वात परस्पर विरुद्ध है। दूसरी बात यह कि जब वह युधिष्ठिरके साथ कामासक्त होती थी उस समय और और पांडव उसके देवर हुए, जो पुत्रके बराबर होते है। फिर वह उनके साथ कैसे रमती थी?

और जब वह और और पांडवोंके साथ काम-क्रीड़ा करती थी उस वक्त युधिष्ठिर उसके जेठ हुए, जो कि पितासे कम नहीं होता। ऐसी हालतमें वह युधिष्ठिरको कैसे भोग सकती थी। यह सब बड़े ही अचंभेकी कहानी है!

हे भगवन्! इस कथाको कह कर या सुन कर कुछ भी फलकी इच्छा करना बालूको पेल कर तैल और जलको बिलो कर घीकी इच्छा करना है। तात्पर्य यह कि जैसे बालूको तेलके लिए पेलना और पानीको घीके लिए बिलोना व्यर्थ है वैसे ही यह कहानी भी व्यर्थका वाग्जाल है। इसमें कुछ भी सार और सचाई नहीं। तब इसको कहने या सुननेसे फलकी आशा ही क्या हो सकती है। या यों कि जिस तरह फलकी आशा कर शिला पर बीज बोना किसी कामका नहीं उसी तरह मनोरथ-सिद्धिकी लालसासे ऐसी कथा बतानेवाले पुराणको कहना या सुनना भी किसी प्रयोजनका नहीं।

हे प्रभो! मेरे हृदयमें कुछ और भी सन्देह उठ रहे हैं, अतः आपसे निवेदन है कि आप नीचे लिखी बातोंको समझा कर उन्हें दूर कीजिए और संसारका हित कीजिए।

१ गंगाके जलके समान-स्वच्छ गांगेय ऋषिका माहात्म्य, २ द्रोणाचार्यका पराक्रम, ३ भीमका पराक्रम, ४ हरिवंशकी उत्पत्ति, ५ द्वारिका पुरीकी रचना, ६ कृष्ण और नेमिनाथका बल, ७ जरासिंधका सत्तानाश, ८ कौरव और पांडवोंका वैर, ९ तथा उनके वैरका कारण, १० पांडवोंका विदेश जाना और फिर वापिस लौटना, ११ द्रौपदीका हरण, १२ उत्तर मथुराकी हालत, १३ कृष्णका मरण होने पर पांडवोंका नेमिनाथ स्वामीके पास आना, १४ पांडवोंके पूर्वभव, १५ द्रौपदीका पंच भरतारीपनेका कलंक, १६ पांडवोंकी दीक्षा, १७ पांडवोंका शत्रुंजय पर्वत पर जाना, १८ वहाँ घोर परीषहोंका सहना, १९ तीन पांडवोंको केवलज्ञान होना, और उनका मोक्ष जाना, २० दो पांडवोंका पंच अनुत्तरमें अहमिन्द्र पद पाना।

हे देव! इन प्रश्नोंके समाधानको सुन कर सभी जीव सुखी होंगे, अतः हे सबके हितैषी और सबके हितके लिए तैयार रहनेवाले प्रभो! आप इनका शीघ्र ही समाधान कीजिए। क्योंकि आपको छोड़ कर और कोई भी इन प्रश्नोंको हल नहीं कर सकता। इस प्रकार वीरप्रभुकी सभामें श्रेणिक महाराजने बहुतसे प्रश्न किये। ये प्रश्न संदेहको मिटानेवाले और सबके हितकारी हैं। इसके बाद जब गौतमगुरु उत्तरमें बोलने लगे तब संसार-तापको दूर करनेवाली उनकी दिव्यवाणीको सुन कर भव्य

पुरुषोंको बहुत आनंद हुआ, वे हर्षसे गद्गद हो गये; जैसे सूरजके तापको मिटाने-वाले मेघोंका निमित्त पाकर अन्नके खेत हरे-भरे हो जाते हैं । इसी तरह मेघके शब्दको सुन कर मयूरकी नाँई शिष्य-गण भी उनकी वाणीको सुन कर नाँचने लग गये। तात्पर्य यह कि उन्हें बहुत ही हर्ष हुआ। उस समय गौतम भगवानके दाँतोंकी स्वच्छ किरणें जाकर सभी सभाजनोंके ऊपर पड़ती थीं, अतः ऐसा जान पड़ता था कि वे स्वभावसे ही पवित्र-चित्त सभासदोंको और भी पवित्र बना देनेके लिए स्नान ही करा रही हैं। गौतम प्रभु निष्पाप—पवित्र आत्मा—थे, तेजस्वी थे, उनका तेज चारों ओर फैल रहा था। वे अपने तेजसे घिरे हुए अपूर्व ही शोभाको धारण कर रहे थे। वे आत्म-स्वरूपमें लीन और गुणोंके भंडार थे।

गौतम गुरुके चारों तरफ जो और और शिष्य-गण विराजे थे वे श्रेणिक राजाके प्रश्नोंको सुन कर बहुत ही हर्षित हुए; कारण पांडवोंके चरितको सुननेका उन्हें अच्छा मौका आ मिला था। तथा वहाँ जो देवतों द्वारा पूजे जानेवाले और और ऋषि-गण बैठे थे वे महाराजके प्रश्नोंको सुन कर कहने लगे कि प्रसिद्ध पांडव पुराणको सुननेकी हमारी बहुत दिनोंसे इच्छा थी, आशा है कि वह अब पूरी हो जायगी। राजन्! आपने मगध देशके बहुतसे शत्रुओंको जीत लिया है, .. सम्यग्दर्शनसे युक्त और मिष्टभाषी है तथा भावी तीर्थंकर हैं । आपके प्र... सुन कर हमें बहुत खुशी हुई और हमारे पुण्णोदयकी भी उद्भूति हुई । क... हमारी बहुत इच्छा थी कि हम पुराण-पुरुषोंके पुराणको सुने और वह ... आज हम सुन रहे हैं । इसके सिवा और क्या खुशीकी बात होगी । राजन् आपने हमारे सन्देह रूप अंधेरेको हटा दिया, इस लिए आप सूरज है; आपने हमारे गुणोंको गौरव दिया, अतः आप गुरुसे भी गुरु है; अपने ... चाहनेवाले पुरुषोंके हितका प्रश्न किया, इस लिए आप हितैषी हैं और ... जीवोंके मिथ्यात-रोगको दूर करते हैं, इस लिए परोपकारी सच्चे वैद्य है। ... मर्में कहा है कि पुराणोंको सुननेसे आत्माका कल्याण होता है । इस समय ... लोग इस पुराणको आपके निमित्तसे सुन ही रहे है। तब यही करना होगा कि हमारा कल्याण करनेवाले है—संसारकी सत्ता नाश करनेवाले है।

इस भारतवर्षमें पहले भरत आदि बहुतसे इसके स्वामी होगये हैं । ...ने पुराणको सुन कर देशावधि नाम महान् ज्ञानको पाया था। कृष्ण नारायणने ने... नाथ भगवानकी सभामें पुराण पुरुषोंके चरितको सुन कर उसी समय तीर्थं...

नाम कर्मको बाँधा था, जिसके प्रभावसे वे धर्म-तीर्थको चलानेवाले तीर्थंकर भगवान होंगे। और उसी तरह आप भी आज वीरप्रभुकी सभामें आगममें कही हुई सत्कथाओंको सुन रहे हैं, अत एव आप भी आगे उत्सर्पिणी कालमें महापद्म नाम प्रथम तीर्थंकर होंगे । यह सब पुराणपुरुषोंकी कथा कहने या सुननेका ही प्रभाव है । राजन्! अब देखो कि हम भी तुम्हारे निमित्तसे इस पवित्र पुराणको सुनते हैं और आशा है कि हमारे मनोरथकी भी सिद्धि होगी। सच है गुणी पुरुषोंकी संगतिसे गुणोंका लाभ होता ही है। राजन्! आपमें अगणित गुण है और वे सभी-के-सभी गौरव-युक्त हैं। जिनागममें आपका अटूट प्रेम है। आप धर्मात्मा और धर्मात्माओंके साथ गाय-बछड़ेकी भाँति प्रीति रखनेवाले हैं। आपके समान गुणी राजा न तो देखा और न इस समय देख ही पड़ता है । सच है गुणज्ञताको सभी पूजते हैं और गुणीका सब जगह आदर होता है।

इस प्रकार उन महर्षियोंने महाराजकी खूब ही प्रशंसा की । सच है शिरोमणियोंके समागमसे सूतकी नाँई गुणोंके निमित्तसे छोटासा पुरुष भी बड़े बड़े महात्माओं द्वारा गण्य-मान्य हो जाता है।

इसके बाद विद्वानों द्वारा पूजे जानेवाले और जगत्के गुरु वाचस्पति गौतम गणधर अपनी गंभीर ध्वनिसे कहने लगे कि श्रेणिक महाराज! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी। हे शास्त्र-विशारद ! तुमने जो संसार-प्रसिद्ध बात पूछी है उसको अब हम थोड़ेमें कहते है। तुम सावधान चित्त हो कर सुनो।

इस भरत क्षेत्रमें पहले भोगभूमि थी और कल्पवृक्षोंके निमित्तसे लोगोंका मनचाहे आरामसे काल गुजरता था । पर धीरे धीरे जब भोग-भूमिका क्षय होने लगा और तीसरे कालका पल्यका कुल आठवाँ भाग काल बाकी रह गया तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए । वे दिगीश्वर थे अर्थात् यद्यपि तेरह कुलकरों तक राजा-प्रजाका कुछ भी सम्बन्ध न था, पर तो भी लोगोंमें वे मुख्य गिने जाते थे। वे बहुतसी कला-चतुराइयोंको जानते थे। और उन्होंने अनेक कुलोंकी व्यवस्था की थी । उनके नाम थे—प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विपुलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचंन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज ।

इन्होंने हा, मा, और धिक इन तीन दंडोंको नियत किया था और इन्हींके द्वारा लोगों पर हिंसक जन्तुओं आदिके निमित्तसे जो आपत्तियाँ आती थीं उन्हें ये

दूर करते थे। चौदहवें कुलकर नाभिराजाका ब्याह मरुदेवीके साथ हुआ। इसी समयसे इनके रहनेके लिए इन्द्रने आकर अयोध्या नगरीकी रचना की और कुवेरको आज्ञा की कि यहाँ पर भगवान आदिनाथ जन्म लेंगे, इस लिए तुम अभीसे यहाँ रत्नोंकी बरसा करो। इन्द्रकी आज्ञाको शिरोधार्य कर कुवेरने वहाँ बराबर पंद्रह महीने रत्नोंकी बरसा की तथा देवियोंने आकर गर्भशोधन आदि क्रियायें कीं। इसी समय सर्वार्थसिद्धि नाम विमानसे एक देव चय कर अषाढ़ वदि दोजके दिन मरुदेवीके गर्भमें आया। भगवानको गर्भमें धारण किये हुए मरुदेवी ऐसी जान पड़ती थी मानों रत्नोंको भीतर रखनेवाली पृथ्वी ही है। तात्पर्य यह कि वह उस वक्त रत्नोंकी खानिकी नाँई शोभती थी। भगवानकी माता मरुदेवीकी छप्पन्न देवकुमारियाँ सदा काल सेवा करती थीं। उनका काल अमन-चैनके साथ बीतता था। जब आसानीसे नौ महीने पूरे हो गये तब उन्होंने चैत सुदि नौमीके दिन भगवान आदिनाथ प्रभुको जन्म दिया; जैसे सीप अमूल्य मोतियोंको पैदा करती है। आदिनाथ प्रभुका जन्म सबको शुभ—कल्याणका निमित्त हुआ। भगवानका जन्म होते ही देवतोंके सिंहासन हिल गये—उनके वहाँ हल-चल मच गई। सच है सत्पुरुषोंके चरितकी सभीको सूचना मिल जाती है। इसके बाद अवधिज्ञान द्वारा भगवानका जन्म जान कर देवता-गण उसी वक्त स्वर्गसे चल कर थोड़ी ही देरमें अयोध्या नगरीमें आ पहुँचे। वहाँ आकर सभी देवता-गण और ऐरावत हाथी पर चढ़ा हुआ इन्द्र तो नाभिराजाके महलके द्वार पर खड़ा रह गया और सुन्दर रूपकी सीमा मानिनी इन्द्राणीको उसने मनोहर प्रसूति-गृहमें भगवानको ले आनेके लिए भेजा। भक्ति-भावसे भरी हुई इन्द्राणी गुप्तरूपसे भीतर गई और वहाँ उसने गुणोंके भंडार और मनोहर आदिनाथ प्रभुको एक अनोखी शय्या पर लेटे हुए देखा। उसने माता-सहित उन्हें नमस्कार किया। उत्तम और इष्ट गुणोंके पुंज भगवानको दे.. कर इन्द्राणीका हृदय बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। हर्षके मारे उसका सारा शरीर रोमा-ञ्चित हो गया। उसने भगवानके गुणोंके गौरवको अच्छी तरह समझा इसके बाद वह भगवानकी माताको मायाकी नींदमें सुला कर और उनके .. माया-मय बालकको लिटा कर आप प्रभुको लेकर बाहिर चली आई।

इस वक्त भगवानके शरीरका अत्यन्त दुर्लभ स्पर्श कर और उनके मुख कमलका दर्शन कर इन्द्राणीको असीम हर्ष हुआ। उसने भगवानको व हि

लाकर इन्द्रके हाथोंमें सौंप दिया । उस वक्त प्रभु ऐसे जान पड़े मानों पूर्व दिशामें उदयाचल पर उदयको प्राप्त हुए सूरज ही हैं ।

इसके बाद श्रीमान् सुरेन्द्र देवता-गणके साथ-साथ बालक प्रभुको लेकर गाजे-बाजेके साथ खूब उत्सव करता हुआ सुमेरु पर्वतके शिखर पर जा पहुँचा। वहाँ पांडुकवनकी पाण्डुक शिला पर—जो अनादि कालीन सिंहासन है—बहुतसे देवोंके साथ साथ इन्द्रने आदि प्रभुको विराजमान किया। इसके बाद देवता-गण जल लानेको क्षीरसागर गये, जिससे उसमें हल-चल मच गई। वहाँसे वे सोनेके एक हजार कलश भर कर लाये । उन कलशोंके द्वारा इन्द्रने भगवानको स्नान कराया और उन्हें दिव्य वस्त्र-भूषण पहिना कर उनकी भारी भक्ति-स्तुति की और प्रभुका ऋषभ नाम रक्खा। इस प्रकार जन्मकल्याणको पूरा कर सुरेन्द्र प्रभुको गजोत्तम ऐरावत हाथी पर सवार कर उनकी पूजा-भक्ति करता हुआ अयोध्या पुरीमें ले आया । वहाँ आकर उसने माया-निद्रासे रहित मरुदेवीको—जो कि नाभिराजाके पास बैठी हुई थीं—बड़ी भारी आदरकी दृष्टिसे देखा; और नाभिराजाको नमस्कार कर बाल-सूरज श्री आदिप्रभुको माताकी गोदमें दे दिया । इसके बाद उसने सुमेरु परकी सारी कथा कह सुनाई और भगवानका जो नाम रक्खा था वह भी बताया। इसके बाद सैकड़ों नटी-नटोंसे भी उत्तम नृत्य करनेवाले इन्द्रने आनन्दमें आकर इंद्राणीके साथ साथ खूब ही नृत्य किया; और प्रभुकी सेवा-सँभाल करनेको चतुर चतुर देवतोंको वहीं छोड़ कर, नाभिराजाकी आज्ञा लेकर वह स्वर्गको चला गया। भगवानके चरणकमलोंकी देवता-गण हमेशा भारी भक्तिसे सेवा करते थे । प्रभु तीन ज्ञानके स्वामी थे । धीरे धीरे कुछ समय बीत जाने पर प्रभुने कुमार अवस्थामें पैर रक्खा; और क्रमसे जब वे यौवन अवस्थामें आये उस समय उनके तेजसे दशों दिशाएँ प्रकाश-मय होगईं ।

भगवानका जीवन धर्म-मय था, अतः वे हमेशा भव्य जीवोंसे घिरे रहते थे । इसके बाद प्रभुने इन्द्र और नाभिराजाकी प्रेरणासे यशस्वती और सुनंदाके साथ ब्याह किया । प्रभुका समय बड़े सुखसे बीतने लगा । इसी समय प्रजा पर भारी कष्ट आकर उपस्थित हुआ । धीरे धीरे सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये । यह देख लोगोंको बहुत अचंभा हुआ और वे जीविकाके विना दुखी होकर नाभिराजाके पास आये तथा उनसे निवेदन करने लगे कि

राजन्! हम लोग खाने पीनेके विना बहुत दुखी हो रहे हैं। देखिए, हमारे शरीर कितने कृश हो गये हैं और हमारे हृदयमें एक भारी हलचलसी मच रही है। इस लिए हम सब आपसे विन्ती करते हैं कि आप हमारे दुःखोंको दूर कर हमें सुखी बनाइए। हे नाथ! जो कल्पवृक्ष हमें पिताकी भाँति पालते पोसते थे वे न जाने क्यों हमारे देखते देखते ही बिला गये। उनके विना अब हम लोग बहुत ही दुखी हो रहे हैं—हमें जीविकाका कुछ भी उपाय नहीं सूझता। उन दीन-दुखी जीवोंकी पुकारको सुन कर बुद्धिशाली नाभिराजाने उन्हें बहुत कुछ समझाया-बुझाया और बाद आदिनाथ भगवानके पास भेज दिया। भूखके मारे वे मुरझा रहे थे; शर्मके मारसे उनके मस्तक नीचेको झुक गये थे। वहाँसे चल कर वे भगवानके पास आये और भगवानको उन्होंने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। उन्होंने कहा कि हे देव! हे देवेश और संस्तुत्य! आपके गर्भोत्सवके समय देवतोंने मूसलधार जलकी बरसाकी भाँति रत्नोंकी बरसा की थी, जिससे उस वक्त हम लोगोंको अपनी दरिद्रताका कुछ भान न हुआ था। वह अब न जाने कहाँ चली गई। हे नाथ! इस समय आप कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे हमारी भूख भाग जाय और हम सब सुखी हो जायँ। प्रभो! पुण्यात्मा और पवित्र देवता-गण भी जब आपकी आज्ञाको मानते हैं—शिरोधार्य करते हैं तब फिर इस वक्त आपको दुर्लभ ही क्या है। यदि आप चाहें तो एक क्षणमें ही हमें धन-दौलतसे सुखी बना सकते हैं। देव! यदि आपके होते हुए भी हम लोग मर गये तो आपकी दयालुता कहाँ रहेगी! इस लिए हे पवित्र! आप हमारी रक्षा करो; हमें बचाओ। भूखके मारे हम लोगोंके शरीर बहुत कृश हो गये हैं—प्राण निकलते हैं। उनके दीन वचनोंको सुन कर प्रभुका हृदय दयासे भर आया। सच है गरीबोंको देख कर सभीको दया आ जाती है। इसके उत्तरमें तीन ज्ञानके धारक प्रभुने कहा कि पृथ्वी पर अनेक जातिके वृक्ष है और उनमें अनेक प्रकारके गुण है। तुम लोग उनको उपयोगमें लाओ। वृक्षोंमें कुछ तो खानेके कामके है और कुछ नहीं भी है। इस लिए तुम लोग पहले उन वृक्षोंका आदर करो जो तुम्हारे खानेके कामके हैं। और ऐसा ही उत्तम पुरुष करते है। देखो, वृक्ष, बेल और तृण ये तीन वनस्पतियाँ है और इन्हींके खाने योग्य और न खाने योग्य ऐसे दो भेद हैं। वृक्षोंमें नीचे लिखे वृक्ष आदि खानेके योग्य हैं। उनके नाम सुनो—

आम, नालिकेर, नींबू, जाँबू, केला, बिजौरा, मधुपुष्प, नारंगी, कमरख, तेंदू, कैथ, बेर, आँवला, चारोली, श्रीफल इत्यादि वृक्ष; दाख, कुष्मांडी और चिर्भटा इत्यादि लताएँ; व्रीहि, शालि, मूँग, राजमाष, उड़द, गेहूँ, सरसों, कोदों, मसूर, चना, जौ, धान, तुअर इत्यादि अन्न;—भूखको दूर करनेके लिए इन चीजोंको काममें लाना चाहिए। अन्नके भेदोंको समझा कर प्रभुने उनके पकानेकी विधि बताई; और मिट्टी आदिके वर्तनोंसे काम लेना बता कर उनके भेद बताये । तथा असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और पशुपालन इन छः कर्मोंका भी भगवानने उपदेश किया । इसके बाद प्रभुने भरत आदि अपने एक सौ एक पुत्रोंको शिक्षा दी और ब्राह्मी, सुन्दरी इन दोनों पुत्रियोंको भाँति भाँतिकी कलाएँ सिखाई । इसके बाद शुभ मुहूर्तमें इन्द्रके साथ-साथ नाभिराजाने प्रभुको प्रजाके हितके लिए उत्तम राज-सिंहासन पर बैठा कर उनका राज्याभिषेक किया। राज-पाटको सँभालते ही विद्वानों द्वारा पूजे जानेवाले प्रभुने इन्द्रको आज्ञा दी कि तुम विदेहकी भाँति यहाँ भी देशोंकी रचना करो । प्रभुकी आज्ञा पाते ही इन्द्रने कोशल आदि देशोंकी रचना की और उनकी नीचे लिखे माफिक व्यवस्था की। उसका वर्णन सुनिए।

जिसके चारों ओर बाड़ हो वह गाँव और जिसके सब ओर कोट फिरा हो वह पुर है। नदी और पहाड़के बीचमें जो हो उसे खेट तथा चारों ओरसे पर्वतोंके द्वारा घिरे हुएको कर्वट कहते हैं। जिससे पाँचसौ गाँव लगते है उसे मटंब और जिसमें रत्नोंकी खानें हों उसे पत्तन कहते हैं। जो समुद्रके किनारेसे भिड़ा हो वह द्रोण और जो पर्वतके ऊपर हो वह वाहन है। इसके सिवा प्रभुने तीन वर्णोंकी व्यवस्था की। वे वर्ण हैं—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जिनका आचरण गिरा हुआ था उन्हें भगवानने शूद्र कहा तथा उत्तम आचरणवालोंको उनके क्रम-बद्ध आचरणको लेकर वैश्य और क्षत्रिय कहा। इस प्रकारकी वर्ण-व्यवस्था करके प्रभुने जो क्षत्रियोंके भेद किये थे उन्हें सुनिए। वे चार हैं। मिष्टभाषी इक्ष्वाकु, कौरव, हरिवंश और नाथवंश । इसके सिवा प्रभुने संसार-प्रसिद्ध कौरववंशमें उत्तम लक्षणोंके धारक दो श्रेष्ठ राजोंकी स्थापना की। उनके नाम थे सोम और श्रेयान्स।

कुरुजांगल नाम एक प्रसिद्ध देश है। वह भूमंडलका भूषण और उत्तम गुणोंका भंडार है। वहाँकी जमीनमें एक अपूर्व गुण है। वह यह कि उसमें बिना बोये-जोते ही धान्य पैदा होता है। उस धान्य द्वारा लोगोंको भारी सुख होता

है। अतएव कहा जाता है कि वह उत्तम गुणोंका खजाना है। वहाँके खेतोंमें तीनों ऋतुओंके उत्पन्न हुए अन्नके ढेरके ढेर लगे रहते हैं, जिनसे वे खेत ऐसे देख पड़ते हैं मानों अन्नसे भरपूर राजाके कोठे ही हैं। वहाँके वनकी श्री (शोभा) एक महारानीके साथ तुलना करती है। महारानी कुलीन और सुन्दरी होती है वह भी कुलीन (पृथ्वीमें मिली हुई) और सुन्दरी है। महारानी सफला (बाल-बच्चोंवाली) और शुभ होती हैं वह भी सफला (फलोंवाली) और शुभ—अच्छे फल देनेवाली है। महारानी राजाके भोगोंको साधती है वह सभी लोगोंके भोगोंको साधती है; उन्हें फल देती है। वहाँके गाँव बिल्कुल पास पास है। वे इतने कि एक गाँवसे दूसरे गाँवमें मुर्गा उड़ कर जा सकता है। उनमें बड़े बड़े सत्पुरुषोंका निवास है और बड़ी ऊँची तथा मनको मोहनेवाली महलोंकी लाखों कतारें बनीं हुई हैं। वहाँके तालाव अपने अमृत जैसे मीठे और स्वच्छ जलसे लोगोंके संताप-को दूर करते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों मुनिजनोंके ध्यान ही हैं। कारण ध्यान भी तो संसार-तापको हरता है और निर्मल होता है। वहाँके धान्य कर्मोंके उदयकी नाँई नियत समय पर अपना फल देते हैं। वहाँ कभी अकाल नहीं पड़ने पाता। पुण्यके उदयसे वहाँ स्वर्गके देव आकर जन्म लेते है और वे भव्य दुष्टता, मात्सर्य, क्रोध आदि भावोंसे रहित त्यागी सरीखे होते हैं। एवं वहाँके वनमें फले हुए वृक्ष, पक्षियोंके द्वारा कल-कल शब्द करके पथिक लोगोंको बुलाते हैं और जो जैसे फलोंको चाहते है उन्हें वैसे फल देते है। अतः उन वृक्षोंको कल्पवृक्ष भी कह सकते है। वहाँके सभी मनुष्य सुन्दर है तथा सभी वृक्ष फलोंसे लदे हुए है, जिससे वे कल्पवृक्षोंकी समता करते है। वहाँके जिनालय भारी भारी ऊँचे हैं, मनोहर और धर्मके दाता हैं। वहाँकी स्त्रियाँ अपने रूप-लावण्य, कला और सुरसे देवांगना-ओंको भी जीतती है; उन्हें नीचा दिखाती हैं; लज्जा देती हैं।

वहाँके नगरोंके पासमें अन्नकी बड़ी बड़ी ढेरियाँ लगी रहती हैं। वे ऐसी जान पड़ती हैं मानों सूरजको विश्राम देनेके लिए पहाड़ ही खड़े किये गये है। वहाँके बगीचों, द्रोणों, पत्तनों, वाहनों और नगरोंमें महलोंकी मनोहर कतारें बनी हुई है। वहाँके तालाव चित्तके साथ तुलना करते है। क्योंकि चित्त गंभीर और मनोज्ञ (मनसे जाननेवाला) होता है वे भी गहरे और मनोज्ञ—सुन्दर है। चित्त सरस (रसोंको जाननेवाला) और तृष्णाको घातनेवाला होता है वे भी सरस—मीठे जलवाले और प्यासको बुझानेवाले हैं। एवं चित्त सपद्म (कमलाकार

ोता है और वे कमलोंवाले हैं । वहाँके बगीचे स्त्रियोंके तुल्य हैं । स्त्रियाँ सुन्दर, ामकी उद्दीपक और तिलक लगाए होती हैं वे भी सुन्दर, कामके उत्तेजक ौर तिलकके वृक्षोंसे युक्त हैं । स्त्रियाँ सपुष्पा (रजोधर्मवाली) और सफला वाल-बच्चोंवाली) होती है वे भी फल और पुष्पोंवाले हैं । तात्पर्य यह कि वे बहुत ही मनोहर और सुखदाता हैं ।

वहाँके खेतोंमें जो धान्य फलके भारसे नम गये है वह ऐसे जान पड़ते है मानों अपने पास बुलानेके लिए पथिक लोगोंको नमस्कार ही करते हैं। इससे अधिक उनकी और क्या तारीफ की जाय । वह देश अपनी विभूति और आतापको दूर करनेवाले महलोंकी कतारोंसे ऐसा जान पड़ता है मानों सब देशोंका अधिपति ही है । उसकी भूमि देवकुरु, उत्तरकुरु भोगभूमिके जैसी है और इसी लिए उसे कुरुजांगल कहते है । इस देशको देखनेसे भारतके कला-कोविदोंकी चतुराईका चित्र हृदय पर खिंचे विना नहीं रहता । सारांश यह कि वह देश सब तरहसे सुन्दर और सम्पत्तिका खजाना है ।

कुरुजांगल देशमें हाथियोंके समूहसे भरपूर एक हस्तिनागपुर नाम नगर है । वह दुष्ट, अभिमानी पुरुषोके घमंडको एक मिनटमें ही चकना-चूर कर देता है । वहाँके कोटके कँगूरों पर आकर तारा-गण ऐसे जान पड़ने लगते है मानों जड़े हुए मुक्ताफल ही हैं । और कोटके दरवाजों पर जो गुमटियाँ बनी हुई है उन पर आकर चाँद सोनेके कलशसा देख पड़ने लगता है । विष-जलसे भरी हुई और मणियोंसे जड़ी हुई वहाँकी खाई ऐसी जान पड़ती है मानों नगरकी सेवाको आये हुए शेषनागद्वारा छोड़ी हुई भयावती काँचली ही है । कारण वह भी विषसे परिपूर्ण और मणियोंके जैसी जड़ी हुई चित्र-विचित्र छोटे छोटे दानोवाली होती है ।

वहाँ जो सत्पुरुषोंकी अटारियाँ बनी हुई हैं उनकी भूमि बहुत ही मनोहर है । और उनमें जो सत्पुरुष रहते हैं उनके चढ़ने और उतरनेसे वे ऐसी मालूम पड़ती है मानों नरक और स्वर्गको जानेका रास्ता ही बताती है । वहाँके जिनालय बहुत ऊँचे है। उनके शिखरोंमें ध्वजाएँ लगी हुई हैं और उनमें हमेशा ही बाजे बजा करते हैं; जिससे ऐसा जान पड़ता है कि वे ध्वजारूप हाथों और बाजोंके शब्दोंके द्वारा भव्य जीवोंको ही बुलाते हैं; और शिखरोंके ऊपरी भागमें लगे हुए दंडोंकी घंटियोंके झुन झुन शब्दोंके द्वारा उनसे यही कहते हैं कि हे भव्यजनो ! पुण्यका संचय करो, उसके प्रभावसे तुम लोग हमारे बराबर ऊँचे—उन्नत हो जाओगे ।

वहाँके सभी लोग दानी है; धनी और ज्ञानी है तथा मान-मत्सरसे रहित और उत्तम ऋद्धियोंसे युक्त हैं। वे महिमाशाली हैं और एक दूसरेसे गाय-बछड़ेकी नाँई प्रीति रखनेवाले हैं। वहाँ भंग (टेढ़ापन) केवल बालोंमें है, नर-नारियोंमें नहीं है। चंचलता उत्तम स्त्रियोंमें ही है और किसीमें नहीं है। नेत्र ही नवीन वधूके मुख देखनेको याचना करते है और कोई मँगता—भिखारी नहीं है। केवल मृदंग ही वहाँ ताड़े जाते हैं; परन्तु अपराध करके कोई ताड़ना नहीं पाता। वहाँ मदन जातिके वृक्ष तो है, पर मदन—कामदेव—का बोलवाला नहीं है। केवल वृक्षोंसे पत्तोंका पतन होता है; परन्तु उत्तम अवस्थासे नीचे कोई नहीं गिरता। वहाँके सत्पुरुषोंमें दान देनेके लिए तो चढ़ा-ऊपरी देख पड़ती है, पर और और कामोंमें नहीं। कामी पुरुषोंके चित्तको तो स्त्रियाँ चुराती हैं; परन्तु इसके सिवा वहाँ और चोरी नहीं होती; वहाँ चोर-लवाड़ पुरुष ही नहीं है। एवं कामी पुरुष ही केवल स्त्रियोंसे डरते हैं और किसीको वहाँ—डर—भय नहीं है। पुष्प ही वृक्षों परसे हरे जाते है, इसके सिवा कोई किसीकी चीजको नहीं हरता। वहाँ यदि नीचता (गहराई) है तो नाभि-मंडलमें है, पुरुष कोई भी नीच नहीं है। वहाँ केवल व्याकरण-शास्त्रमें तो क्विप प्रत्ययका लोप—विनाश—सुना जाता है, पर और कहीं भी विनाश शब्दका प्रयोग नहीं होता। वहाँके पत्थर तो अवश्य नीरस है, पर पुरुष कोई भी नीरस—रूखे स्वभाववाले—नहीं हैं। वहाँ सभी पुरुष ज्ञानी है, कोई मूर्ख नहीं है। वहाँकी सभी स्त्रियाँ शीलवती हैं, कोई दुःशीला नहीं है। वहाँके वृक्ष हमेशा फलोंसे लदे रहते है। तात्पर्य यह कि वह देश सब तरह शोभाका स्थान है। उसका कोट बहुत मनोहर और सारे संसारको वशमें करनेवाला है। जान पड़ता है कि भयके मारे क-क रूप धर कर शेष नाग ही उसकी सेवा करता है। वहाँके सभी धनवाले धीर-वीर हैं। उन्हें पुण्यका पूर्ण फल प्राप्त है। वे हमेशा धर्म, अर्थ और कामका यथायोग्य सेवन करते हैं और उनके फलको भोगते हैं। वे दान, पूजा आदि सत्कर्मोंके द्वारा पापकर्मोंका नाश किया करते है। अतः पाप-कर्मोंके उदयसे होनेवाले रोग-शोक उनके पास ही नहीं फटक पाते। उनके सभी काम शुभ होते हैं और वे हमेशा अमन-चैनसे रहा करते है। वहाँकी खाईमें नीले कमलोंकी बहुतसी कतारें है और वे कमल फूले हुए हैं। जान पड़ता है कि वह खाई एकदम अपने बहुतसे नेत्रोंको खोल कर अपने मध्यभागकी शोभाको ही देख रही है। उसके मध्यभागमें जो वहाँके महलोंकी परछाँई आकर पड़ती है उससे उसकी अपूर्व शोभा देखनेके ही योग्य है। उसको देखनेसे नेत्र खिल उठते है। वहाँके बाजार

रत्नोंकी बहुतसी राशियाँ लगी हुई हैं। अतः रत्नोंको खरीदनेके लिए वहाँ रुपया आदि मूल धन ले-ले कर बहुतसे व्यापारी लोग आते है और रत्नोंकी जाँच करते हुए इधरसे उधर डोलते फिरते देखे जाते हैं। उस समय रत्नोंमें उनका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है और उन पर जो रत्नोंकी किरणें आकर पड़ती है उससे वे बहुत ही शोभा पाते है; जिस तरह अपने तेजसे विभूषित तारागण सुमेरुके इधर उधर घूमते फिरते सुशोभित होते हैं। वहाँके लोग कल्याण और मंगलकी सिद्धिके लिए जिनेन्द्र भगवानकी नित्य और अठाईके दिनोंमें पूजा किया करते हैं और कुदेवोंसे वे दूर रहते हैं। वहाँकी स्त्रियोंके मुँह चाँदके समतुल्य हैं और वे ही रातमें अँधेरेको हटा देते हैं, अत एव वहाँ रातमें जो दीपक जलाये जाते हैं वे केवल मंगलके लिए ही जलाये जाते है; अंधेरा हटानेको नहीं! वहाँकी नर-नारियाँ पान खानेकी भारी शौकीन हैं, इस लिए वहाँके वाजारोंमें पानोंकी पीकोंसे इतना भारी कीचड़ मच जाता है कि उसमें यदि कोई मदोन्मत्त हाथी भी आकर फँस जाय तो उसका वहाँसे निकलना कठिन पड़ जाता है। वहाँकी स्त्रियाँ अपने पाँवोंमें खूब ही कस्तूरी लगाती हैं जिसकी खुशबूसे उनके पास भौरोंके समुदायके समुदाय उड़े हुए चले आते है। और वे पुकार पुकार कर कामीजनोंको कहते हैं कि जिस तरह हम लोग स्त्रियोंके शुभ और सार चरण-कमलोंकी सेवा करते हैं यदि सुख चाहते हो तो तुम भी हमारी नाँई उनके चरण-कमलोंकी सेवा करो।

वहाँ आदिनाथ प्रभुने दो राजोंकी स्थापना की। वे दोनो कुरुवंशके भूषण थे, उत्तम पुरुष और भाई भाई थे। उनके नाम थे सोमप्रभ और श्रेयान्स। सोमप्रभकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। वह चाँद जैसे सुन्दर मुँहवाली और सुन्दरताकी सीमा थी; सती थी। वह सोमप्रभ महाराजको प्राणोंसे भी कहीं अधिक प्यारी थी। लोग उसको सरस्वतीकी उपमा देते थे। क्योंकि जिस तरह सरस्वतीमें मनोहर पदोंका विन्यास होता है और अलंकार आदि होते है उसी तरह वह भी मनोहर पदोंका विन्यास करती हुई चलती थी और भाँति भाँतिके अलंकार—गहने-गाँठेसे विभूषित थी। सरस्वतीमें गूढ़ अर्थ और उत्तम उत्तम गुण होते हैं वह भी गूढ़ अभिप्रायवाली थी और उसमें भी अनेक उत्तम उत्तम गुण थे। सरस्वती निर्दोष और लोगोंको रमानेवाली होती है वह भी दोष-रहित और लोगोंको सुख देनेवाली थी। तात्पर्य यह कि वह गुणों—सूतोंसे गोये गये और मनोहर गहनोंकी चमकती हुई पिटारीसी जान पड़ती थी। क्योंकि उसका शरीर बहुत सुन्दर और चमकीला था। उसमें बहुतसे गुण और भूषण थे। उसके कुंडल

और केयूरोंकी अद्भुत ही शोभा थी। उसके गलेका हार मनको मोहनेवाला था। उसके हाथोंकी उँगुलियोंमें सुन्दर अँगूठियाँ और कमरमें मनोहर करधनी थी। बहुत क्या कहा जावे वह उपमा रहित थी। उसको किसी भी वस्तुकी उपमा नहीं दी जा सकती थी। उसका मुँह चन्द्रके जैसा और नेत्र मृगके जैसे थे। मस्तक आधे चाँदकी नाँई था तथा पके हुए नारियलके समान स्थूल और सुन्दर उसके कुच थे। सारांश यह कि उसकी शोभा सब तरहसे चढ़ी-चढ़ी हुई थी। उसको देख कर ऐसा भान होता था कि मानों ब्रह्माने पहले संसारकी रचना कर खूब ही अनुभव किया और पीछेसे इसकी रचना कर स्त्रियोंकी सुन्दरताकी सीमा ही बाँध दी है।

सोमप्रभ और लक्ष्मीमतीके बड़े पुत्रका नाम जय था। वह रूपशाली और शत्रुदलका घातक था; विजय-लक्ष्मीका पति था। अधिक क्या कहा जाय वह साक्षात् जयकी मूर्ति ही था।

भगवान आदिनाथ इस समय पृथ्वीतल पर नीतिका प्रचार कर रहे थे। उन्हों-ने रत्न आदि धनकी खान पृथ्वीको सुधा-मयी बना दिया था, उसमें सब जगह सुख फैला दिया था। वे प्रजाका शासन करते हुए अपूर्व शोभा पाते थे। एक समय इन्द्रकी आज्ञासे गंधर्व-सहित लीलांजना नामकी एक गुणवती अप्सरा आई और प्रभुके आगे नृत्य करने लगी। वह बड़ी चतुराईसे हाव-भाव दिखाती थी तथा बिजलीकी भाँति चंचल थी। कभी आकाशमें जाती और कभी पृथ्वीपर आती थी। एवं उसमें बहुतसे गुण थे। वह वीणा और बाँसुरीके विनोदसे चंचल होती हुई तालके अनुसार नृत्य करती थी; और कभी कभी सुन्दर आलाप भी लेती थी। इस प्रकार उस देवांगनाने खूब ही नाच किया। जिसको देख कर वहाँ बैठे हुए सभी सभासद चित्रमें लिखेसे रह गये। उनकी एक ऐसी विचित्र हालत होगई कि जिसका कहना वचनोंसे बाहिर है। दैवयोगसे नृत्य करते करते ही उसी वक्त उस नीलांजनाकी आयु पूरी होगई और वह देखते देखते ही अदृश्य हो गई। और नाच भी उसी समय बन्द हो गया; जैसे जड़ोंके उखड़ जाने पर वृक्ष [illegible] जाता है।

उसके मरणको और और सभासदों तो न जान पाया, पर प्रभु जान गये इसके बाद विपत्ति रहित, निर्भय परिणामी प्रभु संसारसे विरक्त होकर उसकी [illegible] पर यों विचार करने लगे कि संसारी जीवोंका जीवन चुल्लूके जलकी भाँति [illegible] धीरे बिखर जानेवाला है। फिर आश्चर्य है कि मेघोंकी नाँई विला जानेवाले २

जीवन पर पाप-कर्मके अधीन हो ये जीव क्यों नित्यताका विश्वास करते हैं; और हमेशा उसको अपनी सम्पत्ति समझ कर संसार-समुद्रमें गोते लगाया करते हैं। इस प्रकार सोच विचार कर आत्माका अनुभव करनेवाले उन प्रभुने भरतको बुला उन्हें भारतवर्षका राज दिया; बली बाहुबलीको मनोरम पोदनापुरका राज-पाट संभलाया तथा अपने और और पुत्रोंको और और देशोंका अधिपति बना आप निश्चिन्त हो गये। इसी समय देवता-गण आये और प्रभुको स्नान-भूषणसे सजा कर, पालकीमें सवार कर वनको ले चले। इस वक्त भाँति भाँतिके भूषणोंसे विभूषित आदि प्रभुके साथ भरत आदि हजारों राजा भी थे। जंगलमें जा प्रभुको उन्होंने वहाँ एक बड़के वृक्षके नीचे विराजमान किया। इसके बाद प्रभुने केशलोंच आदि क्रियाओंको करके चैत वदि नौमीके दिन जैनेन्द्री दीक्षा धारण की।

इसके बाद उन निष्पाप प्रभुने छः महीनेके लिए योग धारण किया और उपवासोंसे युक्त तथा संसार-द्वारा सेवित वे प्रभु उस वक्त तेजो-मय हो गये। उनका तेज सब ओर फैल गया। भगवान तेजके पुंज और संसारके लिए दर्शनीय थे। जब योगका समय समाप्त हुआ तब प्रभुने वहाँसे चल कर बहुतसे देशोंमें, नगर नगरमें, घर घर विहार किया; जैसे एक एक तारागणके पास चन्द्रमा विहार करता है। परन्तु उन्हें कहीं भी पारणा करनेका योग न मिला। मिले कहाँसे, उस वक्त सारे संसारमें कोई आहार देनेकी विधि ही न जानता था। जहाँ जहाँ प्रभु जाते थे वहाँ वहाँके लोग हर्षके भरे दौड़ दौड़ कर उनके पैरों पर पड़ जाते थे। तथा कई लोग प्रभुकी भेंट करनेको उत्तम उत्तम चीजें—घोड़ा, हाथी, रत्न वगैरह—लाते थे; कन्या, अन्न और वस्त्र ले-ले कर प्रभुके आगे आते थे; एवं कोई निर्दोष भूषण, आसन, शयन और सुगन्धित पुष्प ला-ला कर उनके सन्मुख रखते थे। इस तरह प्रभुने मौन धर कर इर्यापथ शुद्धिसे छः महीने तक विहार किया, पर कहीं भी उन्हें आहारका योग न मिल सका। इसके बाद वे विहार करते करते हस्तिनागपुर आये। हस्तिनागपुरके राजा श्रेयान्स थे। वे बड़े भाग्यशाली राजा थे। रातका समय था। वे निःशंक हो शय्या पर सुखसे सोये हुए थे। उस वक्त उन्होंने स्वप्नमें सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, चाँद, सूरज तथा गहरा समुद्र देखा। स्वप्न देखनेके बाद वे जागे और उन्होंने सब स्वप्नोंको जैसाका तैसा सोमप्रभ महाराजसे कह सुनाया। सोमप्रभने उत्तरमें कहा कि सुमेरुको देखनेसे ऊँचा, कल्पवृक्षको देखनेसे उसीके समान दाता, चन्द्रमाके देखनेसे उसके समान ही संसारको शान्ति देनेवाला और सूरजको देखनेसे प्रतापी एवं समुद्रको

देखनेसे संसार-समुद्रसे पार जानेवाला कोई महान् पुरुष नियमसे आज अपने घर आयगा। इसके बाद दो पहरके समय सच मुच ही प्रभु उनके घर आ पहुँचे। प्रभुको देखते ही श्रेयान्सको बहुत हर्ष हुआ। उन्हें अपने पिछले भवकी याद हो आई। उन्हें यह भी स्मरण हो आया कि दिगम्बर मुनियोंको किस विधिसे आहार दिया जाता है। फिर क्या था, वे सोमप्रभ सहित प्रभुके चरणोंमें पड़ गये और उन्होंने वैशाख सुदी तीजके दिन प्रभुको साँटेके मधुर रसका आहार दिया। भगवानको आहार देनेके प्रभावसे उनके यहाँ रत्नोंकी वरसा हुई। आहार लेकर मौनी और महामना प्रभु वहाँसे वनको चले गये और घोर तप तपने लगे। इसके बाद एक हजार वर्षमें प्रभुको केवलज्ञान प्राप्त हुआ—वे केवली हो गये।

इधर भरत महाराजकी आयुधशालामें चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई और वे बहुतसी सेनाको साथ लेकर भारतवर्षको अधीन करनेके लिए तैयार हुए। उस समय भरतने कौरव कुलदीपक जयको बुलाया और उन्हें सेनापतिका पद दिया। चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमेंसे सेनापति एक रत्न है। इस रत्नकी हजार देव रक्षा करते है। इसके बाद भरत चक्रवर्तीने दिग्विजय करना आरम्भ किया; और साठ हजार वर्षमें सारे भरत-क्षेत्रको अपने अधीन कर लिया। एवं दिग्विजयका अन्त होने पर वे वापिस अयोध्या नगरीमें आ पहुँचे। सेनापति जयने मेघेश्वर देवतोंको बड़ी बहादुरीसे जीता था, जिससे प्रसन्न होकर चक्रवर्तीने उनका नाम भी मेघेश्वर रख दिया। इसके बाद जय अपने राज्य गजपुरमें आये और वहाँ अमन-चैनसे रहने लगे।

उन मेघेश्वर जयकी जय हो, जो शुद्ध मना है; मनोहर रूपकी राशि हैं; बड़े बड़े प्रचंड शत्रुओं पर विजय-लाभ करनेको उद्यत है। जिन्होंने राज-नीतिके द्वारा वैरियोंके समूहके समूह नष्ट-भ्रष्ट कर दिये और जो चक्रवर्तीके हृदयको प्रफुल्लित करनेके लिए सूरज हैं। एवं जिन्होंने मेघेश्वरको जीत कर सुरेन्द्रकी समता की और अपने अखंड पराक्रमसे वैरियों पर विजय पाई। जो सच्चे गुणोंके भंडार और तेजके पुंज है। जयशील होनेके कारणसे ही जिन्हें जय कहते हैं। जो सेनापति-रत्न हैं तथा देवता-गण और महान् पुरुष जिनकी सेवा करते हैं। यहाँ ग्रन्थकार कहते है कि संसारमें धर्मके फलसे ही पुरुष गण्य-मान्य होते हैं; पूज्य तथा उत्तम उत्तम पद पाते है। इस कारण जीवमात्रका पहला कर्तव्य है कि वह हमेशा धर्मका ध्यान रक्खे।

तीसरा अध्याय ।

उन आदिनाथ प्रभुको नमस्कार है जो बैलके चिन्हसे युक्त हैं, धर्म-मय और धर्मके दाता है तथा धर्मके अर्थी पुरुष जिनकी सेवा करते है; और जो वैरियों पर विजय-लाभ कर चुके हैं ।

सेनापति जयके सिवा सोमप्रभ महाराजके विजय आदि चौदह पुत्र और थे । वे सबके सब गुणोंके भंडार और मनोहर रूपवाले थे । वे ऐसे जान पड़ते थे मानों चौदह कुलकर ही है । इन पंद्रह पुत्रोंके द्वारा श्रीमान् सोमप्रभ महाराज इन्द्र जैसे सुशोभित थे । एक समय किसी निमित्तको पाकर वे संसार-भोग आदिसे विरक्त हो गये । उन्होंने अपना सारा राज-पाट अपने पुत्रोंको सौंप कर शूरवीर जयको उन सबका मुखिया बना दिया । इसके बाद वे ऋषभ प्रभुके पास गये और उनसे दीक्षा लेकर दिगम्बर हो गये । एवं कुछ कालमें कर्मजालको तोड़ कर वे मोक्ष-महलमें जा विराजे ।

इधर जय अपने चाचा श्रेयान्सके साथ-साथ पहलेकी भाँति ही राज-सुख भोगने लगे । एक दिन वे विहारके लिए एक घने जंगलमें गये । उन्होंने [व]हाँ बैठे हुए एक मुनिको देख नमस्कार किया । मुनिका नाम शीलगुप्त था । [ज]यने एक नाग और नागिनीके साथ-साथ उनसे धर्मका उपदेश सुना । धर्मको [स]ुन कर उनका चित्त बहुत संतुष्ट हुआ । इसके बाद वे नगरको चले आये । [ब]रसा ऋतुका आरम्भ ही था कि उस समय अकस्मात् वज्रपातके द्वारा वह नाग [श]ान्त-चित्तसे मर कर नागकुमार जातिका देव हुआ ।

इसके बाद एक दिन हाथी पर सवार हो जय महाराज फिर दुवारा उसी वनमें गये । वहाँ जाकर उन्होंने उसी नागिनीको, जिसने कि उनके साथ-साथ पहले धर्मका उपदेश सुना था, एक नीच जातिके काकोदर (साँप) के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा । इस पर उन्हें बहुत क्रोध आया । उन्होंने क्रीड़ा-कमलके द्वारा उन दोनोंको मारा तथा धिक्कार दिया । राजाको मारते देख इधर उधरसे आ-आ कर उनके सभी सिपाहियोंने भी उन्हें लकड़ी, पत्थर आदिके द्वारा मारना शुरू किया । सच है राजाका कोप होने पर नीच चरितवालों पर सभी कोप करते है । कोई भी उनकी तारीफ नहीं करता । मारसे काकोदर बहुत ही व्याकुल हुआ और निर्जरा सहित मर कर गंगा नदीमें

काली नामकी जलदेवता हुआ। और वह नागिनी भी पछताती हुई तथा अपने मनमें धर्मका चिन्तन करती हुई मरी और अपने नागकी, जो कि नागकुमार देव हुआ था, प्रिया हुई। उसने नागकुमारसे जयके द्वारा हुई अपनी मौतका सारा हाल कहा, जिसको सुन कर नागकुमारको बहुत क्रोध आया और वह उसी वक्त जयको मारनेकी इच्छासे उनके महलमें पहुँचा। सच है पशु भी अपनी स्त्रीके तिरस्कारको नहीं सह सकता, उसे भी क्रोध हो आता है। रातका समय था और जय अपनी प्रिया लक्ष्मीमतीके साथ महलमें बातचीत कर रहे थे। वे कर रहे थे—प्रिये! मैंने आज एक बड़ा कौतुक देखा है, उसे सुनो। इतनी बातचीतके बाद उन्होंने उस नागिनीकी सारी कथा लक्ष्मीमतीको कह सुनाई।

जयकी बात सुन कर वह देव सोचने लगा कि कहाँ तो मैं एक पशु था और कहाँ यह धर्म जिसके प्रभावसे देव होगया। यदि विचारसे देखा जाय तो कहना होगा कि मोक्षकी सिद्धि तक इस संसारमें सत्संगके सिवा कोई दूसरा हितैषी नहीं है। इस विचारके साथ ही क्रोध उसके हृदयसे निकल कर भाग गया और वह बिल्कुल शांत-चित्त हो गया। इसके बाद कृतज्ञ और महापुरुष जयकी उस देवने रत्नोंके द्वारा खूब पूजा की और उनको अपनी सारी कथा कह सुनाई। इसके सिवा उसने महराजसे निवेदन किया कि राजन्! काम पड़ने पर मुझे याद करना। मै उसी वक्त आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा। इतना कह कर वह देव अपने स्थानको चला गया।

इधर चक्रवर्तीके साथ-साथ जयकुमार जब सभी दिशाओंको वश कर चुके—उन पर विजय पा चुके तब उन्होंने आक्रमण करना छोड़ दिया और वे एकदम संयमी मुनिकी तरह शान्त-चित्त हो समता भाव धारण कर अमन-चैनसे अपना समय बिताने लगे।

काशी नामका एक मनोहर देश है। वह सारे संसारमें प्रसिद्ध है। जान पड़ता है कि मानों भोगभूमि सब जगहसे नष्ट होकर यहीं आगई है। वह साक्षात् भोगभूमि ही है। काशीमें एक बनारस नगरी है। वह विशाल और स्वच्छ महलोंका स्थान है। उसके भवन स्वर्गके विमानोंसे भी बढ़े-चढ़े हैं। जान पड़ता है कि वह महलोंकी विशालता और स्वच्छतासे स्वर्गके विमानोंको जीत कर अमरावतीकी हंसी उड़ाती है। वहाँके राजा अकंपन थे। उनके तेजके मारे शत्रु-गण थर थर काँपते थे। वे पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मको बढ़ाते थे, उसकी रक्षा भी करते

थे। उनकी प्रियाका नाम सुप्रभा देवी था। सुप्रभा देवीके शरीरकी प्रभा चाँदके तुल्य थी। वह अपनी विपुल श्रीके द्वारा कुमुदके फूलोंकी प्रभाको धारण करती थी। अकंपन और सुप्रभाके हजार पुत्र थे और वे सबके सब सूरजकी भाँति तेजवाले थे, उन्नतिशाली थे। उनके नाम थे—हेमांगद, सुकेत, श्रीसुकांत इत्यादि। इनके सिवा उनके सुलोचना और लक्ष्मीमती ये दो पुत्रियाँ थीं। ये दोनों हिमवत और पद्मद्रहसे उत्पन्न हुई गंगा और सिंधुकी समता करती थीं; तथा उनसे भी श्रेष्ठ थीं। बड़ी पुत्री सुलोचना वास्तवमें सुलोचना—सुन्दर नेत्रोंवाली—ही थी। कला और गुणोंके द्वारा मनको मोहनेवाली चंद्रमाकी शोभाके समान थी। क्योंकि उसमें भी नाना कलाएँ और गुण थे। अत एव वह संसार भरको प्यारी थी—उसे सभी प्रेमदृष्टिसे देखते थे। सुमति नामकी उसकी एक धाय थी, जो उसके गुण और कलाओंको बढ़ानेकी हमेशा ही चेष्टा किया करती थी। जैसे उजेली रात चाँदकी कलाको सदा ही बढ़ाती रहती है। इसकी जाँघें रंभा—केलेके—समान थीं, अतः लोग इसे रंभा कहते थे। देवांगना-गण इसे देवांगना ही मानता था। इसका केश-पास भारी सुशोभित था, इस लिए लोग इसे सुकेशी कहा करते थे। वहुत क्या कहें, अपने ऐश्वर्यके द्वारा वह इन्द्राणीके जैसी देख पड़ती थी। फाल्गुनकी अठाईका समय था। उस वक्त सुलोचनाने बड़ी भक्तिसे जिन-देवकी पूजा की और व्रत लिया। व्रत-उपवाससे उसका शरीर कृश हो गया था। पूजा-पाठ पूरा कर वह प्रभुकी आसिका देनेके लिए राजाके पास पहुँची। राजा उसके हाथोंमें आसिकाको देख कर उठा और दोनों हाथोंकी अंजलि बना कर उसने आसिकाको बड़े भक्तिभावसे लिया तथा लेकर अपने मस्तक पर चढ़ाया।

इसके बाद राजाने कहा कि पुत्री! उपवाससे तेरा शरीर बहुत मुरझा रहा है, इस लिए तू जल्दीसे महलको जा और पारणा करले। इतना कह कर राजाने उसे तो विदा कर दिया, पर आप स्वयं इस सोच-विचारमें उलझ गया कि सुलोचना अब युवती होगई है, इसका विवाह कर देना चाहिए।

इस प्रश्नको जब वह स्वयं हल न कर सका तब उसने श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ और सुमति इन चारों मंत्रियोंको बुलाया और उनके सामने यह प्रश्न रक्खा कि सुलोचना किसे देना चाहिए।

इस प्रश्नको सुन कर श्रुतार्थ बोला कि भारतभूषण भरत चक्रवर्तीका अर्क-कीर्ति नाम जो पुत्र है वह इस कन्याके लिए एक उत्तम वर है। क्योंकि कुल, रूप,

अवस्था, विद्या, चरित्र, धन और पुरुपार्थ आदि जो जो वरमें देखनेकी बातें है वे सब उसमें पाई जाती हैं। श्रुतार्थकी इस सम्मतिको सुन कर सिद्धार्थ कहने लगा कि आपकी कही हुई सब बातें अर्ककीर्तिमें हैं यह तो ठीक है; परन्तु सामान्य पुरुषका एक बड़े पुरुषके साथ सम्बंध होना उचित नहीं जान पड़ता। इसको विद्वान लोग आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। राजन्! आपकी बराबरीवाले प्रभंजन, रथचर, वलि, वज्रायुध तथा मेघेश्वर भूमिभुज आदि बहुतसे और और राजा है। उनमें जिसको आप उचित समझें उसको कन्या दें। सिद्धार्थकी सम्मतिको सुन कर सिद्ध-साधक सर्वार्थ नाम मंत्रीने कहा कि राजन्! भूमिगोचरोंके साथ तो पहलेसे ही सम्बंध होता चला आता है, पर विद्याधरोंके साथ अब तक कोई सम्बंध नहीं हुआ। अतः मेरी सम्मति है कि आप किसी योग्य विद्याधरके साथ ही इस सम्बंधको स्थिर कीजिए। इस अपूर्व सम्बंधसे हम सबको और कन्याको बहुत ही सुख प्राप्त होगा। सबकी सम्मति सुन कर पीछेसे सुमति मंत्री बोला कि मेरी सम्मति है कि और और बातोंकी अपेक्षा इस वक्त स्वयंवर-विधि करना ही ठीक होगा और उससे सबको सुख-शान्ति भी मिलेगी। सुमतिकी इस सम्मतिको सुन कर बुद्धिमान अकंपनने कहा कि बहुत अच्छा स्वयंवर ही होना चाहिए। इस समय अकंपनने सुप्रभा और हेमांगदकी भी सम्मति ली और स्वयंवर करना ही निश्चित किया। इसके बाद अकंपनने सब राजोंके पास पत्र दे-दे कर दूत भेजे और स्वयंवरमें आनेके लिए उनसे आग्रह किया।

जयकुमार और सुलोचनाके भावी शुभ सम्बंधको जान कर इसी समय पहले स्वर्गसे एक देव आया। उसका नाम था चित्रांगद। वह अकंपनके पास आ कहने लगा कि मैं सुलोचनाके स्वयंवरको देखनेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। यह कह कर उस देवने नगरके पासमें ही जो एक ब्रह्म स्थान बना हुआ था, उससे उत्तरकी ओर पूर्व मुखवाला बहुत विशाल सर्वतोभद्र नामक महल बनाया; और उसके चारों ओर सुन्दर स्वयंवर मंडपकी—जैसी होनी चाहिए—रचना की। वह देव सम्यग्दृष्टि था, बुद्धिमान और शुद्ध-चित्त था। उसने जितना कुछ काम किया था वह सब हर्षके साथ और उत्तम रीतिसे किया था। तात्पर्य यह कि उसने स्वयंवरकी अपूर्व और विधिपूर्वक रचना की थी।

दूत-गण गये और जाकर उन्होंने राजों-महाराजोंको अकंपनके पत्र दिये। राज-गण पत्रके द्वारा अकंपन राजाके भीतरी भावको समझ कर स्वयंवरके

आये । प्राय: तीन समुद्रके भीतर भीतरके सभी राजा-गण वनारसमें आ उ-स्थित हुए; एवं समय पर स्वयंवर मंडपमें अपने अपने योग्य स्थानों प आ विराजे ।

उधर सुलोचनाने स्नान आदिसे निवट कर सुन्दर सुन्दर वस्त्र और गहने-गाँठे पहिने; तथा सिद्ध परमात्माकी पूजा कर उनकी आसिकाको मस्तक पर चढ़ाया । इसके वाद महेन्द्रदत्त नाम कंचुकी उसे रथमें वैठा कर स्वयंवर मंडपमें लाया । सुलोचना अपने रूपसे रतिको भी नीचा दिखाती थी । इस समय सुप्रभा देवी-सहित अकंपन महाराज भी वहाँ आये और वे एक ओर स्वयंवर मंडपके पासमें ही वैठ गये । जान पड़ता था कि इन्द्राणीको साथ लेकर इन्द्र ही स्वर्गसे स्वयंवर देखनेको आया है । इनके सिवा चतुरंगी सेना और छोटे भाइयोंको साथ लेकर हेमांगद भी वहाँ आ पहुँचा । हेमांगदका स्वच्छ हृदय प्रीति और प्रमोदसे खूव भर रहा था । थोड़ी ही देरमें सुलोचनाका रथ मंडपमें आ पहुँचा । कंचुकीने रथको रोका । सुलोचना रथसे उतर कर मंडपमें आई । इसके वाद जव सुलोचना वरमाल हाथमें ले पतिवरणको चली तव कंचुकीने उन विद्याधर राजोंको दिखा कर सुलोचनासे कहा कि पुत्री ! यह नमिका पुत्र सुनमि है । यह दक्षिण श्रेणीका राजा है । यदि तुम चाहो तो इसे वरो । यह सुनमिका पुत्र सुवन है । यह उत्तर श्रेणीका राजा है । इस तरह उसने क्रमशः सभी विद्याधरोंका सुलोचनाको परिचय कराया । इसी प्रकार और और सभी राजों, महाराजोंका परिचय देता हुआ वह सूरजकी प्रभाके समान प्रभावाले भरत चक्रवर्तीके पुत्र, गुणोंके भंडार कुमार अर्ककीर्तिके पास पहुँचा । वहाँ जा उसने सुलोचनाको उनका परिचय दिया । पर वह अर्ककीर्ति आदि सभी राजोंको छोड़ती हुई अन्तमें किसीसे भी नहीं जीते जानेवाले जयकुमारके पास पहुँची; जिस तरह कोयल वसन्त ऋतुमें और और सभी वृक्षोंको छोड़ कर आमके पेड़ पर जा पहुँचती है । सुलोचनाको जयमें आसक्त-चित्त देख कंचुकी वोला कि पुत्री ! ये जगत्प्रसिद्ध जय महाराज हैं । सोमप्रभ महाराजके पुत्र हैं । इनका सौंदर्य वचनातीत है । कामदेवके सौंदर्यसे भी वढ़ा-चढ़ा है । देखती तो हो, हाथके कंकणको दर्पणकी जरूरत ही क्या है । उत्तर भारतवर्षमें इन्होंने मेघेश्वर देवोंको जीत कर जो सिंहनाद किया था वह मेघेश्वर देवतोंके शब्दको भी जीतता था । उस समय खुश होकर भरत चक्र-

ने अपने दोनों हाथोंसे इनके सिर पर 'वीर-पदक' बाँधा था और इनका मेघे-
श्वर नाम रक्खा था। इतना सुन कर पूर्वभवके प्रेमसे वह मानिनी उस सुन्द-
र कांति और कुन्दके समान स्वच्छ गुणोंवाले जयको देख कर और उनकी तारीफ
सुन कर बहुत ही हर्षित हुई।

उसने वरमाला जयके गलेमें डाल दी। उस समय होनेवाले बाजोंके महान शब्दसे दशों दिशायें गूँज उठीं। जान पड़ता था कि बाजोंका शब्द कन्याके अपूर्व उत्साहको दिक्कन्याओं तक पहुँचा रहा है—उन्हें सुना रहा है। तथा सब लोग एकदम घोषणा करने लगे कि कन्याने बहुत ही अच्छा किया जो जयको वरा; एवं साधुजन उसकी पुरुष-परीक्षाकी योग्यताको देख कर उसे साधुवाद देने लगे। परन्तु अर्ककीर्तिके खोटी सम्मति देनेवाले एक कर्म-चारीसे यह सब बातें न सही गईं और उसने अर्ककीर्तिको भड़का कर कहा कि महाराज! अकंपन यदि जयको ही कन्या देना चाहते थे तो उन्होंने हम सबको व्यर्थ ही यहाँ बुला कर हमारा तिरस्कार क्यों किया, जो संसारमें युगों तक व्यापक रहेगा। यह सुन कर अर्ककीर्ति कुछ लज्जित हुए। उन्होंने अपना मस्तक नीचा कर लिया। यह देख उस कर्मचारीने और भी जोशकी आग फूँकना शुरू किया। वह बोला अकंपनने आपको अपने घर बुलाकर आपके साथमें बड़ी भारी दुष्टता की है। विचारिए तो सही कि कहाँ तो आप चक्रवर्तीके पुत्र श्रीमान् और कहाँ यह जय आपका सेवक। इस बातका अकंपनने कुछ भी सोच-विचार न किया और आपके होते हुए भी आपको छोड़ कर इस सेवकको कन्या दे दी। अकंपनने आपके साथ दुष्टता ही नहीं की, किन्तु भारी नीचता भी की है, जो कि अक्षम्य है।

इस प्रकार भड़कानेवाली वचन-रूप-वायुके द्वारा अर्ककीर्तिकी क्रोधाग्नि खूब ही धधक उठी। वह बोला कि इस दुष्टात्माने मेरे होते हुए भी मुझे छोड़ कर मेरे सेवकको कन्या दी, यह बड़ा भारी अपराध किया। इसे इसका फल अवश्य ही चखाना चाहिए।

उस वक्त तो पिताजीके भयसे मैंने जयको 'वीर-पदक' का प्रदान करना सह लिया था। पर इस समय सभी सौभाग्यको हरनेवाली इस मालाकी क्षतिको मैं क्यों कर सह सकता हूँ। क्रोधके वश हो जानेके कारण अर्ककीर्तिने इस तरह सभी मान-मर्यादा छोड़ दी—हेय-उपादेयका ज्ञान उसके हृदयसे कूच कर गया; और वह एकदम

युद्ध करनेको तैयार हो गया। जान पड़ता था कि मानों प्रलयकालका मेघ ही उमड़ रहा है; क्योंकि प्रलयकालका मेघ भी हेय-उपादेय रहित और मर्यादा रहित होता है। इसके वाद अनवद्यमति मंत्रीने, जो कि मंत्रीके सभी लक्षणोंसे युक्त था, अर्ककीर्तिको न्याय-युक्त और हितकर वचनों द्वारा समझाना शुरू किया। राजन्! आपके वंशसे धर्म-तीर्थ चला और जयके वंशसे दान-तीर्थ। इस अपेक्षासे तो आप और जय वरावर ही है। दूसरी वात यह कि आपका और जयका स्वामी-भृत्यका घनिष्ठ सम्वन्ध है। अत एव आपको अपना कुछ भी पराभव नहीं समझना चाहिए। राजन्! पहले तो पराई स्त्रीकी चाह करना ही अनुचित है और दूसरे यदि लड-भिड़ कर जवरदस्ती सुलोचना लाई भी जायगी तो निश्चय है कि वह आपकी भार्या न होगी; भले ही अपने प्राण खो बैठे। उस वक्त प्रताप-पूर्ण जयका यश संसारमें दिनकी नाँई हमेशा स्थित रहेगा और रातकी नॉई संसार भरमें आपकी अपकीर्ति फैल जायगी। राजन्! जल्दी मत-कीजिए; अभी युद्धके लिए तैयारी मत कीजिए। यह मत समझिए कि मैं ही वलवान हूँ और मेरे पास ही सब साधन है। किन्तु उधर अकंपनके पक्षमें भी वहुतसे राजा हैं और उनके पासमें काफी साधन भी है। राजन्! धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होना पुरुषोंके लिए कोई आसान वात नहीं है; परन्तु इन तीनोंको आप साध चुके हैं और वहुत आसानीसे। पर अव न्यायको लॉघ कर उनका व्यर्थ ही सत्यानाश मत कीजिए। देखिए, संसारमें वहुतसे राजा हैं और उनके यहाँ वहुतसे कन्यारत्न है। मैं निश्चयसे कहता हूँ कि उन कन्यारत्नोंको ला—ला कर आपके भंडारमें जमा कर दूँगा। इस वातमें आप विल्कुल ही संदेह न करें। यह स्वयंवर-विधि है। इसमें यह नियम नहीं है कि मान्य पुरुषके गलेमें ही वरमाला डाली जाय और गरीवके गलेमें न डाली जाय। किन्तु कन्याके ऊपर ही सब वात निर्भर है। वह जिसे चाहे पसंद करे। तात्पर्य यह कि जिसको कन्या पसंद करेगी वही उसका वर होगा। इस प्रकार न्याय-पूर्ण वचनोंके द्वारा मंत्रीने वहुत कुछ समझाया-बुझाया, पर अर्ककीर्त्तिके हृदय पर उसका कुछ भी असर न पड़ा; जिस तरह कि अनेक युक्तियोंसे कमलिनीके पत्ते पर डाला हुआ जलका एक कण भी नहीं ठहरता। उस कुवुद्धि, हठी और तिरस्कारके पात्र राजाने मंत्रीकी इस अमूल्य सम्मतिकी कुछ भी परवाह न की और सेनापतिको वुला कर अपने पक्षके तमाम राजोंसे लड़ाईके दृढ़ निश्चयको कह सुनाया। एवं सब कुछ ठीक-ठाक

करके उस दुराग्रहीने थोड़ी ही देरमें तीन लोकको डरा देनेवाली रणभेरी बजवा दी । भेरीके शब्दको सुन कर सभी राज-गण युद्धके लिए उत्सुक हो उठे और चलते हुए भटोंके हाथोंके चंचल शब्दोंके द्वारा अपनी निठुरता दिखलाने लगे । सब सेना तैयार होकर क्रमसे चलने लगी । सबसे आगे पर्वतके बराबर ऊँचे और सजे हुए हाथी चले जाते थे । हाथियोंके पीछे युद्ध-समुद्रकी तरंगोंकी नॉई चंचल और पलाण आदिसे सुशोभित घोड़े चलते थे । घोड़ोंके पीछे चीत्कार शब्द करते हुए रथ और उनके बाद पयादे-गण चलते थे । पयादोंके हाथोंमें भाँति भाँतिके हथियार थे । किसीके हाथमें दंड था, कोई धनुष और कोई भाला लिये था । एवं किसीके हाथमें तलवार थी । इस प्रकार सेनाके साथ अर्ककीर्ति विजयघोप नाम हाथी पर सवार होकर अकंपन महाराज पर जा चढ़ा । अकंपनने जब इस समाचारको सुना तब मंत्रियोंसे सलाह कर अर्ककीर्तिके पास एक दूत भेजा । दूतने जाकर अर्ककीर्तिसे कहा कि कुमार ! इस तरह मान-मर्यादाको लाँघना आपको शोभा नहीं देता । हे चक्रिपुत्र ! आप रंजको छोड़ कर प्रसन्न होइए; व्यर्थका झगड़ा मत छेड़िए । जहाँ तक बन सका दूतने बहुत कुछ नम्र निवेदन किया, पर जब अर्ककीर्ति पर उसका कुछ भी असर न हुआ तब वह लाचार हो वापिस लौट आया और उसने जैसाका तैसा सब हाल अकंपन महाराजको सुना दिया । वह सब सुन कर जयने कहा- कि कोई फिक्रकी बात नहीं, मैं उस परस्त्री-लंपटको साँकलको पकड़नेके लिए तैयार हुए बन्दरकी भाँति एक मिनटमें ही बाँध लूँगा । इसके बाद जयने वह मेघघोषा नाम भेरी बजवाई, जिसको कि उन्होंने मेघकुमारको जीत कर प्राप्त किया था । तात्पर्य यह कि इधरसे जयकुमारने भी युद्धकी घोषणा कर दी । भेरीके शब्दको सुनते ही जयकुमारकी सेना भी चल पड़ी । लहराते हुए समुद्रकी भाँति मतवाले हाथी चलते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानों मदसे घूमते हैं । एवं पृथ्वीको अपनी टापोंके द्वारा खोदते और हींसते हुए वायुके वेगकी भाँति चचल शीघ्रगामी घोड़े और सभी हथियारोंसे भरपूर रथ-समूह चलने लगे । रथोंके ऊपर धुजाएँ फहराती थीं, जिनसे ऐसा जान पड़ता था कि मानों वे और और मनुष्योंको युद्धके लिए ही बुलाती हैं । इसी तरह पयादेगण भी आमोद-प्रमोदके साथ युद्धस्थानमें पहुँचनेको उद्यत हो गये । इस समय वहाँकी स्त्रियाँ भी भटोंका काम करती थीं । वहाँका और क्या वर्णन किया जा सकता है । एवं अपनी सेनाको साथ लेकर स्वयं अकंप और वैरियोंको थर थर कँपानेवाले अकंपन

भी युद्धस्थलमें शत्रुसे जा भिड़े । इसी समय सूर्यमित्र, सुकेतु, जयवर्मा, श्रीधर और देवकीर्ति आदि मुकुटबद्ध राजा तथा और और नाथवंशी, सोमवंशी राजा जयसे आ मिले । इनके सिवा अर्द्ध त्रिखेशोंको साथ लेकर मेघप्रभ नाम विद्याधर भी जयकी सहायताको आया । तात्पर्य यह कि जयका पक्ष भी बहुत प्रबल था । इस वक्त मेघेश्वर (जय) ने मकरव्यूह रचा, जिससे उनकी अपूर्व ही शोभा होगई । यह देख अर्ककीर्तिने चक्रव्यूहकी रचना की और जयके मकरव्यूहको भेद डाला । इसके बाद सुनीम आदि विद्याधरोंने, जो अर्ककीर्तिके पक्षमें थे, तार्क्ष्यव्यूहकी रचना की । इसी समय अष्टचंद्र आदि विद्याधर लोग भी अर्ककीर्तिकी ओर आ पहुँचे । रणस्थलमें एक दूसरे योधाओंके साथ प्रचंड युद्ध होने लगा । दोनों ओरके बाण शत्रुओंके हृदयको भेदने लगे । योधाओंमें दंडों, तलवारों, भालों, गदों, शरों, मूशलों, हलों और शिलाओंके द्वारा तथा एक दूसरेके बालोंकी खेंचातानीके द्वारा खूब ही घमासान युद्ध हुआ । इधर अर्ककीर्तिने जलती हुई आगकी शिखाके समान तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा शत्रुदलके वीरोंके हृदयोंको छेद-भेद डाला, जिसको देख कर जयकुमारने अपने छोटे भाइयोंको साथ ले वज्रकांड धनुषके द्वारा भीषण युद्ध किया और थोड़ीसी देरमें ही शत्रुदलके वीरोंको शस्त्र-प्रहार द्वारा तहस-नहस कर दिया; जिस तरह कीर्ति और विजयका अभिलाषी वादी शास्त्रकी युक्तियों द्वारा प्रतिवादीको परास्त कर देता है । इसके बाद आकाशमें जाकर जयके पक्षके विद्याधरोंने शत्रु-पक्षके विद्याधरोंका खूब ही तिरस्कार किया और वे विद्यायुद्धके अभिमानसे हमेशाके लिए युद्धकी प्रतिज्ञा करने लगे । उन्होंने कहा कि हम हमेशा तुम लोगोंसे युद्ध करनेको तैयार हैं; कभी पीछा पैर देनेवाले नहीं ।

इस वक्त नीचेसे भूमिगोचरी और ऊपरसे विद्याधर लोग बराबर बलसे बाणोंको छोड़ रहे थे, जिससे कि वे बीचमें ही एक दूसरेके मुहँसे टकरा कर रह जाते थे; किसीको हानि नहीं पहुँचा पाते थे । उनके विद्याबलका यह एक नमूना है । इसके बाद जयकुमारने भाइयों सहित यमका रूप बनाया और वे सबके सब घोड़ों पर चढ़ कर सिंहकी नाँई शत्रुदलके साथ युद्ध करने लगे । इस समय जयकी जीत होने लगी, जिसको देख कर और और सभी युद्धकुशल वीर उन पर एकदम टूट पड़े; जिस तरहसे आग पर पतंगे एकदम आ गिरते हैं । इसके बाद हाथियोंकी सेनाको लाँघ कर अर्ककीर्तिने जयके ऊपर आक्रमण किया । जयने भी विजयार्द्ध नामके गजोत्तम पर सवार हो उसके साथ युद्ध आरंभ किया—कुछ भी उठा न रक्खा ।

चक्रवर्तीने अर्ककीर्तिको दो वस्तुएँ दी थीं; एक वज्रकांड धनुष और दूसरा सफेद घोड़ोंवाला रथ । इस समय अर्ककीर्तिने इन दोनोंसे काम लिया । जयलक्ष्मीको पानेके लिए उत्सुक अर्ककीर्तिके कुछ विजय चिह्न दिखने लगे—उसने विजयकी धुजासी फहरा दी । यह देख वन्दीजन आकर उसकी स्तुति करने लगे । अर्ककीर्तिकी विजय होती देख यमके तुल्य पराक्रमी जयने वज्रकांड धनुष-द्वारा बातकी बातनें दिग्गजोंके मदको नष्ट कर बाणोंके समूह द्वारा अर्क-कीर्तिको प्रभा रहित कर दिया; जिस तरह मेघमाला सूरजको तेज रहित कर देती है । जयने अर्ककीर्तिके शस्त्र, धुजा, छत्र, चमर आदि सभी राजचिन्ह भेद डाले और साथमें ही उसकी उद्धतताका भी इलाज कर दिया । यह देख कर अष्टचंद्र वगैरह राजे रणकोविद जयके इष्टका विघात करनेको तैयार हुए; परन्तु वे उसका बाल भी बाँका न कर सके । उधर भुजबली आदि राजा हेमांगदके साथ लड़नेको तैयार हुए । वे ऐसे जान पड़ते थे मानों सिंहोंका समूह ही है । और हेमांगदके भाई वगैरह जो सिंहकी नाँई लड़नेको तैयार थे, उनसे लड़नेको आये । एवं अपने छोटे भाइयोंको साथ लिए हुए अनंतसेन आया और जयके भाइयोंके साथ आ भिड़ा । दोनों पक्षके राजोंमें खूब ही लड़ाई हुई । क्रोधके मारे दोनों पक्षके राजा काँपते थे । यह सब हाल देख कर जयको खूब ही रोष आया और वह एकदम उन पर टूट पड़ा । जयके पुण्य-प्रतापसे इसी समय उस नागकुमारका, जिसका कि पहले जिक्र आ चुका है, आसन डगमगाने लगा, जिससे उसने जयके संकटको जान लिया । वह उसी वक्त आया और जयको नागपाश और अर्धचन्द्र शर देकर चला गया । फिर क्या था, बाणको पाते ही जयने उसको वज्रकांड धनुष्य पर चढ़ाया और अष्टचन्द्र आदिको रथ सहित भस्म कर दिया । यह देख कुमारका अभिमान नष्ट हो गया; जिस तरह दाँत और सूँड़के कट जाने पर हाथी और हथियार छिन जाने पर यम निर्मद हो जाता है । ग्रन्थकार कहते हैं कि कर्मकी चेष्टा बड़ी कष्ट-मय होती है । इसके बाद विधिके ज्ञाता जयने सरलताके साथ अर्ककीर्तिको पकड़ लिया । देखो, जो अर्ककीर्ति एक भारी गण्य-मान्य पुरुष था उसीकी आज यह हालत हो गई । सच है, मार्गको छोड़ कर जो औंधे रास्तेसे जाता है वह अवश्य ही दुखी होता है । इसके बाद अस्त होते हुए सूरजके समान प्रभा रहित अर्क-कीर्तिको जयने रथमें बैठा कर आप स्वयं हाथी पर सवार हुआ । अर्क-कीर्तिके सिवा जयने उसके अनुयायी और और विद्याधरोंको भी नागपाशसे

बाँध लिया था । इस प्रकार शत्रुओ पर विजय लाभ कर सिंहके समान पराक्रमी राजा जय बड़ा सुखी हुआ । जब देवतोंको जयके जीतकी खबर लगी तब उन्होंने आकाशसे फूलोंकी बरसा की और जयध्वनिसे दशों दिशाओंको शब्द-मय कर दिया । इसके बाद जयने रणस्थलका निरीक्षण किया और मरे हुए वीरोंकी दग्ध क्रिया तथा जीते हुओंकी जीवनक्रिया अर्थात् औषधि वगैरहका प्रबंध किया । यह सब किये बाद जय अकंपन महाराजके साथ साथ काशी आये । काशी मनुष्योंसे भरपूर और लहलहाती हुई धुजाओंसे सुशोभित थी और भाँति भाँतिकी सम्पत्तिसे सजाई गई थी, जान पड़ता था कि जयकी जीतकी खुशीमें नगरीने अपनी काया ही पलट डाली है । वहाँ पहुँच कर जयने पकड़े हुए राजों और अर्ककीर्तिको चतुर पुरुषोंके द्वारा आश्वासन दिलवा कर उन्हें उनके योग्य स्थान पर ठहराया । इसके बाद जय वगैरहने यह समझ कर कि सब विघ्नबाधाओंका नाश जिनेन्द्र देवके प्रसादसे ही होता है, उनकी पूजा-वन्दना की और भाँति भाँतिकी स्तुतियों द्वारा उनकी स्तुति की । बाद सबके सब अपने अपने स्थानको चले गये । वहाँ जाकर जय और अकंपनने पकड़े हुए राजों और विद्याधरोंको छोड़ दिया और योग्य मीठे वचनों द्वारा उनके हृदयोंमें विश्वास करा दिया कि तुम लोग किसी भी तरहकी चिन्ता मत करो ।

इसके बाद भव्य और सरलचित्त जय और अकंपनने अर्ककीर्ति कुमारकी स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया और कहा कि कुमार! हमारे कुलोंको आपने ही बढ़ाया, पाला तथा पोषा है । फिर ये कुल आपके ही द्वारा कैसे नष्ट हो सकते थे । इसी लिए ऐसा हुआ । वास्तवमें आपकी हार नहीं हुई । हम सब लोग तो आपके ही सेवक है । और एक बात यह कि सुत, बंधु तथा सिपाही वगैरहसे चाहे सौ अपराध ही क्यों न हो जायँ, महापुरुष सभी माफ कर देते है; क्योंकि वास्तवमें उत्तम पुरुषोंका क्षमा ही भूषण है । कुमार! हम अविवेकियोंसे आपका एक अपराध हो गया है, पर हम आपके सेवक है, इस लिए आप हमें क्षमा प्रदान कर दें । हमारी यही अभ्यर्थना है । प्रभो! एक सुलोचनाकी तो बात ही क्या है, यह सर्वस्व ही आपका है और हम भी आपके हैं । यदि आपको सुलोचनाकी चाह ही थी तो पहलेसे ही स्वयंवर विधिको रोक देना चाहिए था । पर वास्तवमें ऐसा भाव आपका न था; क्योंकि आप तो विश्वके पालक है । किन्तु किसी दुष्ट पुरुषने आपको आगकी नॉई भडका दिया और उसीसे

यह सब ऐसा हुआ है। अस्तु, अब आपसे यही नम्र प्रार्थना है कि आप हमारे ऊपर ठंडे जलकी भाँति ही ठंडे हो जाइए। इसके बाद अकंपनने अर्ककीर्तिको बहुत सम्पत्ति दी और लक्ष्मीमती नाम पुत्रीका उसके साथ ब्याह कर दिया। इस तरह अकंपन बड़े आदरके साथ अर्ककीर्तिको सन्तुष्ट कर और हाथी पर चढ़ा बहुतसे राजों महाराजों सहित उसके देशको रवाना कर दिया; एवं और और राजोंको भी हाथी घोड़े आदिकी भेंट द्वारा सन्तुष्ट कर उन्हें विदा दी। वे भी सब अपने अपने नगरको चले गये।

इसके बाद बड़े भारी ठाट-बाटके साथ वह नागकुमार आया और उसने जयशील जयकुमारके साथ भली भाँति सुलोचनाका विवाह करवाया। देखो, यह सब पुण्यका ही माहात्म्य है जो देवता-गण भी सेवामें आकर उपस्थित हो जाते है।

इसके बाद जयने अकंपनकी सम्मतिसे रत्न आदि भेंट देकर सुमुख नाम एक दूतको चक्रवर्तीके पास भेजा। वह गया और चक्रवर्तीके सामने रत्न आदि भेंट रख कर तथा उन्हें हाथ जोड़ प्रणाम कर नम्रता-पूर्वक बोला कि प्रभो! अकंपन महाराज आपके डरसे आपको यह जताना चाहते है कि मैंने स्वयंवर विधि करके जयकुमारको अपनी सुलोचना नाम कन्या दी है। स्वयंवरमें आनेकी कुमारने भी कृपा की थी और जब कन्याने जयके गलेमें वरमाला डाली तब उन्होंने अपनी सम्मति भी प्रगट की थी। पर पीछेसे न जाने किसी पापीने कुमारके कान भर दिये, जिससे वे क्रुद्ध हो गये और उन्होंने युद्ध छेड़ दिया। वह सब हाल श्रीमान्ने अवधिज्ञान-चक्षुके द्वारा प्रत्यक्ष ही देखा है। हे प्रभो! अब जो कर्तव्य हो सो कीजिए, जिसमें हमारी अर्थ-क्षति न हो और हमें क्लेश भी न पहुँचे; एवं हम मारे न जायँ। इस प्रकार दीनता भरे वचनों द्वारा नम्र निवेदन कर चुकने पर दूत तो एक ओर बैठ गया और परचक्रको भय देनेवाले चक्रवर्तीने उत्तरमें यों कहना शुरू किया कि अकंपनने ऐसे नम्र वचनोंको लेकर तुम्हें व्यर्थ ही भेजा। क्योंकि वे बड़े हैं, अतएव मेरे लिए आदिनाथ प्रभुसे कम नहीं हैं। जिस तरह आदिनाथ प्रभु मोक्षमार्गके प्रवर्तक गुरु हैं, दानकी प्रवृत्ति करनेवाले श्रेयान्स राजा है तथा चक्रवर्तीपनेका मैं अगुआ हूँ उसी तरह वे भी तो स्वयंवर-विधिके विधाता है—चलानेवाले हैं। यदि आज वे न होते तो स्वयंवर-विधिको कौन चलाता, यह बात तो निश्चित ही है। यहाँ भोगभूमि

होनेसे जो पुराने मार्ग लुप्तप्राय हो गये थे उनको जिन सत्पुरुषोंने फिरसे प्रचलित किया है, उनमें नयापन डाला है वे सारे संसारके पूज्य हैं। ऐसे पुण्य प्रसंग पर अर्ककीर्तिने जो वहाँ अन्यायसे लड़ाई की उससे उसने युग-पर्यन्तके लिए मेरे यशमें धब्बा लगा दिया; अपयशी पुरुषोंमें मेरी गिनती करवा दी। इस प्रकार चक्रवर्तीने दूतको समझा-बुझा कर वापिस लौटा दिया। उसने वापिस आकर अकंपन और जयको नमस्कार कर चक्रवर्तीके जैसेके तैसे वचन उन्हें कह सुनाये।

इस प्रकार चक्रवर्तीका उत्तर सुन वे बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद कुछ काल तक जयकुमार और सुलोचनाने वहीं सुखसे निवास कर बाद अपने नगरको जानेकी इच्छा की और अकंपन महाराजको अपनी इच्छा कह सुनाई। अकंपनने हाथी घोड़ों आदिसे खूब सन्मान कर उन्हें विदा किया और साथमें हेमांगद आदि राजोंको भेजा। सुर और बन्धुवर्गसे घिरे हुए दोनों दम्पति गंगातट पर आये। वहाँ आकर उन्होंने सब सेनाको तो वहीं ठहरा दिया और आप कितने ही उत्तम पुरुषोंको साथ लेकर अयोध्या नगरीको गये। वहाँ नगरीसे बाहिर आकर अर्ककीर्ति आदिने उनकी खूब अगवानी की और उन्हें वे नगरीमें लाये। जिस समय जयने अर्ककीर्ति आदिके साथ-साथ नगरीमें प्रवेश किया उस समय ऐसा भान होता था कि बहुतसे देवतोंके साथ-साथ इन्द्र ही अमरावतीमें प्रवेश कर रहा है। वे सीधे राजसभामें गये और सभानायक चक्रवर्तीको नमस्कार कर उनके दिखाये हुए स्थान पर जा बैठे। चक्रवर्तीने कहा कि जय, तुम चन्द्रवदनी वधूको यहाँ क्यों नहीं लाये। हम उसके देखनेको बहुत ही उत्सुक हैं। क्या करें, अकंपनने तो इस बिल्कुल नये विवाह-महोत्सवमें हमें निमंत्रण ही नहीं दिया। बताओ तो सही क्या यह बात ठीक है। क्या उन्होंने हम लोगोंको बन्धुओंसे बाहिर कर दिया है। अस्तु जो हो; परन्तु तुम्हारे लिए तो मैं पिताके तुल्य हूँ; तुम्हें तो मुझे अगुआ बना कर ही अपना विवाह करना था, पर तुम भी हमें भूल गये; तुमने भी तो निमंत्रण नहीं दिया। इस प्रकारकी अपूर्व अपूर्व बातें कह कर चक्रवर्तीने उन्हें सन्तुष्ट किया और उनका योग्य आव-आदर किया। इसके बाद जय महामना चक्रवर्तीको नमस्कार कर वापिस लौट आये; तथा हाथी पर सवार हो शीघ्र ही गंगातट पर जा पहुँचे। वे प्राणोंसे भी कहीं अधिक प्यारी सुलोचनाको देखने लिए उत्सुक हो रहे थे। इतनेमें ही उन्होंने सूखे वृक्षकी डाली पर सूरजकी ओर मुहँ किये बैठे हुए एक कौवेकी बोली सुनी। उसे सुनते ही उन्हें

अपनी प्रियाके सम्बन्धमें कोई भारी अनिष्टकी शंका हुई और मूर्छा आ गई। वे वे होश हो गये। उनकी यह दशा देख उसी नागकुमारने आकर शीतल-सुगन्धित वस्तुओंके उपचारसे उन्हें सचेत किया और कहा कि आप सुलोचनाकी चिन्ता न करें; वह सब तरहसे सुखी है। जयने उसके वचनों पर विश्वास कर शीघ्रताके कारण विना घाटके ही ऊभट मार्ग द्वारा हाथीको गंगामें उतार दिया। हाथीके दाँत सुन्दर और चमकीले थे। वह जलमें सूँड उठाए ऐसा भान होता था मानों तैरता हुआ मगर ही है। पाठक भूले न होंगे कि काकोदर मर कर गंगामें कालीदेवी हुआ था। धीरे धीरे जब वह हाथी बीच धारमें पहुँचा तब उस कालीदेवीने उसे रोक दिया, जिससे वह आगे जानेको असमर्थ होगया। सच है अपने स्थान पर निर्वल भी बल दिखाने लग जाता है। ज्यों ही हाथीको कालीने पकड़ा, त्यों ही वह जलमें डूबने लगा। उसको डूबता हुआ देख कर, हेमांगद आदि जो गंगातट पर खड़े थे, शीघ्र ही गंगामें कूद पड़े। उधर सुलोचना भी आहार, शरीर आदिसे ममता भावको छोड़ कर सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाले "णमो अर्हंताणं" मंत्रका जाप करने लगी और बहुतसे सखीजनोंके साथ-साथ वह भी गंगाके भीतर उतर पड़ी।

इसी गंगातट पर एक गंगा नाम देवी रहती थी। सहसा आसनके कम्पायमान होनेसे सब हाल जान कर वह उसी वक्त वहाँ आई और गंगासे सबको सही सलामत निकाल कर उसने किनारे पर पहुँचा दिया। एवं उसने दुष्ट कालीको खूब ही ताड़ना दी और उसे जयकुमारके पास लाई। सच है पुण्य-योगसे सब जगह जीत ही जीत होती है। इसके बाद गंगादेवीने नदीके तट पर सभी सम्पत्तिसे भरपूर एक मनोहर महल बनाया। और उसमें एक मनोहर सिंहासन पर सुलोचनाको बैठा कर उसने उसकी बड़ी भक्तिसे सेवा-पूजा की। इसके बाद वह बोली कि वसन्ततिलक नाम उद्यानमें जब मुझे साँपने काट खाया था तब आपने मुझे नमस्कार मंत्र दिया था। अतः आपकी ही कृपासे मैं यहाँ गंगाकी अधिष्ठात्री और सौधर्म इन्द्रकी नियोगिनी देवी हुई हूँ। देवी! यह सब आपके दिये हुए मंत्रसे ही हुआ है, अतः मैं आपकी चिर कृतज्ञ हूँ। यह सब सुन जयकुमारने सुलोचनाको कहा कि प्रिये! इसकी सारी कहानी कहो।

उत्तरमें सुलोचनाने यों कहना आरम्भ किया कि विंध्याचल पर्वत पर एक विंध्यपुरी नाम नगरी है। वहाँ विंध्यध्वज राजा राज्य करते है। उनकी रानीका नाम प्रियंगुश्री है। उनके एक विंध्यश्री नाम कन्या थी।

विंध्यध्वजने उस कन्याको सभी गुण-सम्पन्न बनानेके लिए मेरे पास भेज दिया। मेरा उस पर और उसका मुझ पर पूरा स्नेह था। एक दिन हम दोनों वसन्ततिलक नाम उद्यानमें क्रीड़ा कर रहीं थीं। दैवयोगसे इतनेमें उसे एक साँपने काट खाया और वह उसी वक्त बेहोश हो गई। उस वक्त मैंने उसे नमस्कार मंत्र दिया तथा उसका माहात्म्य भी समझा दिया। बाद कुछ देरमें वह उस मंत्रका जाप करती हुई मर गई और यहाँ आकर यह गंगादेवी हुई। इसने उसी धर्मानुरागसे मुझ पर यह स्नेह दिखाया है। यह सब कहानी सुन कर जयने गंगादेवीको विदा कर आप फहराती हुई धुजाओंवाले उसके बनाए हुए मनोहर महलमें गये। वहाँ रात पूरी कर सवेरे वे सूरजकी नाँई उठे और गंगाके किनारे किनारे चल कर शीघ्र ही हस्तनागपुर आ पहुँचे। हस्तनागपुर अपनी सुन्दर सामग्रीसे मनुष्यसा जान पड़ता था। मनुष्यके हाथ होते हैं, इसके उड़ती हुई पताकाएँ ही हाथ थीं। मनुष्यके मुख होता है, इसके सुवर्णकलश ही सुन्दर मुख था। पुरुषके वक्षःस्थल होता है, इसके बड़े बड़े तोरण ही वक्षःस्थल जैसे थे। मनुष्यके नेत्र होते है, उसके झरोखे ही नेत्र थे। मनुष्यके कटीभाग, पैर और नख होते हैं, उसके भी गुमटियोंके नीचेकी गहराई सी जो होती है वह कटीभाग और खंभे पाँव तथा उनमें जड़े हुए रत्न ही नख थे। एवं मनुष्यके स्त्री होती है, उसके भी सत्पुरुषोंकी संख्यारूपी स्त्री थी। बहुत क्या कहें, इस नगरकी अपूर्व ही शोभा थी। सब तरहसे सजे-धजे हस्तनागपुरको देख कर जय महाराज बहुत ही सन्तुष्ट हुए। वे सुलोचना सहित वहाँ ऐसे शोभते थे मानों जयका अवतार ही है। जयने नगरमें उसी तरह प्रवेश किया, जिस तरह कि चक्रवर्ती अयोध्या नगरीमें प्रवेश करता है। एवं वहाँ वे सच्चे सुखोंको देनेवाली अपनी प्रियाके साथ-साथ सुखसे सुन्दर महलोंमें निवास करने लगे। सुलोचनाके मुख-कमलके भ्रमरके जैसे जय अपने छोटे भाइयों सहित पृथ्वीका पालन करते हुए इन्द्रके जैसे शोभते थे।

एक दिन जय महाराजने महलके ऊपरसे एक कबूतरोंके जोड़ेको देखा और उसे देखते ही, "मेरी प्रभावती कहाँ है" यह कह कर वे बेहोश होगये। तथा मीठी मीठी ध्वनि करनेवाले उन कबूतरोंको देख कर सुलोचनाको भी जातिस्मरण हो आया एवं वह भी हा, "मेरा रतिवर कहाँ है" यह कह मूर्छित हो गई। उस समय सभी कुटुम्ब-परिवारके लोग इकट्ठे हो गये और उन्होंने चंदन आदि शीतल वस्तुओंके उपचार द्वारा उनकी मूर्छाको दूर किया; जिस तरह रत्नोंकी ज्योति अँधेरेको

दूर कर देती है। वे दोनों जब सचेत हुए तब उन्हें अपने परिवारके लोगोंकी विह्वलता देख कर बहुत ही अचंभा हुआ और साथ ही पिछले भवोंका स्मरण हो आया। जयने सुलोचनासे कहा कि प्रिये! अपने पिछले जन्मोंका सारा हाल सुना कर इन सबके कौतुकको मिटाओ। अपने प्रियतमकी आज्ञा पाकर वह मिष्ट-भाषिणी यों कहने लगी कि—" जम्बूद्वीपके पूर्व-विदेहमें एक पुष्कलावती देश है। उसमें मृणालवती नाम पुरी है। वहाँके राजा सुकेतु थे। इसी नगरीमें एक रति-वर्मा नाम सेठ रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम कनकश्री और पुत्रका नाम भवदेव था। यहाँ श्रीदत्त नाम एक वैश्य और थे। उनकी स्त्रीका नाम विमलश्री और पुत्रीका नाम रतिवेगा था। वह सती थी। एवं अशोकदेव नाम एक तीसरे सेठ और यहीं रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता और पुत्रका नाम सुकान्त था। वह हमेशा धर्म-कर्ममें लगा रहता था। एक वार भवदेवके माता-पिताने उसके लिए रतिवेगाके माता-पितासे उसकी याचना की और उन्हें इस काममें सफलता भी प्राप्त हुई। भवदेवका चाल-चलन खराब था, इस लिए लोग उसे दुर्मुख भी कहा करते थे। एक समय धन कमानेकी इच्छासे जब भवदेव दूसरे देशको जा रहा था तब श्रीदत्तने उससे विवाहके सम्बन्धमें कहा कि अब इस समय तो आप व्यापारके लिए जा रहे हैं, पर यह तो बताइए कि विवाह कब तक रुका रहेगा। इस पर वह बारह वर्षकी प्रतिज्ञा करके परदेशको चला गया। वह कह गया कि यदि मैं बारह वर्षमें पीछा न आऊँ तो इस कन्याका ब्याह तुम दूसरेके साथमें कर देना।

दैवयोगसे ऐसा ही हुआ। धीरे धीरे बारह वर्ष पूरे होगये, पर वह वापिस न आया। आखिर रतिवेगाके पिता श्रीदत्तने बड़े भारी ठाटवाटके साथ अपनी कन्याका ब्याह अशोकके सुकांत नाम पुत्रके साथ कर दिया। रतिवेगा साक्षात् रति ही थी। इसके बाद जब भवदेव परदेशसे घर आया और उसने रतिवेगाके ब्याहकी चर्चा सुनी तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने सुकान्त तथा रतिवेगाको मार डालनेका निश्चय किया। जिसको सुन कर डरके मारे सुकान्त रतिवेगाको साथ लेकर वनमें चला गया। वहाँ सरोवर पर शक्तिषेण नामका एक राजा ठहरा हुआ था। वे उसकी शरणमें गये। पीछेसे दुर्मुख भी उन्हें मारनेके लिए वहीं आ पहुँचा। पर वहाँ जब उसका कुछ भी वश न चला तब वह शक्तिषेण राजाके भयसे वापिस लौट आया। दैवयोगसे इसी समय शक्तिषेणके डेरे पर चारण मुनि आहारके लिए आये और शक्तिषेणने उन्हें शुद्ध भावोंसे आहार दिया तथा उनकी खूब पूजा-भक्ति की।

यह देख कर वे दोनों दम्पती बहुत आनन्दित हुए; और बारह भावनाओंका चिंतन करते हुए सुखसे वहीं पर रहने लगे। इसके बाद मौका पाकर उन दोनों दम्पतीको भवदेवने आग लगा कर जला डाला और मौका मिलने पर शक्तिषेणके भटोंने उसे भी मार डाला।

पूर्वविदेहकी पुण्डरीकनी नगरीमें—जिस समयका यह जिक्र है उस समय—प्रजापाल राजा राज्य करता था; और वहीं पर एक कुवेरमित्र नाम सेठ रहता था। सेठ पर राजाकी पूरी कृपादृष्टि थी। सेठकी बत्तीस स्त्रियाँ थीं। उनमें धनवती मुख्य थी। सेठके घर पर सुकान्तका जीव रतिवर नाम कबूतर और रतिवेगाका जीव रतिषेणा नाम उसकी कबूतरी हुई। वे दोनों सेठके घरमें बिखरे हुए चाँवलोंको चुग कर सांसारिक विचित्र सुखोंका अनुभव करते हुए सुख-चैनसे अपना काल विताते थे।

एक समय सेठके घर आहारके लिए दो चारण मुनि आये। उन्हें देख कर उन दम्पतीका हृदय हर्षसे गद्गद हो उठा और उन्होंने शुद्ध भावोंसे मुनिको आहारके लिए पड़गाहा; तथा बड़ी भक्तिसे आहार दिया। उस समय उन कबूतरोंकी दृष्टि भी उन मुनियोंके ऊपर पड़ी। उन्होंने मुनियोंके चरण-कमलोंका दर्शन कर उन्हें नमस्कार किया। मुनियोंको देखते ही उन दोनोंको अपने पिछले भवोंका स्मरण हो आया। उन्हें पहिले भवके मुनिदानकी याद हो आई, जो कि शक्तिषेण राजाने दिया था। मुनियोंके पास आकर उन्होंने मुनिदानकी खूब अनुमोदना की और उसके प्रभावसे पुण्यबन्ध किया। एक दिन दाना चुगनेके लिए वे कपोत-दम्पती किसी दूसरे गाँव गये हुए थे। वहाँ उनका शत्रु पापी भवदेवका जीव बिलाव हुआ था। वह इन्हें देखते ही क्रोधमें आ मार कर खागया।

वहीं विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें एक गांधार देश है। उसमें शीखली नाम नगरी है। वहाँका राजा आदित्यगति था। आदित्यगतिकी स्त्रीका नाम शशिप्रभा था। उसके गर्भसे वह कबूतर हिरण्यवर्मा नाम पुत्र हुआ। वहीं विजायर्द्धकी उत्तर श्रेणीमें एक गौरी देश है। उसमें भोगपुर नाम नगर है। वहाँका वायुरथ विद्याधर राजा था। उसकी रानीका नाम स्वयंप्रभा था। उसके गर्भसे वह रतिषेणा नाम कबूतरी प्रभावती नाम पुत्री हुई। एक दिन राजाने देखा कि प्रभावती युवती हो गई है, उसका किसी योग्य वरके साथ ब्याह कर देना चाहिए। इस प्रश्नको हल करनेके लिए उसने मंत्रियोंको बुलाया और उनसे पूछा कि प्रभावती किसे देना चाहिए। सब मंत्रियोंने विचार करके कहा कि महाराज! सबकी सम्मति है

कि स्वयंवर-विधि करनी चाहिए। राजाने उनकी इस सम्मतिको स्वीकार किया; और उसीके अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया। देश विदेशसे विद्याधर राजा बुलाये गये। और जो जो कन्याके अर्थी थे वे सब आकर वहाँ उपस्थित हो गये। स्वयंवरके समय सब स्वयंवर मंडपमें आकर अपने योग्य स्थानों पर बैठे। प्रभावती वरमाला ले पतिवरणको मंडपमें आई, पर उसने किसीको भी न वरा—पसंद न किया। यह देख उसके माता-पिताने उससे पूछा कि पुत्री यह क्या बात है? कन्याने उत्तरमें कहा कि जो कोई मुझे गति-युद्धमें जीत लेगा मैं उसीके गलेमें वरमाला डालूँगी।

इसके बाद दूसरे दिन फिर स्वयंवर हुआ। उस समय प्रभावतीने सिद्धकूट चैत्यालयके शिखर परसे माला नीचेको डाली। पर किसीने भी वहाँ बने हुए मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर उस मालाको बीचहीमें न ले पाया। तब सब लज्जित हो अपने अपने घरको चले गये। इसके बाद हिरण्यवर्मा आया। वह गति-युद्धमें बहुत ही प्रवीण था। उसने मेरुकी तीन परिक्रमा देकर बीचहीमें मालाको हाथोंमें ले लिया। यह देख प्रभावतीने बड़ी खुशीसे उसके कंठमें वरमाला पहिना दी। इसके बाद हिरण्यवर्माने सिद्धकूट चैत्यालयमें जाकर भगवानके स्तवन आदि कल्याणकारी उत्सवके साथ विधि-पूर्वक प्रभावतीका पाणिग्रहण किया।

इसके कुछ दिनों बाद एक दिन प्रभावतीने एक कबूतरोंके जोड़ेको उड़ते देखा। उसे देखते ही उसे अपने पिछले भवोंकी याद हो आई और उसके परिणाम विरक्त हो गये। उस समय प्रभावतीने एक चारण मुनिसे पूछा कि प्रभो! मेरे पिछले भवोंकी कथा कहिए। मुनिने उत्तरमें पीछे लिखी हुई वधू-वर आदिकी सभी कथा कह दी। उसे सुन कर प्रभावती और हिरण्यवर्मामें गाढ़ प्रीति उत्पन्न हो गई। एक दिन आदित्यगति नष्ट होते हुए बादलोंको देख कर विरक्त हो गया; और हिरण्यवर्माको राज्य देकर उसने जिनदीक्षा धारण करली। हिरण्यवर्माने बड़ी उत्तमताके साथ बहुत दिनों तक राज्य किया; परन्तु कुछ काल बाद किसी निमित्तको पा वह भी विरक्त हो गया। उसने अपने पुत्र स्वर्णवर्माको राज्य देकर आप स्वयं पैदल श्रीपुर आ श्रीपाल नाम मुनिसे दीक्षित हो गया। वह बड़ा निर्लोभी था; देवता-गण उसकी सेवा करते थे। अपने स्वामीको प्रव्रजित देख प्रभावतीने भी गुणवती नाम अर्जिकासे जिनदीक्षा लेली; और कायक्लेश तप तथा शास्त्र-चिन्तनके द्वारा वह शरीरको सुखाने लगी। कुछ समय बाद हिरण्यवर्मा और प्रभावती

दोनोंने वहाँसे विहार किया; और विहार करते करते वे पुंडरीकनी नगरीमें आये। वहाँ प्रभावतीको देख कर प्रियदत्ता सेठानीने संघकी गुराणीसे पूछा कि यह कौन है और इसके ऊपर जो मेरे हृदयमें प्रबल स्नेह हो आया है इसका क्या कारण है ? यह सुन कर प्रभावतीने कहा कि क्या तुम्हें अपने घरमें रहनेवाले उस कपोत-युगलकी याद नहीं है। मैं वही तो हूँ जो तुम्हारे घरमें रतिषेणा नाम कबूतरी थी। यह सुन कर सेठानी बोली कि और वह रतिवर कहाँ है ? प्रभावतीने कहा कि वह भी मर कर विद्याधरोंका ईश्वर हुआ था। अब मुनि होकर विहार करता हुआ यहीं आया है। उसका नाम है हिरण्यवर्मा। प्रियदत्ताने मुनिके पास जाकर उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद वह भी प्रभावतीके उपदेशसे अर्जिका हो गई। वह बड़ी क्षमा गुणकी धारक थी। सच है वैराग्यका फल ही ऐसा है।

इसके बाद एक दिन हिरण्यवर्मा मुनिने सात दिनके लिए मसान भूमिमें ध्यान लगाया। इधर उस मार्जारके जीव दुष्ट-बुद्धि विद्युचोरने प्रियदत्ताकी दासीके मुँहसे उन मुनिराजके पिछले भवोंका हाल सुन रक्खा था। अतः विभंगावधि ज्ञानसे उन्हें ध्यानस्थ जान कर वह वहाँ आया; और उसने हिरण्यवर्मा तथा प्रभावतीको एस साथ जलती हुई चितामें झोंक दिया। उस समय आगकी कठिन परीषहको शुद्ध भावोंसे सह कर वे दोनों मरे और पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुए। यह बात जब स्वर्णवर्माके कानमें पड़ी तब उसने विद्युच्चोरको मार डालनेका निश्चय किया। परन्तु अवधिज्ञान द्वारा स्वर्णवर्माके इस विचारको जान कर मुनिका रूप बना वे दोनों देव आये और उन्होंने पुत्रको समझा-बुझा कर शांत कर दिया। इसके बाद दिव्यरूप धारी स्वर्णवर्माको दिव्य वस्त्र-आभूषण वगैरह भेंट कर वे स्वर्गको चले गये। एक दिन उन देवोंने भीम महामुनिको देख कर, उन्हें नमस्कार कर उनसे धर्मका उपदेश सुना। मुनिने कहा कि यह धर्म दया, सत्य और संयम-मय है। इससे जीवोंका कल्याण होता है और उन्हें इससे मन चाहे पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। इस पर देवने कहा कि हे वेदके ज्ञाता ! यह कहिए कि आपके दीक्षित हो जानेमें क्या कारण है। इसके उत्तरमें मुनिने कहा कि मैं पुण्डरीकनी नगरीमें एक दरिद्र कुलमें पैदा हुआ था। मेरा नाम भीम है। एक समय मौका पाकर मैंने एक मुनिराजसे आठ मूल गुणों और व्रतोंको ग्रहण किया तथा घर जाकर यह सब हाल पिताजीको कह सुनाया। वे मुझसे बहुत ही नाराज हुए। उन्होंने मुझे बहुत कुछ समझाया, पर मैंने उनकी एक बात न मानी। क्योंकि मुझे जाति-स्मरण द्वारा अपने पिछले भव मालूम हो चुके थे। मैं विरक्त हो दीक्षित हो गया—दिगम्बर साधु बन गया।

मैं अपने पहले भवमें भवदेव नाम वैश्य-पुत्र था। इस भवमें मैंने वैर-विरोधके कारण रतिवेगा और सुकान्तको मार डाला था। इसके बाद मर कर जब वे कबूतर हुए तब मैं मार्जार हुआ और मार्जारके भवमें भी मैंने उन्हें मार खाया। इसके बाद वे हिरण्यवर्मा और प्रभावती हुए तथा मैं विद्युच्चोर हुआ। इस बार भी मैंने उन्हें जलती हुई आगमें डाल कर जला डाला था। उस पाप महापापके कारण मैं दुःखोंके स्थान नरकमें जा पड़ा; और वहाँ मुझे बड़े भारी दुःख भोगने पड़े। सच है पापसे जीवोंको सभी दुःख सहने पड़ते हैं। नरकसे निकल कर मुझे संसारमें जो चक्कर लगाना पड़ा है उसके भयसे मेरा आत्मा अब भी अत्यन्त भयभीत हो रहा है। इस विचित्र कथाको सुन उन देवोंको सब बातोंका ज्ञान हो गया। वे संसारको बहुत ही बुरा समझने लगे। इसके बाद रागरंगमें मस्त और साता-वेदनी-रूप सागरमें गोते लगानेवाले वे देव स्वर्गको चले गये। उनके चले जाने बाद निर्भय, परन्तु फिर भी संसारसे भयभीत भीम महामुनीने बारह भावनाओंका चिन्तन कर और अधःकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा पाप-कर्मोंको हलका कर क्षायिकसम्यक्त और क्षायिक-चारित्र प्राप्त किया। एवं विघ्न बाधा-रूप मेघोंको उड़ानेके लिए वायुके समान और घाति-कर्मोंके घातक उन महामुनिने केवलज्ञान प्राप्त कर तथा कुछ समय बाद अघाति कर्मोंको भी घात कर वे मोक्षके अनंत सुखके भोक्ता हो गये।

यहाँ सुलोचना जयकुमारको याद दिलाती है कि हे नाथ! उस समय हम भी उन महामुनिकी वन्दनाको गये थे और वन्दना कर वापिस स्वर्गको चले गये थे। इसके बाद स्वर्गसे चय कर हम लोग इस भरत क्षेत्रमें पैदा हुए हैं। आप भरत चक्रवर्तीके सेनापति और सोमप्रभ राजाके पुत्र हुए; एवं जयलक्ष्मीके भी पति हुए। और मैं महाराज अकंपनकी पुत्री हुई, जिनके भयसे शत्रु लोग काँपते है, जो परम दयालु हैं, सुन्दर रूपवाले है; तथा जो दूसरोंसे नष्ट न होनेवाले प्रजाके कष्टोंको प्रीतिसे दूर करनेवाले हैं। नाथ! यही कारण है कि आज कबूतरोंके जोड़ेको देख कर आप तो 'हा प्रभावती' कह कर मूर्छित हो गये और मैं उसी भवके अपने स्वामी रतिवेगको याद कर 'हा रतिवेग' कह मूर्छित हो गई। इस प्रकार यहाँ हम क्रीड़ा करनेवाले सुन्दर और लज्जाशील दम्पती हुए है; और निमित्त पाकर इस समय हमें जाति-स्मरण भी हो गया है।" इस प्रकार सुलोचनाने पूर्व भवकी सब बातें कह सुनाईं, जिन्हें सुन कर जयकुमारको बड़ा सन्तोष हुआ। सच है स्त्रीके वचनोंसे कौन प्रसन्न नहीं होता। इसके बाद वे मन-

चाहे भोगोंको भोगते हुए सुख-चैनसे काल विताने लगे। इनके पास विद्याधरके भवमें प्राप्त की हुई बहुतसी विद्यायें थीं, जिनके प्रभावसे वे मेरु और कुलाचलों पर जहाँ चाहते जाकर क्रीड़ा करते थे और सांसारिक सुखोंका स्वाद लेते थे। एक वार जयकुमार क्रीड़ाके लिए कैलाश पर्वतके मनोहर वनमें गये और वहाँ सुलोचनाको एक स्थान पर छोड़ कर स्वयं कुछ दूर निकल गये। दैवयोगसे इसी समय इन्द्रने अपनी सभामें जयकुमारके शीलव्रतकी बड़ी बड़ाई की और सुलोचनाके पातिव्रत्यको सराहा। इन्द्रके द्वारा की गई उनकी वह प्रशंसा रविप्रभ नाम एक देवसे न सही गई और उसने उसी समय कांचना नामकी एक अप्सराको जयके पास भेजा। वह जयके पास आकर कहने लगी—

इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें एक रत्नपुर नाम नगर है। वहाँका राजा पिंगलगांधार है। उसकी रानीका नाम सुप्रभा है और पुत्रीका नाम विद्युत्प्रभा। मैं वही विद्युत्प्रभा हूँ। मेरा ब्याह राजा नमिके साथमें हुआ था। एक दिन मैंने पुण्ययोगसे मेरुके नन्दन वनमें आपको क्रीड़ा करते हुए देखा। तभीसे मैं आपके लिए बहुत उत्सुक हूँ। मेरे चित्त पर आपका चित्र खिंच गया है। दुर्भाग्यसे इतने दिनों तक आपके दर्शनका मौका न मिला। पुण्यके उदयसे आज फिर आपके दर्शन हो गये। अतः हे जय! मुझे स्वीकार कर मेरे साथ मन-चाहे सुख भोगो।

विद्युत्प्रभाकी इस प्रकार दुष्ट चेष्टा देख कर जयने कहा कि तुम ऐसा पाप मत विचारो; मैं परस्त्रीका त्यागी हूँ। तुम यहाँसे अभी चली जाओ। इस प्रकार जयने उसे खूब डाटा-डपटा। यह देख विद्युत्प्रभाको बड़ा क्रोध आया। वह राक्षसीका रूप बना जय पर उपद्रव करने लगी। परन्तु उस दुष्टाका जब जय पर कुछ वश न चला तब वह वहाँसे भाग कर सुलोचनाके पास पहुँची। सुलोचनाने भी उसे खूब फटकारा। अन्तमें वह उसके शीलके माहात्म्यसे डर कर क्षणभरमें अदृश्य हो गई। देखो, शील-व्रतधारियोंसे देव भी डरते हैं। स्वर्गमें जाकर उसने स्वामीको नमस्कार किया और जयकुमार तथा सुलोचनाके शीलकी बड़ी प्रशंसा की। सुन कर रविप्रभको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद उसने स्वयं आकर बड़े विनयसे उन दम्पतीको नमस्कार किया और उन्हें अपना सारा हाल कह सुनाया; और कहा कि आपका मैं अपराधी हूँ। आप मुझे क्षमा करें। इसके बाद वह उन दम्पतीको रत्नाभरण और दिव्यवस्त्र भेंट कर स्वर्गको चला गया। इधर जयकुमार भी अपनी कान्ताके साथ-साथ नगरको चले आये।

एक बार अनेक राजों द्वारा सेवित जयकुमारका संसारकी विचित्र गति पर ध्यान गया; संसारकी अनित्यताका उनकी बुद्धि पर चित्र खिंच गया। उन्होंने आदिनाथ प्रभुके पास जाकर ध्यानपूर्वक धर्मका उपदेश सुना; तथा संसार-देह-भोगोंसे विरक्त होकर शिवंकर महादेवीके साथ-साथ अपने अनंतवीर्य नाम पुत्रका राज्याभिषेक कर उन्हें अपने पद पर बैठाया; और स्वयं सब परिग्रहको छोड़ कर बहुतसे राजोंके साथ-साथ दिगम्बर हो गये। इसके बाद थोड़े ही दिनोंमें सात ऋद्धियाँ तथा मनःपर्ययज्ञान लाभ कर वे आदिनाथ भगवानके इकहत्तरवें गणधर हुए; और क्रमसे घातिकर्मोंके नाशसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इधर पति-वियोगसे पीड़ित सुलोचनाने भी विरक्त होकर सुभद्रा नाम भरतकी पत्नीके साथ-साथ ब्राह्मी आर्याके पास अर्जिकाके व्रत ग्रहण कर लिये; और तप कर वह अच्युत स्वर्गके अनुत्तर विमानमें देव हो गई। इसके बाद ऋषभप्रभुने सम्पूर्ण देशोंमें विहार कर धर्मका उपदेश किया; और धीरे धीरे सब जगहकी भव्यजन-रूप वनश्रेणीको सींच कर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। वहाँ प्रभुने चौदह दिन तक मुक्तिका कारण योग धारण कर योगनिरोध किया; और माघवदी चौदसको प्रातःकाल, पूर्व मुख कर निष्पाप आदिप्रभु पद्मासनसे औदारिक शरीर छोड़ कर अव्यय मोक्षपदको प्राप्त हो गये। उस समय सब सुर-असुरोंने आकर प्रभुका निर्वाण महोत्सव मनाया और सिद्धि लाभकी इच्छासे पुण्य-बंध किया। इसके बाद जय भी अघाति कर्मोंका नाश कर कल्याण-मय मोक्ष-अवस्थाके भोक्ता हो गये।

उन जयकी जय हो जो संसारके विजेता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं; शत्रु-रूप आगको बुझानेके लिए मेघ हैं; मनोमलको शोधनेवाले और विपुल शुद्धिके सम्पादक हैं; तथा जो कौरवोंके शिरोमणि है; और सब भव्य-जन जिनकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार तत्त्वोंके स्वरूपको बता कर और अनन्त जीवोंको संसारसे पार कर भगवान आदिनाथ निर्वाणको चले गये। अब भवभोगी और शुद्ध संवेग-योगी दयालु भरत महाराज मोक्ष-अवस्था लाभ करें।

चौथा अध्याय।

उन आदिनाथ प्रभुके गुणोंका मैं स्मरण करता हूँ जो पुराणपुरुषोंमें उत्तम है; जिनका अभ्युदय संसार-प्रसिद्ध है और जो उत्तम अवस्थाको प्राप्त कर चुके हैं।

जयके बाद आकाशमें चंद्रमाकी भाँति कुरुवंशमें अनन्तवीर्य राजा हुआ। इसके बाद कुरुचंद्र, शुभंकर, धीरवीर धृतिंकर, धृतिदेव और गुणोंका पुंज गुणदेव राजा हुआ। इनके बाद धृतिमित्र आदि और और बहुतसे राजोंने अपने जन्मसे कुरुवंशको अलंकृत किया। बाद सुप्रतिष्ठ आदि कई एक स्वर्गगामी पुण्यवान् राजा हुए। अनंतर भ्रमघोष, हरिघोष, हरिध्वज, रविघोष, महावीर्य, पृथ्वीनाथ प्रथु, गजवाहन आदि सैकड़ों राजोंके हो चुकने पर विजय नरेश हुए। यह संसार-प्रसिद्ध और जयश्रीके पति थे। इनके बाद सनत्कुमार, सुकुमार, वीरकुमार, विश्व, वैश्वनर, विश्वध्वज और धुजाके जैसा बृहत्केतु आदि बहुतसे कर्मवीर राजोंने इस वंशमें जन्म लिया। बाद विश्वसेन महाराजने इस वंशका मुख उज्ज्वल किया। इन्हींके यहाँ परमपूज्य सोलहवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ भगवानका जन्म हुआ है। अब थोड़ेमें श्री शान्तिनाथ प्रभुका चरित लिखा जाता है। यह सत्पुरुषोंको सच्चा-मार्ग सुझानेवाला और परम पवित्र है। उसे सुनिए।

भरतक्षेत्रके बीचमें एक विजयार्द्ध पर्वत है। इसकी दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नगर है। वहाँका राजा ज्वलनजटी था। वह विद्याधरोंका अगुआ और सब गुण-सम्पन्न था। उसकी रानीका नाम वायुवेगा था। वह वायुके वेगकी तरह चंचल और सुन्दरी थी। ज्वलनजटी और वायुवेगाके एक पुत्र था। उसका नाम अर्ककीर्ति था। वह भी संसार-प्रसिद्ध था—उसकी कीर्ति सारे संसारमें व्याप्त थी। तथा इनके स्वयंप्रभा नामकी एक पुत्री भी थी जो अपनी शोभासे लक्ष्मीकी बराबरी करती थी। एक दिन राजाको खबर लगी कि वनमें जगनंदन और अभिनंदन नाम दो मुनीश्वर आये हैं। खबर पाते ही वह उनकी वन्दनाके लिए वनमें गया। वहाँ पहुँच कर उसने मुनीश्वरोंकी वन्दना की और उनसे धर्मका उपदेश सुना तथा सम्यग्दर्शन ग्रहण किया। उसके साथ स्वयंप्रभाने भी धर्म धारण किया। इसके बाद ज्वलनजटी मुनीश्वरोंको नमस्कार कर नगरको वापिस लौट आया।

इसके बाद एक बार पर्वके दिनोंमें स्वयंप्रभाने बड़े आनन्दके साथ उपवास किया। यद्यपि उपवाससे उसका शरीर कृश हो गया था तो भी उसकी शोभा अपूर्व थी। स्वयंप्रभाने जिनेन्द्र देवकी बड़ी भक्तिसे पूजा की और उनके चरण-कमलोंकी शेषा लाकर अपने पिताको प्रदान की। पिताने उसे भक्तिके साथ मस्तक पर चढ़ाया। उस समय स्वयंप्रभाके पिता ज्वलनजटीने देखा कि अब कन्या युवती हो गई है, इसका किसी उत्तम वरके साथ विवाह कर देना योग्य है। इसके बाद ही उसके मनमें प्रश्न उठा कि स्वयंप्रभा जैसी सुन्दरी कन्या किसे दी जानी चाहिए। इस प्रश्नको जब वह स्वयं हल न कर सका तब उसने अपने मंत्रिवर्गको बुलाया और उनसे कन्या देनेके सम्बन्धमें सलाह पूछी। इस पर शास्त्रज्ञ सुश्रुत नाम मंत्रीने कहा कि महाराज! इसी विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें एक अलकापुरी नाम नगरी है। वहाँका राजा मयूरग्रीव है। उसकी रानीका नाम नीलांजना है। उनके कई एक पुत्र हैं। वे सब महान् बली हैं। उनके नाम अश्वग्रीव, नीलकंठ और वज्रकंठ इत्यादि है। अश्वग्रीवकी स्त्रीका नाम कनकचित्रा है। अश्वग्रीव और कनकचित्राके पाँचसौ पुत्र हैं। अश्वग्रीवका हरिस्मश्रुक नाम मंत्री और शतविन्दु नाम निमित्तक है। वह तीन खंड पृथ्वीका स्वामी है। मेरी सम्मति है कि आप अश्वग्रीव जैसे विस्तृत राज्यवाले राजाको कन्या दें, तो कन्याको सुख होगा और आपको भी शान्ति मिलेगी। सुश्रुतकी बातोंको सुन कर बहुश्रुत नाम मंत्रीने कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है; परन्तु अश्वग्रीवकी अवस्था अधिक है, अत एव यदि उसे कन्या दी जायगी तो सम्भव है कि वह भोगोंसे वंचित रह जाय अर्थात् हमेशा सौभाग्यवती न रहे— वैधव्य जैसे महान् संकटमें पड़ जाय। देखो! वरमें ये नौ गुण तो अवश्य ही होने चाहिए। उच्च जाति, नीरोगता, योग्य आयु, शील, शास्त्रका ज्ञान, सुन्दर सुडौल शरीर, धन-दौलत, पक्ष और कुटुम्ब। अश्वग्रीवमें इनमेंकी बहुतसी बातें नहीं है, इस लिए यह स्वयंप्रभाके योग्य नहीं है। दूसरा और कोई वर खोजा जाना चाहिए। कारण, स्पष्ट देख-भाल कर ही सत्पुरुष सन्तुष्ट होते हैं और अपनी कन्या प्रदान करते है। सुश्रुतने फिर कहा कि महाराज! और देखिए, गगनवल्लभ पुरमें सिंह-रथ, मेघपुरमें पद्मरथ, चित्रपुरमें अरिंजय, अश्वपुरमें हेमरथ, रत्नपुरमें धनंजय इत्यादि बहुतसे राजा है। इनमेंसे जो आपको पसंद पड़े उसे पुण्यवती और सौभाग्यशालिनी प्रभावतीको दीजिए। यह सुन कर श्रुतसागर नाम मंत्रीने कहा कि महाराज! स्वयंप्रभाके योग्य वर मैं बताता हूँ, सुनिए।

इसी विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें सुरेन्द्रकान्त नगर है। वहाँके राजाका नाम मेघवाहन है। उसकी रानीका नाम मेघमालिनी है। उनके विद्युत्प्रभ नाम पुत्र और ज्योतिर्माला नाम एक कन्या है। एक दिन मेघवाहन सिद्धकूट चैत्यालय गया और वहाँ उसने एक चारण मुनिको देखा। उनका नाम वरधर्म था। उन्हें नमस्कार कर उसने उनसे धर्मका उपदेश सुना और अपने पुत्र विद्युत्प्रभके पिछले भवोंका हाल पूछा। मुनिराजने कहा कि—"जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें एक वत्स्यकावती देश है। उसमें प्रभापुरी नाम नगरी है। वहाँका राजा नंदन था। उसके पुत्रका नाम विजयभद्र था। वह वीर और प्रतापी था। उसकी भार्याका नाम जयसेना था। एक दिन विजयभद्र क्रीड़ाके लिए उद्यानमें गया और वहाँ एक फलको पेड़से नीचे पड़ता हुआ देख कर वह विरक्त हो गया तथा पिहिताश्रव मुनिके पास जा, चार हजार राजोंके साथ-साथ उसने जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर ली—वह दिगम्बर यति हो गया। एवं वह कुछ कालमें मर कर शान्त भावोंके प्रभावसे माहेन्द्र स्वर्गके चक्रक नाम विमानमें देव हुआ। वहाँ उसकी सात सागरकी आयु हुई। वह वहाँसे चयकर अब यह तेरा पुत्र विद्युत्प्रभ हुआ है और यह थोड़े ही समयमें मोक्ष जायगा।" मैं भी उस समय वहीं पर था। पिहिताश्रव मुनिके मुखसे यह हाल मैंने स्वयं सुना है। अतः मेरी सम्मति है कि उसे ही कन्या देना योग्य है। और ज्योतिर्माला नामकी जो उसकी पुत्री है वह अपने कुमार अर्ककीर्तिके योग्य है। इस लिए उसे हम अर्ककीर्तिके निमित्त ले लेंगे। श्रुतसागरके इन वचनोंको सुन कर सुमति मंत्रीने कहा कि राजन्! स्वयंप्रभाको प्रायः सभी विद्याधर चाहते हैं। इस लिए अपनी खुशीसे किसी एकको दे देने पर वे बड़ा वैर-विरोध खड़ा करेंगे, अतः स्वयंवर करना सबसे उत्तम और ठीक होगा। यह कह कर सुमति चुप हो गया। राजाने उसकी बात स्वीकार कर मंत्री वर्गको विदा किया। इसके बाद राजाने संभिन्नश्रोत्र नाम एक पौराणिकको बुला कर उससे पूछा कि पंडितजी स्वयंप्रभाका वर कौन होगा। यह सुन पौराणिकने कहा कि मै शास्त्रके आधारसे जो कुछ कहता हूँ उसे आप ध्यानसे सुनिए।

सुरम्य देशमें एक पोदनापुर नगर है। उसका राजा प्रजापति है। उसकी दो रानियाँ हैं। एक भद्रा और दूसरी मृगावती। भद्राके पुत्रका नाम विजय और मृगावतीके पुत्रका नाम त्रिपृष्ठ है। वे दोनों ग्यारहवें तीर्थंकरके तीर्थमें नारायण और बलभद्र होनेवाले हैं। वे महान् बली और अश्वग्रीवको मार

कर तीन खंडके पति होनेवाले है। एवं त्रिपृष्ठ संसार परिभ्रमण कर अन्तिम तीर्थंकर होगा। अतः तीन खंडके भोक्ता त्रिपृष्ठको ही कन्या देनी चाहिए। यह कन्या उसके मनको मोह कर कल्याणकी भागिनी बनेगी और उसके निमित्तसे आप सब विद्याधरोंके स्वामी बनेंगे। पौराणिकके इन वचनोंको सुन कर राजाने उसका खूब सत्कार किया और उसके वचनों पर निश्चय कर किया।

इसके बाद राजाने उसी समय इन्दू नाम दूतको बुलाया और उसे पत्र तथा भेंट दे, तथा सब बातें समझा कर प्रजापति महाराजके पास भेजा। क्योंकि जयगुप्त नामक निमित्त ज्ञानीसे वह पहिले ही सुन चुका था कि स्वयंप्रभाका वर त्रिपृष्ठ नारायण होगा। दूत राजमहलके सभाभवनमें पहुँचा और वरके लिए जो भेंट ले गया था, उसे उसने प्रजापति महाराजके सामने रख दी तथा उनके हाथमें पत्र देकर विनय-पूर्वक कहा कि देव! ज्वलनजटी महाराजकी इच्छा है कि उनकी स्वयंप्रभा नाम लक्ष्मीके जैसी कन्याको त्रिपृष्ठ ग्रहण करें। इसके बाद पत्रके द्वारा पूरा हाल जान कर प्रजापतिने दूतका खूब आदर-सत्कार किया और बदलेकी भेंट देकर उससे कहा कि "जैसी तुम्हारे महाराजकी इच्छा है वैसा ही होगा"। दूत वहाँसे विदा होकर वापिस रथनूपुर आया और उसने सारी कार्य-सिद्धिको बड़ी युक्तिके साथ महाराजको कह सुनाया। इसके बाद बड़ी भारी विभूति और ठाटबाटके साथ ज्वलनजटी स्वयंप्रभाको लेकर पोदनापुर पहुँचे। उनका आना जान कर प्रजापति अगवानीके लिए नगरके बाहर आये और बड़े आदरके साथ ज्वलनजटीको नगरमें ले गये। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर सुहावने मंडपमें उन्हें ठहराया। इसके बाद ज्वलनजटीने विवाहकी सब विधि यथायोग्य समाप्त कर त्रिपृष्ठके लिए कन्या प्रदान की और साथ ही सिंहविद्या, नागविद्या तथा तार्क्ष्यविद्या ये तीन विद्यायें दीं।

इसी समय उत्तर श्रेणीकी अलकापुरीमें जहाँ पर अश्वग्रीव रहता था, तीन भाँतिके उपद्रव हुए। दिव्य, भौम और अन्तरीक्ष। पहिले कभी नहीं हुए ऐसे इन अपूर्व उपद्रवोंको देख कर वहाँके लोग बहुत ही व्याकुल हुए। उस समय अश्वग्रीवने शतविन्दु निमित्तज्ञानीको बुलाया और उससे पूछा कि बताओ, इन उपद्रवोंका फल क्या है? शतविन्दुने कहा कि जिसने सिंधुदेशमें सिंहका मार कर अपना पराक्रम दिखाया, जिसने आपके पास आती हुई भेंटको जबरदस्ती रास्तेमें ही छीन लिया और ज्वलनजटी खगेश्वरकी स्वयंप्रभा नाम कन्याको जिस धीरवीरने वरा उसके द्वारा आपको क्षोभ प्राप्त होगा—आप दुखी होंगे। इस लिए आप उसे खोज कर पहिलेसे ही अपना प्रबन्ध कर उसके नाशका यत्न कीजिए।

यह सुन अश्वग्रीवने उसी समय मंत्रियोंको आज्ञा दी कि तुम लोग उस शत्रुकी जल्दी खोज करो और विषके अंकुरकी नाँई उसे जड़से उखाड़ कर फैंक दो; नहीं तो वह पीछे बहुत दुःख देगा । मंत्रियोकी सलाहसे गूढ़चर लोग पोदनापुर भेजे गये । वहाँ उन्होंने तलाश किया और शतविन्दुकी बताई हुई सिंहवध आदि बातों परसे यह निश्चय किया कि आत्माभिमानी यह त्रिपृष्ठ ही हमारे महाराजका शत्रु है। इसीके मिमित्तसे सब उपद्रव हो रहे हैं । इतना पता लेकर वे वापिस आये और उन्होंने राजाको अपने दिलका सब हाल कह सुनाया, जिसे सुन अश्वग्रीव और भी भयभीत हुआ । उसने त्रिपृष्ठके पास चिंतागति और मनोगति नामक दो दूतोंको भेजा। वे दोनों त्रिपृष्ठके पास पहुँचे तथा उन्हें भेंट दे, नमस्कार कर बड़े आदरके साथ बोले कि राजन्! विद्याधरोंके अधिपति अश्वग्रीवने आपके लिए यह आज्ञा की है कि मैं रथावर्त पर्वत पर आता हूँ और आप भी वहाँ आकर मुझसे मिलें । इसी लिए हम लोग आपको लेनेके लिए आये हैं। कृपा कर आप चलिए । इस पर त्रिपृष्ठने क्रोध भरे शब्दोंमें कहा कि मैंने आज तक उष्ट्रग्रीव, खरग्रीव और अश्वग्रीववाले मनुष्य कहीं नहीं देखे; फिर यह घोड़े कैसी गर्दनवाला मनुष्य कहाँसे आया! त्रिपृष्ठकी व्यंग्योक्ति सुन कर दूतोंने कहा कि यह आपका ख्याल गलत है । एक विद्याधरोंके स्वामी और सारे संसार द्वारा पूजे जानेवाले पुरुषोत्तमके लिए ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना आपको शोभा नहीं देता। इस पर त्रिपृष्ठने कहा कि यदि तुम्हारा स्वामी आकाशमें चलनेवाला विद्याधर है तो वह पक्ष-युक्त पक्षी होगा, उसको देखनेके लिए मुझे अवकाश नहीं—मैं नहीं आ सकता। इसके उत्तरमें दूतोंने कहा कि हमारा स्वामी चक्रनायक है। उन्हें देखे विना अभिमानमें भूल कर ऐसी ऊटपटाँग बातें बकना ठीक नहीं है । उनके कोपसे शरीरमें रहना तक कठिन हो जाता है तब पृथ्वी पर तो रह ही कौन सकता है। दूतोंके ऐसे कठोर वचनोंको सुन कर त्रिपृष्ठने कहा कि यदि तुम्हारा स्वामी चक्रनायक है तो वह घड़ा बनानेवाला कारीगरोंका अगुआ कुम्हार है। उसके लिए क्या तो भेजा जाय और क्या उससे मेल-मिलाप किया जाय । यह सुन दूतोंने क्रोधभरे शब्दोंमें कहा कि जिस कन्यारत्नको आपने अपना भोग्य पदार्थ बना लिया है वह क्या आपको पच जायगा? नहीं, कभी नहीं। ज्वलनजटी और प्रजापति कौन खेतका मूली हैं और चक्रवर्तीके क्रोधके आगे वे क्या कर सकते है । इतना कह कर वे दोनों कुबुद्धि दूत वापिस लौट आये और अश्वग्रीवके पास आ, उसे नमस्कार कर उन्होंने

त्रिपृष्ठने जो कुछ कहा था वह सब ज्योंका त्यों कह सुनाया, जिसे सुन कर अश्व-ग्रीवके क्रोधका पारा बहुत ही चढ़ गया और उसने रणभेरी बजवा दी। संसार भरमें फैलनेवाले भेरीके शब्दको सुन कर सभी राजा-गण अश्वग्रीवकी सेनामें आ उपस्थित हुए। क्योंकि चक्रवर्तीके कोपके मारे सभी भयभीत हो डरके भारसे दब जाते हैं। पृथ्वी पर कोई भी सुख-चैनसे नहीं रह सकता।

इसके बाद अश्वग्रीव चतुरंगसेनाके साथ रथावर्त पर्वतकी ओर रवाना हुआ। इस समय दशों दिशायें आग उगलने लगीं। उल्कापात होने लगा और पृथ्वी काँपने लगी। अश्वग्रीवको आया जान प्रजापतिके दोनों पुत्र भी आ पहुँचे। दोनों ओरकी सेनामें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। यह देख त्रिपृष्ठको बहुत क्रोध आया। वह आगबबूला हो गया और अश्वग्रीव पर स्वयं ही जा चढ़ा। उधरसे अश्वग्रीव भी पहिले जन्मके बैरके कारण लड़नेको तैयार ही था। दोनोंने खूब बाणोंकी बरसा की, जिससे सारी सेना बिल्कुल बाणमय देख पड़ने लगी। इस तरह उन दोनोंमें सामान्य शस्त्रों द्वारा बहुत ही युद्ध हुआ, पर जब एक दूसरेको कोई भी न जीत सका तब उन शक्तिशालियोंने विद्यायुद्ध करना आरम्भ किया। विद्यायुद्ध करते हुए भी बहुत देर हो गई और अश्वग्रीवका विद्यावल व्यर्थ जाने लगा। तब क्रोधमें आकर अश्वग्रीवने बैरी पर चक्र चलाया। चक्र तीन प्रदक्षिणा कर दैवयोगसे त्रिपृष्ठके हाथमें आगया। अन्तमें उस बली त्रिपृष्ठने उसी चक्रके द्वारा अश्वग्रीवकी गर्दन काट कर उसे धराशायी बना दिया। इस प्रकार विजय और त्रिपृष्ठ आधे भरतक्षेत्रके अधिपति हुए और विद्यावल, राजा-महाराजा, व्यंतर और मागध सभी उनकी सेवा करने लगे। इसके बाद त्रिपृष्ठने ज्वलनजटीको दोनों श्रेणियोंका स्वामी बना दिया। सच है बड़े पुरुषोंके आश्रयसे सभी प्रभुता प्राप्त हो जाती है; कुछ दुर्लभ नहीं रह जाता।

इसके बाद पूर्व पुण्यके उदयसे त्रिपृष्ठ नारायणको खड्ग, शंख, धनुष, चक्र, दंड, शक्ति, गदा ये सात रत्न और विजय बलभद्रको रत्नमाला, गदा, मुशल और हल ये चार रत्न प्राप्त हुए। इन रत्नोंकी हजारों देवता-गण सेवा करते हैं। त्रिपृष्ठकी सोलह हजार रानियाँ थीं, उनमेंसे पट्टरानीका सौभाग्य स्वयं-प्रभाको ही प्राप्त था। विजयकी आठ हजार रानियाँ थीं। वे सभी शीलवती, रूपवती और गुणोंकी खान थीं। इसके बाद प्रजापति राजाने भी अपनी ज्योतिर्माला नाम पुत्रीका विवाह बड़े भारी ठाट-बाटसे ज्वलन-

जटीके पुत्र अर्ककीर्तिके साथ कर दिया। इससे दोनों राजोंमें परस्पर खूब गाढ़ी प्रीति हो गई। अर्ककीर्ति और ज्योतिर्मालाके अमिततेज नामका पुत्र और सुतारा नामकी पुत्री हुई। इसी भाँति त्रिपृष्ठ और स्वयंप्रभाके भी श्रीविजय और विजय-भद्र नाम दो पुत्र तथा ज्योतिःप्रभा नाम एक कन्या हुई। इसके बाद किसी निमित्तको पाकर प्रजापति संसार-विषयभोगोंसे उदास होगये और पिहिताश्रव मुनिके पास जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर तथा तपके द्वारा कर्मोंका नाश कर मोक्ष-धामको चले गये। यह सुन ज्वलनजटी भी अर्ककीर्ति पर राज-भार डाल कर जगनंदन मुनिके पास दिगम्बरी दीक्षा ले परम ध्यानके प्रभावसे परम पदके स्वामी हो गये।

इसके बाद जब ज्योतिःप्रभाका स्वयंवर रचा गया तब उसने अमिततेजको वरा, उसके गलेमें वरमाला डाली और अर्ककीर्तिकी पुत्री सुताराने अपने स्वयं-वरमें श्रीविजय पर आसक्त हो उसके गलेमें वरमाला डाली। स्वयंवरके बाद दोनोंका परस्परमें खूब धूमधामके साथ विवाह महोत्सव किया गया। इसके बाद बहुत दिन तक राज-सुख भोग आयुका अन्त होने पर नारायण मर कर सातवें नरक गया और विजय बलभद्रने श्रीविजयको राज-पद देकर विजयभद्रको युवराज बनाया। तथा वह स्वयं भाईके शोकसे व्याकुल हो स्वर्णकुंभ मुनिके पास दीक्षित हो गया। उसके साथमें सात हजार राजोंने भी संयमको ग्रहण किया। एवं थोड़े ही समयमें घातिया कर्मोंको नाश कर वह परमोदयका धारक केवली हो गया। यह सुन अर्ककीर्ति भी अमिततेजको राज-भार सौंप कर विपुलमति मुनिराजके चरणोंमें तपस्वी हो गया। इसके बाद अमिततेज और अर्ककीर्तिने बहुत काल तक अविकल राज-सुख भोगा। उन्हें कोई बातकी चिन्ता न हुई।

एक दिन पोदनापुरके नरेशकी सभामें एक नया मनुष्य आया और राजा-को आशीर्वाद देकर बोला कि राजन्! मेरी बात जरा ध्यानसे सुनिए। आजसे सातवें दिन आपके—पोदनापुरके राजाके—मस्तक पर महावज्रकी बरसा होगी, इस लिए उससे बचनेका कुछ उपाय कीजिए। यह सुन क्रोधमें आ विजयभद्र युवराजने कहा कि पंडितजी! यह तो बताओ कि उस समय तुम्हारे मस्तक पर काहेकी बरसा होगी। इस पर उस निमित्तज्ञानीने अहंकार भरे शब्दोंमें कहा कि महाराज! सुनिए—उस समय मेरे मस्तक पर अभिषेक पूर्वक रत्नोंकी बरसा होगी। उसके इन वचनोंको सुन श्रीविजयको बड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने कहा कि भद्र! यहाँ

आओ, बैठो, मेरी बात सुनो। बताओ कि तुम्हारा गुरु कौन हैं और कौन गोत्रमें तुम्हारा जन्म हुआ है? तुमने कौन कौन शास्त्र पढ़े या देखे हैं और किस निमित्तसे तुमने यह बात जानी है? तुम्हारा नाम क्या है? इनके उत्तरमें उस निमित्तज्ञने कहा कि कुंडलपुर नाम नगरमें सिंहरथ नाम राजा है। उसके पुरोहित-का नाम सुरगुरु है। उसका मै शिष्य हूँ। मैने विजय बलभद्रके साथ दीक्षा लेकर अष्टांग निमित्त-शास्त्रोंको पढ़ा है। अन्तरिक्ष, भौम, अंगग, लक्षण, व्यंजन, छिन्न, स्वर और स्वप्न। इनके लक्षण और भेद मुझे सब मालूम हैं। कुछ समय बाद भूखसे व्याकुल हो मैंने दीक्षा छोड़ दी और हमेशा दुखी होकर इधर उधर घूमने-फिरने लगा। कुछ काल बाद मैं पद्मिनी खेट नाम नगरमें आया। वहाँ सोमशर्मा नाम मेरा मामा रहता था। उसकी स्त्रीका नाम हिरण्यलोमा था। उसके चंद्रानना नामकी एक कन्या थी। उस कन्याका मेरे मामाने मेरे साथ विवाह कर दिया और साथमें कुछ धन भी दिया। तब तो मैंने सब चिन्ता छोड़ दी और धन कमाने आदि बातों पर कुछ भी ध्यान न दे निमित्त-शास्त्रके अध्ययनमें अपना मन लगाया। धीरे धीरे मेरे मामाका दिया हुआ जब सब धन खर्च हो चुका तब मेरी स्त्री बहुत खिन्न हुई और एक दिन भोजनके समय उसने क्रोधभरे शब्दोंमे मुझसे कहा कि क्या यह धन तुम्हींने कमाया था! यह कह कर उसने क्रोधके साथ निमित्त ज्ञानकी बातें जाननेके उपयोगमें आनेवाली कोड़ियोंको मेरे सामने फैक दीं, जो वहीं पड़ी हुई थीं। उनसे मैंने यह निश्चय किया कि पोदनापुरके नरेशके मस्तक पर वज्रपात होगा। और जो भोजन कर-नेकी स्फटिककी थालीमें प्रतिविम्बित मेरी मूर्ति पर सूरजकी किरणें पड़ रही थीं तथा उसी समय मेरी मूर्ति पर मेरी स्त्रीने हाथ धोनेके जलकी जो धारा डाल दी थी उससे मैंने यह जाना कि मुझे अभिषेक पूर्वक राज-लाभ होगा। मेरा नाम अमोघ-जिह्व है। मैंने ऊपर कहे हुए निमित्तसे जान कर ही आपको सूचना दी है। दूसरा और कोई कारण नहीं।

यह सुन राजाने उसे तो विदा कर दिया और बाद कुछ सोच-विचार कर मंत्रियोंको बुलाया। उनसे उसने कहा कि एक बड़ा भयंकर समाचार है! और वह यह है कि आजसे सातवें दिन पोदनापुरके राजाके ऊपर वज्रापात होगा! यह सुन सुमति मंत्री बोला कि इसके लिए कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं है। आपको हम एक लोहेके सन्दूकमें बन्द करके समुद्रके भीतर छोड़ देंगे, इससे आपकी रक्षा हो जायगी। इस पर सुबुद्धिने कहा कि समुद्रमें तो मगर मच्छके निगल जानेका

भय है, इस लिए वहाँ न छोड़ कर आपको विजयार्द्धकी गुफामें हम लोग छिपा देंगे। उनकी ये बातें सुन कर बुद्धिसागर मंत्री बोला कि मैं एक प्रसिद्ध कहानी कहता हूँ; उसे सुनिए।

सिंहपुरमें एक दुष्ट तपस्वी रहता था। उसका नाम सोम था। वह वाद-विवादका बहुत प्रेमी था। एक दिन शास्त्रार्थमें उसे जिनदासने जीत लिया, जिससे वह बहुत लज्जित और दुखी हुआ; तथा खोटे परिणामोंसे मर कर भैसा हुआ। उसका स्वामी उस पर बिल्कुल दया नहीं करता था, किन्तु उसे हमेशा ही बोझा ढोनेके काममें लगाये रखता था। बोझा ढोनेके कारण वह धीरे धीरे दुबला हो गया। उस समय उसे अपने पहले भवोंकी याद हो आई और वह वहाँसे भी वैर बाँध कर मरा और मसानभूमिमें दुष्ट राक्षस हुआ। सिंहपुरमें दो राजा थे; एक भीम और दूसरा कुंभ। कुंभका रसोइया बहुत ही चतुर था। लोग उसको रसायनपाक नामसे पुकारते थे। वह हमेशा राजाको मांस पका कर खानेके लिए देता था। एक दिन उसने राजाको मनुष्यका मांस पका कर खिलाया। वह राजाको बहुत स्वादिष्ट मालूम पड़ा। राजा लोलुपताके वश हो रसोइयासे बोला कि तुझे रोज ऐसा ही अच्छा मांस पकाना चाहिए। रसोइया जी हाँ, हुजूर कह कर उस दिनसे मनुष्यका मांस पका-पका कर राजाको खिलाने लगा। जब यह बात शहरके लोगोंको मालूम पड़ी कि यह दुष्ट राजा मनुष्य-भक्षक है तब उन्होंने एकता करके उसे नगरसे बाहिर निकाल दिया। मंत्री वगैरहने भी उस दुष्टका साथ न दिया। केवल उसके साथ एक मात्र रसोइया रह गया। दुष्ट राजाने एक दिन उसे भी मार कर खा डाला। अब वह पहिले कहे हुए राक्षसकी आराधना कर उसकी सहायतासे प्रजाके लोगोंको मार मार कर खाने लगा और नगरके बाहिर घूमने लगा। उस समय लोग बहुत ही भयभीत हुए। उन्होंने सिंहपुरमें रहना ही छोड़ दिया और कुंभकारपुर नामक पुरको बसा कर वे वहाँ रहने लगे। उन्होंने दुखी हो कहा कि हे राक्षस! तू प्रति दिन एक आदमी और एक गाड़ी अन्न ले लिया कर; परन्तु और और मनुष्यों पर तो दयादृष्टि कर।

वहीं पर एक चंडकौशिक नाम ब्राह्मण (जाति) रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। सोमश्रीके भूतोंकी सेवा-उपासनाके प्रभावसे मौण्ड्यकौशिक नाम पुत्र हुआ था। क्रमशः राक्षसके पास जानेकी मौण्ड्यकौशिककी भी बारी आई। प्रतिदिनकी नाँई अन्नकी गाड़ीके साथ वह भेजा गया। वह कुंभके

पास पहुँचा। उसे देख कर कुंभ उसको खानेके लिए झपटा। तब भूतोंसे न रहा गया। वे कुंभपर टूट पड़े और उन्होंने कुंभकी डंडों, लातों और हाथोंसे खूब खबर ली और उसे लेजा कर एक अजगरके विलमें डाल दिया। अजगर उसे एक क्षणमें ही निगल गया। जब कि कर्मके निमित्तसे ही सब कुछ होता है तब बताओ कि राजाको विजयार्द्धकी गुफामें डालनेसे भी क्या लाभ होगा। मेरी सम्मति है कि जैसा कर्मका उदय होगा वैसा तो होकर ही रहेगा फिर उट-पटांग उपायोंको काममें लानेसे फल ही क्या है? यह सुन मतिसागरने हित-कर वचनोंमें कहा कि निमित्तज्ञानीने वज्रपातका होना पोदनापुरके राजाके ऊपर बताया है; किसी खासके ऊपर तो बताया ही नहीं है। तब दुःख और रंजकी कोई बात ही नहीं है। सात दिनके लिए किसी और व्यक्तिको राजा बना कर सिंहासन पर बैठा दिया जाना चाहिए। यह सुन युक्ति-विशारद सभी मंत्रियोंने मतिसागरकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। इसके बाद सबकी सम्मतिसे राज-सिंहासन पर राजाके प्रतिबिंबकी स्थापना कर दी गई। सबने "यही पोदनापुरका स्वामी है" इस बुद्धिसे उसे नमस्कार किया और उसकी आज्ञा शिरोधार्य की।

उधर राजा श्रीविजयने राज-काज छोड़-छाड़ कर प्रभुकी सेवा-भक्तिमें मन लगाया। वे गरीबोंको दान देने लगे और मन्दिरोंमें शान्तिका देनेवाला शान्ति महोत्सव करने लगे। धीरे धीरे सातवाँ दिन आया और निमित्तज्ञानीके कहे अनुसार राजाके प्रतिबिम्ब पर वज्रपात हुआ। जब सब उपद्रव शान्त हो चुका तब शहरके लोगोंने भाँति भाँतिके बाजों और नटी नटोंके नृत्य-गानके द्वारा खूब महोत्सव किया और उस निमित्तज्ञानीको पद्मिनीखेट सहित सौ गाँव भेट देकर वस्त्र-आभूषणोंसे उसका खूब आदर सत्कार किया।

इसके बाद मंत्रियोंने सोनेके कलशोंसे अभिषेक कर श्रीविजयको धूमधामके साथ फिर राज-सिंहासन पर विराजमान कर दिया—उन्हें फिर अपना राजा बना लिया। एक दिन अपनी माता स्वयंप्रभासे आकाशगामिनी विद्या लेकर वह सुतारा सहित ज्योतिर्वनमें क्रीड़ा करनेको गये। वहाँ उन्होंने सुताराके साथ खूब मनचाही क्रीड़ा की।

चमरचंच पुरीका राजा इन्द्राशनि था। उसका अशनिघोष नामक एक पुत्र था। वह सूरज पर्यन्तका स्वामी था और बड़ा मीठा बोलनेवाला था। वह भ्रामरीविद्याको साध कर वनसे अपने शहरको वापिस लौटा जा रहा था। इतने-

में उसकी दृष्टि नाना लक्षणोंसे युक्त सुतारा रानी पर जा पड़ी। उसे देख कर उसका मन ललचा गया और वह उसे ले जानेके लिए उद्यत हो गया। उसने छलसे राजाके सन्मुख एक माया-मय मृग छोड़ा। वह नृत्य करता हुआ बहुत ही मनोहर जान पड़ता था। उसे देख कर मनोरमा सुताराने पतिदेवसे कहा कि हे प्रिय! आप इस सुन्दर हिरणको दिल बहलानेके लिए पकड़ लाइए। सुताराके कहने पर राजा तो मृगको पकड़ लानेके लिए चला गया और इधर अशनिघोषने राजाका रूप धर कर सुताराके पास आकर कहा कि प्रिये! आओ कुछ जल्दी है, अतएव सूर्यास्तके पहिले पहिले हम नगरको पहुच जायँ। इतना कह कर वह सुताराको विमानमें बैठा कर आकाश मार्गसे ले चला। कुछ दूर पहुँच कर उस कामीने अपना वास्तव रूप प्रगट किया, जिसको देख कर सुतारा बड़ी चिन्तित हुई। वह सोचने लगी कि यह कौन है? उधर जब वह माया-मय मृग राजाके हाथ न आया और बहुत दूर निकल गया तब श्रीविजय वापिस लौट कर उसी स्थान पर आये, जहाँ वे सुताराको छोड़ गये थे। वहाँ उन्होंने वैताली विद्याको सुताराके रूपमें बैठी हुई देखा, जो अशनिघोषकी आज्ञासे वहाँ सुताराका रूप धर कर बैठी थी और यह कह रही थी कि मुझे कुक्कर नाम सर्पने काट खाया है। उसे देख कर मालूम पड़ता था मानो वह मर रही है। उसे इस दशामें देख कर श्रीविजय बड़े व्याकुल हुए। उन्होंने मणि, मंत्र, औषध आदिके बहुतसे उपचार किये पर जब कुछ भी फल न हुआ तब समझा कि यह विष बड़ा विषम और प्राणोंको हरनेवाला है। इसका उतरना बहुत ही कठिन है। अन्तमें वह भी उसके साथ मरनेको तैयार हो गये। उन्होंने चिता बना कर उस पर सुताराको रख दिया और सूर्यकान्त मणिसे आग जला कर चिताको सुलगा दिया। इसके बाद वह स्वयं आकुल हो चितामें कूदनेके लिए पैर रखनेको ही थे कि इतनेमें आकाशसे उनके पास दो विद्याधर आ पहुँचे; और उन्होंने विच्छेदिनी विद्याके द्वारा उस वैताली विद्याको नष्ट कर अपने बायें पैरसे उसके एक जोरकी ठोकर लगाई, जिसे न सह कर वह अपना वास्तविक रूप प्रगट कर उसी समय अदृश्य हो गई।

यह देख श्रीविजयको बहुत ही अचंभा हुआ। उन्होंने विद्याधरोंसे पूछा कि यह बात क्या है? उन्होंने उसकी कथा इस भाँति कहना प्रारंभ की—

भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक ज्योतिःप्रभपुर नाम नगर है। वहाँका मैं राजा हूँ। मेरा नाम संभिन्न है। मेरी प्यारी स्त्रीका नाम सर्वकल्याणी है। और यह द्वीपशिख नाम मेरा सुखी और सुकुमार पुत्र है। रथनू-

पुरके राजा अमिततेज हमारे स्वामी हैं। मै उनके साथ-साथ शिखरतल उद्यानमें क्रीड़ा करनेके लिए गया था। वहाँसे लौट कर आकाश-मार्गसे जाते हुए मैंने एक बड़ा भारी विमान जाते देखा; और यह आर्तवाणी सुनी कि मेरा स्वामी जयी श्रीविजय नरेश कहाँ है! हे रथनूपुरके स्वामी अमिततेज! तुम मेरी रक्षा करो। यहाँ आकर अपना प्रभाव दिखाओ। यह सुन मैं उस विमानके पास गया और उसमें बैठे हुए व्यक्तिको नमस्कार कर मैंने पूछा कि तुम कौन हो और यह कौन है जिसे तुम बलात् लिये जाते हो। यह सुन अशनिघोष क्रुद्ध हो बोला कि मेरा नाम अशनिघोष है, मैं विद्याधर हूँ और चमरचंच पुरका राजा हूँ। यह सुतारा है और इसे मैं जबरदस्ती हरे लिये जाता हूँ। यदि तुममें शक्ति हो तो तुम दोनों इसे छुड़ानेका प्रयत्न करो। सुन कर मैंने सोचा कि यह मेरे स्वामीकी बहिन है और इसे यह हरे लिये जाता है। ऐसे समय मेरा चुप रहना ठीक नहीं है। इसे मार कर मै इसकी रक्षा अवश्य करूँगा। इतना सोच कर मैं युद्धको तैयार हो गया। मुझे युद्धके लिए उद्यत देख सुतारा बोली कि तुम युद्ध मत छेड़ो; किन्तु ज्योतिर्वनमें पोदनापुर-नायक मेरे पति श्रीविजय हैं, उनके पास जाकर उनसे मेरा सब हाल कह दो। अतः मै सुताराका भेजा हुआ यहाँ आपके पास आया हूँ। और जो यहाँ सुतारा बैठी थी वह सुतारा न थी; किन्तु अशनिघोषकी सिखाई हुई वैताली विद्या उसके रूपमें थी। इसी लिए वह मेरी ताड़नासे भाग गई है। यह सुन राजाने उस विद्याधरसे कहा कि, कृपा कर तुम पोदनापुर जाकर वहाँ मेरी माता, छोटे भाई और बन्धुओंसे यह सब समाचार कह दो। राजाके कहनेसे विद्याधरने उसी समय अपने पुत्र द्वीपशिखको जो उसीके साथ था, शीघ्र ही पोदनापुर भेज दिया। उधर पोदनापुरमें भी इस समय बड़े उपद्रव हो रहे थे। उनको देख कर वहाँ अमोघजिह्व और जयगुप्त नामक निमित्तज्ञानियोंसे पूछा गया कि इन उपद्रवोंका क्या फल है? उन्होंने कहा कि श्रीविजय नरेश पर कोई आपत्ति आई थी; परंतु वह अब कुछ दूर हो गई है तथा अभी थोड़ी देरमें ही कोई उनकी कुशल-वार्ता लेकर यहाँ आयेगा। तुम स्वस्थ हो, भय मत करो। निमित्तज्ञानीके इन वचनोंको सुन कर स्वयंप्रभा आदि सब सन्तुष्ट होकर पहिलेकी भाँति ही अपने काम-काज करने लगे। इतनेमें ही आकाशसे द्वीपशिख पृथ्वीतल पर आया और उसने स्वयंप्रभाको प्रणाम कर उससे विजयनरेशकी सब कथा कह कर कहा कि श्रीविजय नरेश कुशल हैं; आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इसके बाद द्वीपशिखने सुताराके हरे जाने आदिका सब हाल

कहा, जिसको सुन कर स्वयंप्रभा दावानलसे जली हुई वेलके समान मुरझा गई अथवा बुझते हुए दीयेकी प्रभा रहित शिखाके समान तेजहीन हो गई; या यों कहिए कि जिस तरह मेघकी ध्वनिको सुन कर हंसिनी शोकमें डूब जाती है उसी तरह वह भी पूत्रवधूके हरे जानेको सुन कर वहुत शोकाकुल हुई । इसके वाद ही वह विद्याधरों तथा पुत्रोंको साथ लेकर चतुरंग सेना—सहित उसी वनमें पहुँची जहाँ श्रीविजय थे । अपनी माता स्वयंप्रभाको आती हुई देख कर उसके पास आ श्रीविजयने उसे छोटे भाइयों-सहित नमस्कार किया । दुःखिनी माताने पुत्रको देख कर कहा कि उठो, वत्स उठो, घरको चलो और शोक छोड़ो । माताकी आज्ञासे श्रीविजय आदि सव नगरको लौट आये । वहाँ आकर जब पुत्र शान्तचित्त हुआ तव स्वयंप्रभाने उससे सुताराके हरे जानेका सारा हाल पूछा । श्रीविजयने मातासे सवका सव हाल जैसाका तैसा कह कर कहा कि माता ! यह संभिन्न विद्याधर हम लोगोंका वड़ा उपकारी है । यह बुद्धिमान् अमिततेजका सेवक है । इसने हमारे साथ जो कुछ उपकार किया है वह वचनातीत है ।

इसके वाद श्रीविजय, माता और अपने छोटे भाई विजयभद्रसे सलाह कर तथा विजयभद्रको पोदनापुरकी रक्षाके लिए छोड़ कर माताके साथ विमानमें वैठ रथनूपुर पहुँचे । पुत्र—सहित अपनी भुआको आया जान कर अमिततेज अगवानीके लिए नगरके वाहिर आया और उन्हें लेजा कर उसने एक उत्तम स्थानमें ठहराया । इसके वाद स्वयंप्रभाने अमिततेजके पास आकर उससे अशनिघोषका सारा हाल कहा । उसे सुन कर अमिततेजने अशनिघोषके पास अपना दूत भेजा । दूतका नाम मरीचि था । वह अशनिघोषके पास पहुँचा । अशनिघोषने उसे निष्ठुर और कर्कश वचन कह कर फटकारा । दूतने वापिस आकर अशनिघोषके जैसेके तैसे वचन अमिततेजसे कहे । इसके वाद अमिततेजने मंत्रियोंसे सलाह कर अशनिघोषका नाश करनेका संकल्प किया और श्रीविजयको युद्धवीर्य, अस्त्रवारण और वंधमोचन ये तीन विद्यायें जो उसकी परम्परासे चली आ रही थीं, देकर तथा रश्मिवेग सुवेग आदि पुत्रोंको साथ भेज कर उसे शत्रुके साथ युद्ध करनेको भेजा । और स्वयं सहस्र नाम अपने बड़े पुत्रको साथ ले ह्रीमंत पर्वत पर गया और वहाँ संजयंत मुनिके चरणोंमें बैठ कर अन्य विद्याओंको नष्ट करनेवाली महाज्वाला नामकी विद्या सिद्ध करने लगा । इधर दुष्ट अशनिघोषने श्रीविजयको आया सुन कर रश्मिवेग आदिके साथ युद्ध करनेको सुघोष, शतघोष और सहस्रघोष आदि अपने पुत्रोंको भेजा । वे सव श्रीविजयके विद्या-

धरोंके साथ लड़ाईमें मारे गये। यह सुन अशनिघोषको बहुत क्रोध आया। तब वह स्वयं युद्धके लिए आ चढ़ा। दोनोंमें घमासान युद्ध होने लगा। युद्धभूमि कोलाहलसे पूर्ण हो गई। वैरीके शरीरको खंड खंड करनेके लिए श्रीविजय जो बाण छोड़ता था, उन्हें अशनिघोष भ्रामरीविद्याके बलसे नष्ट कर अपने दूने रूप बनाता जाता था। इसी तरह ज्यों ज्यों श्रीविजय बाणोंके द्वारा उसके शरीरको खंड खंड करता जाता था त्यो त्यों वह अपने रूपोंको अनेक बनाता जाता था। थोड़ी ही देरमें सारा युद्धस्थल अशनिघोष-मय देख पड़ने लगा। उधरसे सब विद्याओंका स्वामी रथनूपुरका अधिपति अमिततेज भी महाज्वाला विद्याको सिद्ध कर युद्धस्थलमें आ पहुँचा और पंद्रह दिन बराबर युद्ध कर उसने महाज्वालाके प्रभावसे अशनिघोषकी सारी विद्याएँ नष्ट कर दीं। तब अशनिघोष बहुत ही लज्जित हुआ और वहाँसे भाग कर वह भयकेमारे कैलाश पर्वत पर विजय भगवानकी सभामें जा छिपा। उसके पीछे पीछे और और राजगण भी उसके पकड़नेको वहाँ जा पहुँचे। पर वे सब मानस्तंभोंको देखते ही मान-रहित हो शान्तचित्त हो गये; उनका जो कुछ वैर-विरोध था वह सब मिट गया। उन्होंने भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया और सबके सब एक साथ बैठ गये। इसी समय वहाँ अशनिघोषकी माता आसुरी भी साथमें सुताराको लेकर आ गई। वह उनसे बोली कि मेरे पुत्रका जो अपराध हुआ है उसे आप दोनो ही क्षमा करो। इतना कह कर उसने श्रीविजय और अमिततेजको सुतारा सौंप दी। इसके बाद अमिततेजके पूछने पर विजय भगवान धर्मका उपदेश करने लगे। उन्होंने सम्यग्दर्शन व्रत और तत्त्वोंका व्याख्यान किया। उसे सुन कर अमिततेजने पूछा कि भगवन्! यह बताइए कि अशनिघोषने मेरी बहिन सुताराको क्यों हरा? इसके उत्तरमें भगवान् बोले कि मैं इसका कारण बताता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो।

भरतक्षेत्रके मगधदेशमें अचलग्राम नामक एक गाँव है। वहाँ एक धरणीधर नाम ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम अग्निला था। उसके इन्द्रभूति और अग्निभूति नाम दो पुत्र हुए। वे बहुत सुन्दर थे। इनके सिवा धरणीधरके एक दासी पुत्र भी था। उसका नाम था कपिल। वह हमेशा वेदके पढ़नेमें लगा रहता था। थोड़े ही समयमें वह वेदका अच्छा जानकार पण्डित हो गया। उसे ऐसा देख कर ईर्षासे धरणीधरने घरसे निकाल दिया। पिताके इस बर्तावसे वह बहुत खेदखिन्न हुआ। घरसे निकल कर थोड़े ही दिनोंमें रह रत्नपुर पहुँचा।

वहाँ एक सत्यकि नाम ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम जाम्बू था। उसके एक सत्यभामा नाम पुत्री थी। एक दिन कपिलको देख कर सत्यकिने सोचा कि यह लड़का वेदका पाठी अच्छा विद्वान् है। इसके साथ कन्या ब्याह देना योग्य और शास्त्रके अनुकूल है। इसके बाद उसने कपिलके साथ विधि-पूर्वक सत्यभामाका विवाह कर दिया। कपिल वहाँ रह कर थोड़े ही दिनोंमें खूब धनी हो गया। राजाकी ओरसे भी उसकी पूछताछ होने लगी। जब धरणीधरने सुना कि कपिल खूब धनाढ्य और राज्यमान हो गया है तब वह दरिद्री दरिद्रता नष्ट करनेके लिए उसके पास रत्नपुर आया। कपिलने उसे दूरसे आता देख उठ कर नमस्कार किया और लोगोंमें ऐसी प्रसिद्धि कर दी कि यह मेरा पिता है। धरणीधरने भी लोगोंसे यही कहा कि यह मेरा प्रिय पुत्र है। कपिलने धरणीधरको धन, वस्त्र, आभूषण आदि खूब सम्पत्ति दी जिससे उसकी दारिद्रता दूर हो गई और वह एक भला मानस बन गया। एक दिन सत्यभामाने धन, वस्त्र आदिसे धरणीधरका खूब आदर सत्कार कर भक्तिभाव दिखाते हुए एकान्तमें पूछा कि कपिलजी क्या सचमुच ही ये आपके पुत्र हैं? धरणीधर लोभके वश कपिलकी सारी कथा सत्यभामाको सुना कर उसी समय दूसरे देशको रवाना हो गया। सच है धन मनुष्यसे क्या क्या काम नहीं करा लेता।

रथनूपुरका राजा श्रीषेण था। उसकी दो रानियाँ थीं। एक सिंहनंदिता और दूसरी आनंदिता। उसके इन्द्र और उपेंद्र नाम दो पुत्र थे। पतिके ऐसे चरितको सुन कर सत्यभामा श्रीषेणकी शरणमें आई और उसने महाराजसे अपने पतिका सारा हाल जैसा सुना था कह दिया, जिसको सुन कर राजाने कपिलको शहर बाहिर निकाल देनेकी आज्ञा देदी। एक दिन श्रीषेणके यहाँ दो चारणमुनि आये। उनके नाम अमितगति और अरिंजय थे। उनको राजाने पड़गाहा और नमस्कार आदि कर विधि-पूर्वक आहार दिया, जिससे राजाको अतिशय पुण्य-लाभ हुआ। श्रीषेणकी दोनों रानियों और सत्यभामाने मुनिदानकी अनुमोदना की, जिसके प्रभावसे उन्होंने राजाके साथ साथ उत्तम भोगभूमिकी तीन पल्यकी आयुका बंध किया। कौशाम्बीका राजा महाबल था। उसकी रानीका नाम श्रीमती था। उसके एक श्रीकान्ता नामकी पुत्री थी। महाबलने श्रीकान्ताका विवाह इन्द्रसेनके साथ कर दिया था और श्रीकान्ताके साथ इन्द्रको एक दासी प्रदान की थी। दैवयोगसे वह दासी उपेन्द्रसेन पर आसक्त हो गई। यह बात जब इन्द्रसेनके कानों पहुँची तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह उपेन्द्रके

साथ युद्ध करनेको तैयार हो गया । दोनों भाई भाईमें युद्धकी तैयारी सुन कर श्रीषेण उनकी लड़ाई निवटानेके लिए उनके पास गया । उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर वह सफल न हुआ। तव उसे वहुत ग्लानि हुई; और अपना कहना न माननेके कारण दुःखमें उसने स्वयं विषका फूल सूँघ कर आत्महत्या करली। श्रीषेणकी यह दशा देख दोनों रानियों और सत्यभामाने भी विषफूल सूँघ कर आत्मघात कर लिया। श्रीषेण और रानी सिंहनंदिताका जीव मर कर धातकीखंड दीपकी उत्तरकुरु नाम उत्तम भोगभूमिमें युगल उत्पन्न हुए । एवं अनिंदिता और सत्यभामाके जीव भी युगल उत्पन्न हुए। इनमें अनिंदिताका जीव तो स्त्रीलिंग छेद कर पुरुष हुआ था और सत्यभामा उसकी स्त्री हुई थी। उनकी आयु तीन पल्यकी थी । वे सबके सब वहाँ कल्पवृक्षोंके सुख भोगते थे और सुखचैनसे अपना समय विताते थे । आयु पूरी होने पर मर कर शेष पुण्यके प्रभावसे वे देव गतिमें गये। श्रीषेणका जीव सौधर्म स्वर्गमें श्रीप्रभ नाम देव हुआ और सिंहनंदिताका जीव उसकी विद्युत्प्रभा नाम देवी हुई । एवं अनिंदिताका जीव विमलप्रभ विमानमें भवदेव नाम देव और सत्यभामाका जीव उसी विमानमें शुक्रप्रभा नाम उसकी देवी हुई। उनकी आयु पाँच पल्यकी थी । आयु-पर्यन्त स्वर्गके सुखोंको भोग कर वे वहाँसे चय कर श्रीषेणका जीव तो तुम अमिततेज हुए हो और सिंहनंदिताका जीव ज्योतिःप्रभा नाम तुम्हारी कान्ता हुई है। एवं अनिंदिताका जीव श्रीविजय और सत्यभामाका जीव सुतारा हुई है । उधर उस दुष्ट कपिलके जीवने वहुत काल तक संसार परिभ्रमण कर अनन्त दुःख उठाये। सच है पापसे जीवोंको घोरातिघोर दुःख उठाने पड़ते हैं । भूतरमण वनमें ऐरावती नदीके किनारे तापसियोंका एक आश्रम था । उसमें एक कौशिक नाम तापस रहता था । उसकी स्त्रीका नाम चपलवेगा था । कपिलका जीव उसके वहाँ मृगशृंग नाम पुत्र हुआ । वह भी तापस हो गया। एक दिन मृगशृंगने चपलवेग नाम विद्याधरोंके राजाकी विभूतिको देख कर यह निदान किया कि अगले भवमें मैं इसके यहाँ पुत्र-जन्म धारण करूँ । राजन्! निदानके प्रभावसे वह मृगशृंग ही चपलवेगके यहाँ यह अशनिघोष नाम पुत्र हुआ है । इसको हित-अहितका कुछ भी विचार नहीं है। उसी स्नेहके वशीभूत हो इसने सुन्दरी सुताराको हरा था। अमिततेज! तुम इस भवसे पाँचवें भवमें चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव इन तीन पदोंके धारी महात्मा होओगे । यह कथा सुन कर अशनिघोष, स्वयंप्रभा और सुतारा आदि तथा और बहुतसे सत्पुरुष उस समय

संयम धारण कर साधु हो गये । इसके बाद भगवानको नमस्कार कर श्रीविजय आदि सब अमिततेजके साथ धुजा, तोरणोंसे सुसज्जित अपने अपने नगरोंको चले आये । नगरमें आकर अमिततेजने धर्म-साधनमें अधिक मन लगाया । वे पर्वदिनोंमें उपवास करते अपने किये हुए अपराधोंका प्रायश्चित लेते, भगवानकी पूजा और स्तुतिमें दत्तचित्त रहते, पात्रोंको दान देते तथा हमेशा धर्मकथामें लीन रहते । ऐसा करते करते उन्हें निर्मल और निर्दोष सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो गई थी । वे बड़े मंदकषायी और प्रेमसे पिताकी नांई प्रजाका पालन करते थे; मुनियोंकी भाँति शान्तचित्त और धर्म-कर्ममें लीन तथा उभय लोकसम्बन्धि हितके इच्छुक थे । वे बहुतसी विद्याओंके भंडार थे, जो कुल और जातिके निमित्तसे उन्हें प्राप्त हुई थीं । उनके नाम सुनिए । प्रज्ञप्ति, आग और जलको थांभनेवाली स्तंभिनी, कामरूपिणी, विश्वप्रकाशिका, अप्रतिघात-कामिनी, आकाशगामिनी, उत्पत्तिनी, वशंकरी, आवेशिनी, शत्रुदमा, प्रस्थापनी, आवर्तनी, प्रहरणी, प्रमोहनी, विपाटिनी, संक्रामणी, संग्रणी, भंजनी, प्रवर्तिनी, प्रतापनी, प्रभावती, पलायिनी, निक्षेपिणी, चांडाली, शबरी, गौरी, खट्वांगिका, श्रीमृदुगुणी, शतसंकुला, मातंगी, रोहिणी, कुष्मांडी, वरवेगिका, महावेगा, मनोवेगा, चंडवेगा, लघुकरी, पर्णलघ्वी, चपलवेगा, वेगावती, महाज्वाला, शीतवैतालिका, उष्णतालिका, सर्वविद्या-समुच्छेदा, बंधप्रमोचिनी, प्रहारावरणी, युद्धवीर्या, चामरी और योगिनी इत्यादि । वे इन विद्याओं और दोनों श्रेणियोंके स्वामी थे; एवं संसार-प्रसिद्ध थे । पुण्यके उदयसे उन्हें भोग-विलासकी सब सामग्री यथेष्ट प्राप्त थी । एक दिन पुण्य-योगसे उनके यहाँ दमवर नाम चारण मुनि आहारको आये । अमिततेजने उन्हें विधि-पूर्वक आहार-दान दिया, जिसके प्रभावसे उनके यहाँ पंचाश्चर्यकी वर्षा हुई ।

एक समय अमिततेज और श्रीविजय दोनों वनमें विहारके लिए गये हुए थे । वहाँ उन्होंने सुरगुरु और देवगुरु नाम दो महर्षियोंको देखा । दोनोंने मुनियोंको भक्तिभावसे नमस्कार कर उनसे धर्मका उपदेश सुना । इसके बाद श्रीविजयने उनसे नम्रता भरे शब्दोंमें पूछा कि प्रभो! मेरी और मेरे पिताकी पूर्वभवकी कथा कहिए । मुनिराजने श्रीविजयके पूर्वभवोंका और त्रिपृष्ट नारायणके विश्वनन्दिके भवसे लेकर कई एक भवोंका वर्णन किया । श्रीविजयने पिताके माहात्म्यको सुन कर उनके पदकी प्राप्तिका निदान बाँधा । बाद खेचरों और भूचरों

द्वारा सेवित वे दोनों अपने अपने नगरको चले आये और वहाँ सुखामृतका पान करते हुए सुखसे काल विताने लगे। एक वार इन दोनोंने विपुलमति और विमलमति नाम मुनीश्वरोंके मुख-कमलसे यह सुना कि उनकी आयु अव केवल एक ही महीनेकी शेष रह गई है। यह सुन वे और भी श्रद्धाभक्तिके साथ तन-मनसे धर्मपालन करने लगे। इसके बाद अमिततेजने अर्कतेजको और श्रीविजयने श्रीदत्तको राज-पाट सौंप कर भक्तिसे अष्टाह्निक पूजा की और दोनों नंदनवनके पासके चंदनवनमें गये। वहाँ उन्होंने मुनियोंके समागममें प्रायोपगमन नाम संन्यास धारण किया और शान्त परिणामोंसे प्राणोंका त्याग कर वे स्वर्गमें देव हुए। अमिततेजका जीव तेरहवें स्वर्गके नंद्यावर्त विमानमें रविचूलक और श्रीविजयका जीव उसी स्वर्गके स्वस्तिक विमानमें मणिचूलक नाम देव हुआ। वहाँ उनकी बीस सागरकी आयु हुई। आयुपर्यन्त सुख भोग कर वे वहाँसे चय इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीमें स्तिमितसागर राजाके यहाँ पुत्र हुए।

स्तिमितसागरकी दो रानियाँ थीं; एक वसुंधरा और दूसरी अनुमति। इनमेंसे वसुंधराके गर्भसे रविचूलकका जीव अपराजित और अनुमतिके गर्भसे मणिचूलकका जीव अनंतवीर्य पुत्र हुआ। वे दोनों जगतके नेत्र-कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले और सदाकाल ही उदित रहनेवाले सूरज थे; लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले और धीरवीर थे। जव वे दोनों युवा हुए तव स्तिमितसागर किसी कारण-वश संसार-भोगोंसे विरक्त हो, पुत्रों पर राज-भार डाल, वनमें जा स्वयंप्रभ गुरुके पास दीक्षित हो गया। दैवयोगसे एक दिन स्तिमितसागरने धरणेन्द्रकी विभूति देखी और उसके पानेका निदान किया। निदानके प्रभावसे वह मर कर धरणेन्द्र ही हुआ। ग्रन्थकार कहते हैं कि आत्मिक सुखको नष्ट करनेवाले निदान बंधको धिक्कार है। इधर अपराजित और अनंतवीर्य पृथ्वीका भरण-पोषण करते हुए इन्द्र और प्रतीन्द्रके जैसे सुशोभित होते थे। एक दिन उनकी सेवामें किसी राजाने वर्वरी और चिलातिका नामकी दो नर्तकी भेजीं। वे बहुत ही मनोहारी सुखदाई नृत्य करती थीं। उनका नृत्य देखनेको और और बहुतसे राजोंके साथ वे दोनों भाई भी नाट्यशालामें बैठे हुए थे। उस समय उनकी अपूर्व ही शोभा थी। दैवयोगसे उसी समय उन्हें देखनेको वहाँ नारद आये; परन्तु अपराजित और अनन्तवीर्यका उपयोग नृत्यकी ओर लग रहा था, इस लिए उन्होंने नारदको न देख पाया।

इससे अपना अपमान समझ नारद जल-भुन कर आग-बबूला हो गये; और उसी समय कुँवार मासके सूरजकी नाईं तपते हुए जीवोंका अनिष्ट करनेवाले नारद दमतारि प्रतिनारायणके नगरमें पहुँचे । दमतारि सिंहासन पर विराजमान था। बहुतसे सभ्यगण उसकी सेवामें उपस्थित थे। यह महापुरुष बहुत गौरव-युक्त था। मनोरथकी सिद्धिकी लालसासे सभी जन आ-आ कर उसकी उपासना-सेवा करते थे। उसको देख कर नारदजी आकाशसे पृथ्वीतल पर उतरे और दमतारिको शुभ आशीर्वाद देकर सभामण्डपमें आ खड़े हुए। उन्हें देखते ही राजा सिंहासन छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और उसने नमस्कार कर उन्हें बड़े आव-आदरके साथ मनोहर सिंहासन पर बैठाया । इसके बाद दमतारि बोला, महाराज ! आप भक्तों पर प्रेमकी दृष्टिसे देखनेवाले भव्योत्तम हैं, संसार-परिभ्रमणको मिटानेवाले और जीवोंको विभूति देकर सुखी करनेवाले हैं; एवं आप सब तरह सुशोभित हैं। कहिए कि आज आपका यहाँ पधारना कैसे हुआ । यह सुन नारदजी बोले, राजन्! सुनिए । मैं हमेशा आपके योग्य सारभूत और उत्तम पदार्थोंकी खोजमें इधर उधर घूमा करता हूँ । मैंने कल रंभा और उर्वशीके समान दो नर्तकियोंको प्रभाकरीपुरीके राजा अपराजित और अनंतवीर्यकी सभामें नृत्य करते हुए देखा और इसी समाचारको लेकर मैं आपके पास आया हूँ । कारण वे दोनों आपके ही योग्य हैं। अतः मुझसे यह अनिष्ट सहन नहीं हुआ और मैं शीघ्र ही यहाँ चला आया हूँ। सभी मानते हैं कि शिरोधार्य चूड़ामणि रत्न यदि पैरमें पहिन लिया जाय तो किसीको भी सहन न होगा । राजन्! जिस तरह अमूल्य मणि रंक-दरिद्री पुरुषके यहाँ शोभा नहीं पाता; वह राजों, रईसों, साहूकारोंके यहाँ ही शोभित होता है उसी तरह वे नर्तकी भी अपराजित और अनंतवीर्यके यहाँ शोभा नहीं पातीं; वे आप जैसे महापुरुषके यहाँ ही शोभा पावेंगी । यह सुन दमतारिने उसी समय कुछ भेंट देकर दूतको अपराजित और अनंतवीर्यके पास भेजा, जो बहुत ही चतुर और समयोचित कार्योंमें कुशल था। प्रभाकरीपुरीमें पहुँच कर उसने उन पुरुषोत्तमोंको सभामंडपमें बैठे हुए देखा और उनके आगे भेंट रख कर उन्हें नमस्कार किया; तथा कहा कि राजन्! आप महानुभावोंके लिए दमतारि प्रतिनारायणने कुशलका संदेशा भेजा है तथा मुझे आपके पास भेज कर आपसे उन दो नर्तकियोंकी याचना की है जो कि आपके पास हैं। कृपा कर आप उन दोनों—बर्बरी और चिलातिका—नर्तकियोंको उन्हें दे दीजिए । इससे परस्परमें बहुत ही गाढ़ी प्रीति हो जायगी । यह सुन उन

दोनोंने दूतको तो वाहिर भेज दिया और मंत्रियोंको भीतर बुला कर उनसे पूछा कि इस समय क्या कर्तव्य है? इतनेमें पुण्ययोगसे अमिततेजके भवमें जो जो विद्यायें प्राप्त थीं वे सब आकर अपराजितसे कहने लगीं कि हम शत्रुको तहस-नहस करनेके लिए समर्थ हैं। आप किसी भी तरहकी चिन्ता न करें। इतना कह-कर वे विद्यायें अपराजितका काम करनेको उद्यत हो गईं। तब वे दोनों भाई प्रभाकरी राजधानीकी रक्षाके लिए मंत्रीको नियत कर तथा स्वयं नर्तकियोंका रूप बना कर दूतके साथ-साथ वहाँसे शिवमन्दिरपुरको चल पड़े और थोड़ी ही देरमें वहाँ जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने दमतारिके सामने बहुत ही उत्तम नृत्य किया, जिसको देख कर उसे बहुत अचम्भा हुआ। खुश होकर उसने नृत्य-कला सीखनेके लिए अपनी कनकश्री पुत्रीको उनके साथ कर दिया—उन्हें सौंप दिया। वे नर्तकी-रूपधारी कनकश्रीको ले गये और उन्होंने उसे यथा-योग्य नृत्य गीत आदि बहुतसी कलायें सिखा दीं। दैवयोगसे वह कन्या अनंतवीर्य पर आसक्त हो गई। तब वे दोनों उसे लेकर आकाशमें चले गये। यह सब समाचार सुन कर दमतारिने बहुतसे योधाओंको भेजा; परन्तु अपराजितने उन्हें एक मिनटमें ही मार भगाया। तब क्रुद्ध होकर दमतारिने और और सुभटोंको भेजनेकी योजना की, पर वे भी अपराजितके सामने न ठहर सके। आखिर वह स्वयं ही युद्ध करनेको तैयार हुआ और सोचने लगा कि यह नर्तकियोंका प्रभाव नहीं है; किन्तु कुछ छल है। इसके बाद पूर्वभवकी प्राप्त हुई विद्याओंके द्वारा अपराजितने दमतारिके साथ खूब ही घमासान युद्ध किया। तथा दमतारिके साथ अनंतवीर्यका भी बहुत देर तक युद्ध हुआ। आखिरमें क्रुद्ध हो दमतारिने चक्रियोंको भी डरा देनेवाला चक्र लिया और उसे अनंतवीर्य पर चलाया। पुण्ययोगसे वह अनंतवीर्यकी प्रदक्षिणा देकर उसके हाथमें आ पहुँचा और उसीके द्वारा अनंतवीर्यने दमतारिका काम तमाम कर दिया; उसे मार डाला। उस समय सभी विद्याधर आये और उन तीन खंडके स्वामियोंको प्रणाम करने लगे।

इसके बाद विद्याधरों और अतुल सम्पत्ति सहित वे प्रभाकरी पुरीको वापिस लौटे। मार्गमें आते हुए उन्होंने कीर्तिधर नाम जिन भगवानको देखा और उन्हें नमस्कार कर उनसे धर्मका उपदेश सुना तथा कनकश्रीके भवोंको भी पूछा।

अपने पूर्वभवोंको सुन कनकश्री विरक्त हो गई और उसने अर्जिकाके व्रत ग्रहण कर लिये । इसके बाद वे दोनों कनकश्रीकी प्रशंसा और भगवानकी वन्दना कर समवसरणसे बाहिर आये और प्रभाकरी पुरीको रवाना हुए । अपराजित और अनंतवीर्यकी देवता-गण आ-आ कर सेवा करते थे । उनके चरणोंमें नमते थे । वे हमेशा आमोद-प्रमोदसे रहते थे; कभी खेदखिन्न नहीं होते थे । उनका कोई भी वैरी नहीं रहा था । वे सर्वथा निंदा आदि अपवादोंसे रहित थे; उनका कोई निंदक न था । एवं वे विषाद-रहित और धर्मके फलको प्राप्त कर चुके थे तथा पुण्यका पटह पीटते थे कि देखो पुण्यका ऐसा फल मिलता है ।

जिसने बड़े बलवान सेनावाले अजय्य शत्रुओं पर भी क्षणभरमें विजय-लाभ कर अपना अपराजित नाम सार्थक कर दिखाया वह अपराजित बलदेव जयवन्त हो । और जिसने अपने वीर्यसे दमतारि प्रतिनारायणके वीर्यको नष्ट कर दिया और जो शूरवीरोंमें श्रेष्ठ है, सभी शक्तिओंको दिखानेवाले और धर्म-मय वह अनंवीर्य प्रतिनारायण सर्वज्ञके प्रभावसे सुशोभित हो ।

पाँचवाँ अध्याय।

उन अजितनाथ प्रभुकी मैं विधिपूर्वक वन्दना-स्तुति करता हूँ जो कामदेवको जीतनेवाले और अपराजित—किसीसे नहीं जीते जानेवाले—हैं; तथा जीतने योग्य सभी शत्रुओं पर जो विजय-लाभ कर चुके हैं; और महान पुरुष जिनकी पूजा-स्तुति करते हैं।

इसके बाद तीन खंडके राज-पाटको पाकर अनंतवीर्यने सब प्रकारके सुखोंको अमन-चैनसे भोगा और आयुका अन्त होने पर वह पापके फलसे रत्नप्रभा नाम नरककी पहली पृथ्वीमें नारकी हुआ। तथा अपराजित अजितसेनको राज-काज सँभला कर यशोधर मुनिके पास दिगम्बर हो गया और अवधिज्ञान-रूपी निधिको प्राप्त कर उसने एक महीनेके लिए संन्यास धारण कर लिया, जिसके प्रभावसे वह अच्युत स्वर्गका स्वामी इन्द्र हुआ। और वह अनंतवीर्यका जीव जो कि पहले नरकमें नारकी हुआ था, पूर्वभवके पिता धरणेन्द्रके सम्बोधनेसे सम्यग्दृष्टि हो गया। उसने मनकी चपलताको छोड़ कर धर्म पर अटल विश्वास जमाया और संख्यात वर्षकी आयुको पूरी कर वहाँसे निकला और फिर इसी मध्यलोकमें आ गया।

इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें एक व्योमवल्लभ नाम नगर है। वहाँका राजा मेघवाहन था। उसकी रानीका मेघमालिनी नाम था। वह अनंतवीर्यका जीव नरकसे आकर उनके यहाँ मेघनाद नाम दोनों श्रेणियोंका स्वामी पुत्ररत्न पैदा हुआ। एक समय वह सुमेरुके नंदनवनमें गया और वहाँ प्रज्ञप्ति विद्याको साधने लगा। इतनेमें उसके ऊपर उसके पूर्वभवके बड़े भाई अच्युत इन्द्रकी दृष्टि पड़ी। तब प्रेमके वश हो वह आया और उसने मेघनादको खूब समझाया। पुण्ययोगसे उसके समझानेसे वह समझ गया और दीक्षित हो नंदन नाम पर्वत पर प्रतिमायोग लगा कर ध्यानस्थ हो गया। पाठकोंको अभी अश्वग्रीवकी कथा भूली न होगी। उसका छोटा भाई सुकंठ संसार-समुद्रमें चक्कर लगा कर असुर जातिका देव हुआ था। दैवयोगसे वह वहाँसे निकला और मेघनाद मुनिको ध्यानस्थ देख उसे बड़ा क्रोध आया। उसने मुनिको घोरातिघोर उपसर्ग किये। पर वह रंचमात्र भी उन्हें न डिगा सका। इस समय मुनिने उपसर्गोंको समताभावसे सहा जिससे वह अच्युत स्वर्गमें जा

प्रतींद्र हो गया और वहाँ पूर्व भवके बड़े भाई इन्द्रके साथ सोलहवें स्वर्गके अपूर्व सुख भोगने लगा। वहाँकी आयुको पूरी कर पहले वहाँसे इन्द्र चया और जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहके मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुरके राजा क्षेमंकरकी रानी कनकमालाके गर्भसे वज्रायुध नाम उत्तम लक्षणोंवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति और मोद इत्यादि क्रियाओंसे युक्त था। उसका मुख-चन्द्र अपनी प्रभाके द्वारा अंधेरेको दूर करता था। नवीन अवस्थामें ही उसका व्याह राजलक्ष्मी नाम राजपुत्रीके साथ हो गया। तथा अनंतवीर्यका जीव जो प्रतीन्द्र था, वहाँसे चया और वज्रायुध तथा राजलक्ष्मीके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रक्खा गया सहस्रायुध। सहस्रायुधकी भामिनीका नाम श्रीषेणा था। वह साक्षात् लक्ष्मी ही थी; सुन्दर-रूप लावण्यवाली थी। सहस्रायुध और श्रीषेणाके कनकशान्ति नाम पुत्र हुआ। वह ताये हुए सोनेकी कान्तिके समान कान्तिवाला था। इस प्रकार पुत्र-पौत्र आदिके साथ क्षेमंकर राजा सुखचैनसे राज सुख भोगता था। एक दिन दूसरे स्वर्गके इन्द्रने अपनी सभामें वज्रायुधके दृढ़ सम्यक्त्वकी खूब ही प्रशंसा की और कहा कि वज्रायुध गुणोंका आधार है। सम्यक्त्वके निमित्तसे उसके सभी गुणोंका विकाश हो गया है। पर यह प्रशंसा विचित्रचूलक नाम एक देवसे न सही गई और वह पंडितका भेष बना कर वज्रायुधके पास पहुँचा; और वादकी इच्छासे वह उससे कहने लगा कि राजन्! सुना है कि आप जीवादि तत्वोंके विचारमें बड़े पण्डित हैं। कहिए कि जीव आदिसे पर्याय भिन्न होती है या अभिन्न? यदि भिन्न होती है तब तो पर्याय निराधार और पर्यायी कूटस्थ ठहरता है, सो ये दोनों ही बातें नहीं बन सकतीं; और शून्यवाद आकर उपस्थित होता है। और यदि कहो कि जीव आदिसे पर्याय अभिन्न होती है तो यह पर्याय है और यह पर्यायी (जीवादि) है, यह भेद व्यवहार ही सर्वथा मिट जाता है। इस लिए जब कि एकका दूसरेमें समावेश नहीं होता, तब जीव आदि अथवा पर्याय दोमेंसे एकको ही मानना योग्य है। यदि इस पर यह कहो कि द्रव्य तो एक ही है; केवल उसकी पर्यायें अनेक देख पड़ती है तो आपके कहनेसे सारा संसार एक रूप ही हो जायगा और जो यह नाना रूप देख पड़ता है वह कुछ भी नहीं बनेगा। एवं लोगोंको पुण्य-पापका फल भी नहीं मिलेगा और बन्ध भी न होगा; तथा बन्धके अभावमें मोक्ष भी नहीं बन सकेगा। एवं यह प्रश्न उठता है कि वह द्रव्य

नित्य है या क्षणिक? इन दोनों पक्षोंमें ही वस्तुमें अर्थक्रिया नहीं बनेगी। और अर्थ-क्रियाके अभावमें वस्तुकी सत्ताके अभावसे वस्तु कुछ भी नहीं ठहरेगी। इस लिए जीव आदि पदार्थोंकी केवलमात्र कल्पना है। राजन्! ऐसी झूठी कपोलकल्पित वातोंमें आप मत फँसो। इनमें कुछ भी तत्त्व नहीं है। उसके इन वचनोंको सुन कर वज्रायुधने कहा कि विद्वन्! सुनिए, जरा मेरे वचनों पर ध्यान दीजिए। क्षणिक एकान्त और नित्य एकान्त पक्षमें ये दोष आते हैं। इसी तरह सर्वथा भेदवाद और सर्वथा अभेदवादमें दोष देख पडते हैं। पर स्याद्वाद-मतको माननेवालोंके यहाँ ये दोष नहीं आते। उनके यहाँ पुण्य-पापका आस्रव होकर बंध होता है और फिर बंधके अभावसे मोक्ष अवस्था प्राप्त होती है। यदि इस पर यह पूछा जाय कि स्याद्वादकी सिद्धि कैसे होती है तो यह उत्तर दिया जायगा कि स्याद्वादके सम्बन्धमें निर्णय करके देखा जा चुका है, कोई भी बाधक उसके विषयमें उपस्थित नहीं होता; क्योंकि यह स्याद्वाद हमेशा ही सब पदार्थोंमें मौजूद रहता है। राजाके इस प्रकारके उत्तरको सुन कर वह देव हार मान गया और अपनी वहाँ आनेकी कहानीको सुना कर तथा दिव्य वस्त्र-आभूषणों द्वारा वज्रायुधकी पूजा कर स्वर्गको चला गया। इसके बाद पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला क्षेमंकर राजा प्रतिबोधको प्राप्त हुआ और बारह भाव-नाओं पर विचार करने लगा। इतनेमें पाँचवें ब्रह्म स्वर्गसे लौकान्तिक देव आये और उन्होंने क्षेमंकर राजाके वैराग्यकी खूब तारीफ की तथा भक्ति-स्तुति की। इसके बाद क्षेमंकरने वज्रायुधको बुलाया और उस पर राज-भार डाल कर आप वनमें जाकर दिगम्बर हो गया। थोड़े ही समयमें उसे केवलज्ञान लाभ हो गया। उस समय वह विभु तीर्थंकर भगवान खूब ही सुशोभित होते थे। इसके बाद वसन्तका समय आया और कामदेवका प्रभाव बढ़ने लगा। तब बुद्धिमान वज्रायुध राजा वन-क्रीड़ाको गया। वहाँ वह अपनी रानियोंके साथ सुदर्शन नामके सरोवरमें जल-क्रीडा कर रहा था। इसी समय किसी दुष्ट विद्याधरने उसके ऊपर एक पत्थरकी शिला डाल दी और आकर उसे नागपाश द्वारा बाँध लिया। परन्तु उस बलीने हाथसे ही उस शिलाके उसी समय खंड खंड कर दिये और नागपाशको भी नष्ट कर दिया। तब पूर्व-भवका वैरी वह विद्युद्दंष्ट्र चुपकेसे भाग गया। और राजा अपनी देवियोंके साथ साथ नगरको चला आया तथा वहाँ सुखसे रहने लगा। कुछ कालमें धर्मके प्रभावसे उसके यहाँ निधियों सहित चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई; और वह

चक्रवर्तीकी लक्ष्मीको सुख-चैनसे भोगने लगा । उसका मन हमेशा भोगोंसे भरपूर रहता था । जिस समय वज्रायुध छहों खंडका निर्विघ्न राज्य करता था उस समय विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें शिवमन्दिर नाम नगरका विमलवाहन नाम राजा था । उसकी प्रियाका नाम विमला था । वह शुभ लक्षणोंवाली थी । उसके कनकमाला नाम एक पुत्री हुई । वह कनकशान्तिके साथमें व्याह दी गई । स्तोकसारपुरके राजा समुद्रसेन और उसकी रानी जयसेनाके एक वसन्तसेना नाम कन्या थी । वह भी कनकशान्तिके साथ व्याही गई । इन दोनों भार्याओंको पाकर कनकशान्ति अमनचैनसे सांसारिक सुख भोगने लगा । एक दिन कनकशान्ति कुमार अपनी दोनों भार्याओंको साथ लेकर क्रीड़ाके लिए वनमें गया था । वहाँ उसने विमलप्रभ नाम मुनीश्वरको देखा और उन्हें नमस्कार कर उनसे धर्मका उपदेश सुना । एवं धर्मको सुन कर उसका मन वैराग्यसे लिप्त हो गया और उसी समय उसने जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर ली । अपने पतिको दीक्षित हुआ देख कर कनकमाला और वसन्तसेना भी विमला नाम आर्जिकासे जिनदीक्षा लेकर तप करने लगीं । ग्रन्थकार कहते हैं कि कुलवती स्त्रियोंको ऐसा ही करना चाहिए ।

एक दिन कनकशान्ति योगी सिद्धाचल पर ध्यान लगाये हुए था । वहाँ उसे विद्याधरोंने बड़े उपसर्ग किये । पर वह उन उपसर्गोंसे रंचमात्र भी न टला, जिससे उसे केवलज्ञान हो गया—वह केवली हो गया अपने पोतेको केवलज्ञान हुआ देख कर वज्रायुध चक्रवर्ती भी संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो गया । और सहस्रायुधको राज-पाट सौंप कर, घरसे निकल, क्षेमंकर भगवानके पास जा दीक्षित हो गया—उसने दीक्षा लेली और सिद्धाचल पर एक वर्षके लिए प्रतिमायोग धारण कर वह ध्यानस्थ हो गया । इस समय वज्रायुधके पैरों तक साँपोंने वामी वना ली थी और कंठ तक उसे वेलोंने वेढ़ लिया था । उधर अश्वग्रीवके रत्नकंठ और रत्नायुध दो पुत्र संसारमें परिभ्रमण कर अतिबल और महाबल नाम दो असुर हुए थे । वे वज्रायुधके पास आये और उसे बड़ा कष्ट देने लगे । एवं रंभा और तिलोत्तमाका रूप वना वना कर उसका ध्यानसे मन चलानेको उद्यत हुए; परन्तु वह ध्यानसे विल्कुल ही नहीं चला । यह देख वे चुप-चाप भाग गये । इसके वाद वे प्रगट होकर वज्रायुधके पास आये और उसकी पूजा-भक्ति एवं उसे नमस्कार कर स्वर्गको चले गये ।

इधर कोई वैराग्यका निमित्त पा सहस्रायुध भी विरक्त हो गया और शान्तवलीको राज-पाट सँभला कर उसने पिहितास्रव मुनिसे जिनदीक्षा लेली—वह भी दिगम्बर बन गया। इसके बाद ध्यान समाप्त होने पर वज्रायुध और सहस्रायुध दोनों साथ साथ विपुलाचल पर्वत पर आये और शान्त परिणामोंसे उन्होंने प्राणोंका त्याग किया; जिससे वे निष्पाप ऊर्ध्व ग्रैवेयकके सौमनस नाम अधो विमानमें उनतीस सागरकी आयुवाले हँसमुख उत्तम देव हुए। एवं आयु-पर्यन्त वहाँके सुखोंको भोग कर वज्रायुधका जीव चया और जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिनी नगरीमें घनरथ नाम राजाकी मनोहरा नाम रानीके गर्भसे मेघरथ नाम पुत्र हुआ। मेघरथके जन्म-समय घनरथने बड़ा भारी महोत्सव किया। एवं घनरथ राजाकी मनोरमा रानीके गर्भसे सहस्रायुधका जीव जो अहमिन्द्र था, वह दृढ़रथ नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। दोनों क्रम क्रमसे बढ़ने लगे। जब वे युवा हुए तब घनरथने उनका विवाह महोत्सव किया। मेघरथका ब्याह प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ हुआ और दृढ़रथका मन-मोहिनी सुमतिके साथ। कुछ कालमें मेघरथकी प्रियमित्रा नाम भार्याने नन्दि-वर्द्धन नाम पुत्रको जन्म दिया; और दृढ़रथकी सुमति नाम भार्याने वरसेन नाम पुत्रको। इस प्रकार पुत्र, पौत्र आदि सम्पत्तिसे घनरथ ऐसा जान पड़ता था मानों तारा-गण, चाँद और सूरजसे युक्त सुमेरु पर्वत ही है। एक समय घनरथने किसी कारणसे उदास हो मेघरथको राज-पाट सौंप कर जैनेन्द्री दीक्षा धारण करली। उसके दीक्षा समय लौकान्तिक देव आये तथा और और देवता-गणने आकर उसका दीक्षा-कल्याणक किया। वह अपना आप ही गुरु था—तीर्थंकर था। उसने थोड़ी ही देरमें घाति कर्मोंको घात कर केवलज्ञान-निधि प्राप्त कर ली—वह केवली हो गया।

इसके बाद एक समय मेघरथ राजा देवरमण नाम उद्यानमें अपनी रानि-योंको साथ लेकर क्रीड़ा करनेको गया था। वहाँ जाकर वह एक चंद्रकान्त शिला पर बैठ गया। इतनेमें आकाशमार्गसे जाता हुआ एक विद्याधर वहाँसे आ निकला। वहाँ उसका विमान रुक गया। उस वक्त उसने शिला पर बैठे हुए मेघरथको देखा; और देखते ही वह क्रोधसे लाल पीला हो गया। तथा शिला-सहित राजाको उठानेके लिये विद्याबलसे वह उस शिलाके नीचे घुस गया। यह बात राजाको भी मालूम पड़ गई और उसने उस शिलाको अपने पाँवके अँगूठेके अग्रभागसे कुछ दबा दिया। तब वह विद्याधर उस शिलाके भारको

सहनेके लिए असमर्थ हो चिल्लाने लगा । उस वक्त उसकी रोनेको आवाजको उसकी स्त्रीने सुना और वह उसी समय मेघरथके शरणमें आई तथा पतिके जीवनकी भिक्षा माँगने लगी । मेघरथने तब शिलापरसे अपने बलको बिल्कुल हटा लिया। यह देख कर प्रियमित्राने मेघरथको पूछा कि प्रिय! यह क्या बात है। उत्तरमें मेघरथने कहा कि विजयार्द्ध पर्वत पर एक अलकपुर है। उसका राजा है विद्युद्दंष्ट्र; और रानी है अनिलवेगा । उन दोनोंका पुत्र यह सिंहरथ है। यह विमलवाहन मुनिकी वन्दनाको गया था । अब वहाँसे वापिस घरको जा रहा है.। अभी थोड़ी देर पहले इसका विमान आपसे आप ही यहाँ रुक गया था। तब इसने इधर उधर देख भाल की और मुझे देख कर गर्वसे क्रोध किया तथा आग बबूला हो मुझ-सहित शिला उठानेके लिए यह इस शिलाके नीचे घुस गया। मुझे मालूम होते ही मैने उसी वक्त इस शिलाको अपने पैरके अँगूठेसे दबा दिया। तब भारको न सह सकनेके कारण यह चिल्लाया। जिसको सुन इसके जीवनकी भिक्षाके लिए यह इसकी मनोरमा नाम स्त्री आई है। इस प्रकार सब हाल कह कर तथा उस विद्याधरको संतोष दिला कर उन्होंने उसे वहाँसे रवाना किया।

एक समय मेघरथ राजाने दमवर नाम चारणमुनिको आहार दिया, जिसके प्रभावसे उसके यहाँ देवतोंने पाँच अचम्भेकी बातें कीं । यह राजा हमेशा शक्ति-अनुसार तप करता था । अष्टाह्निक पर्व आया । राजाने विधिपूर्वक भगवानकी पूजा वगैरहसे खूब ही उत्सव किया और प्रोपधोपवास व्रत लिया; तथा रातके वक्त प्रतिमायोग धर कर वह मेरुकी नाँई अचल हो ध्यानस्थ हो गया।

इसी समय ईशान इन्द्र अपनी सभामें बैठा था । उसने वहाँसे मेघरथको ध्यानस्थ देखा और उसकी स्तुति करना आरम्भ की कि आज आपका परम धैर्य है । इस लिए, सारे संसारकी असाताको मिटानेवाले आत्मध्यानमें लीन और चिदात्मा—आपको मेरा प्रणाम है । यह सुन देवतोंने इन्द्रको कहा कि हे देव! आप किसकी स्तुति कर रहे हैं । यह सुन इन्द्रने उत्तरमें कहा कि शुद्ध सम्यग्दृष्टि मेघरथ राजा प्रतिमायोगमें लीन हो रहा है। वह ज्ञानी उत्तम गुणोंका भंडार होनेसे पूज्य है। इस लिए मैंने उसे नमस्कार किया है। इन्द्रकी यह बात अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियोंसे न सही गई; और वे उसी वक्त मेघरथके पास पहुँचीं । वहाँ उन्होंने विभ्रम, हाव,

भाव, विलास, गीत, नृत्य आदि भाँति भाँतिकी चेष्टाएँ कीं, पर वे उसे चला न सकीं; जिस तरह अचल और उत्तम मेरु बिजलीके द्वारा रंचमात्र भी नहीं चलता। तब उन्हें इन्द्रकी बातों पर पक्का विश्वास हो गया और वे मेघरथको नमस्कार कर अपने स्थानको चली आईं। इसी तरह एक दिन सभामें ईशान इन्द्रने प्रियमित्राके रूपकी प्रशंसा की। जिसको सुन कर रतिषेण और रति नामकी दो देवियाँ साक्षात् उसके रूपको देखनेके लिए आईं; और स्नानके समयमें सुगन्धित तैल आदिसे मले गये भूषण-वस्त्र रहित उसके सुन्दर शरीरको देख कर वे कहने लगीं कि जब इस समय इसका रूप ऐसा सुन्दर है तब शृंगार आदि करने पर कैसा सुन्दर होगा! इसके बाद उन्होंने कन्याका रूप बनाया और वे चतुराईसे कहने लगीं कि देवी! हम तुम्हारा रूप देखनेको आई हैं। इसके बाद रानीने अपने वस्त्र-आभूषण वगैरह पहिने और सुगन्धित पुष्प वगैरह गूँथे। उस समय उसका रूप देख कर वे देवियाँ अपना माथा पीटने लगीं। यह देख उनसे रानीने पूछा कि यह बात क्या है? वे कहने लगीं कि चतुरे! सुनो, ईशान इन्द्रने तुम्हारे रूपकी जैसी प्रशंसा की थी वह वैसा ही है; परन्तु स्नानके वक्त जो शोभा थी वह इस वक्त नहीं है। इतना कह कर वे देवियाँ तो अपने स्थानको चली आईं; और इधर रानीको अपने रूपको क्षणक्षयी जान कर वैराग्य हो आया। तब उसे राजाने आश्वासन दिया और कहा कि हम तुम दोनों साथ—साथ ही दीक्षा लेंगे; क्योंकि मेरा दिल भी उदास हो रहा है। एक दिन राजा मनोहर नाम उद्यानको गया। वहाँ उसने अपने पिता घनरथ नाम प्रभुके दर्शन किये और उन्हें नमस्कार किया। वे एक मनोहर सिंहासन पर विराजे हुए बहुत ही सुशोभित होते थे। राजा बैठ गया और उस कृतीने कल्याणकी वांछासे पूछा कि भगवन्! क्रिया-संस्कारसे क्या लाभ है? इस पर प्रभुने उत्तर दिया कि राजन्! सुनिए। श्रावकाध्ययनमें जो १०८ क्रियायें बताई हैं उनमेंसे ५३ क्रियायें तो गर्भान्वय नामसे पुकारी जाती हैं; और वे गर्भसे लेकर मरण तककी विधिको बताती हैं। ४८ क्रियायें दीक्षान्वय नामसे पुकारी जाती है; और वे दीक्षासे लेकर निर्वाण तककी: साधनेवाली हैं। और सात कर्त्रन्वय क्रियायें हैं। वे सिद्धान्तको बताती हैं। इन क्रियाओंसे आत्माका बल बढ़ता है; उसमें नये नये संस्कार पैदा होते हैं; जिनसे अच्छी अच्छी भावनायें पैदा होती हैं। इस तरह घनरथ प्रभुके कहे हुए क्रियाओंके विधान-स्वरूप और फलको तथा श्रावकधर्मको सुन कर वह आत्म-दृष्टि विरक्त हो गया; और

अपने छोटे भाई दृढ़रथसे उसने कहा कि तुम राज-पाटको संभालो; मैं अब तपोंको तपूँगा। इस पर शीघ्र ही परिग्रहको छोड़नेकी चाह रखनेवाला दृढ़रथ कहने लगा कि भाई! राज-काजमें आपको जो जो दोष देख पड़ते हैं; उनको मैं भी तो देख रहा हूँ। इससे मैं यह सोचता हूँ कि पहले ग्रहण कर पीछे छोड़नेकी अपेक्षा पहलेसे ग्रहण ही न करूँ, यही अच्छा है। कारण कि कीचड़ लगा कर धोनेकी अपेक्षा उसको पहिलेसे नहीं लगाना ही बुद्धिमान् लोग अच्छा मानते हैं। इस तरहकी बातचीतसे अपने हँसमुख छोटे भाईको राजसे विरक्त जान कर मेघरथने मेघसेन नाम अपने पुत्रको बुलाया और उसे राज-पाट सँभला दिया। इसके बाद वह सात हजार राजों और अपने छोटे भाई सहित दिगम्बर हो गया; उसने संयमको ग्रहण कर लिया; और थोड़े ही समयमें वह द्वादशांगका परिगामी श्रुतकेवली हो गया। उसने सोलह कारण भावनाओंको भाकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया। एवं वह दृढ़, दृढ़रथके साथ-साथ नमस्तिलक पर्वत पर गया और वहाँ दोनोंने शरीर-आहार आदिसे ममता भावको त्याग कर एक महीनेके लिए संन्यास धारण किया तथा अन्त समयमें प्राणोंको त्याग कर वे सर्वार्थसिद्धि नाम विमानमें अहमिंद्र हुए। वहाँ उनका शरीर स्फटिकके समान स्वच्छ और स्फुरायमान प्रभावाला हुआ। तेतीस सागरकी उनकी आयु हुई। साढ़े सोलह महीनेमें वे श्वासोच्छ्वास लेते थे और मनचाहा अमृतका आहार करते थे; सो भी तेतीस हजार वर्ष बीत चुकने पर एक बार। उनके मैथुन-क्रिया स्त्री-संभोग रहित उत्तम सुख था और लोकनाड़ीके भीतर सब जगह अपने योग्य द्रव्यको विषय करनेवाला उनके अवधिज्ञान था, जिसके द्वारा वे लोकभरकी बातोंको जानते थे। तथा उनके विहार करनेको विक्रिया-शक्ति भी उतनी ही थी। एक हाथका ऊँचा उनका शरीर था। और इस भवके बाद मनुष्यका भव पाकर उसीसे वे मोक्ष जानेवाले थे।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कुरुजांगल नाम देश है। उसमें हस्तनापुर नाम नगर है। वहाँका राजा विश्वसेन था। वह बड़ा चतुर था, नीतिका ज्ञाता था। उसकी रानीका नाम था ऐरादेवी। वह बहुत सुन्दरी और सुन्दर नेत्रोंवाली थी। तथा श्री, ह्री, धृति आदि देवियोंसे भी उसका पहला नम्बर था। वह रूप-लावण्यकी एक सीमा ही थी। रातका वक्त था और वह शय्या पर सुखकी नींदमें सोई हुई थी। उस वक्त उसने सोलह स्वप्नों और मुँहमें प्रवेश करते हुए एक उन्नत हाथीको देखा। इस समय मेघरथका जीव जो अहमिंद्र

था वह सर्वार्थसिद्धिसे चय कर उसके गर्भमें आया। उस दिन भादों वदी सातें थी। इसके बाद वह जगी और शय्यासे उठी तथा प्रभातकी क्रियाओंसे निवट कर और वस्त्र-आभूषण वगैरह पहिन कर हर्षित होती हुई पतिदेवके पास गई। उस समय उसने बहुत दान किया, जिससे कि उसके हाथोंकी अपूर्व ही शोभा थी। वह उस वक्त चलती हुई कल्पवेलसी जान पड़ती थी। स्वामीने उसे आदरके साथ आधे सिंहासन पर बैठाया और उसका बहुत आदर किया। इसके बाद उस मानिनी रानीने स्वामीसे अपने रातवाले स्वप्नोंका फल पूछा। उत्तरमें स्वामीने कहा कि इन स्वप्नोंसे जान पड़ता है कि तुम्हारे गर्भसे संसारका उद्धारक कोई महात्मा जन्म लेगा। यह सुन कर वह बहुत ही हर्षित हुई। इसके बाद अवधिज्ञान द्वारा भगवानको गर्भमें आया जान चतुरंग सेना सहित इन्द्रगण आये और प्रभुका स्वर्गावतरण-कल्याण बड़ी भारी धूमधामके साथ कर अपने अपने स्थानको चले गये। इसके बाद रानीका ज्यों ज्यों गर्भ वृद्धिगत होता जाता था त्यों त्यों उसका प्रभाव बढ़ता जाता था, शरीर दीप्त होता जाता था और वह दयावाली दया और दानमें रक्त होती जाती थी। उसकी देवता-गण पन्द्रह महीनेसे रत्नोंकी वरसा द्वारा सेवा उपासना कर रहे थे। उस देवीने जेठ वदी चौदसके दिन उत्तम सुत रत्नको जन्म दिया। प्रभुका जन्म होते ही देवोंके यहाँ आपसे आप विना बजाये महाशंख, भेरी सिंहनाद, घंटा आदि बाजोंके शब्द हुए; जिनसे उन्हें भगवानके जन्मकी सूचना मिल गई। खबर पाते ही हर्षसे भरे हुए देवता-गण सहित इन्द्र-गण आये; और विश्वसेन महाराजके महलसे सुन्दर रूपवाले प्रभुको लेकर सुमेरु पर्वत पर गये। वहाँ धर्मके प्रेमी इन्द्रने प्रभुको सिंहासन पर विराजमान कर सुवर्णके कलशोंसे उनका अभिषेक किया; एवं बड़ी भक्तिसे उनकी प्रशंसा-स्तुति की। वहाँसे वापिस आकर इन्द्रने प्रभुको उनकी माताकी गोदमें दिया। प्रभुकी आयु एक लाख वर्षकी थी। उनका नाम शान्तिनाथ था। उनका शरीर चालीस धनुष ऊँचा था, अचल था, उत्तम लक्षणोंवाला था, तथा यौवनसे उन्नत था। इसके बाद दृढ़रथ सर्वार्थसिद्धिसे चय कर उसी विश्वसेन राजाकी यशस्वती रानीके गर्भसे चक्रायुध नाम पुत्र हुआ। चक्रायुधकी बहुतसे पुरुष सेवा करते थे। उसकी स्तुति करते थे। इसके बाद विश्वसेन राजाने कुल, शील, कला रूप और अवस्था सौभाग्य आदिसे विभूषित बहुतसी कन्याओंके साथ शान्तिनाथ प्रभुका ब्याह किया और उन्हें

राज-पद दे दिया । इस समय प्रभु सूरजकी प्रभाको भी जीतते थे । इसके कुछ काल बाद उनकी आयुधशालामें चक्ररत्न पैदा हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने छहों खंडोंको विजय किया; सभी राजोंको जीत लिया । एवं उनके शस्त्रगृहमें चक्र, छत्र, दंड, असि और लक्ष्मीगृहमें चर्म, चूड़ामणि कॉकिणी तथा हस्तिनागपुरमें पुरोहित, गृहपति, सेनापति, स्थपति तथा विजयार्द्धमें कन्या, हाथी और घोड़ा ये १४ रत्न पैदा हुए । इस प्रकारकी अतुल विभूतिको पाकर शान्तिनाथ प्रभुने बहुत काल तक सुख-चैनसे राज किया । एक दिन प्रभु खूब ही अभिमानसे भरे हुए, दर्पणमें अपना मुँह देख रहे थे । उस वक्त उन्होंने अपनी मूर्तिको पहिले किसी और रूपमें और फिर बादमें किसी और ही रूपमें देखा । तब इसी निमित्तसे वे संसारसे उदास हो गये और उनका जो विषयोंमें राग था वह उनसे कोसों दूर भाग गया । इतनेमें स्वर्गसे लौकान्तिक देव आये और उन्होंने प्रभुका स्तोत्र करके अपना नियोग पूरा किया । इसके बाद देवता-गणके साथ-साथ इन्द्र वगैरह आये और प्रभुका अभिषेक कर उन्होंने उन्हें भाँति भाँतिके वस्त्र-आभूषण पहिनाये; तथा पालकीमें बैठा कर वे उन्हें सहस्राम्रवनमें ले गये और वहाँ एक शिला पर विराजमान किया । इस समय प्रभुने पंचमुष्टि केशलोंच किया तथा वस्त्र आभूषण वगैरह सब उतार कर, उनसे ममत्व छोड़ वे दिगम्बर हो गये । इस दिन जेठ वदी चौथ थी और दो पहरका समय था । इसी दिन प्रभुके साथ साथ चक्रायुध आदि हजारों और और राजोंने भी संयमको धारण किया । इस समय प्रभुने छह दिनोंके उपवासके बाद हमेशा आहार लेनेकी प्रतिज्ञा की । दीक्षा लेते ही प्रभुको मनःपर्ययज्ञान हो गया और वे चार ज्ञानके धारी हो गये । इसके बाद पारणाके लिए वे शिवमन्दिरपुर गये और वहाँ उन्हें सुमित्र राजाने शुद्ध आहार दिया । एक दिन सहस्राम्रवनमें भाइयों सहित छह उपवासोंको एक साथ करनेवाले वे प्रभु पूर्व दिशाको मुँह कर ध्यानस्थ हो गये । प्रभु सोलह वर्ष तक छद्मस्थ अर्थात् अल्पज्ञानी रहे । बाद उन्हें पौष सुदी दसमीके दिन सामके समय केवलज्ञान हो गया । भगवान्के चक्रायुध आदि छत्तीस गणधर हुए । उनके समवसरणमें बारह सभायें थीं; और वे सब सभ्योंसे भरपूर थीं । इसके बाद सुर-असुरों द्वारा सेवित उन प्रभुने पृथ्वीतल पर विहार किया । जब उनकी एक महीनेकी आयु शेष रह गई तब वे सम्मेदशिखर पर पहुँचे; और जेठ वदी चौदसके दिन सिद्ध-स्थानमें जा विराजे । तथा चक्रायुध आदि धीरवीर नौ हजार मुनिगण, कर्मसमूहको नाश कर निर्वाणको प्राप्त हुए । इस वक्त सुर-असुरोंने

आकर सबका निर्वाण महोत्सव किया; तथा प्रभुके गुणोंका स्मरण कर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये । एवं वहाँ और और महापुरुष जो महोत्सवमें शामिल हुए थे, वे भी प्रभुके गुणोंका स्मरण करते हुए अपने अपने नगरोंको गये । इस तरह आदि जिन करके द्वारा स्थापित कौरव-वंशमें इन्द्रों द्वारा पूज्य श्री शान्तिनाथ प्रभुका जन्म हुआ । शान्तिनाथ प्रभुके चरण-कमलोंमें चक्रवर्ती भी आकर नमते हैं । वे गुणोंके भंडार और गुणवालोंके द्वारा पूजे जानेवाले हैं; काम आदि शत्रु-ओंके नाशक और विजय लक्ष्मीके पति हैं; चक्ररत्नके स्वामी हैं; धर्मतीर्थके प्रवर्तक तीर्थंकर हैं। उनके सुन्दर रूपको देख कर जगत्पति भी मोहित हो जाते है । वे कीर्ति, स्फूर्ति, सुमूर्तिके सदन हैं; एवं नीतिविद्याके आलय हैं, चक्रवर्ती हैं, कामदेव हैं; और उत्तम, एवं सार्थ तीर्थके चलानेके कारण तीर्थंकर हैं । तात्पर्य यह कि वे दक्ष तीन पदवीके धारक हैं तथा जिनका पक्ष सच्चा और हितैषी है । वे शान्तिके स्वामी शान्तिनाथ प्रभु मेरी रक्षा करें ।

शान्तिनाथ प्रभु शान्तिके कर्ता और शान्तिके स्थान हैं । उनके निमित्तसे सत्पुरुष शान्तिको पाते हैं । वे मोक्षके दाता और स्वयं मोक्ष मार्ग पर चलनेवाले हैं । उनके निमित्तसे जीवोंको सैकड़ों सुख मिलते हैं; उनके मोहका नाश होता है और उन्हें उत्तम उत्तम गुण प्राप्त होते हैं। उन शान्तिनाथ प्रभुके लिए मेरा नमस्कार है । मैं उन शान्तिनाथ स्वामीको अपने मनोमन्दिरमें विराजमान करता हूँ । वे मुझे सुख दें ।

छठा अध्याय ।

उन कुंथुनाथ भगवानको प्रणाम है, जो कुंथु आदि जीवोंकी रक्षा करनेवाले और भव्य-जीवोंको उत्तम मार्गमें लगानेवाले हैं; उनके हितैषी हैं ।

शान्तिनाथ प्रभुके बाद कुरुवंशमें उनका पुत्र श्रीमान नारायण नाम राजा हुआ । इसके बाद शान्तिवर्द्धन और उसका पुत्र शान्तिचन्द्र नाम राजा हुआ । इनके बाद चन्द्रचिन्ह और कुरु राजाने इस वंशको आभारी किया । एवं इन राजोंके बाद इस वंशमें और और बहुतसे राजा हुए । इसके बाद सूरसेन नाम एक प्रतापी राजाने इसकी शोभा बढ़ाई । उसके समय सब जगह नीतिसे काम लिया जाता था । कहीं भी किसीको ईति भीत नहीं सताती थी । तात्पर्य यह कि वहाँ ईति भीति नहीं थी, जैसे दिनमें तारा-गणका नहीं होते । वह शूर था, शूरवीरोंका स्वामी था । उसकी हजारों शूरवीर सेवा करते थे । उसके शरीरकी आभा सूरजकी प्रभासे कम न थी । उसका इतना बढ़ा चढ़ा पराक्रम था कि बड़े बड़े शूरवीर भी आकर उसका आश्रय लेते थे । उसके प्रतापसे शत्रुराजा अपने अपने नगरोंको छोड़ कर वनमें जा छिपते थे और वहाँ वे शय्याके विना ही गुफाओंके अँधेरेमें सोते थे । उसकी भार्याका नाम था श्रीकान्ता । उसका शरीर लक्ष्मीके शरीर जैसा था । वह लक्ष्मीके साथ तुलना करती थी । लक्ष्मी समुद्रसे पैदा हुई है । वह गुणोंके समुद्रसे पैदा हुई थी । लक्ष्मीका अपने भाई चाँदके समान मुख था । इसका भी चाँद जैसा मुख था । लक्ष्मी सारे संसारको आनंद देती है । यह भी जगतभरको आनंद देनेवाली थी । श्रीकान्ताके नख बड़े सुन्दर थे; जान पड़ता था कि मानों इसके नेत्रोंके तारों द्वारा जीते गये और इसके गुणों द्वारा खींचे गये तारा-गण ही हैं; और सुखी होनेकी इच्छासे वे नखोंके छलसे इसकी सेवा करते हैं । इसके मुख-रूपी चन्द्रमाको देख कर कमल बहुत ही लज्जित हुए, अतएव वे छाया आदिके विना ही जलमें रहने लगे तथा जान पड़ता है कि इसीसे चन्द्रमा और कमलोंमें परस्पर विरोध हो गया है । इसके गलेमें चमकीला और मनोहर हार पड़ा हुआ था, जो कुचोंके बीचसे लटकता था । जान पड़ता था कि जैसे पूर्व भवके रागभावके कारण निधिकी इच्छासे साँप धनके खजाने पर बैठ जाता है उसी तरहसे यह हार भी—निधि—शोभाकी इच्छासे इन कुचरूपी महान

कुंभोंकी सेवा करता है। श्री आदि देवियाँ हमेशा ही श्रीकान्ताकी सेवामें उपस्थित रहा करती थीं और उसके सभी काम-काज करती थीं। सच है कि पुण्यके योगसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। अचम्भेकी वात तो यह है कि धीरवीर और धनका मेघ—कुवेर—उसके आँगनमें जलकी नाँई रत्नोंकी वरसा करता था। उस समय रत्नोंकी वरसासे सारी पृथ्वीमें धन-ही-धन हो गया था। कहीं भी कोई दरिद्री न था और पृथ्वीका वसुधा नाम सफल हो गया था। प्रभुके गर्भोत्सवके समय ऐसा कोई भी काम न हुआ जो जीवोंको प्रमोदका देनेवाला न हो।

एक दिन श्रीकान्ता सुखकी नींदमें सोई हुई थी। रातका पिछला पहर था। उस समय उस देवीने सोलह स्वप्नोंको देखा। मनुष्योंको पालने पोषनेवाली वह सवेरे भाँति भाँतिके वाजोंकी आवाजको सुन कर सेजसे उठी। इस समय उसके हृदयमें वडा हर्ष हो रहा था। उसने प्रभातकी नित्य क्रियायें कीं, स्नान किया तथा वस्त्र, मंगल-रूप आभूषण आदि पहने और सभामें पहुँची। उस समय सभा ऐसी शोभने लगी जैसा कि विजलीसे आकाश सुशोभित होता है। वहाँ वह राजाको नमस्कार कर आधे सिंहासन पर जाकर बैठ गई; और विघ्नवाधाओंको हरनेवाले उन स्वप्नोंको उसने जैसाका तैसा राजासे कह दिया। उन्हें सुन कर राजाने अवधिज्ञान द्वारा उनका फल जान लिया; और क्रमसे होनेवाले उनके फलको रानीसे कह दिया। उस समय राजाके वचन-रूप किरणोंके स्पर्शसे रानीका मुख-कमल खिल उठा; जिस तरह सूरजकी किरणोंके संसर्गसे कमल खिल जाते हैं। इसके वाद सावन वदी दसमीके दिन रानीने सर्वार्थसिद्धिसे चय कर आये हुए एक देवको देवियों द्वारा शोधे हुए अपने गर्भमें धारण किया। प्रभुके गर्भ-समयको जानकर देवतों-सहित ज्ञानी इन्द्र आया और उसने गर्भोत्सवकी खूब ही धूम मचाई—चहल-पहल—की। मुक्ताफलको धारण करनेवाली निर्मल सीपकी नाँई श्रीकान्ता प्रभुको गर्भमें लिये हुए वड़ी शोभा पाती थी। उस समय उसका शरीर तेज-मय हो गया था; परन्तु उसको गर्व रंचमात्र भी न था। सुन्दरी देवांगनायें उसकी हमेशा सेवा करती थीं; और वह सेवाके फलको देती थी अर्थात् उसकी सेवासे उन्हें स्वयमेव ही फल मिलता था। देवियाँ उससे काव्यों-का गूढ़ गूढ़ अर्थ पूछती थीं कि देवी! संसारमें सार क्या है? सुख किसे कहते हैं? और जीवोंको सुख-दुःख देनेवाला कौन है?। एक वात यह है कि इन प्रश्नोंके ऐसे उत्तर वताइये; जिनका कि पहला अक्षर ही भिन्न भिन्न हो और सव अक्षर एक ही हों। रानीने उत्तर दिया कि संसारमें धर्म सार है। शर्म—कल्याण—को सुख

कहते हैं; और अपने शुभ-अशुभ भावोंसे इकट्ठे किये हुए पुण्य-पाप कर्म ही जीवोंको सुख-दुःख देते हैं। कर्मके निमित्तसे वे बँधते और जन्म लेते है। कर्मके बड़े संकटको सहते हैं । एवं कर्मके निमित्तसे ही जीवोंको सांसारिक सुख होता है। इसके बाद फिर भी देवियोंने पूछा कि देवी ! सूर्यसे क्या उत्पन्न होता है? विद्वानोंके मुँहमें क्या रहता है? अर्जुन किसे कहते हैं? और गंगा किसे कहते हैं? रानीने उत्तरमें कहा भा-गी-रथी । तात्पर्य यह कि सूरजसे भा—आभा—उत्पन्न होती है। विद्वानोंके मुँहमें गी—वाणी—सरस्वती रहती है। अर्जुन रथीको कहते हैं। और गंगा भागरथीको कहते हैं। इस तरह प्रभुकी माताका दिल बहलानेके लिए देवियाँ प्रश्न करती थीं और माता उत्तर देती थी । इसके बाद जब नौ महीना पूरे हो गये तब उस देवीने वैशाख सुदी पड़वाके दिन पुत्ररत्नको जन्म दिया; जिस भाँति पूरब दिशा सूरजको जन्म देती है। प्रभुका जन्म जान कर इसी समय स्वर्गसे इन्द्र आदि देवता-गण आये; और वे आकाशगामी प्रभुको सुमेरु पर्वतकी शिखर-पर ले गये । वहाँ उन्हें सिंहासन पर विराजमान कर और भाँति भाँतिके उत्तम पाठोंको पढ़कर उनकी स्तुति की; और क्षीरसागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया । उनका कुंथुनाथ नाम रखा । इसके बाद वे उन्हें वापिस नगरको ले आये और उनके माता-पिताको सौंप दिया। क्रम क्रमसे बढ़कर प्रभुने यौवन-अवस्थामें पैर रक्खा । इस समय प्रभुके सभी गुण वृद्धिंगत थे । उनके शरीरकी ऊँचाई पैंतीस धनुष थी। उनकी कान्ति ताये हुए सोने सरीखी थी। प्रभुकी आयु पाँच हजार वर्ष कम एक लाख वर्षकी थी। कुछ काल बाद प्रभुका राज्यभिषेक हुआ और नीतिसे प्रजा-पालन करते हुए वे राज-सुख भोगने लगे । इसके बाद उनकी आयुधशालामें चक्र रत्नकी उत्पत्ति हुई; जिसको पाकर वे छहों खंडके राजा चक्रवर्ती हो गये । एक दिन उन्हें अपने पिछले भवकी याद हो आई और वे संसारसे विरक्त हो गये । यह जान पाँचवें ब्रह्मस्वर्गसे लौकान्तिक देव आये; और संसारसे उदास-चित्त प्रभुकी उन्होंने स्तुति की। इसके बाद प्रभुको दीक्षा लेनेको तैयार देख वे प्रभुकी स्तुति पूजा कर अपने स्थानको चले गये । इसके बाद प्रभु अपने पुत्रको राज-पाट संभला कर विजया नाम पालकीमें सवार हो देवेन्द्रोंके साथ-साथ सहेतुक वनमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने केशलोंच कर हजारों राजोंके साथ-साथ संयमको धारण किया और उसी दिनसे उन्होंने छह दिनके बाद आहार लेनेकी हमेशाके लिए प्रतिज्ञा की। वहीं हस्तनागपुरमें धर्ममित्र नाम एक श्रावक रहता था। उसने पारणाके दिन प्रभुको खीरका आहार दिया; जिससे उसके घर पाँच

अचम्भेकी बातें हुईं। एवं प्रभु सहेतुक वनमें सोलह वर्ष छद्मस्थ-अवस्थामें रहे। बाद तिलक वृक्षके नीचे बैठे हुए उन उद्यमशील प्रभुने घाति कर्मोंका नाश कर चैत सुदी तीजके दिन शामके समय केवल-ज्ञान लाभ किया। इस समय कुबेरने आकर प्रभुके समवसरणकी रचना की; और सुर-असुर तथा मनुष्य-गण आ-आकर उनकी-वन्दना-स्तुति करने लगे। प्रभुकी सेवामें स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर उपस्थित थे। उनके समवसरणमें सातसौ यतीश्वर और तिरेपन हजार एकसौ पचास शिष्य थे। दो हजार पाँचसौ अवधि-ज्ञानी और तेतीस हजार केवलज्ञानी थे। पाँच हजार एकसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक और मनःपर्यय ज्ञानी तेंतीससौ थे। एवं वाद-विजेता वादी दो हजार पचास थे। सब मिला कर कुल साठ हजार यतीश्वर थे। तथा ६० हजार तीनसौ पचास अर्जिकाएँ थीं। दो लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थीं। इसी तरह असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार संघ-सहित प्रभुने सब पृथ्वीतल पर विहार किया। अन्तमें विहार करते करते वे हजारों मुनियों सहित सम्मेदाचल पर पहुँचे। वहाँ प्रभुने एक महीने तक योगनिरोध किया; और सम्पूर्ण शेष कर्मोंको नाश कर वे मोक्ष-स्थानको चले गये। प्रभुके साथ-साथ और और बहुतसे मुनि भी मोक्ष-अवस्थाको प्राप्त हुए। आजके दिन वैशाख सुदी पड़वा थी। प्रभुका निर्वाण जान उत्कंठित हुए बहुतसे देव आये। उन्होंने प्रभुका खूब निर्वाण-महोत्सव मनाया और प्रभुको नमस्कार किया। इसके बाद प्रभुके गुणोंको स्मरण करते हुए इन्द्र आदि सभी देवता-गण वहाँसे स्वर्गको चले गये।

जो पहले, पूर्वविदेहमें राजोंके मुकुटोंके तटसे स्पर्शित हैं चरणकमल जिसके ऐसा वैभवशाली सिंहरथ नाम राजा था और वहाँसे फिर सर्वार्थसिद्धिको गया; एवं सर्वार्थसिद्धि विमानसे चयकर जो कुंथु आदि जीवोंकी दयाके पालक और उनको सुख देनेवाले कुंथुनाथ प्रभु हुए। कुंथुनाथ प्रभु चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव इन तीन पदोंके धारक हुए। वे हमें उत्तम उत्तम गुणोंका दान दें और हमारी पुष्टि करें। जो पाप-रूपी-वैरियों पर विजय-लाभ करनेवाले हैं, कामदेवको मथ कर चकनाचूर करनेवाले हैं; एवं जो पृथ्वीतल पर धर्मका प्रचार करनेवाले और तीन लोक द्वारा पूजे जानेवाले हैं; वे कुंथुनाथ भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। जो कुंथु आदि जीवोंकी दयासे भरपूर है, उत्तम मार्गके पथिक और तीर्थंकर हैं, चक्रवर्ती हैं और पुण्यके भंडारको भरनेवाले हैं तथा संसार-रूप वनको जला देनेवाले हैं वे प्रभु सबको सुख दें।

सातवाँ अध्याय ।

मैं उन अरजिनको नमस्कार करता हूँ जो कर्म-शत्रुओं पर विजय-लाभ करनेवाले हैं, चक्रवर्ती आदि जिनकी पूजा करते हैं, जो सभी गुणोंके आधार और सार हैं; तथा जो तीर्थंकर हैं सारे संसारसे उत्कृष्ट हैं।

इस तरह और और बहुतसे राजोंके हो चुकने पर कुरुवंशमें एक सुन्दराकृति सुदर्शन नाम राजा हुआ। उसकी प्रियाका नाम था मित्रसेना। वह सती थी। श्रीआदि देवियाँ उसकी सेवा करती थीं। उसके निमित्तसे पृथ्वी पर धनकी धारा पड़ती थी। एक दिन उसने सोलह स्वप्नोंको देखा; और फाल्गुन सुदी तीजके दिन गर्भको धारण किया। उसका गर्भ संसारके लिए शुभ था; कल्याणका दाता था। उसी समय प्रभुका स्वर्गावतरण कल्याणक करनेको चार निकायके देवता-गण आये। परम उत्साहसे उन्होंने उत्सव किया। इसके बाद प्रभुके माता-पिताको नमस्कार कर वे स्वर्ग-स्थानको चले गये। यद्यपि उस निर्मल गर्भका बहुत भार था तो भी मित्रसेनाको यह भार कुछ भी न जान पड़ता था। इसके बाद गर्भके दिन पूरे हो जाने पर अगहन सुदी चौदसके दिन उसने पुत्ररत्नको जन्म दिया। जन्मसे ही प्रभु तीन ज्ञानके धारक थे। वे तीर्थंकर थे। इसी समय स्वर्गसे इन्द्र आदि देवता-गण आये और प्रभुको सुमेरु पर्वत पर ले गये। वहाँ उन्होंने प्रभुको सुवर्णके कलशोंसे स्नान कराया और उनका अर नाम रखा। क्रम क्रमसे कुछ काल बाद प्रभु युवा-अवस्थाको प्राप्त हुए। उनका शरीर तीस धनुष ऊँचा था, ताये हुए सोनेकीसी कान्तिवाला था। उनकी आयु चौरासी हजार वर्षकी थी। प्रभुका एक हजार कन्याके साथ व्याह हुआ। इसके कुछ काल बाद वे राजा हुए। देवता-गण हमेशा आ-आकर उनको नमस्कार करते थे। कुछ समय बाद उनकी आयुधशालामें चक्र-रत्न उत्पन्न हुआ, जिसके द्वारा अरजिनने बत्तीस हजार राजोंको अपने अधीन किया; उन्हें नमाया। वे अर चक्रवर्ती पुण्यात्मा और कृतकृत्य थे। उनके यहाँ अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी तथा चौरासी लाख ही रथ थे। वे इतनी विभूतिके स्वामी थे। इसके सिवा वे बत्तीस हजार देशोंके स्वामी थे। छियानवें हजार स्त्रियोंके भोक्ता थे। बहत्तर हजार पुरोंके रक्षक थे। एवं निन्यानवें हजार द्रोण और अड़तालीस हजार पत्तनोंके वे मालिक थे। उन

प्रभुके सोलह हजार खेट और छियानवें हजार गाँव थे । एवं वे चौदह हजार वाहनों और समुद्रपर्यन्त द्वीपोंका पालन करते थे । वे बत्तीस हजार नाटकोंको देखते थे। उनके यहाँ एक करोड़ थालियाँ, तीन करोड़ गायें और एक करोड़ हल थे। सातसौ कुक्षिवास और अठत्तरसौ अटवी-दुर्ग थे । उनको अठारह हजार म्लेच्छ राजा नमस्कार करते थे । उनके यहाँ नौ निधियाँ और चौदह रत्न थे। उनके चरणोंकी रक्षा करनेवाली उनके यहाँ दो खड़ाउएँ थीं जो विप-विकारको दूर करती थीं । चक्रवर्तीका अभेद्य नाम कवच और अजितंजय नाम रथ था। वज्रकांड नाम धनुष और अमोघ नाम शर थे। उनके वज्रतुंडा नाम शक्ति और सिंहाटक नाम भाला था । सुनंदा नाम तलवार और भूतमुख नाम खेट—ढाल—थी। सुदर्शन नाम चक्र और चंडवेग नाम दंड था, जो दुष्ट प्रजाको दंड देता था। वज्रमयी चर्मरत्न, चिंतामणि और काँकिणी रत्न थे। पवनंजय नाम घोड़ा और विजय-पर्वत नाम हाथी था । एवं उनके यहाँ आनंद देनेवाली बारह भेरियाँ थीं; और बारह विजयघोष नाम नगाड़े थे। इस प्रकारकी ऋद्धिवाले प्रभु एक दिन किसी वैराग्यके निमित्तको पाकर विरक्त हो गये और उन्होंने अरविंदकुमारको सारा राज-पाट सौंप दिया । इसी समय अपना नियोग पूरा करनेको लौकान्तिक देव आये और उन्होंने प्रभुके आगे मार्गका निर्देश किया। इसके बाद सच्चे मार्गको बतानेवाले वे प्रभु वैजयन्ती नाम पालकीमें सवार हो देवता-गणके साथ साथ सहेतुक वनमें गये । वहाँ उन्होंने वन्यवृत्ति अर्थात् दिगम्बर मुद्रा धारण की । तात्पर्य यह कि अगहन सुदी दसमीके दिन हजारों राजों-सहित वे देवतों द्वारा सेवित और इंद्रके स्वामी प्रभु दीक्षित हो गये; और उन्होंने छह उपवासोंके बाद आहार लेनेकी प्रतिज्ञा की। बाद चार ज्ञानके धारक उन बुद्धिमान स्वामीने पारणाके दिन चक्रपुरमें अपराजित राजाके यहाँ पारणा किया । प्रभुने सोलह वर्ष छद्मस्थावस्थामें बिताये । बाद घाति कर्मोंको घातकर निष्पाप और विघ्नबाधासे रहित वे प्रभु, आमके वृक्षके नीचे बैठे हुए कातिक सुदी बारसके दिन षष्ठोपवासके प्रभावसे केवलज्ञानी हुए । उस समय सुर-असुर सभी आये और उन्होंने भगवानके पंचम ज्ञानकी पूजा की और घातिकर्मोंके अरि—वैरी—अरजिनका समवरण रचा। इसके बाद सम्मेदशिखर पर योगनिरोध कर हजारों मुनियों-सहित वे चैत वदी अमावसके दिन मोक्ष-महलमें जा विराजे । इस समय देवता-गण आये और उन्होंने मीठे मीठे शब्दों द्वारा प्रभुका गुण-गान किया और विकल्प

जालोंका छोड़-कर निर्द्वंद हो उनका निर्वाण महोत्सव मनाया—जिससे उनकी आत्मा पवित्र हो गई; उनका पाप-मल हलका हो गया।

उन अरजिनकी जय हो जो वैरियोंके समूहको जीतनेवाले है, जिनके चरण-कमलोंकी सुरेंन्द्रोंके समूह भी पूजा करते हैं, जो सब विद्याओंके भंडार हैं, जो भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश करते है और जो धर्म-मय और धर्मसे सुशोभित परमात्मा हैं। जो महात्मा पहले धनपति नाम राजा थे वह बाद मुनियोंमें श्रेष्ठ मुनीश्वर हुए और आत्म-संयम तथा शत्रुओं पर विजय-पानेके प्रभावसे संजयंत विमानमें देवतोंके अधिपति अहमिन्द्र हुए। वहाँसे चय कर भरतक्षेत्रमें धर्मात्माओंके पति धर्मराज—तीर्थंकर—हुए। अराजिन तीर्थंकर, सम्पूर्ण मनुष्योंके स्वामी चक्रवर्ती और कामदेव थे। तात्पर्य यह कि वे तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदोंके धारक थे। वे तुम्हारी रक्षा करें।

आठवाँ अध्याय ।
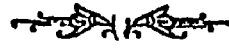
अरनाथ प्रभुके बाद अरविंद नाम उनका पुत्र राजा हुआ । उसके बाद शूर, पद्मरथ और रथी राज-पाटके भोक्ता राजा हुए । रथीके बाद उसका मेघरथ नाम पुत्र राजा हुआ । उसकी प्रियाका नाम पद्मावती था। पद्मावतीके गर्भसे विष्णु और पद्मरथ नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए । वे दोनों महान बली थे । एक समय निष्पाप और बुद्धिमान् मेघरथ राजा किसी निमित्तको पाकर विष्णु नाम पुत्र-सहित दिगम्बर हो गया । उसके पीछे दयालु पद्मरथ कुरु-जांगल देशके हस्तनागपुरका राजा हुआ; उसने हस्तनागपुरके राज-सिंहासन-को अलंकृत किया ।

इसी समय अवन्ती देशमे उज्जैनी नगरीका श्रीवर्मा नाम राजा था और उसके चार मंत्री थे । उनके नाम क्रमसे बलि, बृहस्पति, प्रल्हाद और नमुचि थे। वे वाद-विवाद करनेमें बहुत कुशल थे । उनकी जाति वाड़व थी । वादकी इच्छासे उनका दिल हमेशा ही डॉवाडोल रहा करता था । एक दिन उज्जैनीमें अकं-पन-आचार्य आये । उनके साथ सौ मुनि और थे । वे सब वहाँ आकर बनमें ठहरे । भविष्यके ज्ञाता अकंपन मुनिने उसी वक्त सब मुनियोंको वाद-विवाद करनेके लिए मना कर दिया । मुनियोंको आया जान सभी नगरवासी उनकी वन्दनाको वनमें आये । उन्हें जाते हुए देख कर राजाने कहा कि ये लोग कहाँ जाते हैं ? इसके उत्तरमें मंत्रियोंने कहा कि ये सब लोग मुनीश्वरोंकी वन्दनाको जा रहे हैं । यह सुन राजाके हृदयमें भी भक्तिका संचार हो आया और वह भी उसी समय वन्दनाके लिए चला ।

वनमें जाकर उसने मुनियोकी वन्दना की । पर मुनियोंने बदलेमें राजाको शुभाशीर्वाद न दिया । यह देख राजासे मंत्रियोंने कहा कि राजन् निश्चयसे ये लोग कोरे बैल हैं; इनमें कुछ भी ज्ञान नहीं है ।

इसके बाद वे सब वहाँसे राजाके साथ साथ चले आये । दैवयोग मार्गमें आते हुए उन्हें एक श्रुतसागर नाम वाल मुनि देख पड़े । उन्हें देख कर मंत्रि-योंने हँसी उड़ाते हुए कहा कि राजन्, यह एक युवा बैल है ।

यह सुन मुनिने मंत्रियोंके साथ बहुत विवाद किया और उन्हें हरा दिया, जिससे वे बहुत ही लजाये । इसके बाद मुनि अपने स्थानको चले आये और वहाँ

उन्होंने जैसाका तैसा सब हाल गुरुवर्यको कह सुनाया। इस पर गुरुवर्यने कहा कि वत्स ! तुम जाओ और जहाँ वाद-विवाद हुआ है वहीं जाकर रात भर ठहरो; नहीं तो सब संघको आपत्तिमें पड़ना पड़ेगा। गुरुकी इस आज्ञाको शिरोधार्य कर श्रुतसागर गये और जहाँ वाद-विवाद हुआ था वहीं पहुँचे। रातके वक्त वे दुष्ट उन्हें मारनेको चले। वे जा रहे थे। इतनेमें मार्गमें वादके स्थल पर उन्हें सहसा वे ही मुनि देख पड़े। उन्हें देखते ही उन दुष्टोंके क्रोधका पारा चढ़ गया और वे हथियारों द्वारा उन्हें मारनेको तैयार हो गये। उन्होंने मुनिके ऊपर ज्यों ही हथियार छोड़ें त्यों ही पुरदेवताने आकर उन्हें बीचमें ही रोक दिया; उनके हथियार कील दिये। तब वे बहुत घबड़ाये। उनका चित्त बहुत ही व्याकुल हुआ। और अचंभेकी बात यह हुई कि उन्होंने जो मुनिको मारनेके लिए उन पर तलवारें उठाई थीं उनसे उन मुनिके ऊपर तोरण जैसी अपूर्व शोभा हो गई। सवेरा हुआ। राजाको खबर लगी। राजाने वहाँ आकर उन्हें दुष्कृत्यमें प्रवृत्ति करनेके कारण कीले हुए खंभेसे खड़े देखे। राजा बहुत बिगड़ा। उसने उनका सिर मुड़ाकर गधे पर चढ़ा शहरसे वाहिर निकलवा दिया। वहाँसे वे राजा पद्मरथके पास हस्तनापुर गये और उन्होंने पद्मरथके साथ बहुत नम्रताका व्यवहार किया, जिससे उसने उन्हें अपना मंत्री बना लिया और उनकी सब तरह रक्षा की। इसके बाद एक समय पद्मरथके एक शत्रु राजाने उसे बहुत ही डर दिखाया जिससे पद्मरथ बड़ा भयभीत हुआ और प्रजामें भी कोलाहल मच गया। उस वक्त बलि मंत्रीने नाना युक्तियों द्वारा शत्रुको पकड़ लिया। इससे राजा पद्मरथ उस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने उसे आज्ञा की कि इस समय तुम जो जी चाहे माँगो। इस पर बलिने कहा कि महाराज, मैं सात दिनके लिए आपका राज्य चाहता हूँ। राजा तो उस पर मोहित हो ही चुका था, अतः उसने सात दिनके लिए उसे राज्य देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद एक समय विहार करते करते अकंपन आचार्य सातसौ मुनियोंके संघ-सहित वहाँ आ गये और योगकी सिद्धिके लिए उन्होंने वर्षाऋतुमें भी वहीं रहना स्वीकार किया। तथा उन्होंने सब योगियोंसे यह भी कह दिया कि आप लोग वादियोंसे वाद-विवाद नहीं करना; नहीं तो बड़ा-भारी संताप भोगना पड़ेगा। मुनियोंके आनेकी खबर बलिको मालूम हुई तब वह राजाके पास गया और उसने पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उससे सात दिनके लिए राज्य माँगा। राजाने भी उसे सात दिनको राजा बना दिया।

राज्य पाकर वलि कुवेरकी नाँई खूब ही धन लुटाने लगा और उसने जाकर सातसौ मुनियों-सहित अकंपन-आचार्यको सेनाके द्वारा वेढ़ लिया। कारण, वह उन साधुओं पर पहलेसे ही रुष्ट था। वह अग्निमय यज्ञ करवा कर उन्हें संताप देने लगा। यह खवर जव विष्णुकुमार मुनिको लगी तव वे चलकर उदासीन भावको धारण करनेवाले पद्मरथ राजाके पास आये और उससे उन्होंने प्रेरणा कर कहा कि सत्पुरुषों द्वारा वन्दित और पूजित इस राज्य-पद पर स्थित होकर भी आप इस दुर्जन मंत्रीको अन्यायसे क्यों नहीं रोकते। हे कोविद! मेरे इस प्रश्नका आप जल्दीसे उत्तर दीजिए। राजाने उत्तरमें कहा कि मैं सात दिनके लिए वलिको राज-पाट दे चुका हूँ। इस लिए अव मैं उसको रोक नहीं सकता। हाँ! यदि आप रोक सकते हैं तो भले ही रोक दीजिए। इसके उत्तरमें विष्णुकुमारने कहा कि दुष्ट पुरुष जल्दीसे न्यायके रहस्यको नहीं पहिचान सकते। राजन्! न जाने तुममें यह खलता कहाँसे आ गई, जो तुम पूज्य पुरुषोंका अनादर होते हुए भी नहीं चेतते। इसमें सन्देह नहीं कि मैं तो इस पापिष्ठ और चतुराई-विमूढ़ पुरुषको इस अन्यायसे रोकूँगा ही। इतनी वातचीतके वाद विष्णुकुमारने वामनका रूप वनाया और वे उसी वक्त यज्ञभूमिमें पहुँचे। वहाँ उस वामनने अपनेको ब्राह्मण वर्णका वतलाया। वह कहने लगा कि मैं वेद-वेदांगका पारगामी द्विज हूँ; वेदके अर्थको खूव समझता हूँ। और आप मनोरथ-को सिद्ध करनेवाले दाता हैं। अतः मुझे भी कुछ दान दीजिए। यह सुन वह वली वलिराजा वोला कि जो तुम्हारा जी चाहे सो तुम माँग लो। मैं अवश्य दूँगा। क्योंकि पात्रमें द्रव्य देनेसे वदलेमें सुख मिलता है। इस पर विष्णुने कहा कि मुझे केवल तीन पैंड भूमि चाहिए। इस पर वहाँ जितने लोग वैठे थे सव-के-सव वोल उठे कि विप्र! तुमने इतनी थोड़ीसी याचना क्यों की। देखो, यह वलिराजा तो कुवेरकी नाँई महान दानी राजा है। फिर आपकी यह तनिकसी याचना कुछ ठीकसी नहीं मालूम पड़ती। विष्णु वोला कि राजन्! वहुत वातचीतसे कोई लाभ नहीं। वस, आप तो अव संकल्प-धारा छोड़िए। इसके वाद तीन पैंड पृथ्वीका संकल्प हुआ और संकल्पके वाद ही विष्णुकुमारने सारे संसारको घेरनेके लिए विक्रियाऋद्धिके द्वारा वड़ा भारी रूप वना लिया। इसके वाद उसने पाँव फैलाकर एक पाँव तो सुमेरुके शिखर पर रक्खा और दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा। उस समय सुर-असुर और नारद आदि सभी वीणा ले-ले कर संगीत द्वारा उनका यशो गान कर-

नेको उद्यत हुए। वे कहने लगे कि विभो! अब पाँव खींच लो; पाँव खींच लो। एवं चामर जातिके देवतोंने वीणा बजा कर मुनिको प्रसन्न किया। उन्होंने सन्तुष्ट होकर विद्याधर राजोंको घोषा, सुघोषा, महाघोषा और घोषवती आदि वीणाएँ दीं। राजन्! इसी प्रकार आपने भी मुझे प्रसन्न होकर तीन पैंड पृथ्वी दी थी। अब बताइए कि मैं तीसरा पैंड किधरसे नापूँ। तात्पर्य यह कि अब आप मेरे तीसरे पैंडको भी अवकाश दीजिये। कारण, अब यहाँ कहीं पैर रखनेको अवकाश नहीं सूझता। इतना कह कर क्रोधमें आ बलशाली विष्णुकुमारने राजा बलिको बाँध लिया वह जो मुनियोंको उपद्रव कर रहा था उसको एक मिनटमें अनायास ही वारण कर दिया और योगियोंकी रक्षा करली। बाद उस बली बलिराजाने भी मुनियोंकी रक्षा की और अधर्मको रोक कर उत्तम रीतिसे धर्मको धारण किया, जो कि उसके योग्य था। इसके बाद संसारमें धर्मके प्रभावको फैलानेवाला वह विष्णुकुमार मुनि अपने स्थानको चला गया।

पद्मरथ राजाके बाद क्रमसे पद्मनाभ, महापद्म, सुपद्म और कीर्ति, सुकीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकि आदि बहुतसे राजा हुए। इसके बाद सांतनु नाम राजा हुआ, जो शक्तिवाला और कौरवोंमें अगुआ था; पृथ्वीको सुखी करनेवाला था। उसकी प्रियाका नाम था सबकी। वह रामचन्द्रकी सीताकी भाँति सती थी। उसके गर्भसे सांतनु राजाके पारासर नाम एक पुत्र पैदा हुआ, जो बहुत बली था।

रत्नपुरमें जयी जन्हु नाम एक राजा था। वह विद्याधर था। उसके गंगा नामकी एक पुत्री थी। वह पवित्र शरीरवाली और गुणोंकी खान थी। एक समय जन्हुने सत्यवाणी नाम किसी निमित्तज्ञानीसे उसके विवाहके सम्बन्धमें पूछा और उसके कहे अनुसार गंगाका ब्याह पारासरके साथमें कर दिया। गंगा जैसी पत्नीको पाकर पारासरको बहुत ही हर्ष हुआ। वह मनोहर शरीरवाला तथा कामकी महिमासे भरपूर राजकुमार उसके साथ-साथ सुन्दर सुन्दर महलोंमें मनचाही क्रीड़ा करने लगा। कुछ काल बाद उसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रक्खा गया गांगेय। वह बृहस्पतिके तुल्य था। धीरे धीरे वह दोजके चाँदकी नाँई बढ़ने लगा और क्रम क्रमसे उसने सभी विद्यायें सीख ली। वह धनुषविद्यामें बहुत निपुण था और चाहे जैसा ही निशाना क्यों न हो, एक मिनटमें ही छेद डालता था। एक दिन पुण्ययोगसे

उसने एक चारणमुनिके मुखसे धर्मका उपदेश सुना और सभी सुख देनेवाले दया धर्मको यथाशक्ति ग्रहण भी किया। इसके बाद पारासर राजाने उसे युवराज वना दिया। सच है कि योग्य पुत्रको पिता और योग्य शिष्यको गुरु अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता है, तब युवराज पदकी तो बात ही क्या है।

एक समय पारासर यमुना नदीके किनारे क्रीड़ाके लिए गया था। वहाँ उसने नौकामें बैठी हुई चकोर जैसे सुन्दर नेत्रोंवाली एक मनोरमा कन्याको देखा। उसको देखते ही पारासरका मन मोहित हो गया; वह उस पर निछावर हो गया। और कामासक्त हो वह उसके पास जाकर कहने लगा कि तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? वह बोली कि राजन्! मैं यहीं गंगातट पर निवास करनेवाले मल्लाहोंके अधिपतिकी पुत्री हूँ और मेरा नाम है गुणवती। मैं अपने पिताकी आज्ञासे हमेशा यहाँ नौका चलाया करती हूँ। क्योंकि कुलीन कन्याएँ कभी माता पिताके प्रतिकूल नहीं होतीं।

यह सुन पारासर राजा कन्याकी चाह वश वह उसी समय उसके पिताके पास गया। पारासरको आता देख धीवरने उसका बड़ा आव-आदरके साथ स्वागत किया, जिससे पारासरको बहुत ही खुशी हुई।

इसके बाद राजाने उस शिष्टाचारीको अपना मनोरथ कह सुनाया कि तुम्हारी गुणवती पुत्रीको मैं अपनी सहचारिणी बनाना चाहता हूँ।

यह सुन धीवरने कहा—राजन्! इस पतिंवरा कन्याके देनेको तुम्हारे लिए मेरा उत्साह नहीं होता। कारण, तुम्हारे राज-पाटको सँभालनेके लिए गांगेय नाम एक पराक्रमी पुत्र मौजूद है। तब आप ही बताइये कि मेरी कन्यासे जो सन्तान होगी वह गांगेयके होते हुए क्या कभी राज-पाटको भोग सकेगी? अतः राजन्! आप इस सम्बन्धकी बातचीत ही मत छेड़िए। इस प्रकार उस धीवरने जब युक्तिसे कन्या देनेका निषेध किया तो राजाका मुँह मुरझा गया—चेहरा उतर गया; और आखिर वह अपने घरको चला आया। अपने पिताका मुरझाया हुआ चेहरा देख कर गांगेय बहुत व्याकुल हुआ। वह सोचने लगा कि क्या मैंने इनका कुछ अविनय किया है? या और किसीने इनकी आज्ञा भंग की है? या इन्हें मेरी माताका स्मरण हो आया है? क्यों इनका मुँह कालासा देख पड़ता है। इस प्रकारके ऊहापोहके बाद जब वह कुछ भी निश्चय न कर सका तब उस जयीने एकान्तमें मंत्रीसे

पूछा कि आज महाराजका मुँह मलिन क्यों हो रहा है ? इसके उत्तरमें मंत्रीने गांगेयको सारा कच्चा हाल कह सुनाया । तब गांगेय उसी वक्त उस धीवरके घर गया और धीवरको कहने लगा कि तुमने जो राजाका अनादर किया। यह अच्छा नहीं किया । उत्तरमें वह धीवर बोला कि कुमार इसका कारण सुनिए । वह यह कि जो सौतका पुत्र होते हुए भी अपनी कन्या देता है वह अपनी प्राणोंसे प्यारी पुत्रीको अँधेरे कुएमें ही ढकेल देता है। हे नररत्न ! जिसके तुम सरीखे सौत-पुत्र मौजूद हो, तुम्हीं कहो कि मेरी कन्याके पुत्रको कैसे सुख हो सकता है ? क्या सिंहके होते हुए मृग-गण भी सुखी हो सकते हैं ?

कुमार ! मेरी पुत्रीकी भावी सन्तान किसी तरह भी राज्यको नहीं भोग सकेगी; किन्तु उल्टी आपत्तिमें फँस जायगी । क्योंकि तुम्हें छोड़कर राज-लक्ष्मी दूसरेके पास नहीं जा सकती; वह दूसरेको पसंद नहीं कर सकती— जैसे कि समुद्रको छोड़कर नदियाँ तालावोंमें गिरना पसंद नहीं करतीं । इस पर गांगेयने अपने भावी मातामहको यों समझना आरम्भ किया कि यह केवल मात्र आपका भ्रम है । क्योंकि और और वंशोंसे इस कुरुवंशका निराला ही स्वभाव है। बताइए कि कहीं हंस और बगुलेका भी एक स्वभाव हो सकता है। और भी सुनिए कि मै गुणवती सतीको अपनी मातासे भी कहीं अधिक आदरकी दृष्टिसे देखूँगा । इसके बाद गांगेयने हाथ उठा कर कहा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि गुणवतीकी भावी संतान ही राज-पाटकी भोक्ता होगी, मैं नहीं । इस पर फिर धीवरने कहा कि कुमार! आगे जो आपकी सन्तान होगी वह कैसे किसी दूसरेके राज-काजको सह सकेगी । अतः फिर भी वही प्रश्न खड़ा होता है कि गुणवतीकी सन्तान राज्यसे वंचित ही रह जायगी । यह सुनते ही गांगेय उसके अभिप्रायको ताड़ गया और कहने लगा कि तुम्हारी इस चिन्ता-को भी मैं अभी अभी मिटाये देता हूँ । यहाँ तुम और आकाशमें सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर वगैरह सभी सुनो कि आजसे मैं जन्म भरके लिए ब्रह्मचारी होता हूँ; ब्रह्मचर्य लेता हूँ । इतनी बातचीतके बाद धीवरने कन्याको बुलाया और अपनी गोदमें बैठा लिया । इसके बाद उस बुद्धिशालीने गांगेयसे कहा कि तुमने जो पिताके मनोरथको साधनेके लिये ब्रह्मचर्य व्रत लिया है इससे जान पड़ता है कि संसारमें तुम बड़े गुणवान् हो । दूसरे मैं तुमसे एक कहानी कहता हूँ। उसे तुम सावधान चित्त हो सुनो ।

एक दिन मैं विश्रामके अर्थ यमुना नदीके तट पर गया था। वहाँ मैंने अशोक वृक्षके नीचे सुन्दर रूपवाली तथा उसी समयकी पैदा हुई और किसी पापी द्वारा वहाँ छोड़ दी गई एक कन्याको देखा। मेरे कोई सन्तान न थी, इस लिए मैं हमेशा सन्तानकी स्पृहामें लगा रहता था। मैं उस सुरूपा कन्याको लेनेके लिये कुछ अचम्भेके साथ प्रवृत्त हुआ। तब आकाशवाणी हुई कि रत्नपुरके राजा रत्नांगदकी रानी रत्नवतीके गर्भसे यह कन्या उत्पन्न हुई और इसे यहाँ रत्नांगदके वैरी किसी खेचर—विद्याधर—ने लाकर डाल दी है। यह सुन मैंने निःशंक भावसे उसे उठा लिया और लाकर अपनी निःसन्तान प्रियाकी गोदमें दे दी; तथा उसका नाम गुणवती रख दिया। वह मेरे यहाँ पल कर सयानी हो गई। वही यह मेरी पुत्री है। तुम मेरी इस पुत्रीको अपने पिता सांतनु राजाके लिए ग्रहण करो। इसके बाद गांगेय गुणवतीको लेकर अपने नगरको लौट आया और वहाँ उसने विधिपूर्वक उसका अपने पिताके साथ व्याह कर दिया। गुणवती पत्नीको पाकर सांतनु बड़ा सुखी हुआ; जैसे कि गरीब पुरुष भारी खजानेको पाकर सुखी होता है। गुणवतीको गांधिका और योजनगंधिका भी कहते हैं। कुछ काल बाद उसके गर्भसे खोटी आदतोंसे रहित और उत्तम अभ्यास करनेवाला एक व्यास नाम पुत्र पैदा हुआ। वह पापको घटानेवाला धर्मात्मा था। सबाका स्वामी था। उसकी भामिनीका नाम था सुभद्रा। वह बड़ी भद्र थी। उसके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे क्रमसे धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर। ये तीनों बहुत ही सुन्दर थे। बड़े बली और बलसे उद्धत थे।

भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नाम देशमें एक भोगपुर नाम नगर है। वह अतिशय शोभाशाली है। उसमें सभी भोग-सामग्री मौजूद है, जिससे वह इन्द्र आदि देवता-गणके स्वर्ग-स्थानको भी जीतता है। आदिनाथ प्रभु द्वारा स्थापित हरिवंशका प्रभंजन नामका वहाँ राजा था। उसे सभी सुख प्राप्त थे। वह सुखका सागर था। उसकी प्रियाका नाम था मृकंडू। वह रूपवती, लावण्यवती और भाँति भाँतिके भूषणोंसे विभूषित थी। उसके गोल और कठिन स्तन थे तथा केलेके खंभेकी नाई सुन्दर जाँघें थीं। अधिक कहाँ तक कहा जावे वह इन्द्रकी शचीसे किसी भी बातमें कम न थी।

कौशाम्बी नगरीमें एक सेठ रहता था। उसका नाम था सुमुख। वह सुन्दर मुखवाला और धनी था। उसने किसी वक्त धन-दौलतके लोभमें आ

वनमाला नाम वीरदत्तकी स्त्रीको हर लिया था । एक समय उसने मुनिको आहार दान दिया, जिसके प्रभावसे वह मर कर प्रभंजन राजाके यहाँ सिंहकेतु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ । वह अपने तेजसे सूरजको भी जीतता था ।

उसी हरिवर्ष देशके शीलनगरमें वज्रघोष नाम एक राजा था । उसकी प्रियाका नाम था सुप्रभा । उसके गर्भसे वनमालाका जीव विद्युत्प्रभा नाम पुत्री उत्पन्न हुई । वह सुन्दर रूपवाली और मन तथा नेत्रोंको आनंद देनेवाली थी । कुछ काल वाद उसका विवाह सिंहकेतुके साथ हो गया । उधर वह वीरदत्त मरकर चित्रांगद नाम देव हुआ । एक दिन सिंहकेतु और विद्युत्प्रभा दोनों वनमें क्रीड़ा कर रहे थे । उन दम्पतीको उस चित्रांगद नाम देवने हर लिया। वह उन दोनोंको मारना ही चाहता था कि उसके मित्र सूर्यप्रभ देवने उसे मारनेसे रोक दिया और वह मान भी गया । तात्पर्य यह कि उसने उन्हें मारा नहीं, किन्तु चम्पानगरीके वनमें छोड़ दिया । फिर वे दोनों देव स्वर्गको चले गये । दैवयोगसे इसी समय चंपानगरीका चंद्रकीर्ति नाम राजा मर गया था । उसके कोई भी सन्तान न थी । अतः राजाके निश्चयके लिए हाथी छोड़ा गया । हाथी वनमें आया और उसने इन दम्पतीका अभिषेक किया। इन्हें वहाँका राज-पद मिल गया । उस समय सिंहकेतुने अपना सारा हाल वहाँके लोगोंसे कहा; जिसको सुनकर वे वहुत हर्षित हुए और उन्होंने सिंहकेतुकी खूब पूजा-स्तुति की। तथा मृकंडूका पुत्र होनेसे उन्होंने उसका मार्कण्डेय नाम प्रसिद्ध किया। इसके वाद हरिगिरि, हेमगिरि, वसुगिरि आदि राजोंकी वंशपरम्परा चली । उसके वाद सूर और वीर ये दो भाई भाई राजा हुए । सूरकी रानीका नाम सुरसुन्दरी था । वह अपनी सुन्दरतासे देवांगनाओंकी समता करती थी । कुछ काल वाद सूर और सुरसुन्दरीके अन्धकवृष्टि नाम नीतिका ज्ञाता एक पुत्र पैदा हुआ। उसकी भार्याका नाम था भद्रा। वह वड़ी भद्र थी और कल्याणके मार्ग पर चलनेवाली थी। उसका मुख चाँदके जैसा था। कुच मनोहर थे। दृष्टि चंचल थी, जिसके लोगोंपर पड़ते ही उनका दिल चंचल हो उठता था। अन्धकवृष्टिके भद्राके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी नीतिके ज्ञाता थे। प्रसिद्ध और उत्तम पुरुष थे। उनका मस्तक विशाल और सुन्दर था। वहुत क्या कहें वे दस धर्मसे देख पड़ते थे। उनके क्रमसे नाम थे—समुद्रविजय, स्तिमितसागर, हिमवंत्, विजय, अचल, धारण, पूरण, सुवीर, अभिनंदन और वसुदेव । वसुदेव वास्तवमें वसुदेव—धनदेव—ही था; महावलि और सुभट था । एवं अंधकवृष्टिके

दो पुत्रियाँ हुईं । एक कुन्ती और दूसरी मद्री । कुन्ती नाना कलाओंमें निपुण और कुचरूपी कुंभोंके भारसे नम्र थी । पूरे चाँदके समान सुन्दर उसका मुख था और उन्नत नितम्ब थे तथा कमर विल्कुल पतली थी । वह अपने शरीरकी कान्तिके द्वारा हमेशा अंधेरेको दूर करती थी । अपनी कटाक्ष-रूप-सुधा-धारासे देवांगनाओंको भी जीतती थी । एवं मद्री भी मूर्त्तिमान् अनंग—कामदेवकी समता करती थी । जान पड़ता था कि अनंगने यह शरीर ही धारण कर लिया है । वह अपने कटाक्षोंसे देवों और पंडितोंको भी जीतती थी । एवं देवतोंकी वरावरी करती थी । यहाँ गणधर प्रभु कहते हैं कि श्रेणिक ! अव हम क्रमसे समुद्रविजय आदिकी परस्परमें प्रीति रखनेवाली प्रियाओंके नाम कहते हैं । सो तुम सुनो ।

सुखकी खान शिवादेवी, गंभीर स्वरवाली धृतिधात्री, सुन्दर प्रभावाली स्वयंप्रभा, नीतिसे चलनेवाली सुनीता, सीताके समान ही सुन्दराकृति सीता, मीठे वचन बोलनेवाली प्रियवाक, प्रभारूप भूषणवाली प्रभावती, सोनेकी नाँई उज्ज्वल कलिंगी, सुन्दर प्रभावाली सुप्रभा ये क्रमसे नौकी स्त्रियोंके नाम हैं ।

समुद्रविजय आदिका सुवीर नाम एक भाई मथुरामें रहता था । उसकी प्रियाका नाम था पद्मावती । सुवीर और पद्मावतीके भोजकवृष्टि नाम एक पुत्र था । उसकी प्रेयसीका नाम सुमति था । वह सुन्दर मुखवाली और उत्तम ज्ञान-वाली थी । उसका मन वहुत निर्मल था । भोजकवृष्टिके सुमति प्रियाके गर्भसे उग्रसेन, महासेन और देवसेन नाम तीन पुत्र उत्पन्न हुए । वे लोगोंको आनंद देनेवाले और अपनी वहिनको खुश करनेवाले थे । उनकी वहिनका नाम था गांधारी । वह वड़ी धीरवीर और गुणोंकी खान थी । पूरे चाँदके समान सुन्दर उसका मुख था । वह नम्र और चतुरा थी; गोल और कठोर कुचोंवाली थी । उग्रसेन आदिकी स्त्रियोंके क्रमसे पद्मावती, महासेना और देवसेना ये नाम थे । ये तीनों ही हँसमुखी थीं ।

राजगृहका राजा वृहद्रथ था । वह इन्द्र जैसा सुशोभित था । उसकी सभामें वड़े वड़े राजा महाराजा उपस्थित रहते थे । वह राज-सिंह था । उसकी भामिनीका नाम था श्रीमती । वह वहुत ही सुन्दरी थी । जान पड़ता था कि वह दूसरी लक्ष्मी ही है । वृहद्रथ और श्रीमतीके एक जरासंध नाम पुत्र हुआ । वह भी वहुत प्रतापी और तेजस्वी था; तथा भरतक्षेत्रके तीन खंडोंका स्वामी

था । राजोंके राजा भी उसकी सेवा करते थे । वह प्रतिनारायण था । शठोंकी शठताका वह बहुत अच्छा इलाज करता था ।

एक समय व्यासने कुन्तीके पिता अंधकवृष्टिसे पांडुके लिए सुकेशी कुन्तीकी याचना की । तव अंधकवृष्टिने इस पर अपने पुत्रोंके साथ एकान्तमें विचार किया और यह निश्चय किया कि पांडुको कुष्ट रोग है, इस लिए उसे कन्या देना योग्य नहीं । इसके वाद पहलेकी भाँति व्यासने कुन्तीके सम्बन्धमें अंधकवृष्टिसे वार वार प्रार्थना की; परन्तु उसे सफलता प्राप्त न हुई । तात्पर्य यह कि अंधकवृष्टिने पांडुके लिए कुन्तीका देना स्वीकार न किया । आखिर व्यास अपने चित्तमें धीरज धर कर चुप रह गया ।

उधर इन्द्र जैसी विभूतिका धारक पांडु राजा कुन्तीके रूप पर निछावर हो चुका था । उसके विना उसे एक मिनट भी चैन न थी; जैसे कि रतिके विना कामदेवको कल नहीं पड़ती । पांडुताका स्थान पांडु राजा कुन्तीका स्मरण करता करता ज्वरवाले पुरुषकी नाँई विह्वल और भूतग्रस्त पुरुषकी भाँति अस्थिर-चित्त हो गया था । कुन्तीके वियोगसे उसका शरीर झुलससा गया था, जैसे वज्रपातसे शालवृक्ष झुलस जाता है; परन्तु तो भी उसके भस्मकी भाँति पांडुके शरीरकी अपूर्व ही शोभा थी ।

एक दिन पांडु वनमें क्रीड़ाके लिए गया; और वहाँ वह फूलोंके उपहारकी शय्यावाले लतामंडपमें क्रीड़ा करने लगा । इतनेमें वहाँ पड़ी हुई उसे एक अँगूठी देख पड़ी । वह उसके पास गया और उसने उसे उठा लिया । इसी समय इधर उधर कुछ देखते फिरते हुए किसी विद्याधर पर पांडुकी दृष्टि जा पड़ी । उसे देखकर पांडुने पूछा कि भाई, तुम क्या खोजते फिरते हो ? उत्तरमें विद्याधरने कहा कि मैं मेरी अँगूठी खोजता हूँ । यह सुन पांडुने उसे अँगूठी दिखाकर कहा कि महान पुरुषों द्वारा मान्य और विद्याधरोंके अधिपति ! आप अँगूठी खोजनेका कष्ट काहेको उठाते हैं; आपकी अँगूठी तो यह है । हे खगपति ! कहिए कि आपकी यह अँगूठी खोई कैसे गई थी ? इस पर विचारशील विद्याधर वोला कि मै विजयार्द्ध पर्वतका निवासी वज्रमाली नाम विद्याधर हूँ । मैं अपनी प्राणप्यारीके साथ इस सघन वनमें सुख-क्रीड़ा करनेको आया था, और क्रीड़ा कर जव यहाँसे वापिस लौटा उस समय भूलसे विमानके किसी छिद्र द्वारा मेरी यह अँगूठी गिर गई । मुझे इसकी खवर न पड़ी ।

और मैं वेगसे विमान लिये चला गया। पीछे जब कुछ देरमें याद आई तब उस प्राणप्यारी अँगूठीको खोजनेके लिए मैं लौट कर यहाँ आया हूँ। उसकी बात पूरी ही न हो पाई थी कि बीचमें ही पाँडु बोल उठा कि इसके द्वारा आप कौनसा काम साधते हैं। विद्याधरने कहा कि यह अँगूठी मनचाही वस्तु देनेवाली है। इसके द्वारा जैसा रूप चाहें बना सकते हैं। यह यथेष्ट रूपकी देनेवाली है। यह सुन पांडु कहने लगा कि मित्र! यदि यह ऐसी है तो कुछ दिनोंके लिए मुझे दे दीजिए। मैं इसे हमेशा अपने हाथकी उंगुलीमें पहनूँगा; और पीछे कार्य सिद्ध हो जाने पर आपको वापिस दे दूँगा। इस तरहकी प्रार्थना करने पर उस परोपकारी वज्रमाली विद्याधरने पांडुको वह अँगूठी देदी। उसने विचारा कि जड़ मेघतो बिना याचनाके ही दूसरोंको मीठा—ठंडा—जल पिलाते हैं और मैं चेतन होकर यदि याचना करने पर भी अँगूठी न दूँ तो मैं जड़ मेघोंसे भी गया बीता हो जाऊँगा।

अँगूठीको उँगलीमें पहिन कर वह सूरीपुरको चला गया, जहाँ कि सूर राजा रहता था। वहाँ रातके वक्त उसने अँगूठीके प्रभावसे अदृश्य रूप बनाकर अन्तःपुरके रनवासमें प्रवेश किया; तथा कुन्तीके रूपकी मन ही मन कल्पना करता हुआ वह उसके महलमें पहुँचा। कुन्ती आसन पर बैठी हुई थी। सुन्दर वस्त्र पहिने थी। उसका शरीर सुडौल, कोमल और रूप लावण्य-वाला था। वह कामदेवकी रतिके समान ही देख पड़ती थी।

उसने कामदेवको अपने भुजारूप दंडोंसे विशेष दंडवाला कर दिया था, अत एव कामके जोरसे वह मदनातुर हो रही थी; उसके हृदयमें कामदेव बस गया था। वह मदके उन्मादसे विलक्षण ही विनोद करती थी। उसका मन बहुत गंभीर था। सारांश यह है कि यह सब बातें उसमें थीं, पर वह इनको अपने गहरे मनके सिवा किसीके कर्ण-कुहरमें नहीं जाने देती थी। उसके गोल और कठिन कुचोंके भार और भारी नितम्बोंके भारसे उसकी कमर बिल्कुल पतली हो गई थी। ठीक ही है कि चाहे कोई भी हो, जो मध्यस्थ होता है उसे तकलीफ सहनी ही पड़ती है। जयशील अनंग—कामदेव—जब सारे संसारको एकदम जीत चुका और उसे कहीं भी रहनेको जगह न रही तब घूमता फिरता वह इसके पास आया और इसके कुचोंमें स्थिर हो गया। यदि ऐसा नहीं हो तो फिर कुचोंके स्पर्शसे वह प्रगट क्यों हो आता है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि महादेवने कामको जला डाला था। परन्तु काम फिर भी लोगोंको पीड़ा देता है। अतः यहाँ यह प्रश्न उठता है कि वह जीवित कैसे हो गया ? इसके उत्तरमें कवि उत्प्रेक्षा करता है कि कुन्तीके जघन-स्थलको सूंघ कर कामदेव जीवित हो गया है; जैसे कमलों पर उड़नेवाला भौंरा उनके रसको पीकर होशमें आ जाता है। यह अचम्भेकी बात है कि चित्रके जैसी लिखी हुई होकर भी वह विचित्र आकारोंको धारण करती थी। उसके नेत्र चित्रमें लिखे हुए हरिणके नेत्रों कैसी आभावाले थे; परन्तु फिर भी वे मनुष्यके नेत्र रूप हरिणोंको बाँध लेते थे। यह सब देख-कर पांडुने सोचा कि इसके बिना मैं अब अपना व्यर्थ ही समय खो रहा हूँ; और वह एकदम मान-मद छोड़ कर प्रगट हो गया। इस समय चंद्र जैसे मुँहवाले और कान्तिके सदन पांडुको देखकर कुन्तीका दृढ़ शरीर कुचों-सहित काँप गया। वह उसकी सुन्दरता देखकर विचार करने लगी कि इसका ललाट ही इतना कान्तिशाली है या इसमें अष्टमीका आधा चाँद खचित हो रहा है। इसके शिर पर यह केश-पास है या काम-अग्निकी शिखा है। इसके सुन्दर कपोल-रूप भीतोंमें कामदेव ही चित्रित हो रहा है; क्योंकि यदि ऐसा नहीं हो तो इसके कपोलोंको देखकर स्त्रियोंका काम उद्दीप्त क्यों हो जाता है। इसके वक्षःस्थलमें हारके छलसे लक्ष्मी ही रमती है, क्रीड़ा करती है। यदि ऐसा नहीं हो तो फिर इसके हृदयको पाकर अर्थात् इसके मनमें स्थान पाकर पुरुष लक्ष्मीवाले क्यों हो जाते हैं। इसकी दोनों भुजाएँ भोगने योग्य स्त्रियोंको बाँधनेके लिये मानों दो पाश ही हैं। ऐसा न हो तो फिर उन भुजाओंको देखकर स्त्रियाँ बँधीसी क्यों हो जाती हैं। कुन्ती विचारती है कि इसके मुँहमें तो सरस्वती रहती है—सोती है, हृदय-मन्दिरमें लक्ष्मी निवास करती है तथा शरीरमें शोभा रहती है। अब मैं इसके किस भागमें रहूँगी—स्थान पाऊँगी। तात्पर्य यह कि इसके सभी स्थान तो और औरने घेर लिये हैं, अब मुझे कहाँ जगह मिलेगी; मैं कहाँ रहूँगी। यह सूरज है कि चाँद है; इन्द्र है या घमंडी काम है; धरणेन्द्र है कि किन्नर देव है। यह सीमा युक्त, दुर्लंघ्य और विघ्न-बाधाओंसे रहित मेरे मन्दिरमें कैसे और किस लिये आया है। इतना सोच विचार कर उसने साहसके साथ कहा कि हे साहसशाली ! आप कौन हैं और किस कपटसे मेरे महलमें आये हैं। कुन्तीके इन वचनोंको सुनकर उसके आलिंगनके लिये जँभाई लेता हुआ श्रमी, वाग्मी, तत्वज्ञ और कृतज्ञ पांडु बोला कि हे सुश्रोणि ! यदि तुम्हें सुननेकी

इच्छा हो तो मनके मैलको दूर कर सुनो। पतिंवरे, प्रसिद्धे और वीरे! मैं तुमको सब हाल सुनता हूँ। जरा ध्यान देकर सुनो।

कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनागपुर नाम नगर है। वहाँ धृतराष्ट्र राजा रहते हैं। मैं उनका छोटा भाई हूँ। मुझे सब कोई जानते हैं। मैं समता-भावको और क्षमाको धारण करनेवाला हूँ। लोग मुझे पांडु पण्डित कहते हैं। क्योंकि मेरेमें संसार भरकी पाँडुता आकर इकट्ठी हो गई है। मेरी आज्ञाको कोई लाँघ नहीं सकता और ऐश्वर्यमें दखल नहीं दे सकता। अतः मैं इन्द्रके तुल्य हूँ। और जिस तरह योगी जन आत्माका, कामदेव रतिका और कामी पुरुष स्त्रीका स्मरण करते हैं उसी तरह तुम्हारा स्मरण करता हुआ, कामातुर हो मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मेरा मन बिल्कुल तुम्हारे अधीन हो चुका है; वह अब मेरे वशमें नहीं है।

पांडुके इन वचनोंको गौरके साथ सुन चुकने पर वह बोली कि राजन्! मैं अभी बिना ब्याही हूँ। अतः यदि इस समय यह कार्य होगा तो लोगोंमें बहुत अफ़वाह उड़ेगी और बड़ी बदनामी होगी। दूसरी बात यह कि पिताकी आज्ञाके बिना वीरा और कुलवती कन्याएँ अपने आप किसीको अपना वर भी नहीं बनातीं। इस लिये आप इस अयुक्त बातको न कह कर जो सर्व-सम्मत हो वही बात कहिए। इस पर कामकी पीड़ासे पीड़ित पांडुने उत्तरमें कहा कि कामिनि, तुम्हारे नामके 'कुन्ती' इन दो अक्षरोंके मंत्र द्वारा खींचा गया तो मैं यहाँ तक आया हूँ और यदि इस समय कामकी आज्ञाको लाँघू तो हे भीरु! मुझे बहुत डर लगता है कि काम न जाने मुझे आज्ञा भंगकी क्या सजा देगा। यह मेरे हृदयको जर्जरित किये डालता है। कामदेवके भयसे कामसे पीड़ित हुए पुरुषोंकी मृत्यु तक हो जाती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इस लिये तुम मेरे वचनोंको अपने हृदयमें स्थान दो और वहाँसे लज्जा-रूपी बेलकी जड़को उखाड़ दो। वास्तव बातको जाननेवाली होकर भी तुम लोकापवादका भय करती हो। देवी, मदोन्मत्त काम-रूपी हाथी मदसे उद्धत होकर नीति-रूप अकुंशको नहीं मानता और स्वच्छन्द हो इधर उधर—जहाँ उसका मन चाहता—घूमता है। और भी सुनो कि तभी तक लोक-लाज रहती है; तभी-तक धर्म-वृक्ष हराभरा रहता है और तभी तक शास्त्रज्ञान रहता है जब तक कि काम-रूप हाथी कोप नहीं करता; उद्धत नहीं होता। बस, अब बहुत बात चीतसे कोई लाभ नहीं; किन्तु अन्तिम बात यह है कि या तो अपने शरीरका मेरे हाथमें दे दो या मेरी मृत्युको अपने हाथमें ले लो। देवी, तुम डरो मत; आलिंगन

दो। यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि देखो, कामी पुरुषोंकी ऐसी गति होती है। वे योग्य-अयोग्यका कुछ भी विचार नहीं करते—उनके हृदयसे विवेक कूच कर जाता है। पांडु कहता है कि दयाधर्मको पालनेवाली देवी, अब देर मत करो; किन्तु जल्दीसे मन दो, वचन दो, और काम भी दे डालो; क्योंकि तुम्हारे दिये हुए दानके बिना अब मुझे कल नहीं पड़ती; सन्तोष नहीं होता। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि अर्थी पुरुष दानसे ही सुखी होते हैं। कामसे रुचि रखनेवाली और उत्तम बुद्धिवाली देवी, यदि तुम्हें मेरा यह कहना रुचता हो तो तुम जल्दीसे कामके मदको दूर करनेवाली क्रीड़ा करो। देखो, इच्छावाला पुरुष दाताके पास जाता है और दाता उसकी इच्छाको पूरी करता है। इसमें यही एक कारण है कि याचना भंग करना संसारमें शोभा नहीं पाता—इसे लोग अच्छा नहीं कहते। हे घूर्णिते! अब तो तुम आलसको छोड़ दो और मेरी प्राघूर्णक विधि—पाहुनगत—करो; क्योंकि मैं तुम्हारा प्राघूर्णक—पाहुना—हूँ। देखो, अब मेरी याचनाको भंग मत करो। कामदेव बहुत ही निष्ठुर है, वह हमेशा ही नर-नारियोंको दुःख देनेके लिये तैयार रहता है और अपने धनुषको कान तक खींच कर पाँच बाणों द्वारा उन्हें दुःख दिया करता है। और इसी लिये यह कहा जाता है कि तभी तक लाज और कुल रहता है, तभी तक भय और मर्यादा रहती है तथा तभी तक माता-पिता और परिवारकी आन रहती है जब तक कि कामदेव कोप नहीं करता। इतनी बात चीतके बाद उन दोनोंने मदातुर होकर लाज-रूपी परदेको छेद-भेद डाला और बहुत कालके वियोगके कारण उस समय सारी काम चेष्टायें कीं। पांडुने कुन्तीके गलेमें हाथ डाल दिया और—जिस तरह कमलको भौंरा चूमता है उसी तरह—उसके मुँह पर अपना मुँह रखकर वह उसका चुम्बन लेने लगा। वह कमलकी गंधको सूँघ लेने मात्रसे उन्मत्त हुए भौंरेकी तरह उसके अपूर्व मुँहकी गंधको सूँघ कर बड़ा सन्तुष्ट हुआ—उन्मत्त सा हो गया। वह उसके वस्त्रको कभी सिकोड़ देता और कभी फैला देता। इस तरह दोनों भुजाओंसे उसका बार बार आलिंगन कर वह उसके साथ भोग-क्रीड़ा करने लगा। हाथीके कुंभ-स्थलकी नाँई ऊँचे उसके दोनों कुच-रूप कुंभों पर पांडुके दोनों हाथ ऐसे जान पड़ते थे मानों वे निधिके लोभी सुखी और आसक्त दो पुरुष ही इन कुंभोंकी सेवा करते हैं। वियोग-रूपी गरुड़से डरा हुआ और स्त्रीमें दत्तचित्त वह उसके कुच-रूप वनमें क्रीड़ा करने लगा, जैसे गरुड़से डरा हुआ साँप चंदन-वनमें क्रीड़ा करता है। वह कभी उछलता, कभी चुम्बन लेता, कभी हास-विलास और

कभी और और क्रीड़ायें करता था। वे दोनों एक दूसरेके ऊपर आसक्त होकर बहुत ही प्रसन्न हुए और एक ऐसे विचित्र भावको प्राप्त हो गये, जो कि वचनोंसे बाहिर है। उन दोनोंने एक दूसरेका आलिंगन और स्पर्शन करके कुछ काल तक सुखका अनुभव किया। वे परस्परमें एक दूसरेके मुँहको सूँघते थे और जँभाई लेते थे। इस प्रकार काम-सुखसे प्यारी प्रेयसीको प्रसन्न कर वह पांडु पण्डित स्वयं भी खूब प्रसन्न हुआ। ठीक ही है, प्रियासे किसे संतोष नहीं होता। इस तरह अदृश्य-रूपको बनाकर वह अपवित्र हमेशा ही कुन्तीके यहाँ आता जाता रहा और निःशंक होकर उसके साथ काम-क्रीड़ा करता रहा। एक दिन दैवयोगसे कुन्तीके साथ बैठे हुए उसे कुन्तीकी धायने प्रत्यक्ष आखों देख लिया और वह मन-ही-मन सोचने लगी कि यह कौन है? कहाँसे और किस लिये यहाँ आता है? इसके बाद जब वह चला गया तब कुछ बनावटीसे नाराजीके दिखाकर, अधीर हो, उस धायने व्यग्र मनसे कुन्तीको पूछा कि पुत्री, एक अचम्भेकी बात है, जो मेरे चित्तको चंचल और विदीर्ण करे डालती है। कहते तो सही, यह कौन है? और हर दिन कहाँसे तेरे पास आता है? यह सुन कर कुन्तीके मनमें बड़ी घबराहट हुई। उसकी नेत्र चंचल हो गये। शरीर बिल्कुल अचल हो गया। उसमें लोहूका संचार बन्द हो गया। वह कुछ लड़खड़ाती हुई जबानसे, बड़े कष्टके साथ, बोली कि माता! तुम मेरी इस खोटी कृतिको कान देकर सुनो। मैं तुमसे जैसीकी तैसी बात कहे देती हूँ। बात यह है कि कर्मके वश हो कर कामी पुरुष चाहे जैसे दुष्कृत्योंको भी कर डालते हैं। देखो, कर्मके अधीन होकर किस किसने कष्ट नहीं उठाया और कौन कौन नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुए। रावण आदि तो नीतिके अच्छे ज्ञाता थे; परन्तु कर्मके झकोरेसे वे भी न बचे—उनको भी आपत्तिका सामना करना पड़ा। माता, कर्मके निमित्तसे नहीं होनेवाली घटना तो हो जाती है और होनेवाली आसानसे आसान भी घटना दूर चली जाती है। कर्मके सम्बन्धमें कहाँ तक कहा जावे, इनके निमित्तसे वे वे काम हो जाते हैं, जिनका बड़े बड़े महात्मा और चतुर पुरुषोंने भी कभी स्वप्नमें विचार नहीं किया। माता, एक दिन संध्याके बाद अकस्मात् ही कर्मका प्रेरा यह पुरुष मेरे पास आया। ठीक ही है, कि कर्म क्या क्या नहीं करता। मेरी और इसकी परस्परमें बातचीत हुई। उस समय मैं कर्मकी प्रेरी हुई अचल चित्तवाली होकर भी इस भोगार्थदर्शी महान पुरुषके द्वारा जीती गई। तात्पर्य यह कि बातचीतमें उसने मुझे अपनी ओर झुका लिया, पर मैं

उसे अपनी ओर न झुका सकी। यह कुरुदेशके राजा व्यासका पुत्र है। इसे पांडु पण्डित कहते है। इसकी आकृति—द्युति—बिल्कुल पाँडु (सफेद) है, जान पड़ता है कि इसी लिए इसका नाम पांडु पड़ा है। यह मेरे रूपको सुनकर मुझ पर बड़ा आसक्त चित्त था। इतनेमें उद्यान-मन्दिरमें इसे वज्रमाली विद्याधर द्वारा एक इच्छित रूप देनेवाली अँगूठी मिल गई। उस अँगूठीके प्रभावसे अदृश्य रूप बनाकर, मेरे साथ रमनेकी इच्छासे, यह मेरे पास आया था।

कुन्तीके ऐसे वचनोंको सुनते ही धायका सारा शरीर काँप उठा; और शरीर-कम्पके सम्बन्धसे पृथ्वी भी हिल गई। वह बोली कि प्यारी पुत्री, दुष्ट कामके वश हो तुमने यह क्या विरूप कर डाला है। देखो, नीतिके विद्वानोंने कैसी अच्छी शिक्षा दी है कि स्त्री चाहे बाला हो चाहे वृद्धा, लिखी पढ़ी हो चाहे निरी अपढ़, अंग-हीन हो चाहे युवती और कैसी ही सुन्दरी क्यों न हो उसे पुरुषसे हमेशा दूर ही रहना चाहिए। नहीं तो कभी न कभी अवश्य ही अनिष्ट होगा। बाले, भला इस बातको लोग क्या जानेंगे कि इस पुरुषने ही कन्याके साथ जबरदस्ती की है और कन्या सर्वथा निर्दोष है। वे तो यही कहेंगे कि कन्याने यह बहुत बुरा काम किया है। इसके सिवा इस दुष्कर्मसे कमलकी नॉई स्वच्छ और कलंक-रहित तुम्हारे कुलमें भी तो कलंक लग जायगा। और यह तो बताओ कि जब इस दुष्कृत्यको पिता वगैरह विचारशील पुरुष सुन पाँवेगे तब तुम्हारी और मेरी दोनोंकी ही क्या दशा होगी?

यह सुनते ही कुन्तीका शरीर काँपने लगा और देखते ही देखते सिकुड़ गया; एवं उसकी कान्ति वगैरह सब हो विदा हो गई। वह बड़ी डरी और निसासें छोड़ने लगी तथा गद्गद हो दीन स्वरमें कहने लगी कि माता, तुमने मुझे पाला और पोषा है, अतः तुम मातासे भी बढ़ कर मेरी महा माता हो और सभी योग्य-अयोग्य बातोंको जानती-समझती हो। इस लिए मेरे ऊपर कृपा कर तुम इस वक्त मुझे मेरा कर्तव्य बताओ। इसीमें मेरी भलाई है। तुम सभी तरह मेरे मनोरथोंको पूरा करनेके लिए समर्थ हो, अतः इस समय अब तुम मेरे छल-प्रपंचको मत देखो; किन्तु मेरे दुःशीलको पवित्र करो—सुधारो और दयाका परिचय दो। माता, मरनेके सिवा अब और तरह मेरी पीड़ा नहीं जा सकती; इस लिए अब मैं शीघ्र ही अपने प्राण पखेरुओंको उड़ा देनेकी कोशिश करूँगी। कुंतीके ऐसे भारी दुःखभरे शब्दोंको सुनकर धीरा और सभीको आनंद देनेवाली

वह धाय बोली कि मनमोहनी प्यारी पुत्री, तुम कुछ भी भय और चिन्ता मत करो, दिली मैलको धो डालो; तथा भरोसा कर लो कि जिस उपायसे तुम्हारी भलाई होगी मैं वही उपाय सोच निकालूँगी। तुम्हें इस सम्बन्धमें तनिक भी चिन्ता नहीं करना चाहिए। तुम तो सुखके साथ अपना समय बिताओ। धाय धैर्य देनेमें बहुत ही दक्ष थी। उसने उक्त प्रकार कुंतीको खूब ढाढ़स दिया और आप स्वयं राज-महलमें रहकर अपना समय विताने लगी।

इसके बाद नय-नीतिको जाननेवाली उस धायने कुंतीके दोषोंको जहाँ तक बन सका बहुत दिनों तक छिपाया। धीरे धीरे कुछ ही दिनोंमें पांडुके सम्बन्धसे कुन्ती गर्भवती हो गई; और धीरे धीरे उसका गर्भ वृद्धिंगत होने लगा। इस समय गर्भको देखकर लोगोंको भाँति भाँतिकी भ्रांति होती थी और वह गर्भ भी अपूर्व शोभा पाता था। गर्भके प्रभावसे कुछ ही कालमें कुन्तीका उदर कड़ा पड़ गया और त्रिवली मिट गई। इस तरह उसके गर्भका पहला चिन्ह प्रगट दीख पड़ने लगा। उसका मुँह पीला पड़ गया। थूक अधिक आने लगा। बोल-चाल कम हो गया। एवं उसके नेत्र सुन्दर-सुहावने देख पड़ने लगे। साड़ीके आँचलसे प्रच्छन्न (ढके हुए) कुच-कुंभ उन्नत और सोनेकी आभा जैसे पीले हो गये। एवं जिस तरह जलसे सींची गई वेल, फूल और पत्तों द्वारा शोभा पाने लगती है उसी तरह गर्भ-भारसे कुचोंके भारको वहन करनेवाली कुन्ती भी शोभा पाती थी।

एक दिन दैवयोगसे गर्भ-भारके श्रमसे थकी हुई कुन्तीको उसके माता-पिताने देख लिया। देखकर वे बड़े चिन्तित हुए। धायसे वे बोले कि क्योंरी तू बड़ी दुष्टा है, तुझे नाम मात्र दया नहीं। हे नीच और अनिष्टोंको पैदा करनेवाली, तूने कुन्तीसे यह अनिष्ट किस पुरुषके समागमसे कर-वाया। क्या तू नहीं जानती कि पुत्री और पुत्र-वधू ये दोनों चाहे कितने ही ऊँचे कुलकी क्यों न हों यदि स्वतंत्र रहेंगी तो जार-संसर्ग द्वारा पवित्रसे भी पवित्र कुलमें कलंक लगा देंगी। और इसी विचारसे ही हमने रक्षाके लिए इसे तेरे सुपुर्द किया था। पर तूने ऐसी रक्षा की, जो प्रगट ही दीख पड़ती है। यह इतनी बड़ी गलती हुई है कि इसके सम्बन्धसे राजों महाराजोंकी सभामें हमें नीचा मुँह करना पड़ेगा और लाजके मारे हमारे शरीर पर स्याही फिर जायगी। एवं इससे हमें बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। नीतिके

विद्वानोंने कहा है कि स्त्री नदीके तुल्य होती है; कारण कि रस-संस्कार (जल-प्रवाह) के द्वारा जिस तरह नदी अपने किनारोंको गिरा देती है उसी तरह शृंगारादि रस और संस्कारोंके द्वारा स्त्री भी अपने कुलको दाग लगा देती है। इस लिए चाहे वे वड़े वड़े पुरुषोंके द्वारा ही रक्षित क्यों न हों, पर तो भी नागिन, नखवाले पशुपक्षी, नारी और दुष्ट पुरुप इनका भूलकर भी भरोसा नहीं करना चाहिए। और इसी लिए कहा जाता है कि पुरुषोंको स्त्रीका कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। और जब वह कामासक्त हो तब तो उसकी छाँह भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहिए। जरा सोच कर तो देख कि स्वभावसे ही लोगोंको सतानेवाली नागिन कष्ट दिये जाने पर कभी विश्वास करने योग्य हो सकती है? अरी दुष्टा, अब तू ही विचार कि हमने तो पुत्रीको रक्षाके लिए तेरे सुपुर्द किया था और तूने विना विचारे ही बिल्लीवाली कहावत कर दिखाई। वह यह कि यदि विल्लीको रक्षाके लिए दूध सौंप दिया जाय तो वह रक्षाकी जगह स्वयं ही उसे भक्षण कर जायगी। सो ही तूने किया। यह तेरा कृत्य सर्वथा अक्षम्य है। कुन्तीके माता-पिताके ऐसे डाट-डपट भरे शब्दोंको सुनकर धाय बड़ी भयभीत हुई। उसे कुछ भी उपाय न सूझ पड़ा। उसका सारा शरीर थर थर काँपने लगा और पसीनेसे बिल्कुल ही तर हो गया। उसके मुँहकी सारी चमक-दमक नष्ट हो गई। वह जैसे तैसे बोली कि राजन्, आप अशरणोंके लिये शरण है, यादव कुलके पालक हैं, दयालु और धर्मात्मा हैं। कृपाकर सावधान चित्त हो मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये। राजेन्द्र, इसमें न तो कुन्तीका अपराध है और न मेरा ही। किन्तु अपराध है पूर्वभवमें किये हुए कर्मका। पूर्वकृत कर्म जीवोंको नटकी नॉई जैसा चाहते नचाते हैं। महाराज सुनिए। कुरुजांगल देशमें पांडु नाम एक राजा है। वह कौरव-वंशी और इन्द्रके जैसी विभूतिका धारक है और अखंड रीतिसे अपने कुलकी रक्षा करता है। एक वार वह कुन्तीके रूप पर आसक्त हो गया और उसके बिना बड़ा क्षोभको प्राप्त हुआ। उसके पिताने कुन्तीके लिये आपसे बहुत बार प्रार्थना की, पर आपने उस पर जब कुछ भी ध्यान नहीं दिया तब वह स्वयं ही कुन्तीसे प्रार्थना करने और उसके साथ रमनेका उपाय सोचने लगा। कारण, उसके हृदयमें कुन्तीके निमित्तसे हमेशा ही काम-अग्नि धँधका करती थी। दैवयोगसे इसी बीचमें एक दिन वनमें उसकी वज्रमाली विद्याधरसे भेंट हो गई और उसके द्वारा भाँति भाँतिके रूपोंको देनेवाली

एक अँगूठी भी मिल गई । अँगूठीको हाथमे पहिन कर वह वहाँसे चला और सूरीपुर पहुँचा । वहाँ रातके वक्त उसने अदृश्य रूप बनाया और वह कुन्तीके महलमें पहुँच गया । उस समय कुन्ती वहाँ अकेली ही थी । उसके पास न तो मैं थी और न दूसरी कोई दासी वगैरह थी । ऐसी हालतमें एकान्त पाकर वह सुन्दराकृति कौरव-वंशी राजा हृदयमें वसनेवाली कुन्तीके साथ गांधर्व व्याह कर उसके साथ प्रति दिन रमने लगा ।

एक दिन एकाएक उसे मैंने कुन्तीके महलमें देख लिया और कुन्तीसे उसका सब हाल पूछा । उस समय कुन्तीने उसका जो हाल मुझे कहा था वह मैंने जैसाका तैसा आपको सुना दिया है । राजन्! इतने दिनों तक तो मैंने पुत्रीकी भरसक रक्षा की और उसके इस दोषको भी प्रगट नहीं होने दिया; परन्तु अब मेरे वशकी बात नहीं रही । अतः इस सम्बन्धमें अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें ।

धायके इन वचनोंको सुन उन दम्पतीने परस्परमें विचार किया और उत्तरमें यह कहा कि तू इस दोषको गुप्त रख; देख, कहीं यह प्रगट न हो जाय । इसके बाद उस धायने कन्याके इस दोषको दबानेका खूब प्रयत्न किया, पर उसे कुछ भी सफलता न हुई । लोगोंके कानोंकान सब जगह वह फैल ही गई, जिस तरह जलमें छोडी हुई तेलकी बूँद सब जलमें फैल जाती है ।

इसके बाद धीरे धीरे जब नौ महीना पूरे हो गये तब कुन्तीने पुत्रको जन्म दिया । पुत्र बाल सूरजकी प्रभाकी नाँई प्रभावाला था । उसके शरीरकी बड़ी शोभा थी । वह कान्तिके पूरसे विभूषित था । पुत्रका जन्म होते ही सूरीपुरमें सब जगह उसकी खबर फैल गई । परन्तु राजाके डरके मारे कोई भी खुले मनसे इस बातको न कह सका । सब गुपचुप कानोंकान एक दूसरेको कहते थे । धीरे धीरे यह किंवदन्ती कुन्तीके पिताके कानमें भी जा पड़ी और उन्हें यह मालूम हो गया कि सबने इस बातको जान लिया है । उन्होंने जन्मकी बात कानोंकान सब जगह फैलनेके कारण उस पुत्रका नाम कर्ण रख दिया तथा मंत्रियोंकी सलाहसे उसे कुंडल वगैरह भूषण और रत्न-खचित कवच पहिना कर एक सन्दूकमें बन्द कर दिया और उसीमें कर्ण नाम लिख कर एक पत्र तथा कुछ द्रव्य भी रख दिया । इसके बाद उस सन्दूकको तेजीसे बहते हुए यमुनानदीके प्रवाहमें छुड़वा दिया ।

यमुनानदीके बिल्कुल किनारे चम्पापुरी नामकी एक नगरी है। उसके महलोंके ऊपरी भागमें सोनेके सुन्दर कलश लगे हुए हैं, जिनसे वह बहुत सुशोभित है। वहाँके मन्दिरों पर धुजायें फहराती हैं, जिनसे ऐसा भान होता है कि मानों धुजा-रूप हाथोंके इशारेसे नगरी उत्तम नर-जन्मको चाहनेवाले और शुद्धमना सुर-असुरोंको बुलाती ही है। चम्पानगरीके चारों ओर जो खाई है, वह ऐसी जान पड़ती है कि मानों यह पाताल लोकमें बहनेवाली यमुनानदी ही है और पाताल-वासियों पर रुष्ट होकर वह यहाँ आ गई है। यद्यपि चाँद रश्मियोंके समुदायसे भरपूर है, भासुर और छिद्र-रहित है; परन्तु तो भी वहाँके ऊँचे शिखरोंवाले मन्दिरोंसे घिसजानेके कारण वह छिद्रवालासा देख पड़ता है। वहाँके मन्दिरोंके शिखर बड़े ऊँचे हैं, इस लिये उनके साथ चन्द्रमाकी मित्रता हो गई; और इसी कारण वह अब विश्रामके लिये वहाँ आकर ठहरता है। ठीक ही है कि बड़ोंके साथ ही बड़ोंकी मित्रता हो पाती है। इसका तात्पर्य यह है कि वहाँके मंदिर-महल बड़े बड़े ऊँचे हैं। वहाँ वासुपूज्य प्रभुके गर्भ और जन्म ये दो कल्याणक हुए हैं; अतः वह पुरी पवित्र है। इसके सिवा उसके पासके वनमें दीक्षा ले केवल-ज्ञान लाभकर कई भव्यजीव मोक्ष-महलमें जा विराजे है। वह नगरी अंग-देशमें है और उसमें भाँति भाँतिके पुरुषोंका निवास है। वह अगणित गुणोंवाली और केलके थंभके समान सुन्दर जाँघोंवाली स्त्रियोंसे भासुर है; एवं स्त्रियोंके भासुर मुख-चंद्रके द्वारा अँधेरेको दूर कर हमेशा ही उद्योत-रूप रहा करती है। वहाँके दानी पुरुष हमेशा ही पात्रोंको दान देते हैं और लाभके निमित्तसे प्रकाश-रूप होकर रत्न और हर्षको पाते हैं। ऐसी अपूर्व नगरीका पालक राजा था भानु। वह हमेशा विवेकी और शिष्टजनोंकी रक्षा करता था और दुष्टोंका निग्रह करता था। उसके प्रतापसे डर कर जो लोग उदासीन हो जाते थे उन विरक्त पुरुषोंका वह आश्रय था। उसमें बहुत गुण थे, अतः वह उनसे भानुके जैसा सुशोभित था। सूरजकी किरणों जैसी उसके शरीरकी कान्ति थी। वह शत्रु-रूप ईंधनको जला डालनेको अग्नि था और प्रतापमें सूरजके जैसा था। उसमें सूरजसे भी यह विशेषता थी कि सूरजका तो रातमें अस्तित्व नहीं रहता; और यह कभी प्रताप और दीप्तिसे हीन नहीं होता था; हमेशा ही उदित रहता था—दशों दिशा-ओंको तेजोमय बनाये रखता था। वह इतना बड़ा दानी था कि उसके दिये

दानको पाकर लोग कल्पवृक्षोंको भी भूल जाते थे । एवं इसके होते हुए वे न तो चिंतामणिको याद करते थे और न कामधेनुको ही । वह बड़ा ज्ञानी था । बड़े बड़े शास्त्रज्ञ भी उसे विद्वान् मानते थे । वह युद्धकलामें कुशल योधा था; प्रतापशाली और शत्रु-पक्षका विध्वंसक था । उसकी प्रियाका नाम था राधा । राधाके लिए भानुने देवतोंकी आराधना की थी । तब कहीं वह उसे मिली थी । वह भी प्रेमकी अन्तिम सीमा ही थी । लोग उसे लक्ष्मीकी उपमा देते थे । कारण कि जैसे लक्ष्मी लोगोंको आनंद देकर सुखी बनाती है वैसे ही वह भी प्रजाको आनंद देकर सुखी करती थी । तात्पर्य यह कि उसकी कृपासे प्रजाका समय सुख-चैनसे बीतता था । लक्ष्मीको लोग शुभ मानते हैं । वह भी शुभ थी; उसके दर्शनसे लोगोंके अभीष्टकी सिद्धि होती थी । सच तो यह है कि उसके रूप-लावण्य, कान्ति-कला, गुण-चतुराई और अटूट सौभाग्यकी कोई विद्वान् तारीफ ही नहीं कर सकता है । वह भानुके हृदयसे लगी हुई सरस्वतीसी जान पड़ती थी । क्योंकि सरस्वतीमें अलंकार वगैरह होते हैं, वह भी अलंकार-भूषण वगैरह पहिने थी । सरस्वती सुरीतियाँ बताती है, वह भी अपनी चाल-ढालसे लोगोंको सुरीतियाँ बताती थी । सरस्वती निर्दोष और गुणवती होती है, वह भी दोषरहित और गुणोंसे युक्त थी । सरस्वती लोगोंके हृदय-मन्दिरमें रहती है, वह भी राजाके हृदय-मंदिरमें निवास करती थी । वह रंभाके जैसी सुन्दर थी; यही नहीं किन्तु उससे भी बढ़कर सुन्दर थी । उसकी जाँघें केलेके थंभेके जैसी सुन्दर थीं । उसकी दृष्टि लोगोंके मनमें विभ्रम पैदा करती थी । वह भोगोंसे पूर्ण और मन-को मोहित करनेवाली होनेके कारण इन्द्रकी इन्द्राणी जैसी शोभती थी । वह बड़ी सम्पत्तिशालिनी थी । विपत्ति उसके पास भी न फटकती थी । यह सब कुछ होने प भी दैवदुर्विपाकसे उसके कोई सन्तान थी ।

एक दिन राजाने एक निमित्तज्ञानीको बुलाया और पूछा कि मेरे यहाँ पुत्र पैदा होगा या नहीं ? इस प्रश्नको सुनकर अष्टांग-निमित्तके पंडित और वाग्मी उस निमित्तज्ञानीने सोचकर कहा कि हे सूरजके जैसे प्रतापशाली और प्रजा-पालक महाराज, मैं निमित्त-ज्ञानसे आपके इस प्रश्नका उत्तर देता हूँ, उसे सावधान चित्त होकर सुनिए । यमुना नदीके किनारे तुम्हें एक संदूक मिलेगी । उसमेंसे एक सुन्दर बालक निकलेगा, जो सारे संसार द्वारा मान्य होगा । इसके बाद कुछ काल बीत चुकने पर ऐसा ही हुआ और एक सन्दूक यमुना नदीके प्रवाहमें बहती हुई किनारे आकर लगी । सन्दूकको बहकर आनेका समाचार सुनकर

बहुतसे नौकर-चाकरोंको साथ ले राजा वहाँ आया और उसने सन्दूकको जलसे बाहिर निकलवाया । इसके बाद उसे खोलकर देखने पर उसमें एक अद्भुत बालक पड़ा हुआ मिला । उसे उठाकर राजाने अपनी गोदमें ले लिया और निमित्त-ज्ञानीके वचनों पर गहरी दृष्टिसे विचार कर वह रानीसे बोला कि प्रिय राधे, तुम शुद्ध विचारोंको अपने हृदयमें स्थान देती हो, समृद्ध और बुद्धिके पारंगत हो, अतः अपने तेजसे सूरजको भी लज्जित करनेवाले इस अतीव मनोहर बालकको ग्रहण करो—गोदमें लो । स्वामीके इन वचनोंको सुनकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई । उसने बड़े हर्षके साथ उस बालकको अपनी गोदमें ले लिया । उसे लेते समय रानी अपने कानोंको खुजा रही थी, अतएव राजाने उसका कर्ण नाम प्रसिद्ध किया । राजा भानुके यहाँ कर्ण कला, शोभा, लक्ष्मी, आदिसे सब प्रकार बढ़ने लगा । उसका तामस—अज्ञान—नष्ट होकर वह सारी पृथ्वीको आनन्द देने लगा । जैसे दोजका चाँद बढ़कर और धीरे धीरे तामस—अँधेरे—को नष्ट कर लोगोंको आनंद देने लगता है ।

पुण्योदयसे जिसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त है, सारे देवता-गण जिसकी सेवा करते हैं, और जिसका शरीर दिव्य है, जो सकल शास्त्रोंका ज्ञाता है, जिसकी शास्त्रके विषयमें हमेशा ही शुभमति रहती है वह कर्ण सारे संसारमें सुशोभित हो ।

जो शास्त्र-श्रवणमें दक्ष है, कला और कीर्तिका स्वामी है, कान्ति-शाली और करुणा-भावसे पूरित है, जिसका चित्त हमेशा ही दयासे भींगा रहता है, जो कुन्तीका पुत्र तथा-कोमल कामिनी-जनोंको सुख देनेवाला है, मनोहर और सुकृती है, लक्ष्मीका स्थान और प्राणी-रूप कमलोंको विकशित करनेके लिए सूरज है वह कर्ण अपनी श्री—कान्ति—से सुशोभित हो ।

नौवाँ अध्याय।

उन शंभवनाथ प्रभुको नमस्कार है, जो सुखके दाता और पापके विध्वंसक हैं, जो संसारसे पार उतारनेवाले हैं, सुखके सागर हैं।

यहाँ गणधर प्रभु कहते हैं कि हे श्रेणिक, लोग बड़े मूर्ख हैं, जो इस तरहसे पैदा हुए कर्णकी कानसे उत्पत्ति बताते है। उसके जन्मकी बात लोगोंमें कानों-कान चली थी, इसलिये तो माताके कुलमें उस सुन्दराकृतिका कर्ण नाम पड़ा और चंपानगरीमें राजा भानुने जिस समय अपनी रानीको इसे सौंपा उस समय वह कान खुजाती थी, अतएव वहाँ भी कान खुजानेके निमित्तसे भानु नरेशने उसका कर्ण नाम रख दिया।

दूसरी बात यह है कि जो लोग जबरदस्ती कर्णकी कानसे ही उत्पत्ति बताते हैं उन्हें इस बात पर भी तो विचार करना चाहिये कि यदि कानसे ही कर्णकी उत्पत्ति हुई हो तो अब भी पृथ्वी पर कान, आँख, नाक वगैरहसे मनुष्योंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती। दूसरी बात यह है कि जब आज तक कान वगैरहसे कभी मनुष्योंकी उत्पत्ति न तो सुनी गई और न देखी ही गई तब फिर कानसे कर्णकी उत्पत्ति कैसे हो गई? यह बात उचित नहीं जान पड़ती। देखो, जिस तरह गायके सींगसे कभी भी दूध नहीं निकल सकता उसी तरहसे तीन कालमें भी कानसे कभी मनुष्य पैदा नहीं हो सकता। और भी सुनिए। जिस प्रकार वाँझ स्त्रीसे पुत्र, पत्थर पर अन्न, आकाशमें फूल और गधेके मस्तकमें सींग, साँपके मुँहसे अमृतकी उत्पत्ति होना असम्भव है उसी प्रकार कानसे कर्णकी उत्पत्ति होना और कहना भी असम्भव है। यदि ऐसा सम्भव होता तो दुनिया विवाह वगैरहकी झंझटोंमें कभी न फँसती; किन्तु कानसे कर्ण जैसे पुत्रोंकी उत्पत्ति करके ही पुत्रवाली बन जाती। राजन्, कानसे कर्णकी उत्पत्ति बताना, यह सब आकाश-के फूलकी सुन्दरताका ही वर्णन है। इसमें कुछ भी सार और सत्य अंश नहीं है। अतः हमने जैसी कर्णकी उत्पत्ति पहले बताई है वही सत्य है और सार है। तुम वैसा ही विश्वास करो। सूरजके समागमसे कुन्तीके कान द्वारा कर्णकी उत्पत्ति होना निरी झूठी बात है। भला मनुष्यनीके साथ सूरजका समागम ही कैसे हो सकता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि फिर कर्णको सूर्यसुत क्यों कहते है। इसका उत्तर यह है कि चंपानगरीके राजा भानुने इसका पालन-पोषण किया

था और भानुका दूसरा नाम सूरज भी है, इसलिये सूर्यसुत नामसे इसकी प्रसिद्धि हो गई। जिस तरह कि नंदगोप नामक गुवालके यहाँ पालन-पोषण होनेके कारण लोग कृष्ण नारायणको भी गोपाल कह कर पुकारते हैं।

अब कौरव-पांडवोंकी शास्त्र और लोकके अनुसार विस्तारसे उत्पत्ति बताई जाती है। सुनिए, एक समय अंधकवृष्टिने नय-नीतिके ज्ञाता अपने पुत्रोंके साथ कुन्तीके विवाह सम्बन्धमें विचार किया। उस समय यह बात उपस्थित हुई कि यदि पांडुके सिवा दूसरेको कुन्ती दी जायगी तो वह व्यभिचारिणी कही जायगी; और एक बात यह भी है कि उसे ऐसा सुनकर कोई दूसरा ग्रहण भी नहीं करेगा।

इसलिये अच्छा इसीमें है कि पांडुको ही कन्या दी जाय। विचार कर अन्तमें उन्होंने पांडुको ही पुत्री देनेका निश्चय किया और उसी समय वरके योग्य भेंट तथा पत्र देकर एक विज्ञ और सहनशील दूतको व्यासके पास रवाना किया। वह थोड़े ही समयमें कौरवोंके राजा व्यासकी सभामें पहुँचा। वहाँ द्वारपालकी आज्ञासे भीतर जाकर दूरसे उसने राजाका दर्शन किया। राजा सिंहासन पर विराजे थे। जान पड़ता था कि मानों वे और और राजोंको हँस रहे है, या अपने उत्कर्षकी भावना करते हैं। उनके ऊपर जो चमर ढुलते थे उनसे वे आकाशके कुछ हिस्सेको विभूषित करते थे। उनके ऊपर छत्र लगा हुआ था। वह सूरजके प्रकाशको उनके ऊपर नहीं आने देता था; वह सूरजका तिरस्कार करता था। उनके आगे देश-विदेशके राजा लोगों द्वारा भेजी हुई भेंटोंके ढेरके ढेर लगे हुए थे, जिनसे उनकी अपूर्व ही शोभा हो रही थी। वे ढेर ऐसे जान पड़ते थे कि मानों राजा लोगों द्वारा दिखानेके लिये भेजे गये उनके खजाने ही हैं या पृथ्वी देवीके सुन्दर भूषणोंके जैसे वे राजाके अपूर्व भूषण ही रक्खे हैं। राजा व्यास सारे संसारमें उत्कृष्ट थे। वे कानोंमें मनोहर कुंडल पहिने हुए थे। जान पड़ता था मानों वे चाँद और सूरजके दो मंडल ही हैं और वे कुंडलोंका रूप धर कर इनकी सेवा ही करते है। एवं जैसे वादी शास्त्रके यशको गाते है वैसे ही भाँति भाँतिके मागधों द्वारा उनके यश दिग्गजों तक पहुँचाए जा रहे थे; मानों वे उन मागधोंके द्वारा उनकी वाणीसे अमृतकी वरसा करवा रहे थे। वे कटाक्ष-पातकी दीक्षासे दीक्षित नेत्रोंके द्वारा रसीली गंभीर दृष्टिसे लोगोंकी ओर देखते थे, जान पड़ता था कि वे उन्हें अपने बन्धुओंकी भाँति अपनाते हैं। वे सेवामें आये हुए शत्रुओंको मनचाही दृष्टिसे हँसते रहे थे। उनके हाथमें एक

तीखी तलवार थी, जिसे देखकर लोभी पुरुष भयभीत होते थे। वे हर्षके साथ दान देते थे, लोगोंको अपनी नम्रता दिखाते थे। वे महान् उद्योगी थे और हर एक वात पर युक्ति द्वारा विचार करते थे। उनका हृदय वड़ा गंभीर था। वे जव तक किसी कामको कर न गुजरते थे तव तक कोई भी उनकी वातको जान न पाता था कि इस समय महाराज क्या करना चाहते हैं। उनके कार्योंको देख कर सव अचम्भा करके रह जाते थे। दूतने आगे वढ़कर, द्वारपाल द्वारा दिखाये हुए पृथ्वीपातियोंके पति व्यास महाराजके आगे भेंट रखी और उन्हें नमस्कार किया। इसके वाद वह वोला कि राजन्, सूरीपुरके राजा अंधकवृष्टिको सव कोई जानता है। वे देवतों पर इन्द्रकी नाँई सुख-पूर्वक अपनी प्रजा पर शासन करते हैं। प्रभो! उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। वे चाहते हैं कि आपके राज-कुमार पांडुके साथ मेरी पुत्री कुन्तीका व्याह हो। दूतके इन वचनोंको सुनकर राजाने कहा कि जो वात युक्त है उसे कौन नहीं चाहेगा। भला, अँगूठी और मणिका संयोग किस वुद्धिवानको पसंद नहीं पड़ेगा। व्यासजीको तो पहलेहीसे मालूम था कि कुन्तीको पांडु चाहता है। उन्होंने दूतसे कहा कि जैसी सूरीपुरके ईश अंधकवृष्टिकी मनसा है वैसी ही हमारी भी है; उनकी इच्छाके अनुसार हम तैयार हैं। व्यासने इसी समय पांडु और कुन्तीके व्याहकी सिद्धिके लिये वड़ा भारी महोत्सव किया और सव सभासदोंके आगे प्रतिज्ञा की कि पांडुके लिए मुझे कुन्ती लेना स्वीकार है।

इसके वाद नाना प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा उन्होंने दूतका खूव आदर किया और लग्न-दिनका निर्णय करके भेंट सहित उसे सूरीपुरको रवाना कर दिया।

इसके वाद पांडुकुमार विवाहके लिए सूरीपुर जानेको हस्तिनापुरसे निकला। वह नाना प्रकारके वहुमूल्य गहने पहिने था और उसके साथ कितने ही राजा-गण थे। उसके सिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जिससे कि वह इन्द्रके जैसा शोभता था। उसके आगे आगे नाना प्रकारके वाजे वजते जाते थे, जिनसे सभी दिशाएँ शब्दमय हो रही थीं। प्रकीर्णक-जन उसके ऊपर चमर ढोरते थे, जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानों सारी पृथ्वी पर एक वही श्रेष्ठ पुरुष है; चमर उसकी इस उत्तमताको ही जता रहे हैं।

पांडुके घोड़ोंकी टापोंसे जो धूल उड़कर लोगोंको धूसरित कर रही थी उससे जान पड़ता था कि वह लोगोंको जान-वूझ कर धूलसे रंजित कर विवाह-

के आनंदको प्रगट कर रही है । इस समय वह इन्द्रके जैसा शोभता था; इन्द्रसे किसी भी बातमें कम न था। इस समय पांडुके साथ जो सजे हुए और सारथियों-सहित रथ-समूह जा रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों जंगम मन्दिर ही है; और वे चलने योग्य हो गये है। दाँतोंके प्रहारसे पहाड़ोंको भी गिरा देनेवाले और अपनी ध्वनिसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करनेवाले हाथी चिंघाड़ रहे थे। छत्ता लगाये हुए मित्र मंडल—जो मित्र (सूरज) मंडलकी नॉई सुशोभित था—साथ जानेकी खुशीसे हर्षित हो रहा था । नगाड़े-रूप कामी पुरुष यद्यपि वस्त्र वगैरहसे प्रच्छन्न थे; उनके सब ओर कपड़ेकी झालर लगी थी पर तो भी वे उँगुली-रूपी प्रियाके गाढ़ आलिंगनसे शब्द कर रहे थे। तात्पर्य यह कि प्रियाके आलिंगनकी खुशीमें उनसे चुप न रहा गया और इसी लिये वे शब्द कर रहे थे। एवं चतुर नट-गण अपनी नटियोंके साथ साथ उनके आगे आगे नृत्य कर रहे थे। जान पड़ता था कि मानों वे उत्साहमें आ कोपसे देवांगनाओंके नाचको ही नीचा दिखा रहे हैं। इसी समय हा हा, तुम्बर न नारदोंको जीतनेके लिये अभिमानसे भरे हुए गंधर्व-गण विवाहके समय गानेको उत्तम उत्तम गीत गूँथ रहे थे। पांडुको जाते समय सौभाग्यवती स्त्रियाँ मनोहर स्वरोंमें मंगल पाठ पढ़ रही थीं, मानों वे देवांगनाओंको जीतनेकी ही कोशिश करती थीं। इसके बाद पांडुकी माता सुभद्राने पांडुकी मंगल आरती उतारी और उसे सिद्ध भगवानकी आसिका दी। इस प्रकारके उत्सव-पूर्वक पांडु विवाहके लिए हस्तिनापुरसे सूरीपुरको चला। रास्तेमें पांडुको उसके सेवकजन प्रकृतिकी शोभा दिखाते जाते थे कि कुमार देखिए, यह कमलोंसे पूर्ण और शब्द करती हुई नदी सुन्दर प्रियाकी नाँई कैसी मनोहर देख पड़ती है। क्योंकि प्रिया भी कमलोंके भूषण पहिनती है और मीठी बात करती है। इधर देखिए, यह अचल धराधीश (पहाड़) आपके समान ही उन्नत वंश (वाँस और दूसरे पक्षमें वंश) वाला है, राजोंसे युक्त है; क्योंकि शत्रुओंके भयके मारे राजा-गण यहीं आश्रय पाते है। इसके उत्तम पाद (नीचा भाग और चरण) हैं और इसमें उत्तम उत्तम गुण हैं। तात्पर्य यह कि यह आपसे किसी भी बातमें कम नहीं है। नाथ, और भी देखिए कि मार्गमें विवाहका उत्सव मनानेके लिए हर्षित मयूर-गण अपनी अपनी मयूरीके साथ कैसा सुन्दर नृत्य कर रहे हैं! जान पड़ता है कि नटियोंके साथ साथ उत्तम नर-गण ही नाच रहे हैं। और सघन छायावाले ये वृक्ष फल और पत्तोंके भारसे पीड़ित हो रहे हैं, अतएव आपकी पादुनगत

करके अपना भार हलका करना चाहते हैं; जान पड़ता है ये इसीलिए आपको फल और छाया वगैरह दे रहे हैं। सो ठीक ही है कि अपनी बराबरीवालेकी सभी पाहुनगत करते हैं। ये जब आप जैसे ही उन्नत और फल-फूलोंवाले हैं फिर आपका स्वागत क्यों न करें। ये सूअर देखो, कीचड़में कैसे लोट रहे हैं, मिट्टीसे बिल्कुल ही लथ-पथ हो रहे है और वनमें रहनेवाली अँधेरेकी खासी मूर्तिसी देख पड़ते है। राजन्! ये आपके शत्रु ही आपके प्रतापसे यहाँ आ छिपे हैं। इस तरह देवतों, विमानों और तिलोत्तमासे भरे पूरे स्वर्गकी भाँति विद्वानों, विमानों और नरनारियोंसे भरपूर मार्गको देखता-भालता, दिल बहलाता पांडुकुमार थोड़े ही समयमें सारे रास्तेको तय कर सूरीपुर जा पहुँचा। कौरववंशी पांडुको आया सुनकर यादवेश्वर राजा अंधकवृष्टि उसकी अगवानीके लिये शहरसे बाहिर आया और सामने आकर उससे मिला। वहाँ उन दोनोंने एक दूसरेका सत्कार किया और परस्परमें भेंट की; एवं आपसमें कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद वे दोनों पुरीके भीतर आये। पुरीमें जो तोरण बँधे हुए थे वे उसके पाँव थे और मनोहर धुजाएँ उसके हाथ थे। पुरीके ये हाथ-पाँव हवासे खूब हिल रहे थे, जिससे ऐसा भान होता था कि यह पुरी नहीं है, किन्तु नटी है और वह हवारूप नटके द्वारा आदर की गई नाच ही करती है। इस पुरीके सब मन्दिरों पर सोनेके सुन्दर कलश चढ़े हुए थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था कि मानों वे पुरीरूपी नटीके उन्नत कुच ही हैं। उसमें कहीं कहीं भाँति भाँतिके रंगके साथिया पुरे हुए थे और स्वस्ति—कल्याण—से परिपूर्ण राजागण निवास करते थे। यहाँके महलों पर बैठी हुई नारियाँ मंगल-गीत गाती थीं, जिनसे ऐसा भान होता था मानों वह नारियोंके शब्दों द्वारा और और राजोंको ही बुला रही है। इसके दरवाजों पर बँधी हुई मालाओंसे ऐसा जान पड़ता था मानों वह स्वर्गलोकको ही हँसती है। यहाँपर दीवालोंमें चंद्रकान्त मणियाँ जड़ी हुई थीं और उन पर आकर चाँदकी चाँदनी पड़ती थी, जिससे वे असमयमें जल बरसाती थीं और मयूरोंको नाचनेके लिये उत्साहित करती थीं; एवं प्रजागणको भी आनंद देती थीं। इस समय लोगोंको ऐसा ख्याल होता था कि ये चंद्रकान्त नहीं हैं; किन्तु घरेलू मेघ ही हैं। यहाँकी भीतें स्फटिककी बनी हुई थीं, अतः उनमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर स्त्रियोंको ऐसा भ्रम हो जाता था कि क्या यह हमारी सौत तो नहीं आ गई है। वे यह सोच पतिके पाससे हट जाती थीं और पति-गण इसी परसे उनकी खूब हँसी उड़ाते थे। यहाँकी भूमिमें सब जगह हरिन्मणियाँ खची हुई थीं, जिनको

देखकर विचारे मृगोंके बच्चे तृण चरनेके विचारसे आते तो दौड़कर थे, पर जाते थे हताश होकर। यहाँके धीर पुरुष अपने धनसे कुबेरको भी तिरस्कृत करते थे; अन्यथा जिनेन्द्रदेवके जन्मोत्सवके समय कुबेर वहाँ रत्नोंकी वरसा ही काहेको करता। ऐसी सुन्दर पुरीमें उन दोनोंने प्रवेश किया। वहाँ लेजा कर अंधकवृष्टिने खूब सजे हुए एक मनोहर मंडपमें पांडुकुमारको ठहराया और उसकी खूब पाहुनगत की। इसके बाद शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमें राजोंकी विवाह-विधिके जानकार पुरुहितके द्वारा बड़े ठाट-बाटके साथ पांडुकुमार फूल-मालोंसे सजी हुई वेदीके पास लाये गये। वहाँ उदारचित्त, मिष्टभाषी, गुणाकर तथा कान्तिशाली पांडुकुमारको कुन्ती देवीने अपना वर पसंद किया; जैसे भारती (वाणी) काव्यको पसंद करती है। इसके सिवा माता-पिता आदि द्वारा सत्कृत मद्रीने भी बड़े स्नेहसे कुन्तीके साथ-ही-साथ कुमारको अपना पति बनाया; जिस तरह सब गुण-सम्पन्न सीता सतीने रामको अपना पति बनाया था। इस समय पांडुकुमारकी सबने पूजा की। किसीने अखंड वस्त्र और कीमती गहने पहिनाये, किसीने हाथी, किसीने रथ, किसीने घोड़ा और किसीने सोना-चाँदी एवं भाँतिके भाँतिके हथियार दिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि पांडुका लोगोंने सब तरहसे बड़ा आदर-सत्कार किया; किसीने किसी भी बातको उठा न रक्खा। इसके बाद मद्री और कुन्ती दोनों कन्याओंको लिवाकर कौरवोंका अगुआ और भोगी पांडुकुमार इन्द्रकी नाँई सब तरहसे सुशोभित हस्तिनापुरको चला आया। वहाँ जब उसने नगरमें प्रवेश किया तब वहाँके सब कार्यकुशल नरनारी-गण अपने अपने काम-काज छोड़कर पांडुकुमारको देखनेके लिये आये। इस समय पांडुकी अपार विभूतिको देखकर एक स्त्री दूसरी स्त्रीको पूछती है कि भद्रे, पांडु कहाँ है और कहाँ जाता है? देखो तो सही, उसने कैसी विभूतिके साथ नगरमें प्रवेश किया है। यह सुन कोई और ही स्त्री बोल उठी कि शुभगे और मंगल-मूर्ति देवी, तुम इधर जल्दी आओ, मैं तुम्हें पांडुका दर्शन कराये देती हूँ और तुम्हें जो पांडुके देखनेका कौतुक हो रहा है उसे अभी मिटाये देती हूँ। कोई स्त्री स्नान कर रही थी, इतनेमें ही उसने पांडु महीपतिके शुभागमनको सुना और वह स्नान करना छोड़ आधा ही कपड़ा पहिने बाहिर चली आई—उसे कुछ भी सुध-बुध न रही। एवं कोई भोजनकी थाली पर जीमनेको बैठी ही थी कि उसने राजाके आनेका समाचार सुना और वह भोजनको छोड़कर एकदम बाहिर निकल आई। किसी स्त्रीने जब पांडुके

आगमनको सुना तब वह एकदम विचार-विमूढ हो गई और रोते हुए अपने बालकको छोड़ किसी दूसरेके बालकको गोदमें उठाकर बाहिर निकल पड़ी। कोई स्त्री दर्पणमें मुँह देख रही थी, वह दर्पण लिये ही घरके बाहिर आ गई। उसको दर्पण लिये हुए देखकर लोगोंको भ्रम होता था कि कहीं इसका हाथ ही तो ऐसा नहीं है। कोई स्त्री पतिको जीमता छोड़कर भागी, पर उसे कहीं राजा न देख पड़ा—मेघकी नश्वरताकी नॉई उसे राजाका भ्रमसा हो गया, तब वह राजाको देखनेकी इच्छासे इधर-उधर दौडती फिरने लगी। कोई स्त्री आभूपण पहिन रही थी। वह राजाको देखनेके लिये इतनी उत्सुक हो उठी कि उसे अपने गहने-गॉठेके सन्दूकको रखनेकी भी सुध न रही—वह उसे जहॉं-का तहॉं पड़ा छोड़कर बाहिर आ गई। एवं कोई स्त्री जल्दीमें गलेका हार कमरमें और कमरका सूत्र (करधौनी) गलेमें पहिन कर बे-सुधसी हुई बाहिर आ खड़ी हुई। किसीने राजाके देखनेकी लालसासे चित्तभंग होकर भाल पर काजलका तिलक और ऑखोंमें कुंकुमका कज्जल ऑज लिया। ठीक है कि कामी मनुष्योंको कुछ भी विवेक नहीं रहता। कोई भामिनी जो कपड़ा पहिन रही थी, उल्टी कंचुकी पहिन कर कुच निकाले हुए ही पांडुको देखनेके लिये बाहिर आ गई। उसे देख लोगोंने उसकी खूब ही हॅंसी उड़ाई। ठीक ही है कि कामी जनोंकी लाज कूँच कर जाती है। कोई स्थूलकाय स्त्री गाड़ीमें बैठी हुई किसी दूसरी स्त्रीको कहती है कि सखी, तुम जानेको बहुत ही उत्सुक देख पड़ती हो, जरा ठहरो और मुझे भी देखनेको साथ ले चलो। गर्भ-भारसे थकी हुई कोई स्त्री भ्रम हो जानेसे चक्कर खाने लगी और बेहोशसी हुई इधर-उधर घूमती, गिरती, पड़ती फिरने लगी। सच है कि स्त्रियोंकी ऐसी ही गति होती है। वे किसी भी बात पर विचार नहीं करतीं। कोई स्त्री मार्ग न मिलने पर मार्ग रोकनेवाली स्त्रियोंको मीठे मीठे शब्दोंमें कहती है कि सखी, रास्ता छोड़ दो, मुझे तो महाराज दीखते ही नहीं। एवं कोई तरुणी मार्ग देनेके लिए आगेवाली तरुणी स्त्रियोंसे कहती है, पर वे हटती नहीं, तब वह उन्हें गिरा कर चंचल-चित्त होती हुई, जलकी तरंगोंकी नॉई शरीरको भी चंचल बनाकर, फुर्तीसे उनके आगे निकल जाती है। एवं कुन्ती और मद्रीसे युक्त और लक्ष्मीसे परिणीत पांडुको देखकर हर्षित हुई कोई स्त्री कहती है कि सखी, अगणित लक्षणों-वाले और सफेद छत्र द्वारा पहिचाने जानेवाले पांडुने इन दोनों सुन्दरि-योंको किस पुण्यके उदयसे पाया है। लक्ष्मी और कान्तिके समूह-रूप इन

दोनोंके योगसे रंजित पांडु जो कुछ भी सुख-लाभ कर सका है वह सब पुण्यका ही परिणाम है। और सखी, यह भी तो बताओ कि इन दोनोंने भी पूर्वभवमें कौनसा अपूर्व पुण्य कमाया था, जिसके फलसे इन्होंने ऐसा इन्द्र जैसी विभूति-वाला और विचक्षण योग्य वर पाया है। इन्होंने सुपात्रके लिये दान दिया है या घोर तपस्या की है; बड़े भक्तिभावसे श्रीगुरुकी सेवा की है या जिन चैत्यालय-में जा जिनेन्द्रदेवकी पूजा की है अथवा शुभ इच्छासे इन्होंने उत्तम पुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषा की है। इन उत्तम कामोंमेंसे इन्होंने अवश्य ही कोई काम किया है, नहीं तो इन्हें ऐसा योग्य वर कभी भी नहीं मिल सकता था। पूर्ण चंद्रकी नाँई स्वच्छ और मंडालाकार पांडुका छत्र ऐसा जान पड़ता है कि मानों पिंडरूपमें इकट्ठा हुआ उसका यश ही है और छत्रके बहानेसे उसकी शोभा बढ़ाता है। इस महोदय राजाने शस्त्रोंके तीव्र प्रहार द्वारा पापिष्ट वैरियोंके खंड कर कर दिये है। इसके समान वली राजा और कोई नहीं है। इस तरहसे भेंट दे-दे कर लोगोंने पांडुकी खूब स्तुति-भक्ति की।

इसके बाद कुछ देरमें प्रबल प्रतापी पांडुकुमार तो अपने सुन्दर महलमें चला गया और उन दोनों पुत्रवधुओंका, व्यासने अपने मंदिरके पास ही, पूर्ण सम्पत्तिशाली और धुजाओंसे-सुशोभित एक महलमें निवास कराया। बाद वह भोगी पांडु पंडित भी उन दोनों प्रियायोंके साथ सुखसे रमता हुआ वहीं रहने लगा। सच है कि जिसका पुण्य प्रबल होता है उसे किसी भी बात-की कमी नहीं रहती। कुन्तीके कुचोंके स्पर्शसे और उसके मुख-कमलके पानसे पांडुको बड़ी प्रसन्नता हुई, जैसे मनचाही चीजको पाकर प्रेमी पुरुषोंको प्रीति होती है। उसके सुगंधित मुख कमलको सूँघ कर पांडुकी तृप्ति ही नहीं होती थी; जिस तरह कि कमलकी सुगन्धसे भौंरे तृप्त नहीं होते। सच है कि काम-सेवनसे किसीको भी सन्तोष नहीं होता। कुन्तीने कटाक्षमय दृष्टिपातसे, मनो-हर मुसक्यानसे, मीठी बोल-चालसे और अपने सौंदर्यसे उसका मन बिलकुल अपनी तरफ खींच लिया; अपनेमें बाँध लिया। उस मनस्विनीने उसके मनको अपने अनुपम सौंदर्यसे और कामके पासकी नाँई अपनी दोनों भुजाओंसे उसके गलेको खूब मजबूत बाँध लिया। वह उसे अपने प्राण ही समझने लगी। पांडुने भी उसके साथ काम-सुख भोगते भोगते उसके कोमल हाथोंमें स्पर्शका, मुख-कमलमें सुगन्धका, बोल-चालमें मनोहर शब्दोंका और उसके शरीरमें मनोहर रूपका जैसा कुछ अनुभव किया और जैसा इन्द्रियोंके सुखोंको

भोगा वह सब उसके लिये अपूर्व ही था। ठीक ही है कि इन्द्रिय-सुखकी वाञ्छा रखनेवाले जीवोंको स्त्रीके सिवा और कोई गति ही नहीं है।

अपनी नव वधूकी रूप-सुधाका पानकर—दिव्य औषधिको पीकर रोगीकी नाँई—पांडु थोड़े ही कालमें पूर्ण सुखी हो गया; उसका मदन-ज्वर उतर गया। वह उनके साथ कभी महलके वगीचेमें और कभी वेलोंसे छाये हुए मंडपवाले वनके प्रदेशमें क्रीड़ा करता था। एवं कभी उनके साथ-ही-साथ वह क्रीड़ा-पर्वत पर जाता और वहाँ मन-चाही क्रीड़ा करता था। कभी कभी नदियोंमें जा सिकता-स्थलमें विहार करता था। और कभी उनके साथ वावड़ियोंके जलमें तथा हिंडोलोंमें मनको वहलाता था। इस प्रकार भाँति भाँतिके भोगों, जिनेन्द्र-देवके महिमावाले उत्सवों और पात्रदान आदि क्रियाओं द्वारा उसने बहुत काल विताया।

भोजकवृष्टि राजाकी एक पुत्री थी। उसका नाम था गांधारी। वह शीलवती थी, गुणोंकी खान थी और उसने अच्छे अच्छे विद्वानोंसे शिक्षा पाई थी। वह अपने मुखसे चाँदको और नेत्रोंसे मृगीको जीतती थी; तथा रूपसे रतिको भी नीचा दिखाती थी। अपनी मंद गतिसे वह हथिनीको लजाती थी। वह धृतराष्ट्रके साथमें विवाही गई थी। उसका विवाह आर्षविधिसे हुआ था। और ऋषभ प्रभुके निमित्तसे जैसे यशस्वतीके सौ पुत्र हुए थे उसी तरह इसके भी सौ पुत्र होनेवाले थे।

इसके वाद कुमुद्वती नाम देवक राजाकी पुत्रीके साथ प्रेमसे विद्वान् विदुरका पाणिग्रहण हुआ।

एक दिन रातके पिछले पहर कुन्ती अपनी शय्या पर सुखकी नींद सोई हुई थी। उस समय उस शुद्धमनाने कई एक शुभ स्वप्नोंको देखा। उनका हाल सुनिए—

पहले स्वप्नमें उसने मदसे जिसके कपोल झर रहे हैं और सूँडको जो इधर-उधर घुमा रहा है, ऐसा हाथी देखा। दूसरेमें कल्लोलोंसे सुशोभित और शब्द करता समुद्र देखा। तीसरेमें प्रकाशमय और संसारको सुख देनेवाला पूर्ण चाँद देखा। एवं चौथे स्वप्नमें उसने चार डालोंवाला और अर्थियोंको धन देनेवाला कल्पवृक्ष देखा। इन स्वप्नोंको देख चुकने पर जब सवेरा हुआ तब वह जागी और प्रभात-कालकी क्रियाओंसे निवट कर उसने सुन्दर वस्त्र और भूषण

पहिने। इसके बाद वह सुकेशी अपने स्वामी पांडुके पास पहुँची। पांडुने उसका यथा-योग्य आदर किया और उसे अपने आधे सिंहासन पर बैठाया। इसके बाद कुन्तीने पांडुको स्वप्नोंका सब हाल सुना कर उनका फल पूछा। उत्तरमें पांडुने कहा कि सुन्दरी, ध्यान देकर सुनो। तुमने जो हाथी देखा है उसका तो यह फल है कि तुम्हारे पुत्रका जन्म होगा; समुद्र देखनेसे वह बड़ा गंभीर होगा; चाँद देखनेसे वह जगत भरको आनंददायी होगा और अन्तमें तुमने जो कल्पवृक्ष देखा है उसका फल यह है कि वह दानी होगा, उससे जो कोई जो कुछ भी याचना करेगा उसे वह वही देगा। और चार शाखायें देखनेका यह फल है कि उसके चार भाई और होंगे। वे पाँचों भाई सुन्दर रूपवाले और विजयी होंगे। इस प्रकार अपने स्वप्नोंका फल सुन कर मुग्ध मनवाली सती कुन्ती बहुत हर्षित हुई। इसके कुछ समय बाद अच्युत स्वर्गसे एक भाग्यशाली देव चया और उसको अपने गर्भ-कमलमें धारण कर कुन्ती गर्भवती हुई। सच तो यह है कि पुण्यके योगसे जीवोंको पुत्र आदि कोई भी सामग्री दुर्लभ नहीं रह जाती। धीरे धीरे उसका वह गर्भ बढ़ने लगा और लोगोंको आनंद देने लगा। उसका वह गर्भ शत्रुपक्षका घातक और स्वजनोंको आनंद देनेवाला था। पांडुर शरीर-वाली और चंचल भौंहेंवाली गर्भवती कुन्तीको देख कर पांडुके हर्षका पार न रहा। वह उस समय ऐसी मालूम पड़ती थी मानों रत्नोंसे रञ्जित भूमिवाली खान ही है। क्योंकि वह रत्न-जड़ित बहुतसे गहने पहिने थी और उनके रत्नोंकी ज्योति पृथ्वी पर पड़ती थी। गर्भके निमित्तसे उसके पेटकी त्रिबली मिट गई थी। जान पड़ता था कि उस त्रिबली भंगसे वह यही जनाती थी कि इस गर्भसे वैरि-योंका भंग अवश्यंभावी है। इसके सिवा उनकी और कोई भी गति नहीं हो सकती। कुन्तीको उत्तम मिट्टी खानेकी इच्छा होती थी, जिससे जाना जाता था कि इसके गर्भमें जो पुरुष स्थित है वह सारी पृथ्वीको भोगेगा और सम्पूर्ण राजों महाराजोंको अपने अधीन करेगा। उसके कुच उन्नत हो गये थे और साथमें ही उनके चूचक काले पड़ गये थे। जिनसे ऐसा भान होता था कि मानों वे अपने स्वजन बन्धुओंकी उन्नति और शत्रुपक्षकी कालिमाको ही जनाते हैं। उसके मुँहमें थूँक बहुत आता था, उससे जाना जाता था कि वह लोगोंको यही जनाती है कि इस गर्भस्थ बालकके मारे शत्रु-गण मारे मारे फिरेंगे—कहीं भी उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी। इस प्रकारके गर्भ-चिन्होंसे अलंकृत कुन्ती देवीकी अलंकार, भोजन, भूषण, वाणी आदि किसी भी बातमें प्रीति नहीं रह गई; परंतु जिनेन्द्रदेवकी

पूजा तथा और और धर्म एवं धर्मके फलमें उसे दोहद रूपसे प्रीति अवश्य होती थी। वह जिनेन्द्रदेवकी पूजा करती थी, व्रत करती थी और व्रती पुरुषोंमें वात्सल्य रखती थी। उसे एक बार यह दोहला हुआ था कि मैं युद्धमें बड़े बडे शत्रुओंका संहार करूँ। इस तरहसे उसको और और भी बहुतसे दोहले उत्पन्न हुए। इस प्रकार धीरे धीरे जब गर्भके दिन पूरे हो गये तब उस पुण्यवतीने —जैसा उसका मनोरथ था वैसे ही—उत्तम पुत्रको जन्म दिया। उसके जो पुत्र हुआ उसके नेत्र-कमल खूब विस्तीर्ण थे, मुख चन्द्रके जैसा था। वह नीतिका ज्ञाता और राज-कुलका अभ्युदय था। बहुत क्या कहें उसकी अपूर्व शोभा थी। जिस समय पुत्रका जन्म हुआ उस समय अँधेरा न जाने कहाँ बिला गया, जैसे सूरजका उदय होते वह बिला जाता है। और जिस तरह रातकी शोभा चाँदसे होती है उसी तरह पुत्र-जन्मके समय पुत्रके द्वारा कुन्तीकी भी अपूर्व शोभा हो गई थी; वह अपूर्व द्युतिको धारण करती थी। या यों कहिए कि उस समय वह पांडुके तेज-रूप सूरजके द्वारा दिनकी दीप्तिसी शोभित होती थी। उस समय डंडोंके सिरोंसे ताडी हुई महान आनंदभेरी बज रही थी और उसके शब्दसे राज-महल गूँज रहा था। जान पड़ता था मानों मेघ ही गरज रहा है। इसके सिवा उस समय नगाड़े, झालर, शंख, काहल, वीणा, मृंदग आदि बाजोंकी भी ध्वनि हो रही थी। इनका शब्द सुनकर ऐसा भान होता था कि मानों ये सब बाजे अपने आप ही खुशीसे बज रहे हैं और संसारको कुन्तीके पुत्र-जन्मकी सूचना करते हैं। इस समय अच्छी अच्छी नर्तकियोंको भी लीलामात्रमें जीतनेवालीं नटियोंने लयके साथ महान नृत्य शुरू किया। पुरकी गली गलीमें चंदनके जलकी छटा देख पड़ने लगी। अधिक क्या कहा जावे पुरकी यहाँ तक शोभा और सजावट की गई थी कि जिससे ऐसा भान होता था कि मानों वह स्वर्गकी शोभा और सजावटको हँस ही रहा है। घर घरमें रत्नोंके तोरण बाँधे गये थे और उत्सवके लिये मंडप सजाये गये थे। एवं रत्नोंके चूर्ण द्वारा भूमिमें नाना रंगकी रत्नावली पूरी गई थी, जो अपूर्व ही शोभा पाती थी। वहाँ घरोंके ऊपर सोनेके बडे बडे कलश चढ़े हुए थे; और वे मकान आकाश तक ऊँचे चले गये थे, अतः ऐसी प्रतीति होती थी कि मानों इन मकानों पर आकर सूरज ही तो नहीं स्थित हो गये हैं।

पांडुरूप मेघने जब पुत्र-जन्मके समाचारको सुना तब लोगोंकी इच्छाके अनुसार उसने धारासार बरसाकी तरह खूब ही दानकी बरसा की। उत्तम

जनोंको खूब दान दिया और उनका उचित आदर किया। वह बालक कौरव-वंश-रूप समुद्रको वृद्धिंगत करनेके लिये चाँदके समान हुआ। चाँद जैसे समुद्रको वृद्धिंगत करता है उस महामनाने भी उसी तरह अन्तःपुर सहित सारे पुरमें आनंद ही आनंद फैला दिया; सबको वृद्धिंगत कर दिया। इसके उत्पन्न होने पर बन्धुवर्गको लड़ाईमें स्थिर होनेकी भावना हुई। इस लिये उन्होंने इसका नाम युधिष्ठिर रक्खा। और यह जबसे गर्भमें आया तभीसे लोगोंको धर्म-साधनका निमित्त बना, इस लिये उन्होंने इसका धर्मराज या धर्मनन्दन नाम भी रक्खा। इसने अपने जन्मसे ही कौरववंशको आनंद दिया, अतः यह कौरवाग्रणी कहलाया। शत्रु वंश-रूप अँधेरेको वह हटानेवाला था, इस लिये इसे लोगोंने बाल-चंद्र कहा। माताका दूध पीते समय जो दूध उसके मुँहसे बाहर आ छलकता था उससे उज्ज्वलताको धारण किये हुए शरीर और शरीरकी स्वाभाविक उज्ज्वल कान्तिसे जो दशों दिशाएँ व्याप्त हो रही थीं उससे उसकी अपूर्व ही शोभा थी। वह अपनी मुसक्यान तथा मणि-जटित भूमिमें लटपटाते हुए चलने और मन-ही-मन भाषणसे माता-पिताको हमेशा ही प्रसन्न करता रहता था। इन सब बातोंके सिवा उसकी वृद्धिके साथ-ही-साथ उसमें स्वाभाविक गुण भी बढ़ते जाते थे। मानों वे उसके सौंदर्य पर मोहित होकर ही उसकी वृद्धिके अनुयायी बने थे।

उसका पिता क्रिया-विधानका अच्छा ज्ञाता था, अतः उसने बालककी अन्नाशन, सुचौल, उपनयन आदि सभी क्रियाएँ कीं। धीरे धीरे दशों दिशाओंमें उसका यश व्याप्त हो गया। उसने क्रमसे बाल-कालको लांघकर युवावस्थामें पैर रक्खा। पर इस समय भी उसकी वाणी, कला, विद्या, द्युति, शील और विज्ञान सभी बातें वैसीकी वैसी स्वाभाविक ही रहीं—उसे रंचमात्र भी मद वगैरह न हुआ। उसके मस्तक पर उन्नत और निर्मल मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट ऐसा जान पड़ता था मानों शिखर-सहित सुमेरुका शिखर ही है। उसका मुँह देखनेमें बहुत ही प्यारा लगता था और वह चाँदके मंडलको भी लजाता था। क्योंकि चाँद तो कभी कभी घट भी जाता है पर वह तो हमेशा ही एकसा रहता था। उसके कान कुंडलोंसे सुशोभित थे, कपोल दर्पणकी नाँई निर्मल थे और नेत्र सूक्ष्मदर्शी और मनोहर थे। उसकी नाक सुन्दर सुगंधको ग्रहण करनेमें समर्थ और चम्पेके समान शोभाशाली थी। सुन्दर बिंबाफलके समान सुन्दर उसके ओठ थे। उसकी सुन्दर भौंहें बड़ी चंचल थीं। जान पड़ता था

कि मानों तीनों लोकोंको वशमें लानेके लिये कामदेवकी धुजाएँ ही फहरा रहीं हैं। उसके कंठकी हार वगैरहसे अद्भुत ही शोभा थी। अतः उसका कंठ ऐसा शोभता था जैसा कि ज्योत्स्नासे घिरा हुआ सुमेरु शोभता है। उसका वक्षःस्थल बड़ा विस्तृत था और उसमें सुन्दर हार पड़ा हुआ था। जान पड़ता था कि वह पहाड़ ही है और उसमें जो हार पड़ा हुआ है वह हार नहीं, किन्तु झरना वह रहा है। उसकी भुजायें महान् स्तंभ सरीखी थीं। वे संसारको पालनेवाली थीं, हाथीकी सूँड़के तुल्य थीं और उनमें जयलक्ष्मीका निवास था। उसका हस्त-तल नक्षत्र, मीन, कूर्म, गदा, शंख, चक्र, तोरण आदि लक्षणोंके द्वारा आकाशके आँगनसा देख पड़ता था। उसका सुन्दर शरीर कटक, अंगद, केयूर और अँगूठी आदि भूषणोंके द्वारा दीप्त हो रहा था; जैसे कि भूषणोंके द्वारा कल्पवृक्ष सुशोभित होता है। उसकी नाभि बावड़ीके तुल्य थी, उसमें लावण्य-रूप जल भरा था। उसकी कटिमें करधौनी सुशोभित थी और वह दूसरी स्त्रीसी जान पड़ती थी। जिस तरहसे फेनवाले जलसे भरा हुआ नदीका किनारा शोभता है उसी तरह रेशमी वस्त्रोंसे व्याप्त उसके सघन जघन शोभते थे। उसके स्थूल-उरुस्थल सोनेकी द्युतिके समान पीले थे और वे ऐसे मालूम होते थे कि मानों अपने ठहरनेके लिये कामदेवने दो स्तंभ ही खड़े किये हैं। उसकी जंघाएँ पाप-समूहका विनाश कर संसारको लाँघ जानेके लिये समर्थ थीं। वे उन्निन्द्र थीं, अतएव ऐसी जान पड़ती थीं मानों कामके वाण रखनेके ये तूणीर—तरकस—ही हैं। पराक्रमशाली उसके चरणोंको प्रवेश करनेमें कहीं रुकावट न होती थी, अतएव सब कोई उन्हें नमस्कार करते थे। वह क्षत्रियों द्वारा सेव्य था और उसके नख नक्षत्रोंके समान थे, मानों वे रूप देखनेके लिये दर्पण ही बनाये गये थे। उसका रूप उपमा रहित था। उस कौरवेश राजोंके राजाके रूपका वर्णन करनेको संसारमें कोई भी समर्थ नहीं है। इसके बाद कुन्तीने भीमको जन्म दिया। भीम युधिष्ठिरके तुल्य ही शिष्ट था, गुणोंके गौरवसे विशिष्ट था, सुन्दर था। उससे बड़े बड़े रणशाली वैरी भी डरते थे। इस लिये लोग उसे दृष्टिभयंकर—भीम—कहते थे। कल्पवृक्षके बहानेसे स्वप्नमें वायुने उसे कुन्तीको दिया था, इस लिये लोग उसे मरुत्तनय कहते हैं। उसकी महान भुजाएँ थीं, शरीर लम्बा-चौड़ा सुन्दर था, कान्तिशाली था। वह गुणोंका पुँज था; महामना, रूपशाली और पृथ्वीका भूषण था। इसके बाद कुन्तीने धनंजय (आग) सरीखे धनंजयको जन्म दिया। वह महान तेजवाला और धन एवं जयको

प्राप्त था । शत्रु-रूप काठको जलानेके लिये जो धनंजय—अग्निके—समान था। इसका दूसरा नाम अर्जुन था। वह इस लिये पड़ा था कि उसके शरीरकी कान्ति अर्जुन (चाँदी) के समान थी । वह दुष्टोंके निग्रह करनेमें दक्ष था, यशको संचय करनेवाला था। उसकी माताने स्वप्नमें इन्द्रको देखा था। इस लिये सत्पुरुष उसे शक्रसूनु कहते थे। यदि किसीके सौ जीभें भी हो जायँ, तब भी वह उसके रूप, गुण, तेज, यश और बलको नहीं कह सकता। इसके बाद समुद्रकी नाँई गंभीर मद्रीने कुलको उज्ज्वल करनेवाले नकुलको जन्म दिया और देवतोंके साथ क्रीड़ा करनेवाले महान बली सहदेवको उत्पन्न किया । इस प्रकार वैरियोंको खंडन करनेवाला और प्रचंड तेजका धारक पांडु पाँच पुत्रोंके साथ सुख भोगने लगा; जिस तरह नीरोग मनुष्य अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे सुख भोगता है। इस प्रकार सब गुण सम्पन्न सुतोंवाली कुन्ती, सुंदर मुद्राको धारण करनेवाली तथा सज्जनोंकी रक्षक मद्री तथा प्रचंड बली पांडु ये तीनों अपने पाँचों श्रेष्ठ पुत्रोंके साथ-साथ आनंदपूर्वक सांसारिक सुखोंको भोगते थे।

उधर परम प्रीतिको प्राप्त हुई धृतराष्ट्रकी प्रिया गांधारी अपने बन्धुवर्गके साथ साथ सुख भोग रही थी। वह धैर्यकी खान थी। धृतराष्ट्र गांधारीके मुख-कमलके साथ भौंरेकी नाँई क्रीड़ा किया करता था । गांधारीके बिना उसे कहीं भी चैन न पड़ती थी । वह उसके साथ सब सांसारिक सुखोंको भोगता था। और ठीक ही है कि कामिनीजनको छोड़कर कामी-पुरुष और जगह कहीं सुख नहीं पाते हैं।

गांधारी पतिभक्ता साध्वी थी, अतः वह भी हास्य, कटाक्ष और विनोदोंके द्वारा धृतराष्ट्रको खूब रमाती थी। एवं वे दोनों दम्पति विनोदके साथ क्रीड़ा किया करते थे और सुशोभित होते थे; जिस तरह कि मनको मोहनेवाले बिजली और मेघ सुशोभित होते हैं। एक समय उस सदाचारीने गांधारीके साथ महाभोग, वराभोग आदि क्रीड़ायें कीं। उस समय पुण्ययोगसे गांधारीने गर्भ धारण किया। नीतिके पंडितोंने कहा है कि संसारमें ऐसी कौनसी दुर्लभ वस्तु है जो पुण्ययोग्यसे प्राप्त नहीं होती। धीरे धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए तब उस सुखशालिनीने पुत्रको जन्म दिया, जिससे लोगोंको बड़ा भारी हर्ष हुआ। वे परम प्रीतिको प्राप्त हुए। और ऐसे उत्तम पुत्रको जन्म देनेके उपलक्ष्यमें पुरंध्रीजन उसे आशीर्वाद देने लगीं कि हे देवी, तुम लोकोपकारी ऐसे ही सैकड़ों पुत्रोंको पैदा करो। वह पुत्र शत्रुओंके साथ बड़ी भयंकरतासे युद्ध करनेवाला

था। उसके द्वारा वैरियोंको बड़ा दुःख होता था, इसलिये उसे लोग दुर्योधन कहते थे। वह अपने स्वजनोंके साथ साथ शीघ्र ही परमोदयको प्राप्त हो गया। इस समय पुत्र-जन्मका समाचार लेकर जो पुरुष राजाके पास आया, राजाने उसे अपने छत्र-सिंहासन आदि राज-चिन्होंको छोड़कर और कुछ भी देनेकी कसर न की। इसके सिवा राजाने उस समय कैदमें पड़े हुए कैदियोंको, पींजरेमें बँधे हुए पक्षियोंको तथा जेलखानेमें पड़े हुए शत्रुओंको छोड़ दिया—उन्हें मुक्त कर दिया। उस समय जो भाँति भाँतिके बाजे बजे उनसे उस सुनीतिवाले और सुखके सागरका जन्म-उत्सव सभीको ज्ञात हो गया। वह वर्द्धमान था और विद्वान था, युद्धमें बड़ेसे बड़े वैरियों द्वारा भी जीता न जा सकता था। उसने बड़ी सूरवीरतासे भी युद्ध करनेवाले कई एक शत्रुओंको प्राण-रहित कर दिया था। इसके बाद गांधारीने दुश्शासन नाम दूसरे पुत्रको जन्म दिया। वह भी स्पष्टवक्ता और सर्व-श्रेष्ठ था। उसकी जितनी कुछ चेष्टा थी वह सब शुभ कार्यों के लिये थी। वह खोटे काममें कभी हाथ न डालता था। इसके बाद गांधारीने अट्ठानवे और और पुत्रोंको पैदा किया। उनके नाम सुनिए। दुर्द्धर्षण, दुर्मर्षण, रणश्रान्त, समाघ, विंद, सर्वसह, अनुविंद, सुभीम, सुवन्हि, दुःसह, दुसल, सुगात्र, दुःकर्ण, दुःश्रव, वरवंश, अवकीर्ण, दीर्घदर्शी, सुलोचन, उपचित्र विचित्र, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुःप्रगाह, युयुत्सु, विकट, ऊर्णनाभ सुनाभ, नंद, उपनंद, चित्रवाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, श्रुतवान, पद्मलोचन, भीमबाहु, भीमबल, सुषेण, पंडित, श्रुतायुध, सुवीर्य, दंडधर, महोदर, चित्रायुध, निःषंगी, पाश, वृंदारक, शत्रुंजय, शत्रुसह, सत्यसंध, सुदुःसह, सुदर्शन, चित्रसेन, सेनानी, दुःपराजय, पराजित, कुंडशायी, विशालाक्ष, जय, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस, आदित्यकेतु, वव्हाशी, निर्बन्ध, प्रियोदी, कवची, रणशोंड, कुंडधार, धनुर्धर, उग्ररथ, भीमरथ, शूरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृष्टरथ, अनादृष्ट, कुंडभेदी, विराजी, दीर्घलोचन, प्रथम, प्रमाथी, दीर्घोलाप, वीर्यवान, दीर्घबाहु, महावक्ष, सुलक्षण, विलक्षण, कनक, कांचन, सुर्ध्वज, सुभज, और अरंज। ये सभी पुत्र वर्द्धमान। और इनका यश सब जगह फैल रहा था तथा हमेशा बढ़ता ही जाता था। ये सबके सब शस्त्र और शास्त्र आदि भाँति भाँतिकी कलाओंमें निपुण और सुन्दर थे। इस प्रकार ज्यों ज्यों पांडव और कौरव वृद्धिगत होते जाते थे, त्यों त्यों आनंद देनेवाली उनके सम्पत्ति भी बढ़ती जाती थी। दिव्यचक्षुके धारक, सुवर्णके समान कान्तिवाले

एवं ब्रह्मचारी गांगेय (भीष्म पितामह) इन सब पांडवों और कौरवोंकी रक्षा करते थे तथा इन्हें शिक्षा देते थे। धीरे धीरे ये सब पूर्ण समृद्धिशाली हो गये। सच है कि वृद्धके द्वारा पाला-पोषा जाकर कौन परमोदयको नहीं प्राप्त होता। एवं इन परमोदयके धारकोंको द्रोणाचार्य द्विजेशने भी पाला-पोषा, जिससे ये सुन्दराकृति कौरव और पांडव परम वृद्धिको प्राप्त हुए। द्रोण बड़े दयालु थे, शरण-योग्य थे, आश्रितोंको अपनाते थे; अतः उन्होंने धनुष विद्या-रूप समुद्रको पार करने के लिये इन्हें द्रोणी (नौका) का काम दिया और थोड़े ही समयमें इन सबको धनुषविद्यामें निपुण कर दिया। ये सब द्रोणाचार्यका खूब आदर और विनय करते थे; क्योंकि विद्या विनयसे ही प्राप्त होती है। अर्जुन सरलचित्त था, विनयी और पाप-कर्मोंसे रहित था अर्थात् वह हमेशा शुभ क्रियाओंमें ही लगा रहता था। अतः पितृव्य तुल्य और धनुषविद्या-विशारद द्रोणने प्रसन्न होकर उसे धनुष-विद्याकी खूब शिक्षा दी। इसके सिवा द्रोणने उसे शब्दवेधी महाविद्या भी सिखा दी। अर्जुनको पार्थ भी कहते हैं। पार्थने जो कुछ भी गुरुसे विद्या पाई थी वह सब उसके विनयका फल था। नीतिकार कहते हैं कि गुरुके विनयसे क्या क्या नहीं होता, विनय मनोभिलषित पदार्थोंको देनेवाला है; लोगोंके सभी मनोरथोंको साधता है। इस प्रकार अर्जुनने गुरु द्रोणसे, विनयके बल, प्रचंड और अखंड धनुषरूप लक्षणके द्वारा, लक्ष्य (निशाना) वेध करनेको, वेध्य-वेधक भावसे अर्थात् लक्ष्यका बार बार वेध करनेसे सीख लिया, जिसके द्वारा वह सारे जगतके धनुष-विद्याके पंडितोंको नीचा दिखा कर, आकाशमें चाँदकी नाँई, राज्यरूप आँगनमें सुशोभित होने लगा।

इस प्रकार सुख-सागरमें निमग्न हुए उन पांडवों और कौरवोंका बहुतसा काल बीत गया, पर उसका उन्हें कुछ भी भान न हुआ। ठीक ही है कि सुखी जीवोंका एक वर्ष भी क्षणकी नाँई बीत जाता है।

इस तरह पांडु सुखसे अपना समय बिताता था। उसका कोई शत्रु न था और उसके पक्षमें बड़े बड़े वीर थे। स्वयं उसके पुत्र ही अद्वितीय योधा थे। इसके सिवा वह विद्वान् था, अतः उसके पास बुद्धिबल भी था।

उसके पुत्र युधिष्ठिर आदि युद्धमें शत्रुओंको एक क्षण भी नहीं ठहरने देते थे; वे सभी अद्वितीय वीर थे। उनको देखकर लोगोंके दिल खुश होते थे

और उनसे वे विभूषित होते थे। चाहे कैसा ही दुर्निवार वैरी क्यों न हो उसे वे अपने सामने टिकने ही न देते थे और वैरियों पर विजय पानेको ही अपना परम कर्तव्य जानते थे। भीम बड़ा भयंकर योधा था । लोगोंकी भीतिको दूर करता था । शत्रु-रूप अँधेरेको दूर करनेके लिये वह सूरज था; तेजस्वी था। इसी प्रकार पार्थ भी उत्तम कार्योंको करनेवाला और समर्थ पुरुषों द्वारा पूजा जानेवाला था, दीप्तिशाली था । वह पार्थ—अर्जुन—सदा ही सुशोभित हो। उन कौरवोंकी विजय हो जो अतुल और विपुल लीलासे लक्षित हैं, जिनके शरीरमें नाना लक्षण हैं, जो सम्पूर्ण बलके विलाससे अलंकृत—विभूषित—है, निर्मल हैं, मनोहारी हारसे जिनका कंठ विभूषित है, चंचल तथा कमलकी नॉई जिनके नेत्र है और जो जिन भगवानके चरण-कमलोंमें लीन हैं।

दसवाँ अध्याय।
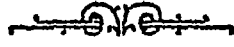
उन अभिनन्दन प्रभुको मैं अपने मनोमन्दिरमें विराजमान करता हूँ जो आनंदके दाता और भयके घातक हैं। जिनका आत्मा निर्मल और कपाय-रहित हैं और जो उदार हैं—सवको एक दृष्टिसे देखते हैं।

एक समय सफेद छत्रसे सुशोभित पांडुको क्रीड़ाके लिये वनमें जानेकी इच्छा हुई। तव उसने भेरी वजवाई। भेरीके शब्दको सुनकर चारों प्रकारकी सेना तय्यार हो गई। सूरजके घोड़ोंसे भी सुन्दर, चलते हुए चमर-किसवारवाले चंचल घोड़े सजाये गये। दाँतोंके प्रहारसे पर्वतोंको भी हिला देनेवाले तथा उन्हींके वरावर ऊँचे वलवान् हाथी तैयार किये गये। वे महायुद्धके जैसे देख पड़ते थे। सुन्दर पहियोंसे सजे हुए और लोगोंके पाँवोंको विफल कर देनेवाले रथ इधर-उधरसे तैयार हो-होकर आये। एवं मेघकी नाँई गर्जनेवाले और भयंकर दिखाव-वाले प्रचंड पयादे-गण धनुष ले-लेकर उपस्थित हुए। इत्यादि शोभासे युक्त पांडु वनको चला। उसकी आज्ञासे मद्री देवी भी उसके साथ साथ चली। वह अद्वितीय सुन्दरी थी। उसके नेत्र कमलसे खिले हुए थे। पूरे चाँदके जैसा मनको मोहनेवाला उसका मुँह था। उसकी मूर्ति देखने ही योग्य थी। उसके हाथकी उँगुलिमें एक सुन्दर अँगूठी थी। उसे वह हमेशा ही पहिने रहा करती थी। वह अपने कर्णफूलोंकी कान्तिसे सूरजकी और दाँतोंकी प्रभासे चाँदकी हँसी उड़ाती थी और कटाक्ष-वाणोंके पातसे मनुष्योंके मनको मोहती थी। कुचोंके भारसे उसकी अपूर्व ही शोभा थी। इसके थोड़ी देर वाद पांडु भाँति भाँतिके वृक्षोंसे सघन वनमें पहुँचा और वहाँ मद्रीके समागमसे उसका मन खूब प्रसन्न हुआ। वहाँ उसने देखा कि कहीं ऊँचे तालवृक्ष, कहीं सरल सरसके वृक्ष खड़े हुए हैं। कहीं सुन्दर मंजरियोंकी सुगन्धसे मनको मोहित करनेवाले आमके वृक्ष लह-लहा रहे हैं। कहीं अशोकवृक्ष कामनियोंके पाँवोंकी ताड़नाको पाकर हरे भरे हो रहे हैं। कहीं स्त्रियोंके कुल्लोंसे सींचे जाकर वकुलवृक्ष फल रहे हैं। कहीं नारियोंके संगमको पाकर कुरुवक जातिके वृक्ष विकशित हो रहे हैं। कहीं भौंरि-योंके साथ साथ भौंरे कामदेवके यशको गा रहे हैं, जिसे कामने तीनलोक-को जीत करके पाया है। कहीं कोयलें मधुर मधुर शब्द कर रही हैं, जाना जाता है कि वे गर्वको प्राप्त हुई कामनियोंके काम-तंत्रीके तारसे परिष्कृत किये

गये स्वरोंकी नकल ही उतार रही है। कहीं पद-पद पर कामनियाँ मधुर गीत गा रहीं हैं। कहीं अपनी तरल तरंगोंके शब्द द्वारा किंनरियोंके नादको भी जीत लेनेवाले तालाव देख पड़ते हैं। ऐसे मनोहर वनमें मद्री रानीके साथ साथ पद-पद पर भामनियोंकी नृत्य-कलाको देखते हुए पांडुने बड़े सुख-चैनसे समय विताया, और वहाँ क्रीडा की। एवं उसने मनोहर भोगों और रति-क्रीडासे उत्पन्न हुए हास, रस, विलासोंके द्वारा मद्रीको खूब रमाया; उसके साथ खूब ही क्रीड़ा की। इसके सिवा उसने चन्दनके रससे, अगुरुद्रवके मर्दनसे, सुगंध द्रव्यके निक्षेपसे, स्त्रियोंके कटाक्षमय निरीक्षणोंसे तथा उनके सुन्दर आलापोंसे अपने चित्तको बहुत ही बहलाया; परंतु उसे कहीं भी सन्तोष न हुआ— उसकी विषय-तृष्णा वढ़ती ही गई। कहीं वह बावड़ियोंमें जाकर स्त्रियोंके साथ फूलोंके तुल्य कोमल और सुगन्धित चन्दनके जलकी उछलती हुई बूँदोंसे क्रीड़ा करता था और कंठ तक पानीमें जब वैठ जाता था तब ऐसा जान पड़ने लगता था मानों स्त्रियोंके मुखरूप चाँदको ग्रसनेके लिए राहु ही आ गया है। कुछ देरमें जब वह क्रीड़ा करता करता थक गया तब उसने वहाँसे चलनेकी इच्छा की। वहाँसे चलकर उसने बहुतसे लता-मंडपोंको देखा। एक लता-मंडपमें वह स्थिर-चित्त होकर वैठा भी। वह लता-मंडप गोल था और भौंरोंके सुन्दर शब्दोंसे गूँज रहा था। उस लता-मंडपमें उसने एक फूलोंकी शय्या बनवाई और वह कामासक्त हो मद्री-सहित उस पर वैठ गया। वह मद्रीमें इतना आसक्तचित्त हो गया कि उसके मुख-कमल परसे अपना मुख-कमल हटाना ही न चाहता था। उसने स्थूल और कठोर कुचोंवाली मद्रीके साथ वहाँ भी खूब कामक्रीडा की। इससे उसका मदन-ज्वर उतर गया। इसी समयमें उसने मंडपके पास ही क्रीड़ा करते हुए एक हरिणको देखा। वह अपनी हरिणीके साथ काम-क्रीड़ा कर रहा था। उसे देखते ही राजाने धनुष पर वाण चढ़ाया और उसके ऊपर छोड़ दिया। हरिण उस समय कामासक्त हो रहा था। वाणके लगते ही वह चिल्लाकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे वड़ी वेदना हुई। वह मर गया। ग्रन्थ-कार कहते हैं कि इन भोगोंको धिक्कार है जिनके कारण लुब्धकोंकी ऐसी गति होती है। इसी समय आकाशवाणी हुई कि "भूपाल, ऐसा दुःखदाई काम करना तुम्हें उचित नहीं था। विचारिए कि यदि इन निरपराधी मूक और वनमें रहनेवाले हरिणोंको राजा ही मारने लगे तो फिर संसारमें उनकी दूसरा कौन रक्षा करेगा। बुद्धिमानोंको तो इन्हें अपराध करने पर भी नहीं मारना

चाहिए, तब फिर निरपराधियोंकी तो बात ही क्या है। निरपराधियोंको दैवके सिवा और कोई नहीं मारता है। राजन्, यह प्रसिद्ध है कि राजा लोग शिष्टोंको पालते हैं और दुष्टोंका निग्रह करते हैं। यह ठीक है; परन्तु न जाने आप इस युक्ति-युक्त बातको भी क्यों विफल कर रहे हैं। भला देखिए तो सही कि ये गरीब हरिण न तो किसीको मारते हैं, न किसीका धन चुराते है तथा न किसीके रखे हुए अन्न और घासको ही खाते हैं। फिर भी इनके साथमें राजा लोग निर्दयता करें और इन्हें मारें यह उनका कार्य बड़ा निंद्य है। इस अपराधसे परलोकमें उनकी क्या गति होगी; वे कहाँ जाँयगे? जरासा चिउँटीके काटने पर अपने शरीरमें जो वेदना होती है उसे जानते हुए भी आपने इस गरीब मृगको मार डाला, यह कहाँ तक उचित था। राजन्, ऐसे जीवोंके घातसे केवल पाप ही होता है। इसलिए हिंसा तो भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हिंसा सर्वत्र दुःख ही देती है। और जो अधर्मी हिंसामें भी धर्म मानते हैं वे गायके सींगोंसे दूध या आगसे कमलकी उत्पत्ति चाहते हैं; विष खाकर जीना और साँपके मुँहसे अमृत चाहते हैं; एवं वे डूबते हुए सूरजसे दिनकी और शिला पर बीज बोकर अन्नकी आशा करते है। यह जानकर राजा-लोगोंको दया करना चाहिए। दया सुखको देनेवाली है और दयासे जीव संसार-समुद्रको पार कर जाते हैं।" इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर वह दयालु राजा क्षणभंगुर शरीर-भव-भोगोंसे बड़ा विरक्त हुआ। वह सोचने लगा कि कामकी वाञ्छासे विद्वान् लोग व्यर्थ पाप नहीं करते; क्योंकि पापसे आत्माकी केवल दुर्गति ही होती है। मैं सुखको चाहता हूँ, फिर अचम्भेकी बात है कि व्यर्थ ही प्राणियोंके घातमें क्यों प्रवृत्ति करता हूँ। इससे मुझे कुछ लाभ नहीं और न इससे मेरे उद्देश्यकी ही सिद्धि होती है। और जिस राज्यमें जीवोंके घातसे पाप ही पाप होता है उस राज्यसे भी मुझे क्या मिलना है। सच तो यह है कि जीवोंको संसारमें जितने कुछ दुःख होते है वे सब विषय-कषायोंको पुष्ट करनेके लिये ही होते हैं। अतः यह सब विषय-रूप मांस खानेका ही दोष है। हे जीव, इसको तू प्रत्यक्ष ही क्यों नहीं देख लेता। आत्मन्, तूने यह राज-काज पहले भी बहुत वार भोगा है और फिर भी तू उसीको भोगता है। विचार तो देख, कि भला कोई बुद्धिमान् अपनी झूँठनको भी दुवारा खाता है?

एक बात यह भी है कि यह जीव विषयोंको चाहे जितना ही क्यों न भोगे, पर इनसे इसे कभी संतोष नहीं हो सकता। विचारनेकी बात है कि शरीरोंके

परस्पर घिसनेसे जीवको भला सुख ही क्या हो सकता है। भोग भोगते समय विषयोंसे सुखके जैसा भान होता जान पडता है; परन्तु अन्तमें दुःख ही होता है; जैसे धतूरा खानेमें मीठा सा मालूम होता है, पर उससे अन्तमें हानि ही हानि होती है। इसके सिवा यह सब विषय अनित्य हैं। कुछ काल ठहर कर अन्तमें सब नष्ट हो जाते है। तब उत्तम पुरुषोंको उचित है कि वे इन्हें पहलेसे ही छोड़ दें। क्योंकि इनके त्यागसे और तो क्या मुक्ति भी मिल जाती है। विचारनेकी बात है कि इन विषयोंसे जब सुर-असुर आदि किसीको भी संतोष न हुआ तब मनुष्य-भवमें प्राप्त हुए जरासे विषयोंमें तो इस जीवको संतोष ही कैसे हो सकता है। यह समझमें नहीं आता। भला, सोचिए कि जो वड़वानल सागरके अनन्त जलसे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ वह तिनकेके अग्रभागमें लगे हुए जल-कणसे तृप्त ही क्या होगा। हे आत्मन्, तूने पहले अनंत काल तक इन भोगोंको भोगा, पर तुझे तृप्ति नहीं हुई। अब तो इनसे संतुष्ट हो। इस समय मैं तो आत्म-सुखसे सुखी हूँ, मुझे सन्तोष है और आत्माके सच्चे सुखका अभिमान है। अब मुझे इस स्त्री-प्रेमसे कुछ प्रयोजन नहीं। स्त्रीके ऊपर अनुराग करके रागी पुरुष और तो क्या अपने प्राणोंको भी खो बैठते हैं तथा राज-काजको भूल जाते हैं। सच है कि भोगोंके अधीन हो मिथ्यात्वी जीव सभी अकृत्योंको अपने कृत्य बना लेते हैं।

देखो, स्त्रियोंका मुँह तो श्लेष्म (खकार वगैरह) का खजाना है, नेत्र कीचड़ जैसे घिनावने मैलके स्थान हैं, नाक घृणाको पैदा करनेवाले दुर्गन्धित द्रव्यका भंडार है। दुःख है कि इस प्रकारके नारीके मुखको मूढ लोग चन्द्रमा कहते हैं, उसमें चाँदकी बुद्धि करते हैं। और है भी ठीक कि जिस पुरुषको रतौंध हो जाती है उसे सीप भी चाँदीसी देख पडने लगती है। मूर्ख लोग स्त्रीके बालोंको बड़ी बड़ी सुंदर उपमायें देते हैं और मदोन्मत्त होकर उन पर मोहित होते हैं। एवं मांसपिंड-रूप उनके कुचोंको वे अमृतके घडे कहते हैं और उनमें मांस-भक्षी कौओंकी तरह अनुरक्त होते हैं। और तो क्या कामीजन स्त्रियोंके सघन जघनोंमें भी सुख मान कर उनमें अनुरक्त होते हैं; जैसे विष्ठा खानेवाला सूअर विष्टामें अनुरक्त रहता है, और सुख मानता है। इसलिये हे आत्मन्, तू जरा सा विचार तो कर कि इस जगमें जीवको स्त्री-संगसे कहाँ? कैसा? और कितना सुख मिला है। इस विचारसे तेरा चित्त अवश्य ही शान्त होगा; जैसे कि निर्मली आदिके निमित्तसे मैला जल निर्मल हो जाता है। पहले स्त्रीके इस शरीरको ही तो देख, यह सात धातुओंका पिंड है, नष्ट होनेवाला

और माया-जालका स्थान है । फिर भी तू रागान्ध होकर इस पर अनुराग करता है; जैसे एक दरिद्री पुरुष मिली हुई निधिको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारी समझता है । यह कैसा मोह है जो निवारण करते करते भी खोटे कामोंमें जीवोंकी बुद्धि बड़ी जल्दी लग जाती है और अच्छे कामोंमें लगाये भी नहीं लगती । अचम्भेकी बात तो यह है कि सज्जनोंकी मति विषयोंको पापके हेतु जानती हुई भी उनमें प्रवृत्ति करती है । मोहकी इस प्रबल चेष्टाको धिक्कार है । इस मोहसे ही जीव अपने आपको भूल जाते हैं और स्त्रीके घिनावने शरीरमें मोहित हो जाते हैं । जिनके अभिप्राय खोटे हैं, मोहित हैं, वे असद्वस्तुमें सद्बुद्धि करके ठगे जाते हैं । देखो, रावण आदिने केवल परस्त्रीको हरण करने-रूप अपने खोटे अभिप्राय हीसे अपना राज खोया और परलोकमें दुर्गति पाई । मोहके निमित्तसे जब जीव मोहित होता है तब उसके हृदय पर दुर्मति अपना असर जमा लेती है और वह भाँति भाँतिके विकल्प-जालोंमें पड़ जाता है । वह विचारता है कि कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? कहाँ ठहरूँ ? मुझे सुख कहाँ मिलेगा ? मैं लक्ष्मी कहाँसे प्राप्त कर सकूँगा ? इसके लिए मुझे किस लक्ष्मीके लाल राजा-महाराजाकी सेवा करनी पड़ेगी ? स्वरूप सौभाग्यवाली स्त्री कैसी होती है और मेरा भोग्य क्या है ? भोग, विभूति मैं कैसे भोग सकूँगा ? रसना इन्द्रियका विषय रस क्या ही अच्छी चीज है । और और इन्द्रियोंके विषय भी मनोहर है । मेरे मनोरथको कौनसी वस्तु सिद्ध करेगी, मैं शत्रुको कब मारूँगा । पांडु सोचता है कि मुझ हतात्माने इस विचारी मृगीके प्राण-प्यारे हरिणको एक क्षणमें ही धराशायी कर दिया, यह बहुत ही बुरा काम किया । अब मैं आगे कौनसा शुभ कार्य करूँ, जिसके द्वारा इस पापसे मेरा पिंड छूट सके । पांडु इस प्रकार विचार करता करता बेहोश हो गया; उसे अपनी कुछ भी सुधबुध न रही । कुछ काल बाद जब उसे कुछ चेत आया तब इधर उधर भ्रमिष्ट सा देखने लगा । इतने हीमें उसे एक योगीके पवित्र दर्शन हुए । उनका नाम था सुव्रत । वे व्रतोंसे युक्त थे; दीप्त अवधिज्ञानसे तमाम लोककी परिस्थितिको जानते थे; स्थिर-चित्त थे; गुप्ति-समितिको पालनेवाले आत्म-संयमी थे; छह कायके जीवोंके प्रतिपालक और परमोदयको प्राप्त थे; हमेशा ही आत्म-चिंतनमें लगे रहनेवाले और संसार-देह-भोगोंसे विरक्त थे; बारह भावनाओंमें लीन और शत्रु-रहित थे; प्रत्यक्ष बुद्धिशाली और अखंड लक्षणोंसे लक्षित थे । उनका शरीर उपवास आदि कायक्लेशसे क्षीण हो गया था । वे जितेन्द्रिय और क्षमाके भंडार थे । उनका पक्ष उत्तम था । वे अक्षय सुखके

भोक्ता थे । स्त्रियोंके कटाक्ष-बाणोंके वे कभी लक्ष्य नहीं होते थे । लोग कहते हैं कि पृथ्वीमें बड़ी भारी क्षमा है; परन्तु उनमें उससे भी कहीं चढ़ीबढ़ी क्षमा थी । उन्होंने अपने क्षमागुणसे पृथ्वीको नीचा दिखा दिया था । मोक्ष-रूप अक्षय-क्षेत्रकी उन्हें सदा आकांक्षा रहती थी । उन्होंनें पापों पर विजय पा ली थी । प्रतिक्षण कर्मोंको क्षीण करते हुए उन्होंने इन्द्रियोंको बिल्कुल ही क्षीण कर डाला था । वे दक्ष थे, क्षेमंकर और क्षोभ-रहित थे । उनके वचन पापको हरनेवाले थे । वे साक्षात् भिक्षु थे । बडे बडे राजा महाराजा भी उनके पैरों पडते थे । वे दीक्षित थे, कर्म-शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए सदा उद्यत रहते थे; और बड़े उत्साही थे । इस समय रात बीत चुकी थी और सूरजके उदयका समय था, अतः वे अपने शरीरके तेजसे ऐसे जान पडते थे मानों कि सूरज ही हैं । इसके सिवा वे चार प्रकारके संघसे युक्त थे । उन्हें देखते ही पांडु उनके चरण कमलोंमें पड़ गया और नमस्कार कर अपने योग्य स्थानमें बैठा । मुनिने धर्मवृद्धि देकर राजोंके राजा पांडुसे कहा कि राजन्, इस संसार-वनमें जीव हमेशा ही चक्कर लगाया करते हैः कहीं कभी भी स्थिर नहीं हो पाते; जैसे अरहटकी घडी कभी भी ठहर नहीं पाती—हमेशा ही चला करती है । इसलिए जो पुण्यके अर्थी है उन्हें सदा धर्म-सेवन करना चाहिए । धर्मके दो भेद है । एक मुनिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म । धर्मसे संसार-परिभ्रमण छूट जाता है । पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति यह तेरह प्रकारका यतिधर्म है । छह कायके जीवोंकी मन, वचन और कायसे रक्षा करना अहिंसामहाव्रत है । असत्य वचन न बोलकर हित-मित वचन बोलना सत्यमहाव्रत है । अनर्थकारी अदत्त द्रव्यको ग्रहण नहीं करना अचौर्यमहाव्रत है । देवता, मनुष्यनी तिर्यञ्चनी और चित्राम-की स्त्री इन चारोंके त्यागको ब्रह्मचर्यमहाव्रत कहते हैं । चौदह प्रकारके अन्तरंग और दस प्रकारके बाह्य परिग्रहका त्याग करना परिग्रहत्यागमहाव्रत है । रौद्र, पीड़ा, रति, आहार और इस लोक परलोकका विकल्प मनमें न उठाना मनोगुप्ति है । चार प्रकारकी विकथाका न करना वचन-गुप्ति है । चित्र आदिकी क्रियाओं द्वारा कायमें विकार न होने देना कायगुप्ति है । जब सूरज निकल आवे और मार्गमें लोग आने जाने लगें तब चार हाथ पृथ्वी सोधकर, जीव-जन्तुओंकी दया करते हुए चलना ईर्यासमिति है । कर्कश आदि दस प्रकारके वचनोंका त्याग करना भाषासमिति है । छियालीस दोषोंको टालकर निर्दोष आहार लेनेको ऐषणासमिति कहते हैं । पींछी, कमण्डलु आदि उपकरणोंको

देख-सोधकर उठाना धरना आदान-निक्षेपणसमिति है । खकार, मल, मूत्र वगैरहको जीव-जन्तु रहित प्रदेशमें क्षेपना प्रतिष्ठापनासमिति है । इस प्रकार उन वाग्मी मुनिने विस्तारसे यतिधर्मको कहा और इसी तरह श्रावकधर्मको भी बताया; और कहा कि यतिधर्मसे मोक्ष और श्रावक धर्मसे स्वर्ग मिलता है । अतः राजन्, तुम इस धर्ममें मन लगाओ। क्योंकि धर्मसे ही स्वर्गसुखकी प्राप्ति होती है और क्रमसे मोक्ष भी मिलता है । अब तुम्हारी आयु केवल तेरह दिनकी शेष रह गई है, इसलिए तुम सावधान हो जाओ । तुम तो सब जानते समझते हो, चतुर हो, इसलिए बहुत जल्दी विधिपूर्वक धर्मको धारण करो । देखो, विशुद्ध परिणामोंसे जो विधिपूर्वक धर्मको धारण करता है वह धैर्यशाली और बुद्धिमान् अपने आत्माको निर्मल बना लेता है ।

इस प्रकार मुनिके वचनोंको सुनकर चंचल-चित्त पांडु असाताके कारण संसारसे बहुत डरा और अनन्त जीवनके लिए उत्सुक हो उसने क्षणिक जीवन पर कुछ काल विचार किया । वह सम्पत्तिको बिजलीकी नाँई चंचल समझने लगा। इसके बाद स्थिर-चित्तसे मुनिको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर वह वहाँसे अपने नगरको चला आया । वह पापसे बहुत ही डर गया था और इसीलिए उसके हृदयमें मोक्षसे पूरी पूरी प्रीति हो गई थी । उसने धृतराष्ट्र वगैरहको अपने महलमें बुलाया और मुनिके मुख-कमलसे सुना हुआ साराका सारा हाल जैसाका तैसा कहा। पांडुके कहे हुए इस सब हालको सुन कुन्ती वगैरह तो इस प्रकार रोने लगीं मानों उनके ऊपर वज्र ही टूट पड़ा है, उनके हृदय दहल गये। वे विलाप करने लगीं। उनकी आँखोंसे अनवरत आँसुओंकी धारा बह निकली। सभी दुःखमय हो गईं। उन्हें मूर्च्छा आ गई। इसके बाद वे ऐसी देख पड़ने लगीं मानों उनमेंसे चेतना विदा ही ले गई हो । शीतोपचार वगैरह उपाय किये जाने पर उनमें चेतना आई। परन्तु उनकी चिन्ता तब भी न गई और उसके मारे वे किं-कर्तव्य विमूढ़सी रह गईं। तात्पर्य यह है कि उस समय वे असाताके सागरमें डूब गई थीं। इसके बाद पांडुने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि तुम सब सावधान हो मेरे वचन सुनो । इस संसार-चक्रमें चक्कर लगानेवाले ये जीव हमेशा ही जन्म-मरण किया करते हैं । तब उत्पन्न होने और मरण करनेमें तुम दुःख क्यों करती हो। यह क्या कोई नई बात है। देखो कि जिस भरत चक्रवर्तीने तमाम भूमण्डलको अपने बाहुबलसे जीतकर भोगा वह भी जब कालसे न बचा और उसका सेनापति-रत्न जयकुमार—जिसने सारे संसारको जीतकर मेघेश्वर

देवतों पर भी विजय पाई—काल वलीकी कलाओं द्वारा अपने प्राणोंका त्यागकर शिवको गया तब हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है। यहाँ तो काल ही वली है, उसके आगे किसीकी भी नहीं चलती। और भी देखो कि जिस कुरुवंश-शिरोमणि कुरु राजाने सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश किया, पर काल-शत्रुने उसका भी ग्रास कर लिया; उससे वह भी न वच सका। सच बात तो यह है कि इस असाता-रूप संसारमें चक्कर लगाता हुआ कोई भी सत्पुरुष सनातन नहीं देख पड़ता; फिर व्यर्थ शोक करनेसे लाभ ही क्या है। वताओ तो सही कि इस पृथ्वीको भोगकर कौन कौन नहीं चले गये; और यहाँ किस किसका हृदय भोगोंसे हताश नहीं हुआ। अब जब कि मेरी विल्कुल ही थोड़ीसी आयु रह गई है तब मैं भोगोंका क्यों विश्वास करूँ; मुझे तो उनका छोडना ही उचित जान पड़ता है। लक्ष्मी, महल, चन्द्रवदनी स्त्रियाँ, हाथी और घोड़े वगैरह ये सब निश्चयसे चंचल—अथिर—हैं। भला, सवेरेके वक्त तिनकोंके आगेके भागमें जो ओसकी बूँदें लगी रहती हैं उनमें कौन मूढ़ स्थिरताकी बुद्धि करेगा। इस प्रकार सबको समझा बुझाकर ज्ञानी पांडु पंडितने शुद्ध मन हो, धन वगैरहसे बुद्धिको हटाकर धर्ममें चित्त लगाया। उस समय पांडुने भक्तिभावसे जिन भगवानकी पूजा की और पापसे भयभीत हो जिनपूजाके साथ-साथ खूब नृत्य-गान आदि उत्सव किया; साधर्मी जनोंको चार प्रकारका दान दिया; दीन-दुःखी जीवोंको संतुष्ट किया; और अन्य सबको भी यथायोग्य संतुष्ट कर वह भव भेदनेके लिए तैयार हुआ।

इसके बाद उसने अपने युधिष्ठिर आदि पाँचों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें राज-भारसे विभूषित कर तथा धृतराष्ट्रके हवाले कर धृतराष्ट्रसे कहा कि भाई, तुम इन मेरे पुत्रोंको अपने पुत्र ही समझकर इनका पालन-पोषण करना। आपसे अधिक कहने सुननेकी आवश्यकता नहीं है, आप कुरुवंशके रक्षक हैं। इसके बाद उसने पुत्रोंके पालन-पोषणके सम्बन्धमें कुन्तीको भी उचित शिक्षा दी और वह संसार-देह-भोगोंसे विल्कुल ही उदास हो परलोक साधनके लिए तैयार हो गया। इस समय मोहके वश हो युधिष्ठिर आदि सभी रोने लगे। पांडुने उन्हें भी अपने राज्यको यथावत् पालनेके सम्बन्धमें समझाया। इसके बाद उस चतुरने अपने कुटुंबके सब लोगोंसे क्षमा माँगी और अपनी ओरसे सबको क्षमा की; तथा परिग्रह वगैरहको छोडकर, घरसे बाहिर हो, वह वनकी ओर चल दिया। वह आत्म-वेदी गंगा-तट पर गया और वहाँ एक प्रासुक प्रदेशमें संन्यास धारण कर स्थिरताके साथ बैठ गया। उसने आजन्मके लिए आहार, शरीर आदिका त्यागकर ज्ञानी गुरुके

निकट वीरशय्या स्वीकार की । इस वक्त वह आराधना-रूप नौका पर चढ़ कर संसार-समुद्रको पार करनेकी इच्छा रखता था । वह सब जीवों पर हमेशा समताभाव रखता था, सब जीवोंसे मैत्री रखता था, गुणी पुरुषोंको देखकर बड़ा आनन्दित होता था और विपरीत आचरण करनेवालों पर मध्यस्थ—उदासीन—रहता था। वह दीन-दुःखी जीवों पर दया करता था। उसका मन बिल्कुल स्वच्छ था । उसने प्रायोपगमन संन्यास धारण किया। वह अपने शरीरकी किसीके द्वारा या अपने आप सेवा-टहल नहीं चाहता था। घोर तप करनेसे उसका शरीर बड़ा कृश हो गया था । पंच परमेष्ठीका सदा काल ध्यान करनेसे उसका हृदय उत्तम उत्तम भावोंका स्थान हो गया था । उपवास आदि द्वारा उसका शरीर ही कृश हुआ था, पर की हुई प्रतिज्ञा एक भी शिथिल न हुई थी। और ऐसा ही होना भी चाहिए; क्योंकि वास्तवमें उत्तम पुरुषोंका व्रत वही है जो कभी भंग न हो । तपके बलसे शरदृतुके मेघोंकी नॉई उसका स्वच्छ और सफेद शरीर कृश हो गया था, अतः वह ऐसा देख पड़ता था मानों मांस आदिसे रहित स्वच्छ शरीरवाला सुर ही है । उसके शरीरमें केवल चर्म और हड्डी रह गई थीं; मांस नाम मात्रको भी न था। दुर्द्धर परीषहोंको सहनेसे उसका आत्मबल प्रगट हो गया था। सच पूछो तो यह सब ध्यानका ही प्रभाव था। वह ध्यानी ध्यानके बलसे हमेशा मस्तक पर सिद्धोंको, मनमें, जिनोंको, मुँहमें साधुओंको, नेत्रोंमे परमात्माको धारण किये रहता था। कानोंसे मंत्रोंको सुनता था और जीभसे उन्हें बोलता था। वह अपने मनोगृहमें सदा निरंजन अर्हन्तदेवको विराजमान किये रखता था। जिस तरह म्यानसे तलवार जुदी होती है, उसी तरह वह शरीरसे आत्माको जुदा समझता था। ऐसी अवस्थामें ही उस मंत्र-वेदीने अपने प्राणोंका त्याग किया। वह देह-भारसे हलका हो, धर्मके फलसे सौधर्म स्वर्गमें गया। वहाँ उसने मेघ-रहित आकाशमें बिजलीकी नॉई, एक अन्तर्मुहूर्तमें, नवयौवन परिपूर्ण, सब लक्षणोंसे लक्षित शरीर धारण कर उपपादशय्यामें सोतेसे उठ-बैठनेके जैसा जन्म धारण किया । वह केयूर, कुंडल, मुकुट और अंगद आदि भूषणोंसे विभूषित था, दिव्य वस्त्र पहिने था, सुन्दर सुंदर मालायें उसके गलेमें पड़ी हुई थीं । उसके शरीरकी कान्ति दिव्य थी । उस समय उस पर कल्प-वृक्षोंने दिव्य फूलोंकी बरसा की। दुंदुभि बाजे बजे, जिनके शब्दसे दिशाओंके तट गूँज उठे । सुगन्धित शीतल वायु जल-कणोंको फैंकती हुई बही, जिसके सम्बन्धसे इधर उधर

सब दिशाओंमें दृष्टि फैलाता हुआ वह बलको प्राप्त हुआ और सोचने लगा कि यह सब क्या है ? स्वप्न तो नहीं है ? मैं कौन हूँ ? और मुझे जो ये आ-आकर नमस्कार करते हैं, कौन हैं ? ये नृत्य करनेवाली स्त्रियाँ कौन हैं ? इस प्रकार विचार कर वह क्षणभर चकितसा रह गया। वह फिर विचार करने लगा कि मैं कहाँसे आया हूँ ? और यह कौन स्थान है ? इसको देखकर मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हो रहा है, यह क्या बात है ? यह किसका आश्रय है ? और यह शय्या कैसी है ? उसके मनमें इस प्रकारकी उथल-पुथल हो ही रही थी कि उसे उसी समय अवधिज्ञान हो गया, जिसके द्वारा उसने पांडवोंका सब हाल जान लिया; और यह भी जान लिया कि मुझे यह तपका फल मिला है, यह दिव्य है। यह देवतोंका स्थान स्वर्ग है। ये जो नमस्कार करते हैं देव हैं, और यह देवतोंका विमान है। मधुर बोलनेवाली ये देवियाँ हैं, जो मधुर मधुर गीत गाती और नाचती हैं। ये मणियोंके भूषणोंसे विभूषित अप्सरायें हैं। सारांश यह कि उसने अवधिज्ञानसे अपनी सब शंकाओंका आप ही समाधान कर लिया। अहा ! यह सुन्दर ध्वनि-वाली मद्री है। मद्री भी उसी जगह देवी हुई थी यह बात आगे यहीं स्पष्ट हो जायगी।

इसके बाद आज्ञाकारी, नम्र और प्रफुल्ल-चित्त देवता-गण हाथ जोड़ नमस्कार कर उस उन्नत देवसे बोले कि प्रभो, पहले स्नान करके तैयार होइए और विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी भक्तिभावसे पूजा कीजिए। देव, देखिए यह देवतोंका समुदाय आप जैसे स्वामीको पाकर आज कैसा उत्सव मना रहा है। यह सब आपकी सेनाके देव है। यह फहराती हुई धुजाओंसे विभूषित नृत्यगृह है। इसे भी देखिये, यह देखनेके ही योग्य है। प्रभो, यह देखो, ये भाँति भाँतिके आभूष-णोंसे सुशोभित नर्तकियाँ कैसा सुन्दर नाच कर रही हैं। हे अमरेश्वर ! आप इस समय इस विभूतिके स्वामी हुए हैं और यह सब आपने देवत्वका फल पाया है। इसलिए अब आप चलिए और योग्य क्रियाओंको कीजिए। उनके कहनेसे उस देवने जो अपने कर्तव्य-कर्म थे वे सब किये। इस प्रकार वह सुखी देव कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए भोगोंको भोगता हुआ सुख-चैनसे अपना समय बिताने लगा। वह भव्य हमेशा भक्तिभावसे सुख-पूर्वक जिनदेवकी पूजा-उपासना किया करता था।

इधर मद्री भी प्यारे पतिके स्नेहसे संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो गई और उसने शुद्ध मनसे पतिदेवके साथ ही साथ संन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा की। अपने विचारोंके अनुसार वह नकुल-सहदेव इन दोनों पुत्रों तथा कुन्तीको

राजभार और घर-गिरस्तीका भार सौंप कर संन्यास धारण करनेके लिये—मना करने पर भी—घरसे निकल पड़ी और गंगा किनारे पहुँची। वहाँ उसने आहार-पानका त्यागकर संन्यासको ग्रहण कर लिया। उसने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओंकी आराधना की। तपके तेजसे उसके दोनों नेत्र बिल्कुल भीतरको घुंस गये थे, जान पड़ता था कि मानों भूखके भयसे ही ऐसे हो गये हैं। ठीक ही है, कायरोंकी ऐसी ही गति होती है। उसका अंगभंग हो गया था, इन्द्रियाँ श्री-रहित हो गई थीं। अन्त समय उसके प्राण अपने पतिदेव पांडुके साथ ही उड़ गये और उसी प्रथम स्वर्गमें वह सौंदर्य आदि शुभ गुणोंकी खान देवी हुई। सच है, जब पुण्यका उदय होता है तब सब कुछ आ मिलता है; फिर स्वर्ग मिलनेकी तो बात ही क्या है।

इधर शोकसे पीड़ित कुन्तीने जब पांडुकी मृत्युका हाल सुना तब वह बहुत ही विलाप करने लगी। उसके मुँहसे आहें पर आहें निकलने लगीं। वह बिल्कुल ही बेचैन हो गई। इसके बाद वह गंगा-तट पर गई और वहाँ विलाप करती हुई अपने बालोंको लोंच-लोंच कर फैंकने लगी। उरःस्थलमें पड़े हुए मणि-मुक्ताफलोंसे जड़े सोनेके हारको तोड़कर फैंकने लगी। हाथोंको इधर उधर फटकारनेके कारण उसके कंकण टूट गये। वह शोकसे अत्यन्त विह्वल हो गई। इस तरह दुःखसे पीड़ित होनेके कारण उसे कुछ भी अपना कर्तव्य न सूझ पड़ने लगा। वह किंकर्तव्यविमूढ़सी हो गई। वह विलाप करने लगी कि हा नाथ, हा प्रिय, हा जीवनाधार और हा कौरव-वंश-रूप आकाशके सूर्य, तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये! अब मैं तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगी। हा सब दुःखोंको हरनेवाले और शुभ कार्योंको करनेवाले वीर, तुम मेरे दुःखोंको क्यों नहीं हरते और अपनी अब वीरता क्यों नहीं दिखाते! हा चाँद जैसे मुँहवाले और सबको सुहावने, तुम मेरे संतप्त हृदयको शान्ति क्यों नहीं देते! हा कुंडलों द्वारा विभूषित कानोंवाले और सोनेके जैसी कान्तिके धारक, आप अब मेरे चित्तको प्रसन्न क्यों नहीं करते! हा अपने स्वरसे उत्तमसे उत्तम वीणाके स्वरको भी नीचा दिखानेवाले, मेघके समान गंभीर नाद करनेवाले, शंखके जैसे कंठवाले और कोयलके जैसे स्वरवाले, अब आप मुझे दर्शन क्यों नहीं देते और अपने सुन्दर स्वरको क्यों नहीं सुनाते! हे दुर्वार वैरियोंको भी कुंठित कर उनके कठके भूषण बननेवाले, विस्तीर्ण वक्षःस्थलसे जगत भरमें अपनी कीर्तिको विस्तृत करनेवाले, आप मुझ दुःखिनीके दुःखको दूर कर मेरे कंठके भूषण

क्यों नहीं होते और अपनी कीर्तिकी गंध मुझ तक क्यों नहीं आने देते ! प्रभो, आप मुझ दुःखिनीको छोड़कर कहाँ चले गये । आपके विना अब संसारमें मुझे कौन मान देगा—मेरा कौन आदर करेगा—मुझे कौन आदरकी दृष्टिसे देखेगा । नाथ, तुम्हारे विना यह महल सूना हो गया है, अब शोभा नहीं पाता । भला, इसे एक वार तो फिर सुशोभित कर दीजिए । स्वामिन्, तुम्हारे विना मैं अत्यन्त दुःखी हो गई हूँ । मुझे कुछ कर्तव्य ही नहीं सूझ पड़ता । मुझे ऐसा भान होता है कि मानों आज आकाशको भेदकर मेरे मस्तक पर वज्र ही आ पड़ा है । मेरे शरीर पर दुष्ट जलानेवाली आग ही छोड़ दी गई है । मुझे बड़ा खेद है । नाथ, बताइए कि तुम्हारे विना अब मैं यहाँ क्या करूँ; कैसे अपना समय विताऊँ । हे अमृतवत्सल, तुम्हारे विना कामसे पीड़ित हुआ मेरा शरीर जला जाता है । मैं कहीं भी जाती हूँ, पर मुझे जरा भी सुख-शान्ति नहीं मिलती । इसलिए हे पुरुषोत्तम, मुझ पर प्रसन्न होकर मुझसे एक वार प्रेम भरे शब्दोंमें बोलिए । तुम्हारे विना न तो मुझे भोजन रुचता है और न पानी ही । प्रभो, ऐसे उत्तम और सब तरहसे परिपूर्ण राज्यको छोड़कर तुमने यह क्या किया । महाप्रिय, तुमने मुझे ऐसी दुःख-मय अवस्थाको ही क्यों दिखाया । देखिए तो, तुम्हारे विना तुम्हारे ये पवित्र पुत्र क्या करेंगे, किससे शिक्षा पायँगे और किसके पास जाकर प्रसन्न होंगे । धराधीश, मै आपके विना धीरज कैसे धरूँगी । भला, कहीं वृक्षके विना बेल निराधार रह सकती है । शुभा-कर, जरा सोचिए तो, कि तुम्हारे विना अब यह आपकी वल्लभा शोभा कैसे पायगी । क्या चाँदके विना भी कहीं रातकी शोभा होती है । देव, तुम्हारे विना मुझ विरस—शृंगार आदि विहीन—का आदर ही कौन करने चला । क्या कहीं कोई विरस—जल-विहीन–सूखे सरोवरको भी आदरकी दृष्टिसे देखता है । सच तो यह है कि पतिके विना स्त्री कहीं भी चैन नहीं पाती; जैसे कि मणियोंके विना हारलता सुशोभित नहीं होती । कुन्तीके इस तरह रोने-विलपनेको सुनकर कौरव भी विलाप करने लगे । युधिष्ठिर आदिके मुँह आसुओंसे भींग गये । वे विलाप करने लगे देव, यह उत्तम राज्य जिसे आपने छोड़ दिया है, अब आपके विना बिल्कुल शोभा नहीं पाता; जिस तरह कि चाहे कितना ही सुस्वादु भोजन क्यों न हो, पर वह नमकके विना अच्छा नहीं लगता । देव, जब कि हमें आपने ही छोड़ दिया तब अब हमारी शोभा होना असम्भव ही सा है । क्या कहीं विना दाँतोंके हाथियोंकी शोभा होना सम्भव हो सकता है । और जिस तरह बिना दाँतोंके हाथियोंकी राजा-गण कदर नहीं करते उसी तरह वे हमारी भी इज्जत नहीं करेंगे ।

प्रभो, आपके विना यह राज्य भी तो हमारी शोभाके लिए नहीं हो सकता; जैसे गंध-रहित पुष्पोंसे किसीकी शोभा नहीं होती, उल्टी और सुषमा चली जाती है। इस तरह शोकातुर कौरवोंको विद्वान् लोग समझाने लगे कि आप लोग शोक मत करो। यह शोक जीवोंको दुःख ही देता है; इससे किसीको भी सुख नहीं मिलता। और फिर तपस्वी योगियोंकी मृत्यु पर शोक करना तो बिल्कुल ही व्यर्थ है। कारण, वे मृत्युके प्रसादसे परलोकमें जा उत्तम गतिके उत्तम सुख पाते हैं। इस प्रकार युधिष्ठिर आदिके शोकको वारण कर कौरव-वंशके भूषण वे लोग नगरको वापिस चले आये।

इसके बाद इस महान् देशका राजा धृतराष्ट्र देश-विद्रोहियोंको देशसे निकाल कर महेन्द्रकी भाँति आनन्दके साथ राज्य करने लगा। वह हमेशा गांधारीके मुख-कमलकी गंधमें लुब्ध रहता था; जैसे भौंरा कमलकी गंध पर लुब्ध रहता है। और वेलमें जिस भाँति पुष्प-समूह संलग्न रहता है उसी भाँति वह गांधारीमें संलग्न रहता था। वह अपने सौ पुत्रोंको शिक्षा देता था, उन्हें राजनीति, सुनीति और देश-वत्सलताका पाठ पढ़ाता था। एवं प्रचंड और अखंड धनुषविद्याके पंडित पांडव-गण भी संकट रहित सुख-चैनसे वहाँ निवास करते थे। उन्हें किसी भी प्रकारकी कोई तकलीफ न थी। उनके शरीरकी सोनेकीसी आभा थी। उनके साथमें सदा ही गांगेय रहा करते थे। पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदि सभीके वे पालक थे। शत्रुओंको त्रास देनेमें अति प्रवीण द्रोणाचार्य उनके पक्षमें थे। और वे पाँचों ही पवित्र पांडव धनुषविद्यामें निपुण थे।

एक बार धृतराष्ट्र वन-क्रीड़ाको गया। उस समय दुंदुभियोंके शब्दोंका बड़ा भारी कोलाहल हुआ; जिससे दशों दिशायें गूँज उठीं। वहाँ उसकी वनके स्वामी भीलोंने खूब स्तुति की और सुख-लाभकी वाञ्छासे उसे फल-पुष्प आदि भेंट किये। वहाँ लोकपालोंके अधीश धृतराष्ट्रने शोकको दूर करनेवाले अशोक नामके एक वृक्षको देखा। वह ऐसा जान पड़ता था मानों दूसरा लोकपाल ही है। वहाँ पर उसकी दृष्टि एक स्फटिककी—दर्पणके जैसी निर्मल—शिला पर पड़ी। वह सिद्धशिला सी देख पड़ती थी। उसके मध्यभागमें जाकर बहुतसे वृक्षोंका प्रतिभास पड़ता था और वह भींतमें लिखे हुए निर्मल चित्रोंका भ्रम कराता था। उसके ऊपर एक मुनीन्द्र विराजे हुए थे। वे धीर थे, निर्मल थे, गुणोंके भंडार थे, विपुल ज्ञानवाले थे, विशुद्ध और चैतन्यमूर्ति थे। बड़े बड़े गण्य-मान्य पुरुष उनकी वन्दना स्तुति करते थे। वे परिग्रहके संसर्गसे रहित थे।

उनके पास तिल-तुष मात्र भी परिग्रह न था। वे सिद्धशिला पर बैठे हुए सिद्ध भगवानसे जान पड़ते थे। राजाने देखते ही उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने राजाको धर्मवृद्धि दी। इसके बाद राजा स्थिर चित्त हो बैठ गया। मुनि बोले कि राजन्, देखिए इस संसार-वनमें भटकते हुए जीवोंको कहीं भी सुख-साता नहीं मिलती—उन्हें हमेशा जन्म-मरणके चक्करमें ही पड़ा रहना पड़ता है। जिस तरह समुद्रमें कल्लोलें उठती और विनसती रहती हैं, उसी तरह संसारमें जीव भी मरते और जन्मते रहते हैं। परन्तु जो जीव अज्ञानी हैं वे मोहके वश हो कहीं सुख और कहीं दुःखकी कल्पना कर लेते हैं। पर सचमुच ऐसा नहीं है; किन्तु संसारमें तो सब जगह दुःख ही दुःख है—सुखका लेश भी कहीं नहीं है। हे विद्वान् राजन्, तुम विचार कर तो देखो कि जगत्के जीव हमेशा ही सुख-साताके लिए दौड़ते फिरते रहते है और हमेशा ही उसके लिए उद्यम भी किया करते हैं; परन्तु वे कहीं भी सुख नहीं पाते; जिस तरह मरीचिकाको देखकर विचारा मृग जलकी आशासे दौड़ता फिरता रहता है, पर वह कहीं भी जल नहीं पाता। यह किसका प्रभाव है? मोह हीका है न? राजन्, यह सम्पत्ति वगैरह कोई भी चीज जीवोंको सुख देनेवाली नहीं है। जिसके लिए ये जीव व्यर्थ ही लड़ते और झगड़ते हैं। अज्ञानी जीव स्पर्शन इन्द्रियके वश हो बड़े कष्टोंको प्राप्त होते हैं। उससे उन्हें सुख नहीं मिलता; जिस तरह वनमें कागजकी हथिनीको देख, स्पर्शन इन्द्रियके वश हो, हाथी गढ़ेमें पड़ जाता है, और उसे सुख नहीं मिलता। इसी तरह रसना इन्द्रियकी लंपटतासे भाँति भाँतिके स्वादोंको चखकर जीव सुखी होना चाहते है; परन्तु सुखी न होकर वे उल्टे काँटेके मांसको निगल जानेवाली मछलीकी नाँई दुःखी ही होते हैं; और तो क्या कभी कभी अपने प्राणोंको भी खो बैठते हैं। बहुतसे भोले-भाले अज्ञानी पुरुष मनोहर सुगन्धको सूँघ कर, कमलकी गंधसे उन्मत्त हो जानेवाले भौंरेकी नाँई उन्मत्त हो जाते हैं और मर जाते हैं। प्रसिद्ध है कि भौंरा कमलमें गंधके लोभसे बैठ जाता है और शाम तक बराबर लुब्ध होकर उसीमें बैठा रहता है और आखिर जब कमल सिकुडने लगता है तब वह उसीमें बैठा रह जाता है और प्राण गवाँ देता है। इसी तरह गंधके लोलपी पुरुष भी अपने प्राणोंको व्यर्थ ही गवाँ बैठते हैं। नेत्रोंसे स्त्रीके सुन्दर रूपको देखकर पुरुष लुभा जाते हैं और अन्तमें दुःखका भार उठाते हैं; जैसे दीपक या आगमें पंखी लुभाकर गिरते हैं और जलकर खाक हो जाते हैं। इसी प्रकार कानोंसे मधुर गीत सुनने-

की लालसाको प्राप्त होकर मनुष्य विपत्तिके पंजेमें जा पड़ते हैं और फिर वहाँसे उन्हें छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है; जैसे हरिण व्याधके गानेसे मोहित हो अपने प्राणोंको खो बैठते हैं । मुनिका यह पवित्र उपदेश सुनकर धृतराष्ट्रने पूछा कि स्वामिन्, कौरवोंके इस विशाल राज्यको धार्तराष्ट्र—दुर्योधन आदि—भोगेंगे या पांडव-गण। प्रभो, यह तो मैने कान देकर सुना कि जो कुछ पदार्थ दीख रहे हैं या जो प्यारे, उत्कृष्ट और विशिष्ट हैं वे सभी नष्ट होंगे, यह बात बिल्कुल सची है । क्योंकि वस्तुका स्वभाव ही नाश होना है। और यह भी सुना है कि पहले बहुतसे सत्पुरुष जो सब पदार्थोंके ज्ञाता हो गये हैं वे भी सब कालके ग्रास हुए। और जो वर्तमानमें सुन्दर सुन्दर पुरुष देख पड़ रहे हैं वे भी कालके ग्रास बनेंगे। भावार्थ यह है, कि इस भूतल पर कोई भी वस्तु या मनुष्य स्थिर नहीं है । परन्तु सवाल यह है कि आगे जो महापुरुष होंगे वे थिर—अमर—होंगे या नहीं ? यह मुझे दया कर बता दीजिए। आगे पांडवोंकी कैसी स्थिति होनेवाली है और क्या आगे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि राजा होंगे ? हे नाथ, आप सुव्रत हैं, योगींद्र और योग-योगांगके पारंगत हैं; अतः आपसे कोई भी वस्तु छिपी नहीं—आप सब कुछ जानते हैं ।

मुनि बोले—मगध नाम एक देश है। वह पंडितों—बुधों—का निवास और रंभाओं—नारियों—से विभूषित है, अतः वह बुधों—देवतों—और रंभाओं—देवांगनाओं—से विभूषित स्वर्ग-लोकसा जान पड़ता है । ऐसा जाना जाता है कि मानों वह दूसरा स्वर्गलोक ही है । उसमें एक राजगृह नाम नगर है । वहाँ राजोंके राजा—राजराज—के ऊँचे महल बने हुए हैं और उसमें धनद—धनको देनेवाले दानी—और अमर—दीर्घजीवी लोग—निवास करते हैं । अतः वह अमरावतीकी बराबरी करता है; क्योंकि वहाँ भी राजराज—इन्द्र—के बड़े ऊँचे महल बने हुए हैं; और उसमें भी धनद—कुबेर—और अमर रहते हैं। वहाँका राजा है जरासंध। उसे सभी राजा-गण मानते हैं । वह मान-मत्सरसे रहित है, नौवाँ प्रतिनारायण है । उसकी रानीका नाम है कालिंदसेना । उसका रूप यमुना नदीके जलकी नाँई नीला सा है । उसका शरीर विशाल और लक्ष्मीके जैसा शोभासे व्याप्त है। जरासंधके अपराजित आदि कई भाई हैं। वे अपराजित और उद्योगी हैं। कालयवन आदि विनयी उसके पुत्र हैं । वे नीतिवाले और सुकाल आदिके समान हैं। इस तरहसे वह राजगृहका स्वामी जरासंध राजसिंह सा सुशोभित होता है। भूचर, खेचर आदि सभी उसकी सेवा करते हैं । उसने सारे

वैरियों पर विजय पा ली है । हे प्रभो, इस सम्बन्धमें मैं यह पूछना चाहता हूँ कि जरासंधका मरण सहज ही होगा या किसी वैरीके द्वारा? भगवन्, कृपा कर आप मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिए, जिससे कि मुझे उक्त बातोंका निश्चय हो जाय। आप इनके समझानेको सर्वथा समर्थ है । क्योंकि आपके दिव्यज्ञानसे कोई भी चीज बाहिर नहीं है । यह सुन मुनिराज बोले कि विशुद्ध बुद्धिवाले राजन् धृतराष्ट्र, मैं तुम्हारे मनकी सब बातोंको कहे देता हूँ, तुम धीरजके साथ सुनो। इस राज्यके कारण दुर्योधन आदिमें और पांडवोंमें खूब विरोध होगा और लडाई होगी । तुम्हारे पुत्र दुर्योधन आदि कुरुक्षेत्रके युद्धस्थलमें मरेंगे वहाँ और भी अनेक योधाओंकी मृत्यु होगी । और पांडव-गण निर्भय हो आनन्दके साथ हस्तिनापुरमें जा इन्द्रकी नाँई पृथ्वीका पालन करेंगे।

और तुमने जो नाना दुःखोंको देनेवाला जरासंधका मरण पूछा है उसे भी ध्यान देकर सुनो। कुरुक्षेत्रमें ही कृष्णनारायणके साथ जरासंधका युद्ध होगा और वहीं कृष्णके हाथसे उसकी मृत्यु होगी । यह हाल सुन धृतराष्ट्रको बडी चिन्ता हुई और उसकी इस चिंताने सारे देशको भी चिंतामें डाल दिया । इसके बाद धृतराष्ट्र योगीन्द्रको नमस्कार कर नगरको चला आया । नगर ललनाओंके चंचल नेत्रोंसे सुशोभित था और मनुष्योंकी रक्षा करता था।

श्री और गांधारी देवीसे विभूषित धृतराष्ट्र इस प्रकार शास्त्रका पवित्र उपदेश सुनकर अपने श्रेष्ठ गुणोंके द्वारा कामके कलंकको दूर करनेमें लगा । उसने अपने ऐश्वर्यसे वैरियोंका ध्वंस कर दिया था और इसी निमित्तसे उसका पुण्य विकसित हो उठा था। वह लोगोंमें सुगण्य और गुणोंका पिटारा था, दयाका अवतार था। उसकी बुद्धि बहुत ही सुंदर थी । वह धृतराष्ट्र कौरवोंके कुलको बढ़ाता हुआ अत्यन्त शोभा पाता था।

धर्मराज युधिष्ठिर नीतिमार्ग पर चलते हैं, अतएव धर्मसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त है। वह धर्मके लिए ही हमेशा उत्तम उत्तम आचरणोंको करते हैं; क्योंकि धर्मसे ही जीवोंको सब सुख मिलते है। वह विपुल गुणोंके भंडार हैं, धर्ममें धर्म-बुद्धि करते हैं और अधर्मसे सदा दूर भागते हैं। वह राजोंमें श्रेष्ठ राजा है । अतः हे धर्म, तू उस गुण-गणके धारीकी रक्षा कर।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

उन सुमतिनाथ प्रभुको नमस्कार है जो बुद्धिके दाता और पंडितों द्वारा पूज्य हैं, जिन्हें सम्पूर्ण इन्द्र और नरेन्द्र आकर नमते हैं; वे मुझे सुमति दें ।

एक दिन विचारशील, दूरदर्शी, भविष्यको जाननेवाले, सूरजकी नाँई प्रभासे विभूषित और राजोंसे घिरे हुए धृतराष्ट्रने विचारा कि अहो, मेरे ये दुर्योधन आदि पुत्र युद्ध करनेमें शूरवीर हैं, शुद्धमना हैं, बुद्धिशाली चतुर हैं, पंडितों द्वारा सेवित हैं, बुद्धिसे बृहस्पतिके तुल्य हैं, लक्ष्मीके स्वामी हैं, सर्वश्रेष्ठ और वीर्यशाली हैं, धीरज और गम्भीरतासे युक्त हैं, संसार भर जिनके चरण-कमलोंको पूजता है और राज्यके भोक्ता हैं; परन्तु ये भी राज्य छोड़कर महायुद्धमें मरेंगे ! अहो, धिक्कार है ऐसे उन्नत राज्य-पदको, और धिक्कार है मरनेवाले इन अपवित्र पापात्मा पुत्रोंको; तथा आत्म-कल्याण नहीं करनेवाले मेरे इस जीवनको भी धिक्कार है । देखो, यह उत्तम राज्य धूलके समान है और विषय विषके समान हैं । लक्ष्मी बिजलीकी नाँई चंचल है, शोकका स्थान है । ये स्त्रियाँ जीवनको हरनेवाली हैं और पुत्र साँकलके समान है । तथा यह घोड़ोंकी घटा जेल-खानेके तुल्य है । हाथी जन्म-जराके आकार हैं । ये रथ अनर्थको करनेवाले हैं और प्यादे-गण विपत्तिके निवास हैं, सम्पत्तिको हरनेवाले हैं । ये परिवारके लोग शत्रुके तुल्य हैं । मंत्री शोकको देनेवाले हैं । एवं भाँति भाँतिके रूपको धरने-वाले ये मित्र अपने अपने स्वार्थके साधक हैं । इस प्रकार धृतराष्ट्रने संसार-भोगोंसे विरक्त हो, गांगेयको बुलाकर उससे ये सब बातें कहीं । वह बोला कि गांगेय, जैसे चाँद हमेशा ही आकाशमें घूमा करता है उसी तरह यह जीव भी सतत संसार-में चक्कर लगाया करता है । अतः मैं अब इस हेय राज्यको पुत्रोंके लिए सौंपे देता हूँ । इतना कह कर उसने अपने पुत्रों और पांडवोंको बुलाया और गांगेय तथा द्रोणाचार्यके सामने उन पर राज्यका सब भार डाल दिया ।

इसके बाद उसने माता सुभद्रा सहित वनमें जाकर वहाँ सुव्रत योगींद्रको नमस्कार कर तथा केशोंका लोंचकर जिनदीक्षा धारण की । वह विचार-चतुर तेरह प्रकारके चारित्रको पालता था और हमेशा पर्वतकी नाँई अचल होकर चैतन्य-स्वरूपका चिंतन करता था । उसने थोड़े ही समयमें समस्त आगमके अर्थको जान लिया । वह बुद्धिमान् मुनीश्वर हमेशा साधुओंके समागममें रहता था और विहार करता था ।

इधर थोडे ही दिन बाद गांगेयने दुर्योधनादि तथा वीर युधिष्ठिरको राज्य दे दिया। युधिष्ठिर न्यायका ज्ञाता था, अतः वह न्यायसे पृथ्वीको पालता और धर्मका प्रचार कर लोगोंको धर्मात्मा बनाता था। उसके राज्य-कालमें चोर ये दो अक्षर केवल शास्त्रमें ही सुने जाते थे और कहीं नगर-गाँवमें इनका प्रवेश न था। उसके राज्य करते समय किसीको किसी तरहका भय न था, सब निर्भय रहते थे; परन्तु युवा पुरुष कामनियोंके क्रोधसे जरूर डरते थे—वे कभी उन्हें नाराज नहीं करते थे। उसके समयमें किसी भाग्यशालीकी लक्ष्मी नहीं हरी जाती थी। हाँ, वायु फूलोंकी सुगंधको अवश्य हरती थी और लोगोंके चित्तोंको प्रसन्न करती थी। उसके शासन-कालमें परस्परमें कोई किसीको मारता न था। यदि कोई मारनेवाला था तो यम अवश्य था; वह जरूर लोगोंको मारता था। वह सुपात्रोंके लिये दान देता था और उनसे मधुर शब्दोंमें बोलता था। वह परोपकारी था, दूसरोंके अनेक काम कर देता था। इसके सिवा वह लोगोंको यथायोग्य आदर-सत्कारसे संतुष्ट करता था। वह जिनेन्द्रदेवकी भक्तिभावसे पूजा-अर्चा करता था। काम, क्रोध आदि छह वैरियोंको जीतनेके लिये वह सदा उद्यत रहा करता था। वह दया सागरके पार पर पहुँचा हुआ था, परमार्थका ज्ञाता और क्षमाका भंडार था। अतः वह योगी सा सुशोभित होता था। क्योंकि योगी भी परमार्थका ज्ञाता और क्षमाका भंडार होता है।

द्रोणाचार्य इन सब पांडवों और बली दुर्योधनादिके श्रेष्ठ गुरु थे। उन्होंने इन सबको धनुर्वेद, बाण छोडना, लक्ष्य बाँधना और धनुष खींचना आदि सिखाया। पर इन सबमेंसे अर्जुनने ही सार्थक धनुर्वेद-विद्या सीख पाई; क्योंकि वह समर्थ था—योग्य पात्र था। और है भी ऐसी ही बात कि पुण्योदयसे मनुष्योंको बडी जल्दी विद्या आ जाती है। अर्जुन द्रोणाचार्यका बड़ा भक्त था, उनकी वह बहुत सेवा करता था। उस सेवाके प्रभावसे ही वह पूर्ण धनुर्वेद-विशारद हो गया। सच है कि गुरु-सेवा सब मनोरथको साधनेवाली होती है। अर्जुनकी इस निष्कपट सेवासे द्रोणाचार्य अर्जुन पर बहुत प्रसन्न थे और इसी लिए उन्होंने उसे पूर्ण धनुष-विद्या सिखा दी थी। सच है कि गुरु-भक्ति मनकी आशाको पूरा कर देती है। अर्जुनने अपनी धनुष-विद्याके बलसे और सबकी विद्याको विफल कर दिया था, अतः वह उन सबके बीचमें ऐसा शोभता था जैसा कुलाचलोंके बीचमें सुमेरु शोभता है। अर्जुनके सिवा और और पांडवों तथा कौरवोंने भी द्रोणाचार्यसे अपने अपने क्षयोपशमके अनुसार यथायोग्य धनुर्वेदको सीखा—धनुष-विद्याका अभ्यास किया। वे धनुर्विद्या-विशारद विद्वान

लोग परस्परमें धनुर्वेदके द्वारा क्रीड़ा करते, धनुष-वाण द्वारा लक्ष्यवेध करते हुए दिल वहलाते । परन्तु दुर्योधन आदिसे पांडवोंकी राज्यवृद्धि न सही गई—वे उनके अभ्युदयको देख देखकर जलने लगे और उनके विरोधी वन गये। वे उनके साथ वड़ी उद्धतत्ता दिखाने लगे। उनमें परस्पर स्पर्धा पढ़ने लगी और साथ ही साथ विरोध भी वढ़ता जाने लगा। धीरे धीरे उनमें अतीव दुःखदाई वैर हो गया। यह देख गांगेय आदि गंभीर पुरुषोंने वैर-विरोध मिटानेके लिए युक्तिसे पांडवों और कौरवोंमें आधा आधा राजा वाँट दिया। परन्तु तो भी प्रचंड पांडवों और कौरवोंमें वैर-विरोध वढ़ता ही गया—वह कम न हुआ। कारण, अकेले कौरव ही पूरे राज्यको चाहते थे। कौरव लोग स्वभावसे ही हृदयके दुष्ट और वाणीके मिष्ट थे। वे रोषके भरे सदा ही पांडवोंको मारनेकी चेष्टामें लगे रहते थे, पर तो भी वाहिरसे प्रीति ही दिखाते थे । इन सब वातोंके रहते हुए भी सब कौरव-पांडव सुन्दर सुंदर प्रदेशोंमें एक साथ क्रीड़ा किया करते थे।

एक दिन महान् योधा भीमसेन अपनी इच्छासे कौरवोंके साथ वनमें क्रीड़ा करनेको गया; और वहाँ अपने आपको धूलसे पूर कर वह कौरवोंसे वोला कि जो कोई मुझे इस धूलमेंसे निकाल लेगा वही वलवानोंमें वली है। यह सुन सबके सब कौरव उसे धूलमेंसे निकालनेको तैयार हुए और अभिमानमें आकर उसे निकालनेकी प्रतिज्ञा करने लगे। परन्तु वे उसे रंचमात्र भी न चला सके—जोर लगा लगा कर थक गये। ठीक ही है कि वहुतसे चूहे मिलकर सुमेरुको नहीं चला सकते । यह देख उन छुपे हुए शत्रुओंके मनका उत्साह मंद हो गया और उनके मुँह मलिन हो गये। इसके वाद वे वहाँसे वापस घर लौट आये।

इसके वाद एक दिन फिर भीमसेन कौरवोंके साथ वनक्रीड़ाको गया और एक ऐसे वनमें पहुँचा, जो घने वृक्षोंसे सुशोभित था । जिसका एक एक वृक्ष डालियोंके आगेके भागमें लगे हुए पत्तों, फलों और पुष्पोंसे युक्त था। वहाँके मनोहर आमके वृक्ष फलोंके भारसे नम गये थे और उन पर कोयलें वोलती थीं। अतः जान पड़ता था कि मानों वे कोयलोंके शब्दोंके वहानेसे फलोंको चाहनेवाले सत्पुरुषोंको ही वुलाते हैं । सवेरेकी लाल छटाके जैसे उनके जो लाल पत्ते थे वे मूँगाकी वेलोंको हँसते थे । ठीक ही है कि समानता हँसी ही कराती है। वहाँके खजूर-वृक्ष ऐसे शोभते थे मानों वे जर्जरा जराको ही जीत रहे है । क्योंकि

वे जरासे भी गये बीते थे अर्थात् जरा तो कुछ दिन मनुष्यको ठहरने भी देती है, पर वे पकते ही फलोंको गिरा देते थे। वहाँ फल-पुष्प आदिकी शोभासे रहित क्षीरवृक्ष थे। एवं वहाँ घुघरूके समान शब्दवाले और बिल्कुल छोटे छोटे पत्तोंवाले पवित्र इमलीके वृक्ष थे। वहाँ विपुल और सुन्दर पत्तोंवाले निर्मल केलेके वृक्ष शोभित थे, जो अपने फलोंसे कल्पवृक्षके फलोंको भी जीतते थे। और वहीं कषैले फलोंसे सुशोभित आँवलेके वृक्ष थे, वे ऐसे जान पड़ते थे कि मानों मुनि-गण द्वारा जीती गई कषायें ही स्थित है।

ऐसे रमणीक वनमें पहुँच कर उन सबने खूब क्रीड़ा की। वहाँ भीमसेनने एक आँवलेका वृक्ष देखा। वह खूब फला हुआ था। उसकी डालियाँ बड़ी मोटी थीं। वह पत्तोंसे और फलोंसे लदा हुआ था। उस पर अभिमानी कौरवोंके साथ साथ बली भीम क्रीड़ा करने लगा—वह उस पर कभी चढ़ता और कभी उतरता था। कोई उस पर चढनेका यत्न करता था और फिर चढ़नेको असमर्थ हो स्वयं ही उतर पड़ता था। कोई उसे हिलाता और कोई चढ़नेके लिए उसका आलिंगन करता था, पर डर कर फिर दूर हट जाता था। कोई उसे अपनी छातीके बल खूब हिला डालता था और दूसरा कोई आकर गिरे हुए उसके फलोंको बटोरता था। उस पर चढ़नेके लिए यद्यपि उन सबने बड़ी कोशिशें कीं, पर वह बहुत ही ऊँचा था, इसलिए उस पर कोई भी न चढ़ सका—सब हिम्मत हार गये। कौरवोंके लिए उस पर चढना कठिन होने पर भी भीमसेन हिम्मतके साथ उस पर अति शीघ्र चढ़ गया। यह देख कौरवोंको बहुत बुरा लगा और वे उस पवित्र आत्माको पेड़ परसे नीचे गिरा देना चाहने लगे—उनके चित्तमें द्वेष-बुद्धि-वश भीमको नीचे गिरा कर कष्ट देनेकी इच्छा हुई। उसको गिरानेके लिए उन्होंने इकट्ठे होकर जोरके साथ उस महान् वृक्षको खूब प्रचंडतासे हिला डाला। परन्तु उस हिलते हुए वृक्ष पर भी वह बली निश्चल ही बैठा रहा—रंच मात्र भी न चला। और है भी ठीक कि नादियोंका चाहे जैसा ही क्षोभ क्यों न हो, उससे समुद्र बिल्कुल नहीं चलता है। उनके इस उद्योगको देख कर ऊपरसे भीमने कहा कि यदि आप लोगोंमें इस विपुल वृक्षको उखाड़ देनेकी ताकत हो तो उखाड़िए। परन्तु इतना कहने पर भी वे चंचल-चित्त कुछ भी न कर सके—चुप रह गये। सच है कि दीन-दुर्बल पुरुष चाहे कितने ही क्यों न हों, पर वे एक थोड़ेसे ऊँचे पहाड़को भी नहीं चला सकते। आखिर भीमको उनका खोटा अभिप्राय मालूम पड़ गया और वह अपने घरको चला आया।

इसके बाद एक समय भीम फिर भी कौरवोंके साथ उसी वृक्षके पास गया। अबकी वार जैसे तैसे करके कौरव-गण उसके ऊपर तक चढ़ गये। तब भीमने उस वृक्षको अपनी छातीके बल हाथोंसे पकड़ कर खूब ही हिला डाला और बड़े अभिमानके साथ उसे जड़से उखाड़ कर कौरवों सहित सिर पर उठा वह भागा। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानों वह अपने मस्तक पर छत्र ही लगाये हुए है। भीमकी इस दौड़के मारे कौरव लोग उस वृक्ष परसे नीचे गिर पड़े। कोई ऊपरको मुँह किये सीधा गिरा तो कोई नीचेको मुँह किये उल्टा। कोई पाँवोंसे डालियों पर झूम कर सिरकी ओरसे लटका रहा तो कोई हाथोंसे डालियों पर झूम कर सीधा ही लटक कर रह गया। कोई डरके मारे शाखासे चिपट कर सोया सा रह गया तो कोई एक हाथसे डाली पकड़े झूमता ही रह गया। कूद पड़नेसे किसीके पेटमें पीड़ा होने लग गई तो किसीको मूर्छा आ गई, जिससे वह मरणके नजदीक पहुँचनेको हो गया। भीमके इस कार्यसे वे लोग बड़े दुःखी हुए। जान पड़ता था कि मानों भीमके पुण्यके डरसे ही वे व्याकुल हो रहे हैं। तब हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रतासे उनमेंसे एकने भीमसे प्रार्थना की। भीम, तुम पवित्र आत्मा हो, गंभीर हृदयवाले हो। अतः परिवारके लोगोंको तकलीफ पहुँचाना तुम्हें शोभा नहीं देता। इस प्रकार प्रार्थना करने पर भीम उसी समय ठहर गया और उसने घबराये हुए कौरवोंको बड़ा आश्वासन दिया—धीरज बँधाया। इसके बाद वे सब अपने अपने घरोंको आ गये। वहाँ उन सबके साथ भीम जिसकी कि पुरुषार्थसे शोभा थी और जो बड़ा पराक्रमी था, सतत क्रीड़ा करता हुआ आनन्द-चैनसे अपना समय बिताने लगा। एक दिन कौरव किसी बहानेसे भीमको एक तालाब पर ले गये और वहाँ उन मूर्खोंने मार डालनेकी इच्छासे उसे पानीमें ढकेल दिया। परन्तु वह बली पुण्यात्मा पानीमें न डूबा—वह तैरना जानता था, अतः अपनी भुजाओंके बल तालाबको पार कर किनारे आ गया। उसको तैर कर पार आया देख कौरव बड़े घबराये—उनका मान गल गया और वे सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

इसके बाद कौरवोंको पानीमें डुबा देनेकी इच्छासे धीर-वीर भीम भी एक बार उन्हें भुला कर तालाब पर ले आया और उन्हें उसने तालाबमें गिरा दिया। उस समय दीन स्वरसे बचाओ, रक्षा करो इत्यादि कहते हुए कौरव-गण पानीमें डूबने लगे और बड़े दुःखी हुए; और जलकी तरंगोंके सहारे डूबते उतरते हुए

दुःखके मारे रोने लगे। भीमके हाथों उनकी वड़ी दुर्दशा हुई। अन्तमें वे क्लेश सहते हुए पुण्यके उदयसे, जैसे तैसे पानीसे बाहिर आ गये और बड़े भयभीत हुए अपने अपने महलोंको गये।

इसके बाद भीमसे भयभीत होकर बुद्धिशाली दुर्योधनने अपने धीर-वीर मंत्रियों और छोटे भाइयोंको बुला कर उनके साथ परामर्श किया कि देखो, भीम वड़ा दुर्जेय है, धीरवीर और शत्रुओंको जीतनेवाला है, इसकी भुजाएँ वड़ी वालिष्ठ है, वह भयको देनेवाला और युद्धकी प्रतिज्ञा किये हुए है, सव तरह समर्थ है, बल-सम्पन्न और शौर्यशाली है, उसकी बुद्धि वड़ी गंभीर है, वह वैरियोंके ध्वंसके लिए हमेशा ही उद्यत है और नाना युक्तियोंका ज्ञाता है। वड़े खेदकी वात है कि इस महाभीम भीमके जीते रहते हम सौ भाइयोंका जीवन व्यर्थ ही है। इस लिए इस महान् उत्कट दुरात्माको जिस उपाय या कपटसे बन पड़े हम लोगोंको मार ही डालना चाहिए। देखिए तो इसके मारे हम लोगोंको कितना भय हो रहा है। इसको मारे विना हमारे दिलका सन्ताप मिट ही कैसे सकता है। एक वात यह है कि इसके रहते हम लोग राज्यका पालन भी नहीं कर सकेंगे। इस लिए इसका जल्दी ही इलाज कर देना योग्य है। क्योंकि वैरी वढ न पावें इसके पहले ही उसकी जड़ उखाड़ फेंक देनी चाहिए; नहीं तो वह वढकर रोगकी नाँई बल (ताकत—सेना) का ध्वंस कर देगा। जैसा कि कहा है—व्याधि, चोर, शत्रु-समूह, दुष्ट पुरुष, आपत्ति और दुर्दम भीति इनको पैदा होते ही नष्ट कर देना चाहिए; नहीं तो ये वढ़ जाने पर दारुण दुःख देते हैं; उदाहरण यह कि शरीरमें विष चढ़ जाने पर जैसे दुःखदाई हो जाता है वैसे ही ये भी वढ़कर जीवको साता नहीं होने देते; किन्तु दुःखदाई हो जाते है। इस लिए इस भयंकर भीमको हमें अति शीघ्र मार डालना चाहिए; नहीं तो यह आगकी नाँई वढ़कर हमें जला देगा—हमारे कुलका नाश कर देगा। इस प्रकार मंत्रियोंके साथ सलाह करके खोटे विचारोंवाला दुर्योधन भीमको मारनेके लिए उद्यम करने लगा।

एक समय जब कि भीम सोया हुआ था, उसे सोया जान कर स्नेह-हीन दुर्योधनने कपटसे बाँध लिया; और रोषमें आकर गंगाके प्रवाहमें वहा दिया। भीम उस हालतमें भी सुखसे सोकर उठनेकी तरह जाग्रत हुआ। उसने जान लिया कि यह सब दुर्बुद्धि दुर्योधन हीका कर्म है। वह बंधन तोड़ कर, हाथोंको

फैलाये हुए वैसा ही जल-तल पर पड़ा रहा जैसा शय्या पर सोता था। भावार्थ यह कि वह विना हाथ-पैर हिलाये ही जलके ऊपर स्थित रहा।

इसके बाद वह मनोहर शरीरधारी लीला मात्रमें ही गंगा पार कर जल बाहर निकल आया। पुण्ययोगसे उसे विल्कुल ही परिश्रम न हुआ। वह कपट रहित था, अतः जलको पार कर वह उन दुष्ट कौरवोंके साथ ही साथ घर आ गया, जो उसे बहानेको गये थे। इसके बाद उस वीरके साथ ईर्पा-द्वेप करनेवाले कौरवोंने उसको मारनेके लिए मंत्री-गणसे फिर सलाह की; और उन्होंने एक दिन परमोदयशाली भीमको भक्तिभावसे निमंत्रण देकर भोजनके लिए बुलाया। वहाँ दुष्ट दुर्योधनने उसे तत्काल प्राणहारी हालाहल विषका मिला हुआ भोजन खिला दिया। परन्तु पुण्योदयसे वह हालाहल विप भी अमृतरूप हो गया और वह भोजन भी उसे वहुत रुचिकर मालूम पड़ा। यहाँ गौतम गुरु कहते है कि श्रेणिक, देखो पुण्यका माहात्म्य कैसा है कि जिससे प्राणोंको हरनेवाला विष भी अमृत-तुल्य हो गया। और भी देखो कि पुण्यात्माके पुण्यसे विष अमृत हो जाता है और शाकिनी, भूत, राक्षस वगैरह सब दूर भाग जाते हैं। धर्मात्माके लिए धर्मके प्रभावसे फणकी फुंकारसे डरावना और क्रोधसे लाल नेत्रोंवाला महान् साँप काँचली सा हो जाता है। सारे संसारको जलानेवाली अत एव दुःखदाई तीव्र ज्वालावाली भयंकर आग जल हो जाती है। और तो क्या धर्मात्मा जनोंके धर्म-वलसे वड़े वड़े हाथियोंके समूहको रोकनेवाला सिंह, स्याल और समुद्र स्थल हो जाता है। तथा धर्मके प्रभावसे मनुष्योंको चक्रवर्तीका—जिन्हें वड़े वड़े राजा-महाराजा सिर झुकाते हैं—महान् राज्य मिल जाता है। इसी धर्मसे लोगोंको कुचोंके भारसे सुहावनी, लावण्यकी समुद्र और चंचल भौंह-नेत्र-कमलवाली स्त्रियाँ मिल जाती हैं। एवं मनुष्योंकी तुलना करनेवाले हाथी प्राप्त हो जाते हैं। जैसे मनुष्योंके कर (हाथ) होते हैं वैसे ही वे भी कर (सूँड़) वाले होते हैं। जैसे मनुष्य महान् वंशवाले होते है वैसे ही वे भी महान् वंश (पीठकी रीढ़) वाले होते है। मनुष्योंके सुन्दर दाँत होते हैं, उनके भी सुन्दर दाँत होते हैं। और मनुष्य भूतों—परिवारके लोगों—से परिपूर्ण होते हैं, वे भी भूतों—भस्म—पुंजोंसे सजे होते हैं। मनुष्य सुन्दर कपोलवाले होते हैं, उनके भी कपोल—गंडस्थल—सुंदर होते हैं। और भी सुनो कि धर्मके प्रभावसे जीवोंको इतना ही परिकर नहीं मिलता; किन्तु विना परिश्रम किये ही धन-धान्य, पवित्र और धर्म-अर्थ-काम-रूप

त्रिवर्ग-सेवी पुत्र मिलते हैं; शिक्षा पाये हुए, अच्छे मार्गसे चलनेवाले, स्वामी-की भक्तिमें लीन और अच्छे संस्कारोंवाले उत्तम नौकरोंकी नाँई उत्तम उत्तम घोड़े मिलते हैं; एवं उन धीरजधारी, समर्थ, धर्मात्मा पुरुषोंको चक्रोंके संगमसे चीत्कार शब्द करनेवाले बहुमूल्य रथ भी स्वयमेव आकर प्राप्त होते हैं। इसी तरह धर्मके प्रभावसे मनुष्योंको हार, कुंडल, केयूर, अँगूठी, कंकण आदि भूषण और सुन्दर सुंदर वस्त्र, तांबूल, कर्पूर आदिकी प्राप्ति होती है। और सुन्दर सुन्दर खिड़कियोंवाले, पहरेदारोंसे रक्षित, अक्षय और भाँति भाँतिके उत्सवोंसे परिपूर्ण महल-मकानोंकी भी प्राप्ति होती है। देखो, धर्मका ऐसा बड़ा और मनोहर फल मिलता है। इस लिए चतुर पुरुषोंको निर्मल चित्त हो धर्म सेवन करना चाहिए और उसके फलका अनुभव लेना चाहिए।

इसके बाद निर्भय हो पृथ्वी पर घूमता फिरता बली भीम साँपके साथ क्रीड़ा करनेवाले और चंचल-चित्त कौरवोंके साथ इसी तरहका क्रीड़ा-विनोद करता रहा। एक दिन उन मायाचारी कौरवोंने विष-कण उगलते हुए साँपसे भीमको कटवा दिया। पर भीमके पुण्य-प्रभावसे उस साँपके विषका उसके शरीर पर कुछ भी असर न हुआ; वह विष उसके लिए अमृत तुल्य हो गया—उसकी उसे रंचमात्र भी वेदना न हुई।

इसके बाद एक दिन गांगेय, द्रोणाचार्य, पांडव और कौरव सब मिल कर क्रीड़ाके लिए वनमें गये। वहाँ वे सोनेके दंडों द्वारा, सोनेके तारोंसे अतीव सुन्दर गुँथी हुई गेंदसे खेलने लगे। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानों दूसरे देवता-गण ही हैं। और पूर्ण चाँदके जैसी गोल गेंद भी दंडोंसे ताड़ी गई पृथ्वी पर इधर उधर ढुलकती हुई ऐसी जान पड़ती थी मानों वह राजा लोगोंके भयसे ही इधर उधर भागती फिरती है। इस प्रकार खेलते हुए उनमेंसे किसीके दंडेसे गेंद एक बार बहुत उछली और जाकर एक ऐसे अंध-कूपमें जा पड़ी जो सीढ़ी रहित था और अथाह एवं रमणीक जलसे भरा हुआ था। उसको उस अगाध अंधकूपमें पड़ती हुई देख कर चिल्लाते हुए वे सब लोग उस कुँए पर गये और उन्होंने कहा कि हम लोगोंमें कोई ऐसा शक्तिवाला भी है जो इस कुँएमेंसे गेंदको निकाल लावे। यह सुन कर उनमेंसे बिना विचारे किसी वाचालने कहा कि पातालमें गई हुई इस गेंदको मैं बहुत जल्दी ले आ सकता हूँ। किसीने कहा कि महाराज, इसकी तो बात ही क्या है मैं इससे भी

कठिन काम कर सकता हूँ। यह देख एक राजा बोला कि वाह जब कि मैं पाताल-को भी उठा लानेके लिए समर्थ हूँ तब इसके लानेकी तो बात ही कितनी सी है। मैं अभी दोनों हाथोंसे इस कुँएको ही उखाड़ कर गेंद लिए आता हूँ। एकने कहा कि इस गेंदकी तो बात ही क्या चली, यदि मैं चाहूँ तो अपने बलसे इन्द्रको इन्द्रासन सहित ले आ सकता हूँ और पाताल-मूलसे पातालके रक्षक धरणेन्द्रको पद्मावती सहित बाँध कर आपके सामने ले आकर उपस्थित कर सकता हूँ। इस तरह उन वाचाल और चंचल जनोंने बड़ा क्षोभ मचाया; परन्तु गेंदको ले आनेके लिए कोई भी समर्थ न हुआ। सब उपाय कर करके रह गये। तब चंचल चक्षु-ओंसे वे एक दूसरेके मुँहकी ओर देखने लगे। यह देख कर द्रोणाचार्यसे न रहा गया—उन्होंने उसी समय धनुष चढ़ाया और भ्रकुटी चढ़ा कर एक बार उसे पृथ्वी पर फटकारा। उसके भयानक शब्दकी कठोरतासे समुद्रमें रहनेवाले दिग्गज तक बहिरे हो गये। इस समय द्रोण ऐसे जान पड़ते थे कि मानो वे मूर्तिमान् धनुर्वेद ही हैं। और जब वे उस प्रचंड, अखंड और तीव्र तेजवाले धनुषको ऊपरकी ओर तानते थे, तब ऐसे देख पड़ते थे कि मानों वे इन्द्रधनुषको ही हाथमें लिये हुए हैं। उनके धनुषके प्रचंड शब्दको सुन कर गजोंको बड़ा त्रास हुआ। वे इधर उधर भागने लगे, जान पड़ता था भयके मारे वे दिग्गजोंकी शरणमें ही भागे जा रहे हैं। गंधर्वोंके घोड़े बंधनोंको तोड़ कर भागे। यह देख गंधर्व-देव काँपने लगे। नगरवासी लोगोंने उस धनुषके शब्दसे यह समझा कि कोई शत्रु ही चढ़कर आ गया है। अत एव वे भी भागने लगे। स्त्रियाँ हाथमें बटलोई लिये अपने भोजन वगैरहके कामोंमें लगी हुई थीं। इतनेमें द्रोणके धनुषका शब्द हुआ। उससे वे बड़ी डरीं और डरके मारे उनके वस्त्र तक गिर पड़े। सच है कि डरसे क्या नहीं होता—सभी अनहोनी बातें हो जाती हैं। इस तरह स्वयं चंचल लोगोंको द्रोणने और भी चंचल बना दिया। इसके बाद द्रोणने एक बाण ऐसा मारा कि वह जाकर गेंदमें जा छिदा। फिर क्या था, उन्होंने अब एकके बाद एक बाण मारना शुरू किया। वे बाण सिलसिलेसे बिंधते हुए गेंदसे लेकर ऊपर तक एक लम्बी रस्सीके आकारके बन गये। इस प्रकार बड़ी आसानीसे वह गेंद निकाल ली गई, जिसे निकालनेके लिए कौरव असमर्थ थे। उस समय द्रोणकी धनुर्विद्याकी कुशलताको देख कर देवता और मनुष्य उसकी बड़ी तारीफ करने लगे; एवं पर्वतोंकी गुफाओंमें बैठ कर किन्नर-गण उसके यशका गान करने लगे। राजा-गण उसके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहने

लगे कि ऐसी वाण-कुशलता पहले हमने कभी न तो देखी और न इस समय कहीं दीखती है। इसके बाद कुछ काल वहाँ और ठहर कर परस्पर प्रेम-पूर्वक कौरव और पांडव अपने नगरको लौट आये।

कौरव लोग भीमके पुण्य और शक्तिको देख कर जब कुछ न कर सके तव सुतरां शान्त हो गये। और है भी ऐसा ही कि असमर्थ पुरुष जब कुछ नहीं कर सकते तव वे क्षमाका आश्रय ले लेते हैं।

इस तरहसे पांडवों और कौरवोंको राज्य करते करते बहुत काल वीत गया, उन्हें वह कुछ भी न जान पड़ा। सच है पुण्यात्मा सत्पुरुषोंका महान् काल भी क्षणकी नाईं गुजर जाता है और उन्हें उसका कुछ भान भी नहीं होता।

इसके वाद एक समय गांगेयने तथा और और राजोंने विवाहके सम्बन्धमें द्रोणाचार्यसे प्रार्थना की। कहा कि गुरुवर्य, अब आप अपना विवाह कीजिए और सद्गृहस्थ बनिए। द्रोणाचार्यने उनकी प्रार्थनाको उत्तम समझ कर स्वीकार कर लिया। गुरुकी सम्मति पाकर गांगेयने उनके विवाहका उत्सव शुरू कर दिया और गौतमके पास जाकर उससे उसकी कन्याकी द्रोणके लिए याचना की। कन्या लोगोंको आनंद देनेवाली और रूप-सौंदर्यकी मूर्ति थी। जान पड़ता था कि वह साक्षात् दूसरी रति ही है।

उसके साथ द्रोणका विवाह-मंगल हो गया। विवाहके समय भाँति भाँतिके बाजे और कामिनी-गणोंके मंगल-गीतोंसे वडी चहल-पहल रही। तात्पर्य यह कि विवाहके समय खूब ही धूमधाम की गई थी।

विवाहके वाद उन दम्पति पर कामने अपना आधिकार जमाया और वे रति-सुख भोगते हुए आनंद-चैनसे अपना समय विताने लगे। और एक दूसरे पर आसक्त चित्त होकर प्रेमसे स्वर्गके सुखोंको यहीं भोगने लगे।

अनन्तर कुछ कालमें उन दम्पतीके अश्वत्थामा नाम एक पुत्र पैदा हुआ। वह बुद्धिमान् था, धीर था, धर्मात्मा और व्रती पुरुषोंका सेवक था। उसका शरीर तेजका पुंज था। वह धनुष-विद्यामें इतना निपुण था कि सब धनुष-विद्या-विशारदोंमें महेश्वर—मुखिया—गिना जाता था। उसका हृदय हमेशा ही प्रेमसे परिपूर्ण और फूला हुआ रहता था, अत एव वह सब लोगोंको आनंद-दायक था।

एक दिन द्रोणाचार्यने अपने परम प्रीतिभाजन अर्जुन आदिसे कहा कि प्रिय शिष्यो, तुम धनुष-विद्याके सम्बन्धमें हमेशा मेरी आज्ञाके अनुसार ही चलना; कभी मेरी आज्ञासे विरुद्ध न होना ।

द्रोणाचार्य सब विद्याओंमें पारंगत, कृपाके सागर तथा धनुष-विद्याके पूर्ण पण्डित थे । तब भी कौरवोंने उनके वचनोंकी अवज्ञा की और वे स्वतंत्र रहने लगे । परंतु बुद्धिमान् और समर्थ अर्जुनने उनकी आज्ञाका यथावत् पालन किया और यह उचित ही था; क्योंकि विद्या उन्हींको प्राप्त होती है, जो गुरुके आज्ञा-पालक होते हैं । इस पर प्रसन्न होकर द्रोणाचार्यने अर्जुनको वर दिया कि मैंने तुम्हें आज पूर्ण धनुष-विद्या दी; तुम शुद्ध, निर्दोष धनुष-विद्यासे मेरे समान ही हो जाओगे । इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं । ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है ।

गुरुके इन वचनोंको सुन कर पवित्र-चित्त अर्जुन बड़ा कृतार्थ हुआ । और उस परमार्थके ज्ञाता तथा गुरुको हमेशा अपने हृदयमें विराजमान किये रहनेवाले अर्जुनने धनुष-विद्याके अभ्यासमें लगे रह कर थोड़े ही दिनमें उसमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

इसके बाद एक दिन पांडवों और कौरवों सहित द्रोणाचार्य अपने शिष्योंको धनुष-विद्या सिखानेके लिए वनमें गये । वहाँ उन लोगोंने ऊँची डालियोंवाले और फल-पत्तोंसे लदे हुए एक वृक्षको देखा । उस पर बहुतसे पक्षी बैठे हुए थे । उसकी बीचकी डाली पर एक कौआ बैठा हुआ था । उसको देख कर धनुर्वेदी द्रोणने पांडवों और कौरवोंसे कहा कि जो इस कौएकी दाहिनी आँखको लक्ष्य—निशाना—बना कर वेधेगा, वही विद्वान् धनुषधारी, दक्ष और धनुष-विद्या-विशारदोंमें अगुआ माना जायगा । यह सुन कर दुर्योधन आदि तो उस निशानेका लगाना कठिन समझ कर चुप रह गये । वे आपसमें विचार करने लगे कि प्रथम तो यह कौआ चंचल है और दूसरे इसकी आँख और भी चंचल है—पलमात्र भी एक ओर नहीं ठहरती, फिर इसके इस दाहिने नेत्रको कौन वेध सकता है और कैसे वेध सकता है । उनको इस प्रकार चुप-चाप देख कर चाप विद्या-विशारद और लक्ष्यको भली भाँति जाननेवाले द्रोण गंभीर वाणी द्वारा पांडव-कौरवोंसे बोले कि यदि तुममेंसे कोई भी इसे वेधनेको तैयार नहीं है तो लो मैं ही इसे वेधता हूँ । यह कह कर उसने धनुष पर सपुंख बाण चढ़ा कर ज्यों ही उस कौएकी दाहिनी आँखकी ओर संधान लगाया—दृष्टि

बाँधी—त्यों ही उन धनुर्धर गुरुको प्रणाम कर धनुषके संधानमें बुद्धिमान् और धनुर्धर धनंजय (अर्जुन) बोल उठा कि हे धनुष-विद्या-विशारद गुरुपुंगव, इस लक्ष्यको वेधनेके लिए तुम सर्वथा समर्थ हो, फिर तुम्हारे वेधनेमें अचम्भा ही क्या है । हे तातपाद, इस समय आपका यह लक्ष्य-वेध करना ऐसा है जैसे सूरजको दीया दिखाना और आम पर वन्दनवार बाँधना या कस्तूरीको चंदनकी धूपसे सुगन्धित करना । भावार्थ यह कि जिस तरह सूरजको दीया दिखाना शोभा नहीं देता उसी तरह यह लक्ष्य-वेध आपको शोभा नहीं देता। और एक बात यह भी है कि मुझ सरीखे आपके ही धनुषधारी विद्यार्थीके उपस्थित रहते आपको यह काम करना युक्त भी तो नहीं मालूम पडता । इस लिए प्रभो, मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपके प्रसादसे पाई हुई धनुष-विद्याके बलसे इस विषम लक्ष्यको भी आसानीसे वेध सकूँ। यह सुन द्रोणने गौरव-शाली अर्जुनको लक्ष्य-वेध करनेके लिए आज्ञा दे दी । और अर्जुन भी उसी समय हाथमें धनुष लेकर वहाँ जाकर अचल हो बैठ गया, जहाँसे उसे लक्ष्यवेध करना था। इसके बाद धनुष पर डोरी चढ़ाकर उस यशस्वीने वज्रके शब्द जैसी गर्जना की। कौआ बहुत ही चंचल था, वह क्षण-क्षणमें गर्दनको इधरसे उधर और उधरसे इधर मोडता था । उसके नेत्र और भी अधिक चंचल हो रहे थे । ऐसी हालतमें उसकी दाहिनी आँखको लक्ष्य बनाना बहुत ही कठिन था; परन्तु फिर भी अर्जुनने उसे लक्ष्य बना उसीकी ओर अपने मन और बुद्धिको लगा दिया । उसने इस इच्छासे कि कौआ मेरी ओर नीचेको देखे, फिर धनुषका शब्द किया । जिसे सुन कर कौआ उसकी ओर मुँह कर नीचेको देखने लगा। इतने हीमें उस लक्ष्य-वेधके पूर्ण विद्वान् अर्जुनने अति शीघ्र उसकी दाहिनी आँखको वेध दिया । उसकी इस सफलताको देख कर द्रोणाचार्य और कौरव आदि सभी चापविद्या-विशारद अर्जुनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करने लगे । वे बोले कि बहुतसे धनुषधारियोंको देखा; परन्तु ऐसा धनुष-विद्या-निपुण अब तक कोई भी देखनेमें नहीं आया । अर्जुन, तुम धनुष-विद्यामें पारंगत विद्वानोंमें भी श्रेष्ठ विद्वान् हो । अब और गुणी या गुणग्राही तुमसे बढ़कर कौन होगा । इसके बाद वे सब अर्जुनकी इस सार्थक कीर्ति-कहानीको कहते सुनते हुए अपने अपने घर चले आये। परन्तु अर्जुनके इस निर्मल बलको देख कर कौरवोंका हृदय बड़ा दुःखी हो रहा था।

एक समय शत्रु-विध्वंसक समर्थ अर्जुन धनुष-बाण हाथमें लेकर वनको गया और वहाँ हिंसक सिंह, व्याघ्र आदि जीव-जन्तुओं द्वारा लोगोंको जो आपदायें हो रही थीं उन्हें दूर कर, वनचर हिंसक जीवोंको डराता हुआ, घूमता फिरता, एक गहन स्थानमें पहुँचा। वहाँ उसने सिंहकी नाँई उन्नत एक कुत्तेका मुँह बाणोंसे विंधा हुआ देखा। उसको देख कर वह सोचने लगा कि यहाँ इस तरह बाण चलाने वाला कोई मनुष्य तो दीखता ही नहीं, फिर इस प्रचंड कुत्तेका मुँह इस तरह बाणोंसे किस धनुष विद्या-विशारदने वेध दिया है। दूसरी बात यह है कि शब्द-वेध जाने विना कोई ऐसा काम कर भी नहीं सकता। और यहाँ शब्द-वेधके ज्ञाताका होना बड़े अचम्भेकी बात है। क्योंकि शब्द-वेधके कारण ही मेरे गुरु महान् पंडित द्रोणको सभी धनुषविद्या-विशारद मानते हैं और इसीसे वे संसारमें प्रसिद्ध हैं। और यह सुना भी जाता है कि शब्द-वेध बहुत कठिन है; दुराराध्य है—उसको कोई भी नहीं जानता। यदि कोई जानता है तो द्रोण ही जानता है। फिर यहाँ शब्द-वेधका ज्ञाता कहाँसे आया। यदि किसी दूसरे विद्यार्थीको द्रोण गुरुने ही सिखाया हो तो यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि मैं हमेशा ही उनके पास शब्द-वेध सीखनेके लिए उपस्थित रहता हूँ और उन्हींके आश्रयसे मैं धनुषविद्या-विशारद हुआ हूँ; मेरा धनुषविद्यामें चंचु-प्रवेश हुआ है। एवं प्रसन्न होकर उन्हींने मुझे शब्दवेध-विद्या सिखाई है और किसीको नहीं सिखाई है। फिर दूसरा कोई शब्द-वेध-कुशल यहाँ हो ही कैसे सकता है। परन्तु इसमें भी संशय नहीं कि इस कुत्तेको भोंकते वक्त किसी शब्दवेध-विशारदने ही मारा है। बड़े अचम्भेकी बात है कि उसका कुछ पता नहीं चलता।

इसके बाद वह धीरवीरोंको भी शिक्षा देनेवाला वीरवर अर्जुन इसी बातका बार बार स्मरण करता हुआ गर्वके साथ जंगलमें घूमने लगा। और उस शब्द-वेधी बाण चलानेवालेको देखनेकी प्रबल इच्छासे वह अनायास ही बड़ी बड़ी दूर तक घूम आया। उसने पहाड़ोंकी गुफायें और शिखर देखे, लताओंके सुन्दर मंडप देखे। इतनेमें उसे एक भील देख पड़ा। वह कंधे पर धनुष लिये था, वीर था, वनमें रहनेवाला था, बाण छोड़नेमें बड़ा चतुर था, उसके नेत्र बड़े भयंकर थे, दोनों पसवाड़े इधर उधर घूमनेके कारण क्षुभित हो रहे थे। वह कमरमें तरकस बाँधे था। उसका तरकस बाणोंसे परिपूर्ण था। उसको आलस लेशमात्र न था। उसका हाथ हमेशा नृत्यसा करता था और वह अपने वेगकी चंचलतासे हवाको भी मात करता था। उसका मुँह नीचा था। उसकी

नाकका आगेका भाग बाणके अग्र-भागकी तरह बिल्कुल पतला था। उसके बाल बँधे हुए थे। वह भयानक और एक कुत्तेको साथ लिये हुए था। उसको देख कर तेजस्वी पांडुनन्दन अर्जुन बोला कि मित्र, तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? और कौनसी विद्या जानते हो? यह सुन क्रोधसे लाल नेत्र किये हुए अत एव क्षमा-रहित और देखनेमें भयावना वह भील अहंकार भरे शब्दोंमें बोला कि सुनिए, धनुषधारियोंको भय देनेवाला तथा औरोंको प्रीति देनेवाला मैं एक भील हूँ और इसी वनमें बसता हूँ। मैं धनुषकलाका पण्डित हूँ। मुझमें धनुष-बाणके द्वारा हर एक प्राणीको बेधनेकी अपूर्व सामर्थ्य है। मैं शब्दवेध करनेमें पूर्ण समर्थ हूँ; मेरे समान लक्ष्यवेध करनेवाला पृथ्वीकी पीठ पर और कोई नहीं है। और तो क्या, मेरी भृकुटिको देख कर ही कई तो प्राण त्याग देते हैं। उस धनुर्धर भीलके ऐसे पराक्रमको सुन कर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उससे पूछा कि हे शब्द-वेध-निपुण, उस सिंह-तुल्य कुत्तेको क्या तुमने ही अपने अपूर्व बाण-विद्याके बल मारा है? भील बोला—हे सुन्दर श्रोत्रोंवाले और कामकी मूर्ति, आप मनोरथ सिद्धिके साधक, सुन्दरांग और कमलके जैसे नेत्रोंवाले, कमला—लक्ष्मी—के आलय, सुन्दर कामियों द्वारा वांछनीय, कर्तव्य-परायण और भाँति भाँतिकी कलाओंकी केलिके स्थान देख पड़ते है। अतः मैं अपनी कृतिको आपसे कहता हूँ। आप ध्यान देकर सुनिए। वह यह कि मैं शान्तचित्तसे कहीं जा रहा था कि इतनेमें मैंने उस कुत्तेका भयावह शब्द सुना। सुन कर मुझे कुछ रंजसा हुआ और ऐसी ही अवस्थामें मैंने उसका बाण द्वारा काम तमाम कर दिया। भीलकी इस बातसे उसे शब्द-वेधी जान कर कौरवाग्रणी अर्जुनको बहुत अचम्भा हुआ और तब उसने शोभा-विहीन और लोभी उस भीलसे पूछा कि किरात, बताओ कि तुमने यह शब्दवेधिनी उत्तम विद्या कहाँसे सीखी है? देखो, यह अक्षरशः सत्य है कि उत्तम विद्याका उत्तम फल मिलता है या यों कहिए कि उत्तम विद्या उत्तम फल देती है। ऐसी उत्तम विद्याका देनेवाला कौन अपूर्व पण्डित तुम्हारा गुरु है। इस समय तो शब्द-वेधिनी-विद्याको सिखानेवाले गुरु कहीं दीखते भी नहीं। अर्जुनकी ऐसी युक्ति-संगत बातोंको सुन कर मुसक्याता हुआ वह कृतज्ञ और सुकृती भील बोला कि शत्रु-समूहके ध्वंसक द्रोणचार्य मेरे सद्गुरु हैं; और उन्हींके प्रसादसे मैंने यह उत्तम विद्या पाई है। इस समय यह विद्या उनके सिवा और किसीके पास नहीं है। अतः इस विद्याकी विधिको बतानेवाले मेरे वही गुरु हैं और कोई नहीं। उसके इन वचनोंको सुन कर सफल-मनोरथ, पवित्र-चित्त

और सूक्ष्म-बुद्धि अर्जुन मन-ही-मन सोचने लगा कि कहाँ तो परिवारके साथ नगरमें रहनेवाले, उत्तम उत्तम भोगोंको भोगनेवाले, मिष्टभाषी, राज्यमान्य और विद्वानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् द्रोणाचार्य और कहाँ निर्दय, जीवोंका घातक और अति क्रूर जीवोंके साथ निडरतासे युद्ध करनेवाला यह भील । नगर और वनमें रहनेवाले इन दोनोंका समागम होना अत्यन्त विषम है; जैसे कि पूर्व-समुद्रमें छोड़ी गई सैल और उत्तर समुद्रमें छोड़े गये जुआका समागम बड़ा कठिन होता है। इसके वाद अर्जुनने उस किरातसे कहा कि तुमने उत्तम गुणोंसे शिष्टोंमें भी गरिष्ठ उन द्रोण गुरुको कहाँ देखा है ? इसके उत्तरमें वह बोला कि यहाँ एक रमणीय स्तूप (थंभा) है। उसी स्तूपको द्रोण समझ कर मैंने यह विद्या प्राप्त की है । इतना कह कर वह नम्र और गुण-गौरवका ज्ञाता भील अर्जुनको उस स्तूपके पास ले गया और दिखा कर बोला कि देखो, यही पवित्र-आत्मा द्रोण मेरे परम गुरु हैं । इनके आश्रयसे लोहा उसी तरह सोना हो जाता है जिस तरह कि पारसके संयोगसे। हे राजन्, मैं हमेशा सवेरे उठतेके साथ ही इस विपुल और पावन स्तूपको गुरु-बुद्धिसे नमस्कार करता हूँ । इसीके प्रसादसे ही मैंने यह शब्दवेधिनी विद्या पाई है । मैं हमेशा इसकी सेवा भक्तिमें लगा रहता हूँ । मैं परोक्ष रूपसे द्रोण गुरुकी विनय करता हूँ और रातदिन स्थिर चित्तसे उन्हींके गुणोंको स्मरण करनेमें लगा रहता हूँ । हे राजन्, द्रोण गुरुके संख्यातीत गुणोंका चिंतन करता हुआ मैं जिस वक्त इस गुरु-तुल्य स्तूपको देखता हूँ तब मेरा चित्त स्नेहसे भर आता है । देखो, कहा है कि जो गुरु-बुद्धिसे गुरुके चरणोंकी स्थापनासे पवित्र हुए स्थानकी भी सेवा करता है वह भी संसारमें मन-चाहे सुखोंको पाता है । यह सुन कर पार्थ अपने शुद्ध वचनों द्वारा उसकी प्रशंसा करने लगा और बोला कि चाहे सज्जन पुरुष कितनी ही दूर क्यों न हों पर सत्पुरुष उनके गुणोंको ले ही लेते हैं। क्यों कि गुण-ग्रहण करनेका सत्पुरुषोंका स्वभाव ही होता है। शवरोत्तम, तुम महान् हो, महान् पुरुषों द्वारा मान्य हो एवं गुरु-भक्ति-परायण और गुणवानोंमें श्रेष्ठ हो।

इस प्रकार उस भीलकी स्तुति कर अर्जुन वहाँसे अपने नगरको चला आया। पर उक्त घटनासे उसके हृदयमें बड़ी उछल-कूद मच रही थी। अतः वह शीघ्र ही द्रोणाचार्यके पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। बाद वह बोला कि गुरुवर्य, मैं आज शत्रुओंको नाश करनेकी इच्छासे वनमें गया था। वहाँ मुझे तरकस बाँधे हुए एक भील दीख पड़ा। वह कुण्डलके आकार

जैसे धनुषको लिये था। उसके हाथमें वाण था। उसको देख कर मैंने पूछा कि मित्र, तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? और कौनसी विद्या जानते हो? उसने उत्तरमें कहा कि मैं किरात हूँ, यहीं वनमें रहता हूँ और द्रोणाचार्य गुरुके उपदेश-से मैं शब्द-वेधिनी विद्याको भली भाँति जानता हूँ। परम पूज्य गुरुवर्य, उसके इस वचनोंको सुन कर मै आपसे कहनेके लिए यहाँ आया हूँ। स्वामिन, वह बड़ा निठुर है, दुष्ट और दुरात्मा है। उसकी सभी चेष्टायें अनिष्ट रूप होती हैं। वह हतबुद्धि, सदा ही निरपराधी जीवोंको मारा करता है। खेदकी बात यह है कि वह मायाचारी आपके उपदेशका बहाना करके जीव-राशिके प्राणोंको व्यर्थ ही हरता है और घोर पाप करता है। पार्थके इन दुःख भरे शब्दोंको सुन कर द्रोणको बडा भारी खेद हुआ और वह मन ही मन विचारने लगे कि इस पापात्माको इस दुष्कृत्यसे रोकनेका क्या उपाय है। कुछ सोच कर वह उसको दुष्कृत्यसे रोकनेके लिए अर्जुनके साथ उसी समय वहाँसे वनको चले और रास्तेमें धनुष-बाणधारी भीलोंको जाते हुए देखते उसी वनमें पहुँचे। वहाँ अति शीघ्र ही उनकी उस भीलसे भेंट हो गई। भीलने अति शान्त-चित्त गुरुको नमस्कार किया। परन्तु वह जानता न था कि जिसको मैं गुरु मानता हूँ वह द्रोणाचार्य यही हैं और माया-वेष धर कर यहाँ आये हैं। इसके बाद वह गुरुके चरणोंमें बैठ गया। उस समय द्रोणने उससे पूछा कि तुम कौन हो? और तुम्हारा गुरु कौन है? इसके उत्तरमें वह द्रोणाचार्यको प्रसन्न करता हुआ मीठे वचनोंमें बोला कि—मैं भील हूँ और नाना कलाओंके जानकार महान् पुरुष द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं। उन्हींके प्रसादसे मैंने यह सब मनोरथोंको साधनेवाली विद्या पाई है, और यदि मुझे उन महान् पुरुषका दर्शन मिले तो मैं अपना बड़ा भारी सौभाग्य मानूँगा। यद्यपि वह विशुद्ध आत्मा और समृद्धि-सिद्धि-बुद्धिसे युक्त मुझसे परोक्ष हैं तो भी इस समय मैं उन्हें भक्ति भावसे प्रत्यक्ष समझ कर ही आराधता हूँ। भक्ति-बलसे वह हमेशा ही मेरी दृष्टिके सामने रहते हैं। मैं उन्हें कभी भी नहीं भूलता हूँ। यह सुन कर द्रोणने कहा कि किरात, यदि इस समय नाना लक्षणोंसे लक्षित उन द्रोणाचार्यको तुम प्रत्यक्ष देख पाओ तो उनके प्रति तुम कैसा व्यवहार करो। इसके उत्तरमें किरात बोला कि यदि मैं इस समय उन्हें प्रत्यक्ष देखूँ तो मैं अपनेको निछावर कर सब प्रकार उनकी सेवा करूँ। मुझमें और कुछ परोपकार करनेकी सामर्थ्य तो नहीं है, इस लिए मुझ सरीखे शक्ति-हीनोंके लिए गुरुसेवा ही पर्याप्त है, बस है। इस पर द्रोणने कहा कि तुम द्रोणके कुछ लक्षणोंसे उसे

जानते हो। उत्तरमें किरातने कहा कि हाँ, मैं उन्हें पहिचानता हूँ। तब द्रोण बोले कि सारे-संसारका हितैषी, विद्वानों द्वारा मान्य और मनोहर मैं ही तुम्हारा गुरु द्रोणाचार्य हूँ। यह सुन कर भील बहुत ही खुश हुआ। उन्हें अपने गुरु जान कर उसका मुख-कमल खिल उठा और उसने द्रोणको पृथ्वी तक मस्तक झुका कर साष्टांग प्रणाम किया। सो ठीक ही है कि इष्ट वस्तुके चिरकालसे मिलने पर सभी को प्रीति होती है। उस विनयीने गुरु द्रोणाचार्यका खूब विनय-सत्कार किया। सच है कि गुरुके मिलने पर सभी बुद्धिमान् उनका विनय करते हैं।

इसके बाद द्रोणने उस भीलसे पूछा कि तुम कुशल तो हो न ? वह बोला, कि नाथ, तुम्हारे प्रसादसे मैं कुशल हूँ। मुझे किसी तरहका कष्ट नहीं है। गुरुके समागमसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। इस पर वह न्याय-मार्ग-पारंगत और वाग्मी द्रोण बोले कि किरात, तुम वनवासी हो, विघ्न-समूहके विघातक हो, मेरी सेवा-विधिके ज्ञाता हो, मेरी आज्ञाके प्रतिपालक हो, तुम्हारे समान इस भूतल पर मैंने आज तक कोई भी विद्यार्थी नहीं देखा है। तुम बड़े ही अच्छे मालूम पड़ते हो। देखो, मैं यहाँ तुमसे एक याचना करनेके लिए आया हूँ। यदि तुम देना स्वीकार करो तो याचूँ; क्योंकि याचनाका भंग बहुत ही दुःखदाई होता है। यह सुन भील काँपता हुआ और मनमें विस्मय करता हुआ बोला कि स्वामिन्, यह आप क्या कहते है ! मैं तो सर्वथा आपकी आज्ञाका पालक हूँ। मुझ शक्तिहीनके पास ऐसी कौनसी सम्पत्ति है जो आप जैसे पुरुषोंके लिए देय न हो। इस पर द्रोण बोले कि सुनो। मैं जो चाहता हूँ वह देय वस्तु तुम्हारे पास है। यदि देनेकी इच्छा हो तो वचन दो। फिर मैं याचूँ। भील बोला कि मैं सब कुछ आपको देनेको तैयार हूँ। आप प्रसन्नताके साथ माँगिए। द्रोणने कहा कि बस, मैं यही चाहता हूँ कि तुम अपने दाहिने हाथके अँगूठेको जड़से काट कर मुझे दे दो। यह सुन कर भक्तिके वश हो गुरुकी आज्ञाके प्रतिपालक और उनके गुणों पर मुग्ध उस भीलने अपने दाहिने हाथके अँगूठेको काट कर गुरुको सौंप दिया। सच है कि अँगूठे हीकी क्या बात है तो भक्त लोग, भक्तिके वश हो कर अपना जीवन भी दे डालते है। उसके अँगूठेको कटवा कर द्रोणाचार्यने अपने उसी उद्देश्यको जिसके लिए कि उसका अँगूठा कटवाया था, उस भीलके सामने कहा कि दाहिने हाथके अँगूठेके बिना कोई भी धनुषको नहीं चढ़ा सकता, अतः इसके द्वारा जो जीवोंके वधसे बड़ा भारी पाप होता था, वह

अब न होगा । इसके बाद उन्होंने यह सोच कर कि पापी पुरुषोंके लिए शब्दा-वेधिनी-विद्या नहीं देना चाहिए, पार्थको वह विद्या पूर्ण रीतिसे सिखा दी ।

इसके बाद पार्थके साथ वह अपने नगरको चले आये और सुख-शान्तिसे उत्तम उत्तम चीजोंसे उत्पन्न हुए भोगोंको भोगने लगे; आनंद-चैनसे अपना समय बिताने लगे । इसी तरह भीतरसे विरोध रखनेवाले पर बाहिरसे मीठे मीठे बोलनेवाले नाना कला-कुशल कौरव-पांडव भी वहीं रह कर सुखसे काल बिताने लगे ।

भीमके शरीरकी कान्ति सोनेके जैसी थी। बड़े बड़े विघ्नोंका वह निवारक था। उसके लिए विष अमृत और सॉंप सर्प-कंचुकीके जैसा निस्सत्व हो गया था । एवं अथाह गंगाका जल भी उसके लिए जॉंघों गहरा रह गया था । यह सब पुण्यका ही महत्व है । देखो, जिसके पुण्यका जोर होता है उसके लिए सुतरां ही सब अच्छे अच्छे निमित्त आ मिलते हैं और सम्पत्ति उसका पीछा नहीं छोड़ती ।

वह अर्जुन संसारमें सुशोभित हो जिसकी कीर्ति दिगन्त-व्यापिनी है, जो उपमा-रहित है, अनर्थोंको दूर करनेवाला और उत्तम अभिप्रायवाला है, जो सत्पथगामी और सब कामोंमें हमेशा एक मनोरथसे चलता है। अतः एव जो समर्थ, धनुर्धरोंमें मुख्य और धर्म-बुद्धिका धारक है, जो धर्म-धनुष द्वारा वैरियोंका ध्वंस कर चुका है, जिसका कोई भी वैरी नहीं है और जो प्रमाण-प्रसिद्ध पदार्थों पर विश्वास करता है ।

बारहवाँ अध्याय ।

उन पद्मप्रभ जिनदेवको मेरा प्रणाम है जो लक्ष्मीके दाता हैं, जिनका शरीर लाल कमलके जैसी कान्तिवाला है, जिनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीका निवास है और केवलज्ञान होनेके बाद विहारके समय जिनके चरण-कमलोंके नीचे देवता-गण कमलोंकी रचना करते हैं ।

इसके बाद श्रेणिक महाराजने गौतम भगवानको पूछा कि प्रभो, जिस समयकी यह कथा है उस समय यादवोंके कैसी विभूति थी और वे कहाँ रहते थे । इसके उत्तरमें गौतम स्वामीने अपनी गंभीर ध्वनिसे कहा कि श्रेणिक, अब यादवोंका पवित्र चरित कहा जाता है । उसको तुम सावधान चित्तसे सुनो ।

एक दिन अंधकवृष्टिने संसारसे विरक्त होकर अपने बड़े पुत्र समुद्रविजयको सब राज्य सौंप दिया और आप गुरुके निकट जा दीक्षित हो गया । राज्य अब जयी समुद्रविजय करने लगा ।

समुद्रविजयके छोटा भाई वसुदेव था । एक दिन वह गंधसिन्धुर नामके हाथी पर सवार हो, सेना-सहित उत्सवके साथ क्रीड़ा करनेके लिए वनको गया । उसके ऊपर चमर ढुल रहे थे और भाँति भाँतिके भूषणोंसे विभूषित, स्वभाव-सुन्दर उसके शरीरकी अपूर्व ही शोभा थी । उसे देख कर शहरकी कामिनियाँ बहुत व्याकुल हुईं । उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वे अपने घर गिरस्तीके कामोंको छोड़ कर उसको देखनेके लिए बाहिर आ गईं । और तो क्या, वे उसे जब आता सुन पातीं तभी अपने पति-देवोंको भोजन आदि करते और बाल-बच्चोंको दूध पीते छोड़ कर बाहिर भाग आती थीं । यह हाल देख कर शहरके लोगोंने राजासे प्रार्थना की और राजाने भी उनकी प्रार्थना पर उचित ध्यान देकर अबसे घरके बगीचेमें ही क्रीड़ा करनेका प्रबंध कर कुमारको उद्यान जानेसे रोक दिया ।

एक दिन कुमार अपने बागमें क्रीड़ा कर रहा था । इसी समय निपुणमति नाम नौकरने आकर राजकुमारसे वन जानेसे रोके जानेकी बात कह दी । सुन कर उससे वसुदेवने पूछा कि मुझे वन जानेसे किसने रोका है ? उत्तरमें उसने कहा कि प्रभो, जिस समय आप वनको जाते

हुए शहरसे निकलते हैं, उस समय आपके रूप-सौन्दर्यको देख कर शहरकी नारियोंका चरित्र शिथिल हो जाता है। वे कामदेवका ग्रास बन जाती हैं और लाज-शर्म छोड कर विपरीत चेष्टायें करने लगती हैं। कन्या, सधवा और विधवा सभी ऐसी देख पड़ने लगती हैं मानों उन्होंने मदिरा ही पीली है। यह देख कर शहरके लोगोंने राजासे प्रार्थना की और राजाने ही उनकी प्रार्थना परसे आपको उद्यान जानेसे रोक दिया है।

निपुणमतिके इन वचनोंसे वसुदेवने अपने आपको बन्धनमें पड़ा समझा। इसके बाद एक दिन रातको किसी विद्या साधनेके बहानेसे घोड़े पर चढ़ कर राजकुमार नगरसे बाहिर निकल गया।

वह वहाँसे सीधा मसान भूमिमें पहुँचा। वहाँ उसने एक मुर्देको अपने सब वस्त्र-आभूषण पहिना दिये और बाद उसे जला कर आप आगे चल दिया। धीरे धीरे वह विजयपुर पहुँचा। वह बहुत थक गया था, इस लिए अपनी थकावट दूर करनेको वहाँ एक अशोक वृक्षके नीचे बैठ गया।

वहाँ मगध देशके राजाकी ओरसे एक भील रहता था। दैवयोगसे इसके वहाँ पहुँचते ही भीलको निमित्तज्ञानीके बताये हुए निमित्तकी सूचना मिली। अतः वह राजाके पास गया और उसने राजाको वसुदेवके आनेकी खबर की। राजा उसी समय वहाँ आया और वसुदेवको बड़े भारी ठाट-बाटके साथ नगरमें लिवा ले गया। इसके बाद उसने उसके साथ अपनी स्तोमला नाम पुत्रीका ब्याह कर दिया। ब्याहके बाद कुछ दिनों तक कुमारने वहीं विश्राम किया। पश्चात् वहाँसे चल कर वह पुष्परम्य नाम वनमें पहुँचा। वहाँ एक बनेले हाथीको मद-रहित कर—उसका मद उतार कर—वह आनंद-चैनसे उसके साथ क्रीडा करने लगा। वन-गजके साथ क्रीड़ा करता हुआ उसको देख कर एक विद्याधर विजयार्द्ध पर्वतके किन्नर गीतपुरमें ले गया। वहाँ अशनिवेग और पवनवेगाकी पुत्री श्यामाके साथ उसका ब्याह हो गया। श्यामाका दूसरा नाम शाल्मलिदत्ता भी था। श्यामाके साथ कामक्रीड़ा करता हुआ कुछ दिनों तक वह वहीं रहा; परन्तु एक दिन उसे वहाँसे रातके समय एक दुष्ट अंगारक नाम विद्याधर हर ले गया। यह देख श्यामा तलवार लेकर उसके पीछे पीछे भागी। तब अंगारक डरा और श्यामाके डरके मारे उसने वसुदेवको आकाशसे नीचे छोड़ दिया। यह देख श्यामाने पर्णलघ्वी विद्या भेजी। उसने जाकर जिनदेवको

हृदयमें धारण करनेवाले वसुदेवको नीचे गिरनेमें सहारा दिया, ताकि वह आसानीसे चंपापुरीके तालाबमें जाकर पड़ा—उसे कुछ भी तकलीफ न हुई । इसके बाद वह तालावसे निकल कर चम्पापुरीमें गया । वहाँ गंधर्वदत्ताका स्वयंवर था । गंधर्वदत्ता गानविद्यामें बहुत बढ़ी-चढ़ी थी । स्वयंवरका हाल सुन कर वसुदेव भी तत्काल स्वयंवर-मंडपमें पहुँचा । वहाँ पहुँच कर उसने गंधर्वदत्तासे कहा कि सुपण्डिते, दोष-रहित, अच्छे तारोंवाली और ठीक प्रमाणकी बनी हुई एक वीणा दो, ताकि जैसी तुम चाहती हो मैं वैसी ही उसे बजा सकूँ। यह सुन उसने वसुदेवको तीन-चार वीणायें दीं, पर वसुदेवने उन सबमें कोई न कोई दोष बता कर वे वापिस लौटा दीं । तब गंधर्वदत्ताने उसे घोषवती नाम वीणा दी, जो बिल्कुल निर्दोष थी । उसे लेकर कुमारने बजाना शुरू किया और बड़े अभिमानके साथ उसने जैसा कि गंधर्वदत्ता चाहती थी वैसा ही बजा कर सुनाया । जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुई और साथमें वसुदेवके ऊपर तन-मनसे निछावर भी हो गई ।

इस प्रकार कुमारके द्वारा जीती गई अपनी कन्याका चारुदत्तने उसके साथ ब्याह कर दिया । कुमार भी इस ब्याहसे अतीव प्रसन्न हुआ । एवं विजयार्द्ध पर्वत पर उस पुण्यात्माने विद्याधरोंकी और सातसौ कन्याओंके साथ विवाह किया । सच है कि पुण्यका उदय होने पर संसारमें कुछ भी मिलना दुर्लभ नहीं रह जाता । वहाँसे चल कर वह अरिष्टपुर नाम नगरमें आया । यहाँका राजा था हिरण्यवर्मा और रानी थी पद्मावती । उनके रोहिणी नाम एक पुत्री थी । वह चाँदकी रोहिणीके तुल्य थी । वहाँ उसका स्वयंवर था और देश विदेशके राजा उसमें उपस्थित थे । वसुदेव भी उस स्वयंवरमें गया और अपने योग्य स्थान पर जाकर बैठ गया । इसके बाद रोहिणी स्वयंवर-मंडपमें आई और उसने सब राजोंको छोड़ते हुए चले जाकर वसुदेवको पसंद किया और बड़ी भारी उत्कंठाके साथ उसीके गलेमें वरमाला पहिना दी । यह देख उन सब राजोंमें बड़ा क्षोभ मचा, युद्धकलामें समुद्रके जैसे उमड़नेवाले समुद्रविजय आदि सब राजा उस समय मान-मर्यादा छोड़ कर युद्धके लिए तैयार हो गये । इधर हिरण्यवर्मा और वसुदेव भी निकल कर मैदानमें आ डटे । इस समय समुद्रविजयको अपना परिचय देनेकी इच्छासे वसुदेवने वह बाण चलाया जिस पर वसुदेवका नाम लिखा था । उस बाणको देख कर समुद्रविजयने उसी समय युद्ध बन्द करवा दिया । इसके बाद वह अपने सब भाइयों सहित वसुदेवसे

मिल कर परम प्रीतिको प्राप्त हुआ। पश्चात् सब भाइयोंने बड़े हर्षके साथ वसुदेवका व्याह-महोत्सव किया। अनन्तर प्रौढ़ रागरंगसे वे दोनों दम्पती सुख-चैनसे सुख भोगने लगे।

एक दिन शुभ स्वप्नोंको देखनेके बाद रोहिणी देवीने शुक्र स्वर्गसे चय कर आये हुए एक उन्नत देवको गर्भमें धारण किया और क्रमसे जब नौ महीना पूरे हो गये तब बलभद्र नामके नवमें बलदेवको जन्म दिया। बलभद्र रूपशाली और जगतको आनंद देनेवाला था। इसके बाद गंभीर आशयवाले वे सब यादव वसुदेव-सहित सुखसे सूरीपुरमें रहने लगे।

एक दिन जरासिंधको देखनेकी इच्छासे विद्वांवर वसुदेव वीर कंसके साथ राजगृह नगर आया। वहाँ इसी समय जरासिंधने सब राजोंके लिए यह आज्ञा निकाली थी कि जो कोई नृपति सुरम्यदेशके पोदनापुरके राजा सिंहरथको बाँध कर मेरे आगे ले आयगा उसे मैं कलिंदसेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई जीवद्यशा नाम अपनी पुत्रीके साथ साथ आधे राज्यका स्वामी बना दूँगा। सारांश यह कि जो सिंहरथको पकड़ ले आयगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूँगा और उसके साथ अपनी पुत्री भी व्याह दूँगा।

इस आज्ञाको पाकर और राजा लोग तो चुप-चाप अपने घर पर ही बैठे रहे—किसीकी हिम्मत सिंहरथको बाँध लानेकी न हुई। परन्तु वसुदेवसे न रहा गया। वह जरासिंधके आज्ञापत्रको पाते ही उसी समय कुछ सेनाको साथ लेकर कंस सहित वहाँसे निकल पड़ा और विद्या-बलसे सिंहोंका रथ बना, उस पर चढ़ बातकी बातमें उसने सिंहरथको बाँध लिया और लाकर जरासिंधको सौंप दिया। तब जरासिंध अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसे कन्या और आधा राज्य देनेकी व्यवस्था करने लगा। परन्तु वसुदेवने पुत्रीको कुलक्षणा जान कर जरासिंधसे कहा कि शत्रुको मैंने नहीं बाँधा है; किन्तु बाँधा है मेरे इस मित्रने। इस लिए आप इसको ही पुत्री दीजिए। यह सुन जरासिंध मन-ही-मन सोचने लगा कि यह कौन है। इसका नाम क्या है और न जाने इसका कुल कैसा है। इसके बाद उसने कंससे पूछा कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? कंसने उत्तर दिया कि नाथ, मैं मन्दोदरीका पुत्र हूँ। यह सुन कर जरासिंधने मंदोदरीको बुलाया। वह अपने साथमें एक सन्दूक लेकर आई और उस सन्दूकको राजाके आगे रख कर बोली कि महाराज, यह यमुनाके प्रवाहमें बहता

हुआ आकर दैवयोगसे मेरे हाथ लग गया था और इसीमें मैंने इसे पाया था। इस लिए जन्म देनेवाली तो इसकी यही माता है, पर पालने-पोपनेके लिहाजसे देखा जाय तो मैं भी माता हूँ। मैंने इसका कंस नाम रक्खा है। परन्तु इस मंजूषामें इसके साथ एक पत्र और मिला था। उसके बाँचनेसे मालूम हुआ कि यह उग्रसेन राजा और पद्मावती रानीका पुत्र है। मंदोदरीके अन्तिम वचनोंसे जरासिंधको संतोष हुआ और उसने हर्षित होकर उसे आधे राज्यके साथ अपनी कन्या ब्याह दी।

इसके बाद कंस, पितासे अपने वैरका वदला लेनेके लिए वहुतसी सेना सहित मथुरा आया और क्रोधके वश हो, माता-पिताको बाँध कर उसने शहरके दरवाजेमें कैद कर दिया। कंसकी वसुदेव पर वड़ी भक्ति हो गई थी, अत एव उसने वसुदेवको अपने यहीं बुला लिया।

मृगावती देशमें दशार्ण नामएक नगर है। वहाँका राजा देवसेन था और उसकी रानीका नाम था धनदेवी। वह इन्द्रकी इन्द्राणी जैसी थी। उनके एक पुत्री थी। उसका नाम था देवकी। उसका कोयलके जैसा सुंदर स्वर था। वह वहुत ही अच्छा आलाप लेती थी। कंसने वड़े भारी आग्रहसे देवकी वसुदेवके लिए दिलाई थी।

इसके बाद क्रमसे वसुदेवके निमित्तसे देवकीके तीन बार दो दो करके छह पुत्र पैदा हुए; और वाद सातवाँ पुत्र कृष्ण पैदा हुआ। कृष्ण वड़ा पराक्रमी था। कृष्णका जन्म होते ही वसुदेव वलभद्रकी सलाहसे, कंसके भयके मारे, गोकुलमें नंदगोप और यशोदाके यहाँ गये और वहाँ कृष्ण नारायणको इस लिए छोड़ आये कि जिसमें निर्भीकतासे उसका पोषण हो। कृष्णका नंदगोपके यहाँ वड़ी अच्छी तरह पालन होता रहा। वह थोड़े ही दिनमें खूब हुशियार हो गया। वह वहुत ही बुद्धिमान् था। इसके वाद वह चाणूर और कंसका निग्रह करके पूर्ण सुखके साथ रहने लगा।

रूपाचल पर्वत पर एक रथनूपुर नाम पुर है। वहाँका सुकेतु नाम राजा था। उसकी प्रियाका नाम था स्वयंप्रभा। वह सुकेतुको वहुत ही प्यारी थी और अपने रूप-सौन्दर्यसे खूब सुशोभित थी। उसके एक पुत्री थी। उसका नाम था सत्यभामा। वह सुभामा थी—सुन्दर कान्ति और श्रीवाली थी। वह अपने रूपसे इन्द्राणीको भी नीचा दिखाती थी। उसको ऐसी सुन्दरी और कान्तिवाली देख कर उसके पिता सुकेतुने

निमित्तकुशल नाम निमित्तज्ञानीको पूछा कि सत्यभामा किसकी वल्लभा होगी। नैमित्तिकने उत्तर दिया कि वह तीन खंडके स्वामी कृष्ण नारायणकी पट्टरानी होगी। यह जान कर सुकेतुने दूतके हाथ भेंट वगैरह भेज कर सत्यभामाका कृष्णके साथ व्याह कर दिया। इसके बाद वह तो ससारसे विरक्त हो गया और कृष्ण नारायण सत्यभामाको पाकर सांसारिक सुख भोगने लगा।

इसी समय उग्रसेन राजाको मथुराका राजा बना कर कृष्ण-सहित सबके सब यादव सौरीपुर चले आये।

इसके बाद जीवद्यशा नाम अपनी पुत्रीके मुँहसे राजगृहके राजा जरासिंधने जब कंसका मरण सुना तब उसे यादव लोगों पर बड़ा भारी क्रोध आया। उसने उसी समय यादवोंके साथ युद्ध करनेको अपने पुत्रोंको भेजा। परन्तु वे यादवोंके दैव और पौरुषके सामने ठहर न सके—सब नष्ट हो गये। यह देख कर जरासिंधके क्रोधका कुछ पार न रहा। तब उसने तीनसौ छियालीस योधाओंको साथ देकर, यादवोंको तहसनाश करनेके लिए, अपराजित नाम अपने बड़े पुत्रको भेजा। लेकिन यादवोंकी शूरताके सामने उसकी भी कुछ न चली—वह भी युद्ध-स्थलकी वलि हो गया। इस दुःख-मय समाचारको सुन कर तो वह दुर्द्धर्ष वीर स्वयं ही कवच वगैरह पहिन कर तैयार हुआ और यादवोंके साथ लड़नेको गया। कंस-को आया सुन कर यादव लोग बड़े डरे और वे सौरीपुर तथा मथुराको भाग गये। यह देख जरासिंधने उनका पीछा किया; परन्तु देवोंने मायाके द्वारा जरासिंधको तो पीछा लौटा दिया और यादवोंको पच्छिम दिशामें सुदूर समुद्र-तट पर भेज दिया।

इसके बाद मनस्वी कृष्ण नारायणने समुद्रमें मार्ग पानेकी इच्छासे जैसी विधिसे होने चाहिए, आठ उपवास किये। पुण्योदयसे उसके पास नैगम नाम एक देवने आकर कहा कि भोगियों—साँपों—को मर्दित करनेवाले निर्भय प्रभो, आप इस अश्व-भेष-धारी देव पर सवार होकर समुद्रमें जाइए वहाँ आपको स्थान मिलेगा। यह सुन कर नारायणने वैसा ही किया—वह समुद्रमें गया। उस समय समुद्रका जल उसके लिए स्थलके जैसा हो गया। सारांश यह कि समुद्रमें जहाँसे नारायण जाता था वहाँका जल इधर उधर दोनों ओरको हटता जाता था। नारायण शान्तिके साथ वहाँ पहुँचा जहाँ कि इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने नेमि-नाथ प्रभुके लिए बारह योजन—अड़तालीस कोशकी—लम्बी-चौड़ी नगरी

रची थी । कुवेरने नगरीके चारों ओर चमकते हुए रत्नोंका विशाल कोट और कोटमें सुन्दर थंभोंवाले दरवाजे वनाये थे; और उसके चारों ओर खाई खोद दी थी । उस नगरीके भीतर देवतोंने प्रभुके वन्धु यादव राजोंके लिए सुन्दर महल वनाये और अन्य जनोंके लिए मकान वगैरहकी रचना की थी । कुवेरने कहीं तालाव, कहीं वावड़ियाँ और कहीं श्री जैनमन्दिरोंकी रचना की थी । वह नगरी समुद्र-रूप खाईसे वेढ़ी हुई थी और नाना दरवाजोंसे युक्त थी । इस लिए उसकी द्वारिका नामसे प्रसिद्धि हुई । वह इन्द्रपुरीके जैसी देख पड़ती थी । वल्कि वह अपनी सम्पत्तिसे उसको भी नीचा दिखाती थी । वहाँ देवतोंके वनाये हुए महलोंमें समुद्रविजय आदि यादव राजा कृष्ण सहित आनंद-चैनसे रहते थे। वहाँ सुखपूर्वक रहनेवाले समुद्रविजयकी अपूर्व ही शोभा थी । वह विजेता था, किसीके द्वारा जीता नहीं जाता था, जितेन्द्रिय और मान-मत्सर-रहित था, विशुद्ध था, धर्मवुद्धि था, धीर था, विद्वान् था, देवता-गण द्वारा सेवित था, संतोषी था, धर्म-कर्ममें लीन था, समृद्धिशाली था, पृथ्वीका पति था, भोगी और भव्यात्मा था, संसारके शत्रु जिनदेवका पूरा भक्त था, आदर योग्य था, पृथ्वीका पालक था, और कान्तिशालियोंका भूषण था । उसकी जाया थी शिवादेवी । वह सारे संसारको आनंद और दान देनेवाली थी, चतुरा थी और निर्मल वुद्धिवाली थी । कामदेवने उसे रति समझ कर अपना आवास वना लिया था । वह रति-प्रदा थी—अपने पतिको खूव रमाती थी । वह सुन्दरियोंका भूषण थी और ज्ञान-समुद्रके पार पहुँची हुई थी । उसका स्वर तो इतना अच्छा था कि उसके सामने कोयलका स्वर भी अच्छा नहीं मालूम पड़ता था । मानों इसीलिए कालेपनेको स्वीकार कर विचारी कोयलें वनमें जाकर रहने लगी हैं; और है भी ठीक कि दूसरों द्वारा जीते गये हुओंकी ऐसी ही गति होती है ।

उसके चरण-कमलोंको देख कर कमलोंको इतनी लज्जा हुई कि वे जाकर जलमें रहने लग गये । सच है कि लज्जाके मारे ही लोग जड़ोंकी संगति करते हैं; जैसे कि कमलोंने जड़ (जल) की संगति की है । उसके उरुस्थल केलेके थंभोंकी नॉई सरस और कोमल थे । वे ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेवके महलके लिए सुस्थिर खंभे ही वनाये गये हैं । उसकी नाभि वहुत ही गंभीर (गहरी) थी, कान्तियुक्त और सुहावनी थी । वह सरसी (तलइया) की समता करती थी । सरसीमें जल होता है, उसमें लावण्यरूप जल था ।

सरसीमें आवर्त होते हैं, वह भी शंख, चक्र आदि चिह्न-रूप आवर्तवाली थी। सरसीमें मछलियाँ होती हैं, उसमें भी रोमराजि-रूप मछलियाँ थीं। सरसी हाथियोंकी केलिसे शोभित होती है, वह भी कामदेव-रूप हाथीकी केलिसे सुशोभित थी। उसके दुर्गम पहाड़ोंकी नाँई कुच थे। वे ऐसे जाने जाते थे कि मानों कामी पुरुषोंके काम-भूपको रहनेके लिए किले ही बनाये गये हैं। उसका मुख ठीक चन्द्रमाके समान था और उसके ललाटके ऊपरी भागमें सुन्दर बाल बिखरे हुए थे; जान पड़ता था कि उसकी मुखच्छविको देख कर उसको ग्रसनेकी इच्छासे राहु ही आ गया है। उसके दोनों कान सोनेके भूषणोंसे विभूषित थे और शास्त्र सुननेसे जो संस्कार होता था उसके सम्बन्धसे वे संस्कृत थे। इस तरह वे दम्पती आनंदसे सुख भोगते थे और अपनी उत्तम बुद्धिसे प्रभासुर हुए अपूर्व शोभा पाते थे।

एक समय सौधर्म इन्द्रने अवधिज्ञानसे जिनदेवके गर्भागमनको जान कर छह महीने पहलेसे ही रत्नोंकी वरसा करनेके लिए वहाँ कुवेरको भेज दिया। धर्मबुद्धि कुवेरने भी इन्द्रकी आज्ञानुसार प्रभुके गर्भमें आनेके छह महीने पहलेसे जन्म तक—पंद्रह महीने—बराबर रत्नोंकी वरसा की। आकाशसे गिरी हुई उन दिव्य रत्नोंकी वरसा ऐसी जान पडती थी मानों जिन-माताको देखनेके लिए स्वर्गकी लक्ष्मी ही आ रही है। या यों कहिए कि सारे आकाशको घेर कर पड़ती हुई वह रत्नोंकी वरसा ऐसी शोभती थी मानों जिनमन्दिरको देखनेकी इच्छासे ज्योतिषी देवतोंकी पंक्ति ही आ रही है। रत्नोंकी वरसासे, भगवानके महलका आँगन परिपूर्ण हो गया था। उस महलके शिखरों पर सोनेके कलश जड़े हुए थे। उसे देख कर लोगोंसे यही कहते बनता था कि यह सब धर्मका फल है।

एक दिन शिवादेवी शय्या पर सुखकी नींद सोई हुई थी। रातका पिछला पहर था। उस समय उसने सोलह स्वप्नोंको देखा। वे स्वप्न ये थे। ऐरावत हाथी; बैल—जो खूब मदोन्मत्त उन्मत्त स्कंधवाला और सुधाके पिंड जैसा सफेद था; चन्द्रमाकी छायाके जैसा मृगेन्द्र (सिंह)—जो छलांग मारता हुआ और जिसकी लाल कंधरा थी; लक्ष्मी—जिसका कि कमलयुक्त कुंभों द्वारा दो हाथी अभिषेक कर रहे थे; दो मालायें—जिन पर फूलोंकी सुगंधसे भौंरे आकर गूँजते थे; चाँद—जो तारोंसे युक्त और शिवादेवीके मुख-कमलके तुल्य था; सूरज—जो अँधेरेको दूर करनेवाला और सोनेके कलश सरीखा था। सोनेके दो कुंभ—

जो शिवादेवीके कुच-कुंभोंकी नॉई उन्नत थे; दो मछलियाँ—जो ऐसी मालूम होती थीं कि शिवादेवीके विस्तृत नेत्र ही हैं; पद्माकर—(तालाव) जो कमलोंकी केसरसे पीला हो रहा था और चंचल तरंगोंसे परिपूर्ण था; समुद्र—जो गंभीर शब्दमय था; सिंहासन—जो ऊँचे सुमेरु पर्वतके शिखरकी नाँई उन्नत था; विमान—जो पुत्रके प्रसूति-गृहके तुल्य और विपुल श्रीका स्थान था; धरणेन्द्रका भवन—जो ऐसा जान पड़ता था मानों पृथ्वीको चीर कर ही वाहिर निकला है; रत्नोंकी राशि—जो खजाने सी जान पड़ती थी और जो किरणोंके पूरसे भरपूर थी; अग्नि—जो निर्धूम थी और ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों पुत्रका प्रताप ही है। इसके वाद ही उसने एक हाथीको अपने मुँहमें प्रवेश करते हुए देखा।

इन स्वप्नोंको देखनेके वाद ही उसकी निद्रा तो भंग हो ही गई थी कि इसी समय प्रातःकालीन वाजोंकी और देवांगनाओं द्वारा गाये गये मंगल गीतोंकी सुंदर ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। उसे सुन कर मंगलमयी शिवादेवी प्रवुद्ध हुई। उसे प्रवुद्ध देख देवाङ्गनाओंने उसकी स्तुति करना आरंभ किया कि हे मातः, जिस तरह तुम्हारे मुखकी प्रभासे मानसिक अँधेरा (अज्ञान) नष्ट हो जाता है उसी तरह रातके अँधेरेको नष्ट कर यह सूरज उदित हो आया है और तुम्हारे गर्भस्थ वालककी नाँई अपनी किरणोंको विस्तृत कर संसारको प्रवोध देता है; लोगोंको मार्ग सुझाता है।

देवी, तुम सैकड़ों कल्याणोंको प्राप्त करो और तुम्हारे लिए यह सुप्रभात शुभ हो। तुम उसी तरह पुत्रको जन्म दोगी जिस तरह कि पूर्व दिशा सूरजको जन्म देती है। तुम्हारा पुत्र तीन लोकको प्रकाशित करेगा। देवांगनाओंके इन मनोहर शब्दोंको सुन कर वालूके जैसी स्वच्छ रुईकी श्वेत-कोमल शय्या परसे शिवादेवी उठी। इसके वाद उसने स्नान आदि प्रभात-सम्वधी सव क्रियाएँ करके और दर्पणमें अपना मुँह देख कर वस्त्राभूषण धारण किये और वह सती समुद्रविजय महाराजके पास गई। उन्हें नमस्कार कर वह उनके साथ आधे सिंहासन पर वैठ गई। इस समय उसका मुख कमलके जैसा खिल रहा था। उसने हाथ जोड़ कर स्वप्नोंका सव हाल महाराजसे कहा और उनसे उनका फल पूछा। उत्तरमें पुण्यात्मा समुद्रविजयने कहा कि प्रीति देनेवाली प्रिये, तुम ध्यानसे इन स्वप्नोंका फल सुनो। पहले स्वप्नमें तुमने जो हाथी देखा है उसका यह फल

है कि तुम्हारे पुत्र होगा । बैल देखनेसे वह संसार भरमें श्रेष्ठ होगा । सिंह देखनेसे पराक्रमी, महान् वीर्यशाली होगा । माला देखनेसे धर्म-तीर्थका प्रवर्तक होगा । अभिषिक्त होती हुई लक्ष्मीके देखनेसे उसका सुमेरुके शिखर पर अभिषेक होगा । पूर्ण चाँद देखनेसे वह संसारको आल्हादित करेगा । सूरज देखनेसे दीप्तिशाली, भासुर होगा । कुंभ देखनेसे निधियोंका भोक्ता और मछलियाँ देखनेसे सुखी होगा । तालाव देखनेसे नाना लक्षणोंवाला और समुद्र देखनेसे केवलज्ञानी होगा। सिंहासन देखनेसें साम्राज्यका भोक्ता होगा। विमान देखनेसे वह स्वर्गसे आयगा। धरणेन्द्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानका धारक होगा । रत्नराशि देखनेसे गुणोंका आकर होगा । और निर्धूम आग देखनेसे वह कर्मोंको जलानेके लिए आगके तुल्य होगा । वह हाथीके आकारको लेकर तुम्हारे गर्भमें आवेगा और धर्म-रूपी समीचीन रथको प्रवर्तानेके कारण उसका अरिष्टनेमि नाम होगा ।

इस प्रकार स्वप्नोंका फल सुन कर शिवादेवी बहुत हर्षित हुई । उसके रोमाञ्च हो आये। हर्षसे उसका चित्त गद्गद हो गया। इसके बाद कार्तिक सुदी छटके दिन, पिछली रातमें, उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें, शिवादेवीने गर्भ धारण किया । उस समय प्रभुको गर्भमें आया जान कर अपने अपने चिन्ह सहित देवता गण आये और गर्भकल्याणकका उत्सव करके अपने अपने स्थानको चले गये । प्रभु जबसे गर्भमें आये तभीसे लेकर इन्द्रकी आज्ञासे छप्पन दिक्-कुमारियाँ उनकी माताकी सेवा करती थीं । वे गर्भ-समयके योग्य क्रियाओं द्वारा सेवा करनेमें बहुत ही दक्ष थीं। श्रीदेवीने प्रभुकी माताको श्री दी और ह्री देवीने त्रपा (लाज) दी । धृति देवीने धैर्य दिया और कीर्ति देवीने कीर्ति दी। एवं बुद्धि देवीने बुद्धि दी और लक्ष्मी देवीने सौभाग्य दिया। सारांश यह कि उक्त छह देवियोंने प्रभुकी माताको उक्त छह गुण दिये । इनके सिवा कोई शिवादेवीकी आँखोंमें अंजन आँजती थी; कोई पान लगा कर देती थी; कोई मंगलगीत गाती थी; कोई उसके शरीरका संस्कार करती थी; कोई रसोई बनाती थी; कोई कोमल वस्त्रोंकी शय्या बिछाती थी; कोई उसके पाँव दाबती थी; कोई उसके बैठनेके लिए मनोहर सिंहासन पर गद्दी तकिया वगैरह डालती थी; कोई पुरंध्रीकी नाँई सुगन्ध द्रव्य चन्दन, कपूर वगैरहका लेप करती थी; कोई उसके आभूषणोंको लिए खड़ी हुई ऐसी मालूम पड़ती थी मानों दीप्तिके पूरसे विभूषित कल्पलता उसे भूषण ही दे रही है; कोई उसे रेशमी वस्त्र देती थी; कोई फूलोंकी गूँथी हुई मालाएँ देती हुई वेलसी जान पड़ती थी; कोई तलवार

उठाये हुए प्रभुकी माताके शरीरकी रक्षाके लिए उसके पास पहरा देती थी— वह ऐसी जान पड़ती थी मानों बिजली ही है; कोई चन्दनके जलसे मणिजड़ित भूतलको सींचती हुई ऐसी शोभती थी मानों चंदन वृक्षकी लता ही है; कोई भोग्य-वस्तुओंको देनेवाली फूलोंके चौक पूरती थी; कोई पृथ्वीको सोधनेवाली भूमिको साफ करती थी—झाड़ती-बुहारती थी; कोई प्रभुकी माताको खानेके लिए अच्छे अच्छे सब प्रकारके पकवान मोदक, व्यंजन आदि देती; कोई उसके पाँव धोती थी; कोई मुँह देखनेके लिए पृथ्वीतल पर आये हुए चन्द्रमाके जैसा उसे दर्पण देती थी; कोई हाथमें पुष्पोंकी माला लेकर प्रभुकी माताके आगे खड़ी हुई ऐसी शोभती थी मानों उसकी सेवा करनेको यहाँ किसी वृक्षकी शाखा ही आ गई है; कोई उसे मुकुट और कोई कुण्डल पहिराती थी; कोई उसके कंठमें हार पहिनाती हुई कल्पवृक्षकी शाखा जैसी शोभती थी; कोई पुष्पोंकी धूल (केसर) से भरपूर अत एव सोनेकी धूलसे धूसरित जैसी और जिस पर इधर उधर मोती विखर रहे हैं ऐसी पृथ्वीको साफ करती थी; कोई सुपारी, इलायची, लोंग आदिसे सुसज्जित पान देती थी—वह ऐसी जान पड़ती थी मानों नागवेल ही है; कोई स्वर्गकी गणिका उत्तम हाव-भावोंको दिखाती हुई उसके सामने नृत्य करती थी; कोई उसके मनको आनन्दित करती थी, कोई मनोहर काम-धेनुका रूप धर कर प्रभुकी माताको उत्तम उत्तम वस्तु देती थी; कोई माताकी प्रीतिपात्र बनी हुई सुशोभित होती थी; कोई उसके शरीरकी रक्षा करती थी; कोई उसके हाथसे वस्तु लेती थी; कोई उसके मनको पुष्ट करती—बढ़ाती थी; कोई उत्तम उत्तम वार्तालाप द्वारा उसके साथ विचार करती थी; कोई उसके मलको स्वच्छ करती थी; कोई उसके मोहभावको उत्तेजना देती थी; कोई चोर आदिके भयसे उसकी आत्माको छुड़ाती थी; कोई रातके समय दैदीप्यमान दीपकों द्वारा उसकी भक्ति करती थी; और कोई सुन्दर सुंदर वस्त्र प्रदान करती थी। तात्पर्य यह कि इन्द्रकी आज्ञासे सब देव-कन्याएँ जिनमाताकी नाना भाँतिसे सेवा-शुश्रूषा करती थीं। इसी प्रकार कुछ देवियाँ मनुष्यनीका रूप धर कर वहाँ आतीं और नाना तरहके हाव-भाव विलासके साथ नृत्य कर सब जनोंको हँसाती और आनंदमें मग्न कर देती थीं। देवियाँ जिनमाताकी सेवामें इतनी लवलीन थीं कि वे जिस तरह बनता उसके चित्तको सदा ही खुश रखती थीं। वे कभी जल-लीलासे और कभी नृत्यके हास-विनोदसे प्रभुकी माताके दिलको रमाती थीं; और शुद्ध मनवाली जिनमाता भी उनकी गीत-गोष्ठीमें जाकर उन

देवियोंके साथ नाना तरहकी रस भरी बातें करती थी। शिवादेवीने इस तरहसे दिक्कुमारियोंके साथ बहुतसा काल बिताया। इस समय वह अपनी कान्तिसे चन्द्रमाकी कलाके जैसी सुशोभित होती थी। इसी प्रकार आनंद-चैनसे धीरे धीरे आठ महीने बीत कर नौवाँ महीना लग गया। इस समय वे देवियाँ गर्भिणी जिनमाताको रस-पूर्ण और उत्तम रचनावाले गद्य-पद्य सुनाती थी और उसका चित्त प्रसन्न करती थीं। इसके सिवा वे प्रभुकी मातासे गूढ़ अर्थवाले प्रश्न पूछती थीं और जिनमाता उनका उत्तर करती थी। किसीने पूछा कि हे माता,

पुष्पावगुंठिता का स्या—त्का शरीरपिधायिका।
का देहदाहिका देवि, वदाद्याक्षरत पृथक्॥ १॥

अर्थात्—पुष्पोंसे गूँथी गई क्या चीज होती है? शरीरको कौन ढँकता है? और शरीरको क्षीण कौन करता है? इन तीन प्रश्नोंके ऐसे उत्तर दीजिए जिनका पहला अक्षर ही केवल दूसरा दूसरा हो।

उत्तरमें माताने कहा—स्रक् (माला) त्वक् (खाल), रुक् (रोग)। किसीने पूछा—

संसारासुखछेदी को—ऽपादो भ्राम्यति स्वयम्।
को दत्ते जनतातोषं, पठाद्यव्यंजनै पृथक्॥ २॥

अर्थात्—सांसारिक दुःखोंको दूर कौन करता है? पैरों बिना कौन चलता है? और लोगोंको संतोष कौन देता है? इन प्रश्नोंके ऐसे उत्तर दीजिए जिनका आदि व्यंजन ही केवल दूसरा दूसरा हो।

उत्तरमें माताने कहा—जिन (अर्हन्त), स्वन (शब्द), घन (मेघ)।

किसीने पूछा अच्छा माता—

आद्यंतरहितः कोऽत्र, कः कीलालसमन्वितः।
वक्त्रादुत्पद्यते कोऽत्र, कथयाद्यक्षरै पृथक्॥ ३॥

अर्थात्—इस लोकमें आदि-अन्त रहित कौन है? जल-युक्त क्या होता है? और मुँहसे क्या उत्पन्न होता है? इन प्रश्नोंके ऐसे जवाब दीजिए जिनके पहलेके अक्षर ही दूसरे दूसरे हों।

उत्तरमें माता बोली—संसार, कासार (तालाब), और व्याहार (वचन)।

किसीने पूछा—

नरार्थवाचक कोऽत्र, कः सामान्यप्ररूपकः।
का प्रते प्रथमे ख्याता, कीदृशी त्वं भविष्यसि॥ ४॥

अर्थात्—नर—पुरुष—अर्थका वाचक कौन है? सामान्यको कहनेवाला कौन है? पहले व्रतमें क्या माना गया है? और तुम कैसी होओगी?

उत्तरमें माताने कहा—ना (नृ शब्द), क, दया और नाकोदया (स्वर्गसे चय कर आये हुए पुत्रवाली)। तात्पर्य यह कि 'नृ' शब्दकी प्रथमा विभक्तिका एक वचन 'ना' और 'क' शब्दका 'कः' दोनों एकत्र लिखनेसे हुआ 'नाकः'। फिर दया शब्दका 'द' आगे होनेसे 'क' के आगेवाले विसर्गका हो गया 'ओ' तब अन्तके प्रश्नका उत्तर 'नाकोदया' हो गया।

किसीने पूछा—

> सुखप्ररूपकं किं स्या-त्का भाषा च कृपातिगा।
> भुजप्ररूपकः कः स्या-त्कः सेव्यो जनसत्तमैः ॥ ५ ॥

अर्थात्—सुखका प्ररूपक कौन है? कृपा-विहीन कौनसी भाषा होती है? भुजाओंको कहनेवाला कौन है? उत्तम पुरुष किसकी सेवा करते हैं?

माताने उत्तर दिया—शम्, अदया (जो दया विना बोली जाती है), कर, और शमदयाकर (समताभाव और दयाका आकर)।

किसीने पूछा—

> वित्तप्ररूपकं किं स्या-त्पदं संग्रामतः खलु।
> कः स्यात्संग्रामशूराणां, कः स्यादर्जुनपाण्डव ॥ ६ ॥

अर्थात्—वित्तको कहनेवाला कौनसा शब्द है? योधाओंको युद्धसे कौनसा पद मिलता है? और अर्जुनको क्या कहते हैं?

माता बोली—धन, जय, और धनंजय।

किसी देवीने पूछा—

> पानार्थे पिब को धातू-रक्षणार्थेऽपि को मत.।
> क' सामान्यपक्षभ्यासी, कृशानुः कोऽभिधीयते ॥ ७ ॥
> आद्यक्षरं विना पक्षी, कः को मध्याक्षरं विना।
> भुक्त्यर्हः कोन्त्यमुन्मुच्य, सम्बुद्धिः पानरक्षणे ॥ ८ ॥

अर्थात्—पीने अर्थमें जिसका कि लोटके मध्यपुरुषके एक वचनमें पिब रूप होता है, कौनसी धातु है? तथा रक्षण अर्थमें कौन धातु है? और सामान्य पदको कहनेवाला कौन है? तथा कृशानु किसे कहते हैं? इन प्रश्नोंके ऐसे उत्तर दीजिए जिनका मिला हुआ पद पहले अक्षरके विना पक्षीका कहनेवाला हो,

बीचके अक्षर विना भोग्य पदार्थको कहनेवाला हो और अन्तके अक्षरको छोड़ देनेसे वही पीने और रक्षण अर्थमें जो धातुयें हैं उनसे निष्पन्न शब्दोंका सम्बोधनका रूप हो जायँ।

उत्तर—पा, अवे, कं, पाँवक, बंक (बगुला), पाक, प, अव।

किसीने पूछा—

> वसुसंख्या तु काप्त्यर्थधातुरूपं च किं लिटि।
> किं कलत्रं सुवर्णं किं, कं कैलाशं वदाशु भोः॥ ९॥

अर्थात्—वसुको कहनेवाली संख्या कौन है? प्राप्ति-अर्थवाली धातुका लिट्में क्या रूप होता है? स्त्रीलिंगका बोधक कौन है? सोना और कैलाश किसे कहते हैं?

माताने उत्तर दिया—अष्ट, आप, टाप, अष्टापद, अष्टापद।

किसीने कहा—

> किं निश्चयपदं लोके, कस्तिरश्चां लघुर्वद।
> शुभ. को मोक्षसिद्ध्यर्थं, को भवेत् सर्वदाहकः॥ १०॥

अर्थात्—निश्चयवाचक पद कौन है? तिर्यञ्चोंमें छोटा कौन है? मोक्ष सिद्धिके लिए उपयुक्त कौन है? और सबको जलानेवाली क्या चीज होती है?

उत्तरमें माताने कहा—वै, श्वा (कुत्ता), नर (मनुष्य), वैश्वानर (आग)।

किसीने पूछा—

> कृष्णसंबोधनं किं स्या-त्किं पदं व्यक्तवाचकम्।
> के गर्वाः को विधीयेत, वादिभिर्निगमश्च कः॥ ११॥
> प्रसिद्धोऽथ भुजगेशाहं,-कारवादकस्तु कः।

अर्थात्—कृष्णका सम्बोधन क्या होता है? व्यक्तको कहनेवाला पद कौनसा है? गर्व कौनसे हैं? वादी लोग क्या करते हैं? प्रसिद्ध निगम (गाँव) कौनसा है? भुजंगेश और अहंकारको कहनेवाले कौनसे शब्द हैं?

माताने उत्तर दिया—अ, हि, मदा (आठ मद), वाद, अहिमदावाद, अहि, मद।

इनके सिवा देवियाँ और भी क्रियागुप्त आदिके प्रश्न करती थीं और माता उनका उत्तर देती थी, एकने पूछा कि—

> रम्यं काय(?) फलं मातः, सर्वेषां तोषदायकं।
> जिनचक्रिबलादीनां, पदस्य सकलोन्नतेः॥ १॥

अर्थात्—जिन, चक्रवर्ती बलभद्र आदि सबको पूर्ण उन्नतिके पदका सन्तोष देनेवाला रमणीय फल क्या है, सो कहो ।

माताने उत्तर दिया, अमृत—मोक्ष ।

इनमें कोई मातासे विन्ती करती थी कि माता, तुम लोगोंके पाप-समूहको दूर करो । वह उन्हें बहुत दुःख देता है और उनकी आत्माको चन्द्रमाको ग्रसनेवाले राहुकी भाँति ग्रसता है । कोई माताका जयजयकार बोलती थी कि सुहावने मुँहवाली माता, तुम्हारी जय हो, देव और जगतके स्वामी पुत्रको पैदा करनेवाली, तीन लोककी सारी स्त्रियोंके रूपकी सीमा तथा कोयलके जैसे कंठवाली हे माता, तुम जयवन्त रहो ।

इस प्रकार देवियोंने जिनमातासे गूढ़ अर्थवाले बहुतसे प्रश्न किये और माताने उनका अति शीघ्र और उचित उत्तर किया । उसकी बुद्धि स्वभावसे ही नाना प्रश्नोंके उत्तर करनेको समर्थ थी । वह प्रभुको गर्भमें लिये ऐसी शोभती थी जैसी कि मणियोंके द्वारा हारलता शोभती है । स्वभावसे ही तेजशाली उसके शरीरकी शोभा गर्भके तेजसे और भी बढ़ गई थी; जैसे कि स्वभावसे कान्तिमय खानकी शोभा रत्नोंकी कान्तिसे और भी बढ़ जाती है । गर्भके निमित्तसे उसे कभी स्वप्नमें भी कोई दुर्वह पीड़ा न हुई । ठीक ही है कि क्या मनोहर दर्पणमें पड़ा हुआ आगका प्रतिबिम्ब उसे जला सकता है? उसका गर्भ दुर्वह नहीं हुआ था । न उसकी त्रिवलीका भंग हुआ था और न उसके कुचोंके चूचक काले पड़े थे; न उसका मुँह पीला हुआ था और न उसे आलस ही आता था । उसकी हंसके जैसी पहले गति थी वैसी ही अब थी; उसमें कुछ भी फर्क नहीं हुआ था । तात्पर्य यह कि दुःखकी बात तो दूर रही, पर ज्यों ज्यों उसका गर्भ बढ़ता जाता था त्यों त्यों वह उसके लिए सुखकर होता जाता था ।

इस प्रकार धीरे धीरे आनंद-चैनसे जब नौ महीना पूरे हो गये तब सावन सुदी छटके दिन, चित्रा नक्षत्रमें, उस महादेवी शिवादेवीने पुत्र-रत्नको जन्म दिया; जैसे पूर्वदिशा सूरजको जन्म देती है । पुत्र जन्मसे ही तीन ज्ञानका धारक था और गुणोंका पुंज था । प्रभुके जन्म-समय मंद मंद सुगन्धित वायु चल रही थी । पृथ्वी धूल-रहित दर्पणकी नाँई निर्मल हो गई थी । खिले हुए नील कमल उसके रोमाञ्चके जैसे जान पड़ते थे । भगवानका जन्म होते ही एकाएक देवतोंके आसन कंपित हो उठे । उनके मुकुट अपने आप नम गये । एवं बिना बजाये ही

कल्पवासियोंके यहाँ घंटोंका नाद, ज्योतिषियोंके यहाँ सिंह-नाद, व्यन्तरोंके यहाँ दुंदुभियोंका शब्द और भवनवासियोंके यहाँ शंख-नाद होने लगा। जिसको सुन कर उन्होंने प्रभुके जन्मका निश्चय किया और वे बड़े भारी हर्षित हुए।

इसके बाद इन्द्रकी आज्ञासे सब देवगण इन्द्रके साथ साथ अपने अपने वाहनों पर सवार होकर स्वर्गसे आकाश-मार्ग द्वारा पृथ्वीतल पर उतर कर द्वारिकामें आये। इस समय उनके आनंदका कुछ पार न था। वहाँ आकर इन्द्रकी आज्ञासे गुप्त भेषमें इन्द्राणी प्रसूति-गृहमें गई और वहाँ प्रभु-सहित शिवादेवीको देख कर उसने उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद वह प्रभुको सतृष्ण लोचनोंसे निरखती हुई जिन-जननीके सामने खड़ी हो गई। और जिनमाताके पास एक मायामय बालकको सुला कर उसने प्रभुको गोदमें उठा लिया और उन्हें वह बाहिर इन्द्रके पास ले आई। प्रभुको लाकर उसने बड़ी भारी भक्ति और प्रीतिसे इन्द्रकी गोदमें दे दिया। इन्द्र प्रभुको गोदमें ले सुमेरु पर्वत पर ले गया। वहाँ उसने पांडुकवनकी पांडुकशिला पर जो अनादिसे एक सिंहासनके जैसी है, विराजमान कर क्षीरसागरके जलसे भरे हुए सोनेके एक हजार आठ कलशों द्वारा प्रभुका अभिषेक किया। अभिषेकके बाद प्रभुके गंधोदकको अपने अपने मस्तक पर चढ़ा सब देव-गण पवित्र हुए। उन्होंने प्रभुके स्नानके जलसे अपने कर्म कलंकको बहा दिया। अनन्तर इन्द्राणीने प्रभुके शरीरको पोंछ कर उन्हें दिव्य वस्त्र और आभूषण पहिनाये। इस समय प्रभुके शरीरका सौंदर्य इतना बढ गया था कि इन्द्राणी उसको देख कर तृप्त ही नहीं होती थी।

इसके बाद इन्द्राणीके साथ इन्द्रने प्रभुकी स्तुति करना आरंभ की कि प्रभो, आप स्वेद-रहित हैं, मल-रहित निर्मल हैं, विपुल हैं, आपका रुधिर दूधके जैसा सफेद है, आपके पहला संस्थान और पहला संहनन है और आप सार्वोत्तम हैं। तात्पर्य यह कि आपको सब मोक्ष-सामग्री प्राप्त है। स्वामिन्, आपका शरीर सुन्दरतासे परिपूर्ण है, नाना तरहकी सुगन्धिसे विभूषित है तथा एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त है। प्रभो, आप उपमा-रहित निरुपम हैं, वीर्यके भंडार हैं, हित, मित और प्रिय वचनोंके बोलनेवाले हैं, अतः प्रभो आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप शिवादेवीके पुत्र हैं और दस अनोखी बातों—अतिशयों—से सुशोभित हैं, अरिष्ट-समूहको दूर करनेवाले हैं और कल्याण-रथकी धुरा हैं; अतः हे प्रभो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस तरह प्रभुकी स्तुति कर इन्द्रने खूब ताण्डव नृत्य किया।

इसके बाद वह प्रभुको गोदमें लेकर देव-गणके साथ वापिस द्वारिकाको चला आया। वहाँ आकर उसने देवोंके देव और जगत्पूज्य प्रभुको उनके माता-पिताको सौंप कर उनके आँगनमें खूब नृत्य किया। इसके बाद वह भाँति भाँतिकी निर्मल भोग-सम्पदाकी योजना कर और प्रभुकी रक्षाके लिए देवोंको नियुक्त कर स्वर्गको चला गया।

इधर देवों द्वारा सेवित नेमिप्रभु कला और कान्तिसे बढ़ने लगे। वे मनोहर थे, श्रेष्ठ और संसारके बन्धु थे--जिस तरह चाँद समुद्रको वृद्धिगत करता है उसी तरह वे भी संसारमें सिद्धिको वृद्धिगत करते थे। प्रभुके साथ देव-गण बच्चोंका सा रूप धर-धर कर खेलते थे और उन्हें जिस तरह होता खुश रखते थे। प्रभु जब लड़खड़ाते हुए पृथ्वी पर चलते तब बहुत ही सुशोभित होते और महाराज उन्हें देख कर अति हर्षित होते थे। प्रभु विनोद करते हुए अपने अँगूठेको मुँहमें दे लेते थे और उससे अमृतमय आहारका स्वाद लेते थे।

इसके बाद प्रभुके पाँव कुछ जमने लगे; वे अच्छी तरह दृढ़तासे पाँव जमाकर सुन्दर चालसे चलने लगे। प्रभुका मुँह पूर्ण चाँदसे भी सुन्दर था, नेत्र कमलके जैसे थे। कान कुण्डलोंसे सुशोभित थे। प्रभुका मस्तक (ललाट) खूब विशाल था। उनके बाहु (हाथ) कल्पवृक्षकी नाँई मनोरथोंके साधक थे। उनका वक्षःस्थल रक्षाके लिए पूर्ण समर्थ था। वह अंजन पर्वतके तट जैसा था। उनकी नाभि सुहावनी और गंभीर थी। कटिभाग करधौनीसे सुशोभित था। उनके उरु स्तंभके समान थे। जाँघें सुन्दर हाथीकी सूँड़के जैसी और विघ्नोंको हरनेवाली थीं। कमल जैसी आभावाले उनके पाँव पापको हरनेवाले थे। उनके नख नक्षत्रके जैसे चमकते हुए थे। वे प्रभु महान् पांडित्य-पूर्ण, अतुल ऐश्वर्यके धारक और अनुपम प्रभा-मंडलसे शोभमान थे। वे श्री नेमि जिनेश्वर संसारकी रक्षा करें।

तेरहवाँ अध्याय।

उन सुपार्श्व प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ जो जीवोंका हित करनेवाले हैं, जिनके प्रभावसे जाति-विरोधी जीव भी अपने वैर-विरोधको छोड़ कर मित्र बन जाते हैं और जिनके चरण-कमलोंमे साथियाका चिन्ह है। वे मुझे संसार-समुद्रके पार पहुँचावें।

एक समय यादव-गण अपनी सभामें बैठे हुए थे, इतनेहीमें वहाँ नारदजी आ गये। उन्हें आया देख कृष्ण आदि सब यादव-गण उठ खड़े हुए और सबने उनका स्वागत कर विनीत भावसे उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद वे महलमें सत्यभामाके पास गये। सत्यभामाने उनका यथोचित आदर नहीं किया। इससे असन्तुष्ट हो वे एकदम कुंडिनपुरको चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने भीष्म और श्रीमतीकी पुत्री, रुक्मीकी छोटी बहिन रुक्मिणीको देखा। उसे देख कर वे मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वहाँसे वे फिर कृष्णके पास द्वारिका आये। यहाँ आकर उन्होंने रुक्मिणीकी सारी कहानी कृष्णको सुनाई, जिससे कृष्णके हृदयमें उसके प्रति राग हो गया और वह उसे चाहने लगे। यह बात बल्देवके कानमें पहुँची। उनने कृष्णको कुंडिनपुर जानेकी प्रेरणा की। कृष्ण उन्हें साथ लेकर कुंडिनपुर पहुँचे। कृष्ण चलते समय अपनी सब सेनाको भी कुंडिनपुर आनेका आदेश कर गये थे, अतः उनकी सेना भी अति शीघ्र ही वहाँ पहुँच गई। उधर रुक्मीने पहले हीसे शिशुपालको रुक्मिणी देनेका वचन दे रक्खा था, अतः शिशुपाल पहलेसे ही कुंडिनपुर घेरे हुए था।

इन्हीं दिनों एक-दिन सोनेके जैसी आभावाली रुक्मिणी नागदेवकी पूजाके लिए नाग-मन्दिरको गई हुई थी। वहाँ उसे कृष्ण नारायणने हर लिया; और इसकी उसने शंख-ध्वनि द्वारा औरोंको भी सूचना कर दी। इसके बाद ही कृष्ण और बलदेव दोनों भाई वहाँसे चल दिये। उन वीरोंके चलनेसे पृथ्वी भी चलती हुई सी जान पडती थी। उधर जब शंख-ध्वनिसे रुक्मिणीके हरे जानेकी रुक्मी और शिशुपालको सूचना मिली तब वे दोनों भी बहुतसी सेनाको साथ लेकर कृष्ण और बलदेवके साथ युद्ध करनेको निकले। इधर द्वारिकासे आई हुई कृष्णकी सेना पहलेसे ही तैयार थी, अतः कृष्ण और बलदेवके साथ उन दोनों मतवालोंका युद्ध छिड़ ही गया। दोनों ओरके योधा खूब ही वीरतासे शत्रु-दलके योधाओंको

ललकार कर बाण छोड़ते थे। सबने दृढ़तासे युद्ध कर अपनी मृत्यु निश्चित कर रक्खी थी; कोई भी पीछे पाँव देनेको तैयार न था। इसी समय युद्ध करता हुआ रुक्मी कृष्णके सामने आ गया। रुक्मिणीने यह देख कर अपने पिताका कृष्णको परिचय दिया। फल यह हुआ कि उसको रुक्मिणीके आग्रहसे कृष्णने मारा तो नहीं; परन्तु नागपाशसे बाँध कर अपने रथमें डाल दिया। इसके बाद सैकड़ों अपराधोंके अपराधी तथा क्रोधसे तप्त शिशुपालको हरि (कृष्ण) ने मार कर एक क्षणहीमें धराशायी कर दिया; जैसे कि हरि (सिंह) हाथीको मार कर बातकी बातमें ही धराशायी कर देता है। इसके बाद रणभेरियोंके शब्दसे शब्द-मय युद्धको उसी समय बन्द कर वह बली सेनाको साथ लेकर गिरनार पर्वत पर आया। वहाँ उसने रुक्मिणीको उत्साह देकर, समझा कर उसके साथ विवाह कर लिया और बाद वह फहराती हुई करोड़ों धुजाओंसे परिपूर्ण द्वारिका चला आया।

एक दिन प्रसन्नचित्त दुर्योधनने समझा कर एक दूतको कृष्ण नारायणके पास भेजा। दूतने जाकर नारायणको सूचित किया कि प्रभो, दुर्योधन महाराजने आपके पास मुझे यह समाचार देकर भेजा है कि यदि आपके पहले पुत्र और मेरे पुत्री हो या मेरे पुत्र और आपके पुत्री हो तो उन दोनोंका परस्पर विवाह सम्बन्ध हो—इसमें कोई रुकावट न हो। यह सुन उत्तरमें नारायणने कहा कि ठीक है जैसी दुर्योधन महाराजकी इच्छा है, मुझे स्वीकार है। इसके बाद कृष्णने दूतका योग्य आदर-सत्कार कर उसे वहाँसे विदा कर दिया। दूत वहाँसे चल कर अति शीघ्र हस्तिनापुर आ गया।

इसके बाद कृष्णके रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ; परन्तु दैव-योगसे उसे जन्म समयमें ही कोई वैरी हर ले गया और विजयार्द्ध पर्वत पर रहनेवाले किसी विद्याधरके यहाँ उस महाभागका पालन-पोषण हुआ। वहाँ वह सोलह वर्षकी अवस्था तक रहा और उसने वहाँ सोलह लाभ भी प्राप्त किये। इसके बाद वहाँसे उसे नारदजी द्वारिका पुरीको ले आये और वहाँ वह भाग्य-शाली आनंद-चैनसे रहने लगा।

प्रद्युम्नकुमारके जन्मके बाद ही सुखिनी सत्यभामाने भानुकुमारको जन्म दिया, जिस तरह पूर्वदिशा भानु (सूरज) को पैदा करती है। भानु अँधेरेको दूर करता है, वह भी अपने शरीरकी प्रभासे अँधेरेको दूर करता था।

भाँति भाँतिकी सम्पत्ति द्वारा आधे आधे राज्यको भोगते हुए पांडव और कौरव एक समय सभा-भवनमें बैठे हुए थे। इस सम्बन्धमें यह जान लेना आवश्यक है कि पांडव बड़े चतुर और विद्वान् थे। वे समयकी कदर करते थे और लक्ष्मीसे युक्त थे। अतः आधे राज्यको संभालते हुए सुखसे अपना समय विताते थे। परन्तु कौरवोंका स्वभाव इनसे विल्कुल ही विपरीत था। वे हमेशा दूसरोंकी सम्पत्तिको देख कर जला करते थे। उनका अदेख-सखाभाव बड़ा प्रवल था। प्रजा उनसे असंतुष्ट रहा करती थी। वे सूरजको दोष देनेवाले उल्लूकी नाँई सत्पुरुषोंको दोष देते थे। अतः वे दुष्ट आपसकी सन्धि तोड़नेके लिए तैयार हो गये और उन अन्यायियोंने खुल्लमखुल्ला कह दिया कि हम सौ भाई हैं और ये केवल पाँच ही है; फिर आधे आधे राज्यको कैसे भोग सकते हैं—यह सरासर अन्याय है। चाहिए तो ऐसा कि कुल राज-पाटके एक सौ पाँच भाग किये जायँ और इन्हें पाँच तथा हम लोगोंको सौ भाग दिये जायँ। भला, विचार कर तो देखिए कि पाँचके लिए आधा राज्य और उनसे वीस गुने लोगोंके लिए भी उतना ही राज्य! यह अन्याय नहीं तो और क्या है? इस तरह दोषोंके भंडार और मन ही मन युद्ध करनेको तैयार उन दुष्ट दुर्योधन आदिने परस्परके प्रेम सूत्रको तोड डाला।

दुर्योधन आदिकी ऐसी विषभरी बातोंको सुन कर—यद्यपि पांडव पण्डित थे और वैर-विरोधसे दूर थे तो भी—भीमसेन आदिको बड़ा क्रोध आया और भौंहें चढ जानेसे उनके मुँह भीषण हो गये। वे आवेश-वश इधर उधर घूमने लगे, जिससे अचला (पृथ्वी) भी हिल गई। इसके वाद वे वोले कि हमेशा ही सशंकित रहनेवाले और कौओंकी नाँई दीन ये विचारे हम सरीखे शक्तिशाली पुरुषोंके होते हुए भला कर ही क्या सकते हैं! और यह वात कुछ छुपी नहीं, स्वयं वे भी जानते हैं।

भीमने कहा कि भाई युधिष्ठिर, यदि आपकी आज्ञा हो तो इन दुष्टोंको अभी क्षणभरमें ही भस्म कर दूँ। क्योंकि आगका एक छोटासा कण भी धधक कर वड़े वड़े जंगलोंको जला डालता है। या कहो तो हीन विचारवाले इन सौके सौको ही एकदम उठा कर समुद्रमें फेंक दूँ और इनका काम तमाम कर दूँ।

भीमको इस तरहसे क्रोधित देख कर युधिष्ठिरने उसे मधुर वचनों द्वारा शान्त किया, जिस तरह कि जलती हुई आग पानीसे ठंडी की जाती है। और जिस

तरह काठका निमित्त पाकर आग जल उठती है उसी तरह कौरवोंके इन वचनोंको सुन कर अर्जुन (सोने) की नॉई दीप्त अर्जुनकी क्रोधाग्नि भी भभक उठी। वह बोला कि जिस तरह सैकड़ों कौओंको एक साथ ही भयभीत कर देनेके लिए एक ही पत्थरका टुकड़ा काफी होता है उसी तरह शक्तिशाली मेरा एक ही वाण इन सौको ही एकदम भयभीत कर देनेके लिए काफी है। उसके सामने इनकी कुछ भी न वन पड़ेगी। ये लोग मदोन्मत्त होकर तभी तक मर्यादाको लाँघते हैं जब तक कि अँधेरेको दूर करनेवाले सूरजकी नॉई तेजशाली मैं क्रुद्ध नहीं हुआ— मेरे क्रोधके सामने इनकी कुछ भी कला काम न आयगी, जिस तरह कि सूरजके सामने अँधेरेकी कुछ भी नहीं चलती। इसके साथ ही पार्थने हाथमें धनुष उठाया और उस पर वाण चढ़ा कर वह युद्धके लिए उद्यत हो गया। उसकी उस समयकी अवस्थाको देख कर स्थिरबुद्धि युधिष्ठिरने उसे शान्तिसे समझा कर रोका। और है भी यही ठीक कि सज्जन पुरुष विरोधको दूर करनेवाले होते हैं। इसके वाद कुलीन नकुल बोला कि मैं इसी समय इन कौरवोंके कुलरूपी शाल-वृक्षको जड़से उखाड़ नष्ट किये देता हूँ। ये तो पतंगोंके समान हैं और मैं हूँ इनके लिए आगके तुल्य, अतः प्रयत्नके विना ही ये अभी जल कर खाक हुए जाते हैं—इनमेंसे एक भी वचनेका नहीं। इसी बीचमें सहदेव भी बोल उठा कि ये कौरव-वृक्ष तो चीज ही क्या हैं! मेरे द्वारा कुल्हाड़ेसे काटे जाने पर ये विनश्वर ठहर ही कहाँ सकते हैं। मैं अभी अपने बाहु-दंडोंसे कुल्हाड़ेको उठाता हूँ और इनके टुकड़े टुकड़े करके दिशाओंके स्वामी दिगीशोंको वली दिये देता हूँ। सच कहता हूँ कि ज्ञान-शून्य, पिशुन और महान् अभिमानी इन कौरवोंको जब तक मैं गर्व-रहित न कर दूँगा तब तक मुझे चैन ही न पड़ेगी। ये अभिमानी साँपके समान हैं और मैं हूँ इनके लिए गरुड़के समान; फिर ये मेरे सामने फण उठा कर चाहे कितनी ही फुंकार क्यों न करें पर इनका कुछ वश नहीं है। आखिर इन्हें ही प्राणोंके लाले पड़ेंगे।

इस प्रकार क्रोधसे आगके समान जलते हुए इन दोनोंको भी युधिष्ठिर-रूप मेघने अपने वचन-रूपी जलको वरसा कर शांत किया। इस तरह युधिष्ठिरके समझाने पर वे चारों भाई पहलेकी नाँई ही शान्तचित्त हो गये और युद्धकी कामना छोड़ कर, स्थिर-चित्तसे राज्यको भोगते हुए, निर्भय हो अपना समय योग्य कार्योंमें विताने लगे।

इधर दुर्बुद्धि तथा कलुषित-चित्त दुर्योधन युधिष्ठिर आदिको मारनेकी चिंतामें अपनी धर्मशून्य-बुद्धिको व्यय करने लगा। वह हमेशा इसी चिंतामें रहता था कि जिस तरह हो सके पांडवोंका विध्वंस करूँ।

एक बार उस उद्धत-आत्माने कपटसे एक लाखका महल बनवाया। वह बड़ा सुन्दर और अति शीघ्रतासे बनवाया गया था। उस पर बड़े ऊँचे और विशाल कूट बनाये गये थे और उन कूटों पर सुन्दर कलश चढ़ाये गये थे। वे उस पर ऐसे शोभते थे मानों सूरज जड़ दिये गये हैं। उस महलमें विस्तृत और लम्बी-चौड़ी जाली लगाई गई थी, वह ऐसी जान पड़ती थी मानों पांडवों-को फँसानेके लिए आगकी समता करनेवाला जाल ही लगाया गया है। उसमें छोटे छोटे और सुन्दर झरोखे थे, मानों उनकी दीप्तिको हरनेके लिए उसने अपने नेत्र ही खचित करवा दिये थे। उस पर रत्नोंके तोरण बँधे हुए थे, अतः उनसे उस महलकी एक भिन्न ही शोभा थी और ऐसा भान होता था कि मानों दुर्योधनने पांडवोंका रण-छल देखनेको यह मूर्तिमान् रण ही तोरणके छलसे यहाँ खड़ा किया है। उसके थंभे ऐसे जान पड़ते थे मानों वैरियोंको बाँधनेके लिए स्तंभन-विद्याके रूपमें खड़े किये गये सुदृढ़ स्तंभ ही है। उसमें चित्र-विचित्र चित्र लगे हुए थे, उनसे जाना जाता था कि वे शत्रु ही खचित कर दिये गये हैं। उनको देखनेसे चित्तमें एक भिन्न ही स्फूर्ति पैदा होती थी। उसमें नाना रास्ते थे। वह खाईसे घिरा हुआ था। उसके चारों ओर कोट बना हुआ था, जिससे उसकी एक सबसे निराली ही छटा थी—शोभा थी। अधिक क्या कहा जाय वह सब तरह सुशोभित था—उसमें किसी भी बातकी कमी न थी। इस अपूर्व महलको कौरवोंके अगुआ दुर्योधनने बनवाया था। इसके बनवानेमें उसे बहुत देर न लगी थी।

इसके बाद दुर्योधन आदि कौरव शान्त-चित्त भीष्म पितामहके पास गये और उन्होंने विनयके साथ उन्हें मस्तक नवा कर कहा कि गंगाके जल समान निर्मल-चित्त पितामह, हमने भक्तिसे प्रेरित होकर सब तरहसे सुसज्जित एक महल बनवाया है। वह इतना विशाल और ऊँचा है कि अपने शिखरोंसे आकाशको छूता है। महाराज, उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि मानों वह विजयी देवतोंके महलोंकी संततिको जीतनेके लिए जानेकी तैयारी ही कर रहा है। वह अपने थंभों-रूप हाथोंसे ऐसा जान पड़ता है कि मानों उनसे शत्रुओंके महलोंकी सम्पति ही हरना चाहता है। अपने शिखर रूप मस्तकसे वह इतना

शोभाशाली और सुन्दर जान पड़ता है और लोगोंको भ्रममें डाल देता है कि कहीं ऋद्धि-सम्पन्न कौरवोंका कुल ही तो नहीं है । उसके शिखर बड़े ऊँचे हैं, अत एव वहाँ आकर अपनी मार्गकी थकावट दूर करनेको कभी कभी खेद-खिन्न चाँद रातमें ठहर जाता है । उसके शिखरोंमें जो धुजायें लगी हुई हैं वे जिस समय हवाके वेगसे फड़-फड़ाती हुई फहराती हैं तब ऐसा मालूम होने लगता है कि वह महल अपने हृदयमें स्थान देनेके लिए इन धुजाओं-रूप हाथोंके इशारेसे स्वर्गके देवतोंको ही बुलाता है । सुस्थिर थंभोंवाले और लोगोंको आश्रय देनेवाले उस महलके बाणके जैसे तीखे शिखरों द्वारा आकाशमें विचरनेवाले ग्रह-तारा-गणोंके विमान घिस जाते हैं और क्षीण हो जाते हैं ।

देव, यह उत्तम और सिद्धि-साधक महल हमने पाडवोंके लिए बनवाया है, अतः इसे अब उनके रहनेके लिए दे दीजिए । महाराज, हम चाहते हैं कि स्थिर-चित्त युधिष्ठिर दशों दिशाओंमें अपने तेजको फैला कर, सुख-शान्तिसे राज्य करते हुए इस नये महलमें रहें और हम सब राजकी आयसे सुख भोगते हुए समुद्रकी नाँई अचल और चिन्ता-रहित हो, स्थिर-चित्तसे अपने ही महलमें रहें । कौरवोंके इन मधुर वचनोंको सुन कर उदार-बुद्धि और सरल-चित्त पितामह बोले कि जो तुमने कहा वह ठीक है; तुम्हारी बात मेरे गले उतर गई । तुमने जो कुछ सलाह दी वह मुझे पसंद आई है। कारण कि मैं जानता हूँ कि तुम्हारा एक जगह रहना परम वैरका कारण है । जहाँ मनमें कुछ मैल रहता है वहाँ जरा जरासी बातों परसे वैर-विरोध खड़ा हो जाता है । इस लिए वैर-विरोध मिटानेके लिए तुम्हारा जुदा जुदा रहना ही अच्छा है । जहाँ परिवारके लोगोंमें लड़ाई झगड़ा हुआ करता है भला, वहाँ सुख हो ही कहाँसे सकता है । देखिए, भरत चक्रवर्ती और बाहुबलीने इसी कौटुम्बिक कलहसे क्या कुछ फल उठाया था । अतः तुम लोगोंका जुदा रहनेमें ही सुख है और ऐसी ही हालतमें राज्य सुखसे भोगा जा सकता है । देखिए, नेत्रोंके रहनेके स्थान जुदे जुदे हैं, इसी लिए उनमें कुछ विरोध नहीं है ।

इस प्रकार निश्चय करके बुद्धिमें बृहस्पति तुल्य, राजसिंह भीष्म पितामहने पाण्डवोंको बुलाया और उनसे कहा कि धनुष-विद्यामें निपुण और इन्द्र-तुल्य पाण्डव-गण, तुम मेरे वचनोंको ध्यान देकर सुनो । वे तुम्हारे लिए सुखके कारण होंगे । तुम किसी अच्छे मुहूर्तमें, बहुत जल्दी, सुन्दर शरीरके जैसे इस नये महलमें रहने लगो । देखो, इसमें रहनेसे

तुम्हारे सभी झगड़े-टंटे तय हो जायँगे; फिर किसीसे कोई प्रकारका वाद-विवाद या व्यर्थका वितण्डा न होगा। देखो, तुम लोग जुदा रहनेमें कुछ भी भय न करो। मैं तो जानता हूँ कि तुम्हें जुदे रहनेमें ही सुख होगा। पांडव गुरु-आज्ञाके प्रतिपालक और गुणोंसे पूर्ण थे। वे उसी समय शुभ मुहूर्त और शुभ दिन दिखवा कर अपने घरको चले गये और जब वह शुभ दिन आया तब उन्होंने शुभ मुहूर्तमें नये महलमें प्रवेश किया। उनके प्रवेश समय बड़ा महोत्सव मनाया गया था। उस समय भेरियोंका सुहावना और महान् शब्द दशों दिशाओंमें गूँज रहा था। नगाड़ोंकी गर्जना हो रही थी। वंशीकी सुरीली आवाजसे कर्ण-कुहर गूँज रहे थे। रोमाञ्च हुए नट-गण विशाल मृदंग, ताल, कंसाल, वीणा आदि वादित्रोंकी लयके साथ मनोहारी नृत्य करते थे। कामिनी-गण अपने सुन्दर नादसे पांडवोंके गुणोंको गाती थीं। गायक-गण सुहावने मंगल-गीत गाते थे। इस तरह बड़े ठाट-बाटके साथ यथायोग्य दान देते हुए उन मंगल-मूर्तियोंने नये महलमें प्रवेश किया। वहाँ रहते हुए वे स्थिर-चित्त पांडव गरीबोंको दान देते थे और ऊँच कुली लोगोंका उचित आव-आदर और मान-सन्मान करते थे। एवं वे पूज्य पुरुषोंकी पूजा-प्रभावनामें भी कभी आगा-पीछा नहीं सोचते थे। वे शुद्ध बुद्धिसे धर्म-कर्मका निर्वाह करते थे। उनको कभी भी धर्म-कर्ममें प्रमाद तथा आलस नहीं सताता था। तात्पर्य यह कि वे विद्वान् वहाँ सुखका अनुभव करते हुए निर्भयतासे रहते थे। उन्हें न तो किसी बातका भय था और न चिन्ता ही। वे सरल चित्त थे, अतः उन्होंने कौरवोंके इस कपट-माया-जालको बिल्कुल ही नहीं जाना। अत एव वे वहाँ सरलताका व्यवहार करते हुए सुखसे रहने लगे। और है भी ऐसी ही बात कि काठकी भीतरी पोलको कौन जान सकता है कि उसमें क्या भरा है। परन्तु धीरे धीरे किसी तरह विदुरको यह पता लग गया कि यह महल लाखसे बनाया गया है। विदुर दयालु था और तेजशाली था। अतः कौरवोंके माया-जालको समझ कर उसने कौरवोंके कपटसे अज्ञात तथा जिनदेवमें सच्ची श्रद्धा रखनेवाले युधिष्ठिरको बुला कर कहा कि वत्स, सज्जनोंको सज्जनों पर ही विश्वास करना चाहिए; दुर्जनों—दुष्टों—पर नहीं। नहीं तो उनके द्वारा वैसे ही दुःख सहने पड़ते हैं जैसे कि साँपके द्वारा। देखो, ऊपरसे मीठे बोलनेवाले और भीतरसे महा मैले इन दुष्टोंसे सज्जनोंको हमेशा दूर ही रहना चाहिए; नहीं तो दुःख अवश्यंभावी है—जैसे कि काई चढ़े हुए पत्थर पर भूलसे भी यदि पैर पड़

जाय तो भी उस परसे अवश्यंभावी पतन होता ही है । पुत्र, देखो नीति कहती है कि राजा लोगोंको कभी दूसरेके हृदयका विश्वास नहीं करना चाहिए, फिर जो सुखी होना चाहते है उनके लिए भला शत्रुका विश्वास तो करना ही कैसे उचित हो सकता है । और भी सुनो कि राजा-गण स्त्री-पुत्र, माता-पिता, भाई-बहिन आदि किसीका भी विश्वास नहीं करते, तब वे दूसरे दुष्ट पुरुषोंका भरोसा तो करें ही कैसे । इस लिए तुम इन कलहकारी कौरवोंका विश्वास मत करो । ये दुर्बुद्धि तुम्हें इस महलमें रख कर मार डालेंगे और तुम्हारे कुलका सर्वस्व नष्ट कर देंगे । भद्र! यह महल लाखसे बनाया गया है—यह तो मुझे निश्चय हो गया; पर किस मनोरथसे ऐसा किया गया इसका मुझे अभी निश्चित पता नहीं है । सो ठीक ही है कि इन माया-जालियोंके मायाजालको कोई जल्दीसे नहीं जान सकता । मेरे कहनेका मतलब इतना ही है कि तुम लोग कदाचित् भी इस महलमें न रहो । नहीं तो तुम्हें बड़े भारी दुस्सह दुःखका सामना करना पड़ेगा । और एक उपाय करो कि एक तुम लोग प्रतिदिन क्रीड़ाके बहाने वनमें जाया करो और सो भी बड़ी सावधानीसे । वहाँ विघ्नों: को दूर करनेके लिए दिन भर आनन्द-पूर्वक समय गुजारा करो । तुम लोगोंसे और ज्यादा कहनेकी कोई जरूरत नहीं हैं; क्योंकि तुम स्वयं ही वैरियोंके गर्वको खर्व करनेवाले हो । परन्तु जब रात हो जाय तब यहीं आकर अपने निश्चल स्वभावसे जागते हुए समय बिताया करो । जागनेकी जरूरत तुम्हें इस लिए है कि नींदमें मनुष्य मरे सरीखा हो जाता है । उसे कुछ भी सुध-बुध नहीं रह जाती, उसके नेत्र बन्द हो जाते हैं, कान बहिरे हो जाते हैं, गला घर-घर करने लगता है और शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाता है । इस प्रकार विदुरने वनमें स्थिराशय पांडवोंको सब बातें खूब समझा दीं । इसके बाद वह सद्बुद्धि अपने महलको चला आया ।

इतने पर भी विदुरकी फिक्र नहीं गई और वह पांडवोंको सर्वनाशसे बचानेकी फिक्रमें हमेशा रहने लगा । वह चतुरमना सदा इसी सोच-विचारमें रहा करता था कि पांडव-गण किस तरह सुखी हों । इसके लिए उसके विचारमें यह उपाय आया कि महलसे लेकर जंगल तक एक सुरंग बनवा दी जाय तो किसी तरहकी आपत्ति पड़ने पर पांडव-गण उसके द्वारा निकल कर बच सकते हैं । यह सोच कर उस शुद्ध हृदयने चुपचाप सुरंग खोदनेवालोंको बुलाया और उन्हें उसके खोदनेकी सब विधि समझा दी । सुरंग खोदनेवाले भी महलके एक कोनेमेंसे सुरंग निकाल देनेको तैयार हो गये । कारण कि वे इस काममें अति प्रवीण थे।

उन्होंने गुप्त रीतिसे थोड़े ही दिनोंमें इतनी बड़ी भारी सुरंग खोद कर तैयार कर दी जो आने और जानेके लिए काफी थी। सुरंग खुद कर जब तैयार हो चुकी तब विदुरने सोचा कि यदि कभी कौरव-गण इस लाखके महलमें आग भी लगा दें तब भी पांडव सुरंग-मार्गसे निकल जायँगे और अपने प्राणोंकी रक्षा कर लेंगे। इसमें अब तनिक भी सन्देह नहीं है। इस तरह आनन्दके साथ विदुरने लाखके उस महलमें जो कि कौरवोंने पांडवोंके साथ छल करनेके लिए बनवाया था, सुरंग बनवा दी और कौरवोंसे पांडवोंको निर्भय कर दिया। इसके बाद उसने पांडवोंके सम्बन्धकी बिल्कुल ही चिन्ता छोड़ दी—वह निश्चित हो सुखसे अपना काल बिताने लगा। परन्तु उसने वह सुरंग स्वयं न तो देखी और न सुखी पांडवोंको ही दिखलाई। कारण वह तैयार होते ही किसीको बिना दिखाये ढक दी गई थी। इसके बाद पांडव शोक, विषाद, मद आदिसे रहित हो, बिना कष्टके, प्रीतिके साथ उस महलमें निवास करने लगे। और इस प्रकार कुन्ती-सहित वहाँ रहते उन्हें एक साल बीत गया। उन्हें वह बिल्कुल ही नहीं जान पड़ा। क्योंकि वे बहुत सी कलाओंके विज्ञ थे, अतः उनका काल शान्ति और प्रेमके साथ बीतता था।

इधर धृतराष्ट्रके दुष्ट और कलुषित-चित्त पुत्र दुर्योधनने पांडवोंको मार डालनेके लिए उस लाखके महलमें आग लगानेकी फिक्र की—उसने सोचा कि इस महलमें आग लगा देने पर लाख पिघल जायगी और तब उसमें रहनेवाले ये दुष्ट-चित्त पांडव अवश्य ही जल कर भस्म हो जायँगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मंत्रीके साथ इस प्रकार विचार जब वह निश्चित कर चुका तब उसने अर्ककीर्ति नामके एक कीर्तिशाली कोतवालको रातमें बुला कर कहा कि तुम इसी समय पांडवोंके महलमें आग लगा कर उसे भस्म कर डालो। तुम्हें इस काममें देर न करना चाहिए, यह मेरी आज्ञा है। इस महलमें किसीके लिए आने जानेकी रुकावट नहीं है, अत एव अति शीघ्र इसे भस्म कर दो। तुम कुछ भी आगा पीछा मत सोचो। इस कामको ठीक ठीक हो जाने पर मैं तुम्हें वही दूँगा जो तुम चाहोगे। या अभी माँग लो जो तुम्हें रुचता हो। काम हो जाने पर मैं वह तुम्हें अवश्य दे दूँगा। समझ गये। सच तो यह है कि यदि तुम्हें धन-सम्पदा, जागीर आदि वैभव प्यारा हो तो विलम्ब न कर जल्दी जाओ और महलमें आग लगा दो।

दुर्योधनके इन अनिष्ट वचनोंको सुन कर कोतवाल बोला कि नृपसत्तम, यह आप क्या कहते हैं। न्यायी पुरुषोंको ऐसा अन्याय करना बिल्कुल ही उचित नहीं है। विद्वान् लोग ऐसी बातोंकी बड़ी निंदा करते हैं। सुजीवन, यह जो लोग धनका संग्रह करते हैं वह जीवनके लिए ही न करते है। परन्तु विचार कर देखनेसे जाना जाता है कि यह जीवन भी तो ओसकी बूँदकी नॉई क्षणिक है—नाश होनेवाला है। और स्वयं धन भी स्वप्नकी नॉई असार और देखते देखते नष्ट हो जानेवाला है। यह मेघ-पटलकी भाँति एक क्षणमें ही नष्ट हो जाता है। और जिस लक्ष्मीका लोभ देकर आप मुझे इन महा पुरुषोको मार डालनेके लिए कह रहे हैं भला वह लक्ष्मी भी तो किसीके साथ हमेशा रमनेवाली नहीं है—व्यभिचारिणी स्त्रीके जैसी है। वह इस घरसे उस घर और उस घरसे इस घर मारी मारी फिरा करती है। महाराज, जीव-घातसे होनेवाले पाप-बन्धसे जीवकी दुर्गति होती है। अतः उस धनसे भी क्या लाभ जिसके द्वारा जीवोंके प्राण पीड़े जायँ। इस लिए प्रभो धन-सम्पदाकी बात तो रहने दीजिए और जो आज्ञा हो सो कहिए। कोतवालके इस उत्तरको सुन कर दुर्योधनके क्रोधकी सीमा न रही। वह आपेसे बाहिर हो गया। पाप करनेमें अग्रणी वह क्रोधके साथ बोला कि नीच तू यह क्या कहता है। जरा सँभल कर बोल। सच्चा और सबसे उत्तम सेवक वही है जो मालिककी आज्ञा पालनेमें कभी आगा-पीछा नहीं करता। अत एव तुझे ऐसा ही वर्ताव करना चाहिए। और इसीमें तेरी भलाई छिपी हुई है। वह भी इस समय प्रगट हो जायगी। क्या तूने नहीं सुना है कि काम पड़ने पर नौकरोंकी, संकट पड़ने पर भाई-बन्धुओंकी, आपत्तिके समय मित्रोंकी और धन-हीन दरिद्री हो जाने पर भार्याकी खूब पहिचान हो जाती है—उनके स्वभावका इन समयोंमें अच्छा परिचय मिल जाता है। अत एव तुझे मेरी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिए। ऐसा करनेसे तुझे सम्पत्ति मिलेगी और इसके विपरीत करनेसे विपत्तिका पहाड़ तेरे सिर पर टूट पड़ेगा।

दुर्योधनके इन क्रोध भरे और उत्तेजित करनेवाले वचनोंको सुन कर सत्याग्रही कोतवाल अपने आपको मौतके हाथमें सौंप बोला कि राजन्, मुझे मार डालो चाहे जीता रहने दो; धन-दौलत दो चाहे मेरी और हर लो; मुझे अपनी प्रसन्नताका पात्र बनाओ चाहे क्रोधका; कृपा करके राज्य दो चाहे मेरा सर्वस्व हर लो; मेरा मान-सन्मान करो चाहे मस्तक काट डालो; परन्तु देव, कपटसे मैं पांडवोंके सुंदर महलमें आग नहीं लगा सकता। यह कह कर वह दयालु कोतवाल

बिल्कुल चुप हो गया; उसके मुँहसे फिर एक शब्द भी न निकला। कोतवालके इस उत्तरसे दुर्योधनका क्रोध एकदम उभर आया और उसने उसे खूब मजबूत साँकलसे बँधवा कर जेलखानेमें डलवा दिया।

इसके बाद कौरवाग्रणी दुर्योधनने अपने पुरोहितको बुलवाया और वस्त्र-भूषण आदिसे उसका सन्मान कर उससे कहा कि पुरोहितजी, तुम सारे जगत-में प्रसिद्ध हो और पृथ्वी पर देव-तुल्य हो। वह इस लिए कि तुम लोगोंके सब काम कर देते हो। आज हमारा भी एक काम आ पड़ा है, सो तुम उसको भी कर दो तो बड़ी कृपा हो। महाराज, मैं जिस कामको आपसे कराना चाहता हूँ वह बहुत ही गुप्त काम है। मेरा विश्वास है कि उसे तुम्हीं कर सकते हो। क्योंकि उत्तम काम तुम सरीखे पुरुषोंके द्वारा ही पूरे पड़ते हैं। वह कार्य यह है कि यह जो पांडवोंका लाखका महल है इसे तुम रातमें आग लगा कर फूँक दो। इससे मुझे बड़ा सन्तोष और सुख होगा। यदि आप मन चाहा पुरस्कार चाहते हो तो क्षणभरमें ही इसे भस्म कर दो। यह कह कर दुर्योधनने उन्हें मुँह माँगा धन देकर संतुष्ट कर दिया और महल जला डालनेकी उनसे स्वीकारता ले ली। लोभी द्विजने भी लोभके वश हो यह अनर्थ करना स्वीकार कर लिया। हाय, यह लोभ इतना बड़ा पाप है कि इसके बराबर दूसरा कोई पाप नहीं। इस लोभसे अत्यन्त कठिन और दुःख-मय कार्य हो जाते हैं। अतः लोभी पुरुषोंके लोभको धिकार है, एक बार नहीं, सौ बार नहीं, किन्तु असंख्य और अनंत बार धिकार है। यह लक्ष्मी सुख देनेवाली है, जो ऐसा कहते हैं वे भारी भूलते हैं। किन्तु यह तो खोटे कर्मोंकी खान है। इसके अधीन होकर लोग क्या क्या दुष्कृत्य नहीं करते। जरा ही सोचो तो मालूम होगा कि इससे ही संसारके सारे अनर्थ होते हैं। और तो क्या लोभी पुरुष भाई-बहिन, माता-पिता, स्त्री-पुत्र नौकर-चाकर, गुरु और राजा आदि किसीको भी मारनेसे नहीं हिचकते। एक जमाना था जब कि ऐसे भी नर-पुंगव हो गये हैं जिन्होंने दीक्षाकी इच्छासे लक्ष्मी, महल, हाथी-घोड़े आदि सब सम्पत्तिको जलाञ्जलि दे वन्यवृत्ति अर्थात् नग्न दिगम्बर भेषको पसंद किया था।

इसके बाद वह जनेउधारी मूढ तथा जड़ द्विज लक्ष्मीके लोभमें फँस कर पांडवोंके महलको जलानेके लिए तैयार हो गया, और जाकर उस दुष्टने महलके चारों ओर आग लगा दी। सो ठीक ही है कि दुष्ट, दुर्जन जन कौनसे अनर्थ

नहीं करते; कौआ कौनसी वस्तुको नहीं खाता; और वैरी कौनसी बातको नहीं कहता। भावार्थ यह कि दुर्जन सभी अनर्थोंको कर डालते हैं, कौआ विष्टा वगैरह सब कुछ घृणित वस्तु खा जाता है और वैरी जो मनमें आता सो कह डालता है। इसके बाद वह दुष्ट, अनिष्टकारी और कलुषित-चित्त पुरोहित न जाने कहाँ चला गया। ग्रन्थकार कहते हैं कि पापियोंका चित्त कभी शुभ नहीं हो सकता। इधर आग आकाश तक उठनेवाली अपनी भयंकर ज्वालासे महलको खूब जलाने लगी। ठीक ही है कि आग लगा देनेवाले पुरुषोंमें दया नहीं होती। इस समय उस लम्बे-चौड़े और ज्वालासे खूब घिरे हुए महलको जलाती हुई आग अत्यन्त दीप्त हो रही थी, दूर दूरसे उसका उजेला देख पड़ता था। सो ठीक ही है कि जलानेवाली आग स्वयं भी तो जलती है। अतः उसका इतना तेज हो जाना कोई बात नहीं है।

परन्तु ऐसे समयमें भी पांडव लोग जाग्रत नहीं हुए। लोग कहते है कि नींद शान्ति है—विश्राम—है; परन्तु उनका यह भ्रम है। क्योंकि नींद विश्राम नहीं, किन्तु सुध-बुध भुला देनेवाली एक तरहकी मौत ही है। इधर आगने लाखको शत्रुकी नाँई अपना लक्ष्य बना कर क्षणभरमें ही महलकी सब सुन्दर सुन्दर वस्तुयें जला-कर भस्म कर दीं। धीरे धीरे जब उसकी महा-ज्वालासे महलकी सारी भींतें जलने लगीं और उसकी आँचका उन पर कुछ असर हुआ तब पांडव जाग्रत हुए; और जाग्रत होते ही उन्होंने देखा कि लाखके संयोगसे खूब ही प्रदीप्त हुई आगकी ज्वाला सब ओरसे महलको जला रही है। जान पड़ता है मानों वह प्रलयकी ही अग्नि है। उन्होंने अपने निकलनेके लिए इधर उधर बहुत उपाय किये; परन्तु आगकी ज्वालाके मारे उन्हें कहीं भी पाँव देनेको जगह न देख पड़ी। उस समय पांडवोंने देखा कि तड़तड़ाती हुई भींतोंको ढाहती हुई ज्वाला सब दिशाओंको फैल रही है; ऐसी जरा भी जगह नहीं बची है जहाँ उसने अपना साम्राज्य न जमा लिया हो। इधर उधर बहुत देखने पर जब कहींसे भी उन्हें निकलनेका उपाय न देख पड़ा तब धर्मात्मा और धर्म-बुद्धि युधिष्ठिर स्थिर-चित्तसे श्रीजिनेन्द्रका स्मरण करने लगे—उनके नामकी माला जपने लगे। वह पंच नमस्कार मंत्रसे अपने मनको मंत्रित करके अपने तेजसे आगको भी दबा कर स्थिर हो बैठ गये। वे विचारने लगे—आश्चर्य है कि कर्म इतने विकट हैं कि उन पर सज्जनोंका भी वश नहीं चलता—उन्हें वे भी नहीं जीत सकते और उसके तीव्र फलको भोगते हैं। फिर भी हे आत्मन, तू

इन कर्मोंको क्यों करता है, अब तो इनसे अपना पिंड छुड़ा। इन कर्मोंके कारण ही सत्पुरुष संसारमें दुःख उठाते हैं। देखो, इन्हींके फलसे तो सगरके पुत्र दुःखी हुए और इन्हींके जालमें पड़ कर जगत्प्रसिद्ध अर्ककीर्ति जो कि भरत चक्रवर्तीका पुत्र था, जय सेनापति द्वारा बँधनमें पड़ा। इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है। तथा इनके सिवा और और राजा लोग भी इन्हींके प्रेरे हुए संसारमें वध-बंधन आदिके दुःखोंके भोक्ता हुए हैं। एवं खेदकी बात है कि हम भी इन्हीं दुष्ट कर्मोंकी कृपासे आज आगके मुँहमें आ पड़े हैं। और इन्हींकी कृपासे यह हमें जला कर भस्म किये देती है। इस लिए अब विस्मयको दिलसे निकाल कर हमें इन दुष्ट कर्मोंको छेदनेवाले प्रभुका स्मरण करना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर विशिष्ट-बुद्धि युधिष्ठिर बैठे ही थे कि इतनेमें सहसा संतप्त-चेतना कुन्ती जाग उठी और वह जलते हुए महलके आगे आकर उपस्थित हुए दुर्गम दुःखोंको देख रोने लगी कि हाय! मैंने ऐसा कौनसा निकृष्ट कर्म किया है, जिसके प्रभावसे मुझे ऐसा भारी दुस्सह दुःख-रूप फल मिला है। —आश्चर्य है कि ये लोग जिस पापके फलसे तीव्र दुःखोंको भोगते हैं फिर भी उसी पापको करते हैं। अहो धिक्कार है लोगोंके इस अज्ञानको जिसके पंजेमें फँस जानेसे उन्हें कुछ भी हित-अहितका विवेक नहीं रह जाता। —अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ, जब कि सब ओरसे खूब ही जल रही इस भयंकर आगमें यह महल बिल्कुल ही जला जा रहा है। ऐसी हालतमें मैं कहाँ ठहर कर अपने प्राणोंको बचाऊँ। मुझे तो कुछ उपाय ही नहीं सूझ पड़ता है। इस तरह विलाप करती हुई कुन्तीको भीमने समझाया और वह निर्भय अपने आसनसे उठ कर इधर उधर रास्ता सोधने लगा। आग इस जोरसे बढ़ रही थी कि डरके मारे उसके शरीरकी कान्ति भी फीकी पड़ गई। पुण्ययोगसे इसी समय उसे सच्चे उपदेशकके जैसी वह सुरंग मिल गई जो कि पृथ्वीके भीतर ही भीतर विदुरने खुदवाई थी। परस्परके स्नेहसे भरे हुए वे सब पांडव जिन भगवानको हृदयमें धारण करनेवाली कुन्ती-सहित उस सुरंगके रास्तेसे बाहर निकल अति शीघ्र वहाँसे चल कर वनमें पहुँच गये—जैसे कि भव्य-पुरुष थोड़ी ही देरमें संसारको नाश कर मुक्तिमें पहुँच जाते हैं। पुण्यका फल कितना मनोहर और अच्छा है कि जिसके प्रसादसे अनजानी सुरंग भी वक्त पर हाथ आ गई। इसी पुण्यसे आग जल हो जाता है, समुद्र थल हो जाता है, शत्रु मित्र और साँप गिजाई हो जाता है।

इसके बाद वे विपन्न पाण्डव कुन्ती-सहित मसान भूमिमें पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उपाय खोज निकालनेमें प्रवीण भीमने अपनी रक्षाके लिए एक नई ही युक्ति खोज निकाली और उसने उसे कार्य-रूपमें परिणत भी कर दिया। वह मसान भूमिसे छह मुर्दे उठा लेजा कर उन्हें अति शीघ्र जलते हुए लाखके महलमें डाल आया। इस लिए कि जिससे लोग समझें कि पांडव जल कर मर गये। उसे किसीने भी देख न पाया, और वह अति शीघ्र पीछा लौट आया। इसके बाद वे राज-नन्दन पांडव चुप-चाप वहाँसे चल दिये। वे जाते हुए ऐसे शोभते थे मानों पहाड़ ही चलते हैं।

उधर जब हस्तिनापुरमें सवेरा हुआ तब ऊपरसे दुःखका ढोंग दिखाते हुए कपटी कौरव पांडवोंको देखनेके लिए आये। धीरे धीरे यह बात सारे नगरमें फैल गई। इस अनहोनी बातको सुन कर नगरके सब लोगोंको बड़ा दुःख हुआ—सबके हृदयोंमें वज्रसे भी भयंकर चोट लगी। उनके मुँहसे निकली हुई हाहाकारकी ध्वनिने सारे नगरको शोक-पूरित कर दिया। वे लोग तीव्र दुःखके आवेगसे रोते और कहते थे कि आज इस नगरमें समझ लो कि श्रेष्ठ और सज्जन पुरुषोंका नाम शेष ही हो गया है। न जाने किस दुष्ट वैरीने इन सत्पुरुषोंको कालके मुँहमें पहुँचा दिया है। पुण्यसे पांडव कितने अच्छे पण्डित, शान्ति, निर्मल-चित्त, तेजस्वी और धनुष-विद्या-कुशल थे। वे कितने पराक्रमी थे। उनके पराक्रमके आगे सभी शीस झुकाते थे। उन्होंने अपने पराक्रमसे सब राजों-महाराजों पर विजय पाली थी। आश्चर्य्य है कि ऐसे पराक्रमी और महाभागोंको भी दुष्ट कर्मोंने अपने जालमें फँसा लिया—वे भी इनके पंजेसे न छूटे। अहो, कर्म, तेरी चतुराईको धिक्कार है, असंख्य और अनंत वार धिक्कार है जो तूने ऐसे अच्छे विद्वान और बुद्धिमान पांडवोंको भी भस्म कर दिया। एवं पांडवोंके वियोगसे दुःखी होकर कोई कहता था कि विचार करनेसे मुझे यह सन्देह होता है कि ऐसे विद्वान् और व्यवहार-कुशल पांडव कैसे भस्म किये गये और क्यों किये गये। मुझे यह भी सन्देह है कि ऐसे उत्तम पुरुषोंका इस रीतिसे मरण हो। इसका कोई विशेष कारण नहीं जाना जाता। और एक बात यह भी है कि पुण्यात्मा पुरुष प्रायः करके हीन आयुवाले नहीं होते और जो होते भी हैं उनका इस तरहसे मरण नहीं होता। देखो, आज सारा नगर कैसा बुरा उजाड़ सा देख पड़ता है। हा, अब ऐसे ऊजड़ नगरमें भला हम लोग कैसे रह सकेंगे। आज तो ऐसा दीखता है कि मानों मेघकी

समता करनेवाला मेघेश्वर नरेश आज ही मृत्युका ग्रास बना है और आज ही शान्तिनाथ चक्रवर्तीने इसे अनाथ किया है। क्या हम लोगोंके दुःखको देख न सकनेके कारण आज ही शांतनु राजा और व्यास काल-कवलित हुए हैं। क्या सचमुच आज पांडुकी मृत्यु हुई है! तात्पर्य यह कि पांडवोंके गुप्त रूपसे चले जाने और उनकी जगह मुर्दे देखनेसे नगरवासी लोगोंने बड़ा विलाप किया।

जब गांगेयने इन सब बातोंको सुना तब उसका मन शोकसे भर आया। उसके चेहरे पर बड़ी उदासी छा गई। तीव्र मोहके कारण उसे मूर्छा आ गई— वह बेहोश हो गया। जान पड़ता था मानों उसके शरीरसे मृत्यु ही लिपट गई है। और है भी ऐसा ही कि मृत्यु मूर्च्छाकी सखी ही है, तब उसका वहाँ भ्रम होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मृत्युसे जिस तरह मनुष्य सब सुध भूल जाता है उसी तरह मूर्च्छासे भी भूल जाता है अतः मूर्छाके समय मृत्युका भ्रम होना बहुत ही वाजिब है।

इसके बाद चंदन आदि शीतोचारसे उसकी मूर्छा दूर हुई और वह दरिद्रकी नाँई शोकमें डूबा हुआ उठा। शोकसे संतप्त होनेके कारण उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली; वह शोकरूप वारि (जल) से एकदम सरोवरके जैसा हो गया। उसके हृदयमें बड़ा खेद हुआ। वह विलाप करने लगा कि पुत्र, तुम तो सब बातोंको जानते-समझते थे, फिर इस तरह कैसे जला दिये गये! क्या तुम्हें इस बातका कभी भान ही न हुआ था। कहिए तो अब तुम्हारे बिना हमेशा दुखित रहनेवाले हम लोग सुख कैसे पा सकेंगे। हमें इस बातमें सन्देह है कि भला, तुम सरीखे पुण्य-पुरुषोंकी मृत्यु आगसे क्यों कर हुई। चाहिए तो यह था कि यदि तुम्हारी मृत्यु ही इस समय होती तो वह वैरियोंके मदको उतार देनेवाले युद्धमें होती। अथवा धर्म-धारणके साथ दीक्षा और आत्म-साध्य संन्यासके द्वारा तुम्हारी मृत्यु होती। इसके सिवा और तरहसे तुम्हारी मृत्यु होना बहुत ही बुरा हुआ। जान पड़ता है कि तुम लोगोंको इन दुष्ट कौरवोंने ही जला दिया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। पापी पुरुषोंकी बुद्धि पाप-रूप ही होती है, उसमें हित-अहितके विचारकी तो गंध ही नहीं रहती। और ऐसा ही हुआ भी है।

पांडवोंकी मृत्युका हाल सुन गांगेयकी तरह द्रोणाचार्यको भी मूर्च्छा आ गई। और वह शोकसे विलाप करने लगे जिससे दशों दिशायें शब्द-मय हो

गईं। उन्होंने सोचा कि नीच काम करनेवाले पापात्मा कौरवोंने ही यह शिष्टोंके विरुद्ध अनिष्ट काम किया है। औरोंसे ऐसा अनिष्ट होना असम्भव नहीं तो असाध्य अवश्य है। द्रोणसे रहा न गया और उस निर्भयने कौरव-राजोंसे खुल्लमखुल्ला कहा कि आप लोगोंको इस तरहसे अपने कुटुम्बका विनाश कर देना उचित न था। परन्तु दुष्ट-चित्त खल पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सज्जनोंको भी दुर्जन बना देते हैं; जैसे कि तूमड़ीका रस मीठीसे मीठी चीजको भी कडुवा बना देता है। द्रोणके इस तिरस्कारसे कौरवोंने अपना सिर नीचा कर लिया; वे बहुत ही लज्जित हुए। फिर ऊँचा मुँह करनेका भी उनका साहस न हुआ। सच तो यह है कि कहीं निर्दय पुरुषोंके भी लाज और धर्म-बुद्धि हो सकती है। इस वक्त चारों ओरसे नगरके लोग आ गये और उन्होंने महलकी आग बुझाई। शोकसे पीड़ित हुए पुरुष क्या कठिन काम नहीं करते; किन्तु जब जैसा मौका आता है तब वैसा ही उन्हें करना पड़ता है। क्योंकि शोक करके बैठ जानेसे भी तो काम नहीं चलता। वे आग बुझानेवाले उन मुर्दोंको देख कर बोले कि देखो ये पांडवोंके मुर्दे शरीर पड़े हुए हैं। उस समय उन मुर्दोंको देख कर कोई शोकातुर बोला कि यही थिर-चित्त युधिष्ठिर हैं, यह महाबली भीम हैं, यह सरल-चित्त अर्जुन हैं और यह निर्मल नकुल तथा देवतों द्वारा सेव्य और पवित्र हृदयवाले सहदेव हैं। और यह सुकुमार अंग तथा सुंदर बालोंवाली अबला इनकी जननी कुन्तीका मुर्दा शरीर पड़ा है। देखो, यह सती कितनी निर्मल और विशाल हृदयवाली थी। एवं वे सब त्रिदग्ध पुरुष, अधे-जले मांसके पिंडसमान उन मुर्दोंको देख कर उनके जैसे ही अध-जले हो गये—उन्हें बड़ा भारी शोक हुआ। वे लौट लौट कर उन मुर्दोंको देखने लगे और बड़ी देर तक देख-भाल कर उन्होंने यही निश्चय किया कि पांडव ही जल गये हैं। और इस निश्चयके अनुसार ही शोकके मारे उन लोगोंने उस दिन खाना, पीना और अपना व्यापार धंधा भी बन्द कर दिया। सब लोग दुःखसे व्याकुल हुए बैठे रहे। अधिक क्या कहें उस दिन शोकके मारे क्या पुरुष, क्या स्त्रियाँ, क्या बाल-बच्चे—यहाँ तक कि पशु पक्षी तक—सबकी हाय हायकी ध्वनिसे सारा शहर गूँज रहा था। भावार्थ यह कि उस दिनका दृश्य शोकका बड़ा भारी भयंकर दृश्य था, जो हृदयको विदार कर टुकड़े करनेवाले वज्र-प्रहारके जैसा था।

उधर पांडवोंकी मृत्यु सुन धृतराष्ट्रकी रानी गांधारीको बड़ा भारी

संतोष हुआ। सम्पूर्ण राज्य मिल जानेकी खुशीमें उसने पुत्रकी बधाईके बहाने खूब उत्सव मनाया।

धीरे धीरे पांडवोंके जल-मरनेकी बात सारे संसारमें फैल गई और कुछ समयमें वह द्वारिका पुरीमें समुद्रविजय आदि दसों भाइयों और बलभद्र नारायणके कानोंमें पड़ी। उसको सुन कर उन्हें भी बड़ा भारी रंज हुआ। अत एव भयानक वड़वानल से क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रविजयसे न रहा गया—कौरवोंका यह अन्याय उनसे न सहा गया। अतः वे समुद्रकी तरंगोंकी नाँई सेना-रूप तरंगोंसे लहराते हुए द्वारिकासे हस्तिनापुरका ओर रवाना हुए और इसी प्रकार सब तरहसे समृद्ध, भाँति भाँतिके आयुधोंवाला महान योधा, बली बलभद्र भी युद्धके लिए उसी वक्त तैयार हुआ। और है भी ठीक ही कि जो बलवान् होता है वह ऐसे समय कभी विलम्ब नहीं कर सकता। इसी प्रकार अनेक शत्रुओंको जड़ मूलसे उखाड़ फेंक देनेवाले और सिंहके जैसे पराक्रमी कृष्ण नारायणने भी कवच पहिननेको अभिमानसे अपने हाथ पसारे और कवच पहिन कर वह युद्धके लिए तैयार हो गया। इस घटनाको सुन कर और सब यादवोंको भी बड़ा दुःख हुआ। उन सबका शरीर भी शोकसे संतप्त हो उठा। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। और कौरवोंके इस अन्यायसे वे बहुत ही क्षुब्ध हुए। अतः उन्होंने युद्धके लिए रण-भेरी बजवाई—युद्धकी घोषणा कर दी। उस भेरीके शब्दको सुन कर कुछ पंडित लोगोंको क्षोभ हुआ और वे समुद्रविजय, कृष्ण और बलदेवके पास आकर उनसे कहने लगे कि आप लोगोंका योग्य बातके लिए उद्योग करना अच्छा ही है। विद्वानोंको चाहिए भी ऐसा ही, नहीं तो मरणके सिवा और कोई दूसरा फल नहीं हो सकता है। यह सुन कर अपनी दीप्तिसे सूरजकी तुलना करनेवाला नारायण बोला कि मै कौरवोंको यहाँ बाँध लाकर वड़वानलमें डाल दूँगा अथवा युद्धमें जीत कर उनके टुकड़े टुकड़े करके दिशाओंकी बलि चढ़ा दूँगा।

मै सच कहता हूँ कि जिस तरहसे सिंहके क्रुद्ध होने पर हाथियोंको कहीं भी जंगलमें रहनेको जगह नहीं मिलती उसी तरह मुझ सरीखे समृद्धशालीके क्रुद्ध होने पर पांडवोंको मारनेवाले चंड कौरव कहाँ रहेंगे—उन्हें कहीं भी जगह न मिलेगी—वे भागे भागे फिरेंगे। सुनिए ये रंक और जर्जर बिचारे कौरव तभी तक गर्जते हैं जब तक कि इन्होंने मुझे नहीं देखा। कौन नहीं जानता कि मेंडक तब तक ही टरटर किया करते हैं जब तक कि वे साँपका दर्शन नहीं करते।

कृष्णके इन वचनोंको सुन कर सम्पूर्ण वातोंका ज्ञाता एक वाग्मी बोला कि नृपेन्द्र, यह सब तो ठीक है; परंतु नीति यह है कि छिद्र पाकर ही वैरियोंके साथ छल करना चाहिए। देखिए खाली घड़ीके छिद्रको पाकर ही उसके छिद्र द्वारा उसमें जल भर जाता है। बिना छिद्र पाये वैरी अतीव कष्ट-साध्य होते हैं। वे देवतोंके द्वारा भी पराजित नहीं किये जा सकते। कहिए क्या छेदके बिना भी कहीं सूतमें मोती पोये जा सकते हैं। देखिए, इस समय कौरव-गण भारी अभिमानसे भर रहे हैं, उनके पास खासी विजयी उत्तम सेना है। उन्हें अपने शारीरिक बलका भी बड़ा भारी मद है। विशेष कर उन्हें अपने घोड़े, हाथियों आदिका बहुत घमंड है। अतः जिस तरह मदिरा पीनेवाले मनुष्य जल्दी किसीको दबते नहीं हैं उसी तरह वे मतवाले भी वैरीको बल-रहित जान कर बिल्कुल नहीं दबेंगे—आपका कुछ भी भय न मानेंगे। इतने पर भी कौरवोंको जरासंधका सहारा है। इस लिए ये और भी उद्धत हो रहे हैं। जिस तरह कि नागदमनी (सर्पका जहर उतारनेवाली जड़ी) के सहारेको पाकर मेंढ़क साँपके सिर पर नाचने लगते हैं। आज कल वे जरासंधके सहारेसे राजों महाराजों द्वारा उसी तरह पुज रहे है जिस तरह कि उत्तमांग (मस्तक) का आश्रय पाकरके केश-राशि पुजती है। अतः बुद्धिसागर और पवित्रात्मन्, आपको इस समय कौरवोंके साथ युद्ध करनेको जाना उचित नहीं जान पड़ता है। कौन नहीं जानता कि धीरे धीरे ही सब काम अच्छे बनते हैं। आप अभी कुछ दिन ठहर जाइए। बाद जब जरासंधके साथ आपका युद्ध होगा तब आप बड़ी आसानीसे ही इनका निग्रह कर सकेंगे; और इसीमें आपका हित है। यदि आप हठ कर इसी समय ही कौरवोंके साथ युद्ध ठानेंगे तो जरासंध भी क्रोधित होकर युद्धके लिए उठ खड़ा होगा तब यह कार्य सोते हुए सिंहको जगानेके जैसा ही होगा। इस लिए स्थिर-चित्त और धैर्यशाली कृष्ण, आप अभी धीरज धरें। बाद जब समय आवेगा तब मैं स्वयं ही उन सबका विध्वंस कर दिखाऊँगा। इस तरह उस विद्वान्के समझाने पर यादव लोग युद्ध करनेसे रुक गये। क्योंकि वे वैरीकी विक्रियाको जानते थे, व्यवहारके जानकार और स्थिर-चित्त एवं धैर्यशाली थे।

उधर पांडव भेष बदल कर भस्मसे ढ़की हुई आगकी नाँई छुपे हुए वहाँसे पूर्व दिशाकी ओर चले आये। वे बड़े तेजस्वी थे, उनकी भुजायें हाथीकी सूँड़के जैसी खूब मजबूत थीं। उनके पराक्रमसे दशों दिशायें व्याप्त हो रही थीं। उनका विक्रम चक्रवर्तीके जैसा था। उनके साथमें उनकी माता कुन्ती थीं, अतः

वे कुन्तीकी गतिके अनुसार ही धीरे धीरे चलते थे। वे निर्मल हृदयवाले तथा तत्ववेदी उसके थक जाने पर जब वह खड़ी हो जाती तब आप भी खड़े हो जाते और जब वह बैठ जाती तब आप भी बैठ जाते।

इस प्रकार धीरे धीरे चलते हुए वे कुछ कालमें गंगा नदीके पास पहुँच गये। गंगा अथाह जलसे भरी हुई थी और अनन्त लहरोंसे लहरा रही थी। उसका प्रवाह मंद और बड़ी गंभीरतासे वह रहा था। उसके किनारे पर कल्प-वृक्षके समान ऊँची ऊँची शाखाओंवाले और विशाल सालवृक्ष थे। वे खूब ही फले-फूले हुए थे। अतः उनसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह स्त्रीके तुल्य जान पड़ती थी। स्त्रीके नाभि होती है, उसके भी भँवर-रूप नाभि थी। स्त्रीके बाहु होते हैं, उसके कल्लोल-रूप बाहु थे। स्त्रीके कुच होते हैं, उसके भी बड़े बड़े पत्थर-रूप कुच थे। स्त्रीके पाँव होते हैं, गंगाके दोनों तट ही पाँव थे। स्त्रीके नितम्ब होते हैं, उसके भी नजदीकके पहाड़-रूप नितम्ब थे। स्त्री मंद मंद चलती है, और वह भी मंद मंद बहती थी। स्त्रीके वक्षःस्थल होता है, उसके महाह्रद-रूप वृक्षःस्थल था। स्त्रीके नेत्र होते हैं, उसके भी कमल-रूप नेत्र थे। स्त्री जड़—मूर्ख—होती है, वह भी जड़—जल-युक्त—थी। स्त्री अपने कपोल-आदि पर बनाये हुए मीन, केतु वगैरह चिह्नोंसे युक्त होती है, उसमें भी मीन, केतु वगैरह थे। स्त्री हंसके जैसी चाल चलती है अर्थात् हंसगामिनी होती है वह भी हंसगामिनी थी—उसमें हंस विचरा करते थे। स्त्री मधुर वचन बोलती है, वह भी पक्षियोंके कलरव शब्द द्वारा मधुर शब्द कर रही थी। तात्पर्य यह कि वह स्त्रीसे किसी भी बातमें कम न थी।

उसको अथाह और पार होनेके लिए विषम देख कर, पांडव असमर्थ हो उसके किनारे पर ठहर गये और पार पहुँचा देनेके लिए एक धीवरको बुला कर उससे बोले कि भाई, तुम अति शीघ्र अपनी नौका ले आओ और हमें गंगा पार कर दो; परन्तु ध्यान रखना कि नौका ऐसी हो जिसके द्वारा हम सकुशल और जल्दीसे पार पहुँच जायँ। उनके वचनोंको सुन कर वह धीवर उसी समय अपनी नौका ले आया। नौका छिद्र रहित थी और पानी पर तैरती हुई तैरनेके उपायको बताती थी। पांडव कुन्ती-सहित नौकामें सवार हो, अथाह गंगाके भीतर चले। कुन्ती भयसे कभी कभी उन लोगोंका हाथ पकड़ लेती थी, उसे बहुत भय मालूम पड़ता था। पांडव निडर थे। थोड़े ही समयमें उठती हुई कल्लोलों (तरंगों) के सहारे सीधी

वहती हुई, नौका वीच धारमें पहुँच गई; और वहाँ पहुँच कर वह अटक गई, यद्यपि वह चंचल थी; परन्तु गतिके रुक जानेसे विल्कुल ही अचल हो गई; उस वक्त धीवरने वहुत ही प्रयत्न किया; परन्तु वह विल्कुल ही न चली—एक पैंड भी आगे वह न वढ़ सकी । वह ऐसी हो गई मानों कर्मके द्वारा कील ही दी गई हो । वेचारे धीवरने नाना भाँतिके सैकड़ों उपाय किये पर वह विल्कुल ही न चली—जैसीकी तैसी अचल वनी रही; जिस तरह कि दंड़ोंके द्वारा मारी-पीटी गई हठी स्त्री एक पाँव भी आगे नहीं वढ़ती; वहींकी वहीं मचला करती है। या यों कहिए कि जिस तरह कालज्वरके वश होकर क्षीण हुआ शरीर विल्कुल ही नहीं चल सकता, चाहे उसके लिए कितने ही उपाय क्यों न किये जावें । उसी तरह नौका चलानेके लिए वह धीवर सव यत्न कर करके थक गया; परन्तु नौका वहाँसे तिलमात्र भी न वढी ।

यह देख कर पांडवोंने कहा कि भाई, वात क्या है। यह नौका इतने उपायोंसे भी क्यों नहीं चलती। यह इस समय ऐसी अटक कर क्यों रह गई; जैसी कि उत्तम शास्त्रोंमें खोटी वुद्धि अटक कर रह जाती है—आगे नहीं चलती। पांडवोंके वचनोंको सुन कर उत्तरमें धीवरने कहा कि स्वामिन्, इस जगह एक जलदेवी रहती है। उसका नाम है तुंडिका। वह जगत्प्रसिद्ध और अमृतका आहार करनेवाली है। इस समय वह इस नौकाको रोक कर आप लोगोंसे अपने नियोगके अनुसार भेंट माँगती है। अतः आप इसे इसका हक देकर नौकाको चलती करवा दीजिए । प्रभो, देखिए- इसमें न तो आपका दोष है और न मेरा ही । किन्तु यह अपना नियोग (हक) चाहती है। न्याय भी ऐसा ही है कि हकदार लोग अपने हकको लेकर ही मनुष्योंको छोड़ते हैं । इस लिए अव आप देरी न कीजिए; किन्तु इसे इसका हक देकर यहाँसे जल्दी चलिए । और यहाँसे जल्दी चल देनेमें ही आपका हित है । यह सुन कर नौकाको चलानेके लिए तैयार हुए धीवरसे युधिष्ठिरने कहा कि इस समय यहाँ तो हमारे पास कुछ भी नहीं है । इस लिए यहाँसे किनारे तक चलो । वहाँ पहुँच कर हम नाना प्रकारके पकवान तैयार करेंगे और फिर यहाँ आकर आदरके साथ देवीकी भेंट चढ़ा देंगे । भला, इस वातको तुम्हीं कहो कि इस अथाह जल-प्रदेशमें हमें क्या चीज मिल सकती है? और यदि तुम्हें कोई चीज यहाँ मिल सकती हो तो तुम्हीं ला दो । और जव कोई चीज मिल ही नहीं सकती तव हम क्या भेंट कर सकते है। युधिष्ठिरके इन वचनोंको सुन कर धीवर वोला कि महाराज, देववल्लभ प्रभो, कृपा कर

मेरी एक वात सुनिए । वह यह है कि यह तुंडिका देवी पकवानोंसे तृप्त नहीं होती है; किन्तु देव, इसे सन्तोष होता है मनुष्य-बलिसे । यह जब जब भूखी होती है तब तब मनुष्यके मांससे ही सन्तुष्ट होती है । और वस्तुओंसे न जाने इसे क्यों सन्तोष नहीं होता । अतः आप भी इसे मनुष्य मांससे तुष्ट कीजिए । महाराज, देर न कर इसे जल्दीसे मनुष्य-बलि देकर पार चलिए; नहीं तो बडा भारी अनर्थ होगा ।

उस धीवरके ऐसे विकट उत्तरको सुन कर युधिष्ठिर आदि बड़े क्षोभको प्राप्त हुए । और अपनी मौतको सामने आ खडी हुई समझ कर वे यों विचार करने लगे कि अहो, जब कर्म ही टेढा है—विमुख है—तब भला हमारा दुःखसे पिंड छूट ही कैसे सकता है । और इसी लिए कहा जाता है कि संसारी जीवोंके लिए कर्म जितना बलवान् होता है संसारमें उतना बलवान दूसरा और कोई भी नहीं होता । देखो, इस दैवकी विचित्रता कि पहले तो हम लोगोंकी कौरवोंके साथ युद्ध होने पर विजय हुई और बाद जब लाक्षा-गृहमें आग लगा दी गई तब वहाँसे भी जीते जागते हम लोग सुरक्षित निकल आये । और इस समय उसी दैवके प्रेरे हुए इस नौकामें बैठ कर अपने आप ही मरनेके लिए इस तुंडिकाके शरणमें आ गये । आश्चर्य है कि बड़े बड़े अनिष्टोंसे तो बच आये; परन्तु जरासे अनिष्टसे मृत्युके ग्रास बने जाते हैं । तब तो यही कहना होगा समुद्रको पार करके अब यहाँ छोटेसे पल्वल (क्षुद्र जलाशय) में हम लोगोंकी मृत्यु होगी । सच है कि कर्मके आगे किसीका बल नहीं चलता है । इसके बलके आगे सभी थक कर बैठ जाते हैं । देखो, यह तो वही बात हुई कि धीवरके हाथसे किसी तरह मछली छूट पाई तो जाकर जालमें फँस गई; और जालसे भी जैसे तैसे छूटी तो बगुलेने उसे अपना आहार बना लिया ।

इसके बाद युधिष्ठिरने एक दृष्टि भीमकी ओर डाली और इति कर्तव्य-तासे विमूढ हुए उस धर्मात्माने कहा कि विपुलोदर भाई भीम, इस भयसे छुटकारा होनेका कोई उपाय जान पडे तो बतलाओ । देखो, क्या तो विचार किया था और क्या अनिष्ट सिर पर आकर पड़ा है । यह तो वही बात हुई कि विचारा ब्राह्मण राज-पुत्रीकी इच्छासे तो घर बाहर हुआ और रास्तेमें उसे खा लिया व्याघ्रने । अतः इस विघ्नको दूर करनेका कोई उपाय करो; और सो

भी जल्दी करो। नहीं तो अभी थोड़ी ही देरमें हम लोगोंका सर्व-नाश हो जाना संभव है। मैं बहुत विचार करता हूँ, पर मेरी समझमें कुछ भी उपाय नहीं आता। सच है कि चिंतासे बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। इस पर निर्भय भीमने कहा कि पूज्यपाद, अवसर देख कर ही बुद्धिमानोंको काम करना उचित है। देखिए इस सम्बन्धमें मैंने एक निर्दोष उपाय सोचा है और उसमें कोई आपत्ति भी नहीं है। हाँ, उससे मेरी कीर्ति अवश्य होगी। महाराज, इस उपायसे न तो अपयश होगा और न अपमान ही। एवं निंदा और हानि भी इस उपायके करनेसे न होगी। इस लिए इसे कार्य-सिद्धिके लिए आप जल्दी कीजिए। वह उपाय यह है कि यह धीवर जरा-ज्वरका घेरा हुआ है, वदसूरत और दरिद्र है, दुःखी है, निर्दय है; अतः इसीको मार कर और देवीको बलिसे तुष्ट कर आगे चलिए। रही नौका चलानेकी बात सो आप इसका विल्कुल ही भय मत करिए। मुझे भरोसा है कि हम लोग अनायास ही नौकाको चला लेजा कर पार पहुँच जायँगे। भीमके इन भयानक वचनोंको सुन कर विचारा धीवर तो काँपने लग गया—उनके होश-हवाश उड़ गये उसका हृदय मानों करोतसे चीर सा दिया गया हो। उसके चेहरेकी सब कान्ति नष्ट हो गई। तात्पर्य यह कि उसे अपने प्राणोंके लाले पड़ गये। वह कहने लगा कि धीमान्, शुद्ध हृदयवाले नृपेन्द्र, मेरे मारे जाने और न मारे जानेसे तो कुछ भी हानि न होगी। परन्तु इतनी बात अवश्य होगी कि मेरे मर जाने पर आपको पार कोई नहीं पहुँचावेगा। मेरे बिना आपकी इस गंगामें ही स्थिति होगी। और इस लोकापवादसे आपकी बड़ी भारी अपकीर्ति भी होगी कि देखो राजाने पार उतारनेवाले बेचारे गरीब धीवरको भी मार डाला—भला करते बुरा कर दिखाया। राजन्, यदि आपको जीवन भर गंगामें ही रहना अच्छा लगता हो, तो भले ही अपने विचार माफिक काम कीजिए। मुझे मार कर देवीको तृप्त कीजिए। परन्तु ध्यान रखिए कि ऐसा करनेसे फिर हमारे कुलके लोग कभी भी आप लोगोंको इस गंगाके पार न पहुँचावेंगे। भला, आप ही सोचिए कि क्या एक वार धोखा खाया पुरुष फिर उसी मार्गको जाता है?

धीवरकी इन बातोंको सुन कर दयालु युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि भाई, इतने चतुर होकर भी तुम यह क्या कहते हो। तुम्हारे इन वचनोंको सुन कर हम लोगोंका तो दिल दहल गया; जिस तरह कि यमका नाम सुनते ही कर्मका रचा हुआ कोमल शरीर दहल जाता है। तुम्हें ऐसी

बात कभी अपने मुँहसे भी नहीं निकालनी चाहिए । तुम तो स्वयं ही सब कुछ समझते हो और विद्वान् लोगोंमें आदर पाते हो । फिर तुमसे इस विषयमें और अधिक क्या कहा जावे । पुण्य और पापका क्रमसे शुभ और अशुभ या यों कहिए कि सुख और दुःख-रूप फल मिलता है । यह तुम अच्छी तरह जानते हो । इस विषयमें भी तुम्हें समझाना नहीं है । देखो, जो दयालु संसार परिभ्रमणसे डरता है वह पुण्योदयसे प्राप्त होनेवाली सम्पदाकी नाँई ही सुखको पाता है । और जो निर्दय व्रत वगैरहको न पाल कर मदके आवेशमें जीवोंको मारता है वह ढीठ पुरुष दुर्बुद्धिसे नष्ट होनेवाली सम्पदाकी नाँई नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है—दुःखी होता है; उसे कभी सुख नहीं मिलता है । विचार कर तो देखा कि यह धीवर कितना गरीब है, भूखसे खेद-खिन्न होनेके कारण कितना दुःखी है, पापसे पीड़ित और असन्तुष्ट है । इस लिए दयालु भाई, इसे मारना कैसे उचित हो सकता है । दूसरे यह कि यह हम लोगोंको गंगा पार ले जा रहा है, इस लिए हमारा उपकारी है । फिर तुम्हीं बताओ कि कहीं उप-कारीको भी मारा जाता है ? भाई, इसे मारना किसी तरह भी उचित नहीं है । तुम कोई दूसरा उपाय सोचो, जिससे हम सब सुखसे पार पहुँच जावें ।

यह सुन कर अद्भुत पराक्रमी, भीम मुसक्या कर बोला—तो प्रभो, आप निश्चिंत होकर इस तुंडिकाको तृप्त करनेके लिए युद्ध-अकुशल, नकुलको या दया-रहित और कुलकी रक्षाके लिए असमर्थ सहदेवको मार कर भेंट दे दीजिए । इन दोनों-मेंसे किसी एककी बलि देकर पुण्य-रूप वायुकी सहायतासे सुखसे पार चले चलिए; विलम्ब न कीजिए । यह सुन कर महिमाशाली और महान् पुरुषों द्वारा मान्य युधिष्ठिरको मूर्छा सी आ गई और वह विशिष्टात्मा भीमसे बोला कि हा तात भीम, तुम्हारे मुँहसे इतनी भयानक बात कैसे कही गई ! मुझे तो ये दोनों भाई पुत्रोंकी भाँति प्यारे हैं—इन पर मेरा कितना प्रेम है, यह तुम नहीं जानते ? हाय ! सुखसे रहनेवाले प्यारे भाइयोंको मैं कैसे मार सकता हूँ । ये तो मुझे मेरे प्राणोंसे भी कहीं ज्यादा प्यारे हैं और इन्हींके भरोसे मैं निर्भय हो रहा हूँ । फिर तुम्हीं बताओ कि इनको मारना क्या उचित है ? नहीं, भीम, ऐसी बात मत कहो, ऐसा करनेसे बड़ा अन्याय होगा—इस अन्यायकी कुछ सीमा ही न रह जायगी । देखो, यदि हम यहाँसे इनको मार कर जायँगे तो सब लोग धिक्कार देंगे और अपयशका पटह पीटेंगे । वे कहेंगे कि देखो, यह राजा अपने जीवनको प्यारा समझ कर अपने छोटे भाइयोंको मार कर देवीकी भेंट दे आया

है ! ओह, दया विना जीते रहनेको धिक्कार है । जिसके हृदयमें दया नहीं उसका जीना व्यर्थ है; किसी भी कामका नहीं । हे निर्दय और हे भयंकर विचारको हृदयमें जगह देनेवाले भीम, ऐसा वचन भूल कर भी कभी अपनी जीभ पर न लाना, जिसमें कि दया न हो । भाई, तुम्हें हमेशा दयापूर्ण वचनोंका ही व्यवहार करना चाहिए । क्या दयासे सने हुए अच्छे वचनोंकी कमी है । यदि नहीं है तो फिर निर्दय वचनोंका प्रयोग ही क्यों करते हो । मेरे विचक्षण भाई, कोई अच्छा उपाय वताओ जो सुखकर हो ।

यह सुन कर चतुर भीम बोला कि देव, यदि आपको मेरी यह बात भी नहीं रुची तो आप देवीको तृप्त करनेके लिए समर्थ अर्जुनको भेंटमें दे दीजिए, ताकि देवी कोई विघ्न न उपस्थित करे । भीमके इन वचनोंको सुनते ही युधिष्ठिरका मस्तक घूम गया और वह सम्पूर्ण वातोंको समझनेवाला दया-मय बोला कि गंभीराशय भाई भीम, तुम यह क्या निंद्य वचन कहते हो । इससे तो हमारी सब सुख-शान्ति धूलमें मिल जायगी । देखो तो भला, यह पार्थ कितना तेजस्वी है । इसको सब राजा महाराजा जानते और मानते हैं । इसे कोई वैरी नहीं जीत सकता । यह अजय्य और धनुर्वेद-विशारद है । इसके जीते रहनेसे तो कभी अपना राज्य वापिस फिर भी अपने हाथ आ जायगा । क्या तुम नहीं जानते कि यह बालकालसे ही प्रचंड वलशाली भुजाओंवाला है और शत्रुओंका शत्रु है । उनको कालके गालमें पहुँचा देनेके लिए समर्थ है । यह शब्दवेधमें अतीव प्रवीण पण्डित है, अच्छा धनुर्धर है, धर्मात्मा और धीरवीर है । इस लिए यह कभी मार डालनेके योग्य नहीं है; अतः इसे नहीं मारना चाहिए ।

यह सुन भीम बोला कि अच्छी बात है आप किसीको भी नहीं मारना चाहते तो कमलकी नाँई कोमल माता कुन्तीको ही देवीकी भेंट कर दो, जिससे और सब पांडव आपत्तिसे छुटकारा पालें । इसके उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा कि मेरे भाई भीम, ऐसा मत कहो । देखो, यह अपनी जननी है, जन्म देनेवाली है, अत एव सदा ही पूजे जाने योग्य है । दयालु है, दयाकी मूर्ति है और सब लोग इसे मानते हैं । भाई, विचारो तो इसने हमें नौ महीने अपने गर्भाशयमें रक्खा है और फिर जन्म देकर बड़े भारी कष्टोंसे हमें पाला-पोषा है । अतः जो सुखी होना चाहते हैं उन्हें संसार भर द्वारा मान्य जननीको मारना कभी भी उचित नहीं है । देखो, संसारके प्रसिद्ध पुरुषोंने तो जननीको तीर्थ बताया है और हम उसे—मार डालें, यह कहाँ तक योग्य और न्याय्य बात है । भाई भीम, तुम तो दयाके सागर हो;

न्यायके जानकार और प्रवीण हो, धर्म और अधर्मका अन्तर समझते हो तथा लोक-व्यवहार और लोकनीतिको भी जानते हो और मेरा तो यह विश्वास है कि तुम्हारे समान लोकमें न तो कोई विजयी है और न चतुर ही। तुम अद्वितीय पराक्रमी हो। अतः हे भाई तुम युक्ति-युक्त विचारपूर्ण बात कहो और वैसा ही उपाय भी करो।

इसके बाद विशिष्टात्मा और हितैषी युधिष्ठिरने भयको दूर करनेके लिए मन-ही-मन यह भव्य विचार किया कि भीमने जो प्यारे भाइयोंको तथा पूज्या जननीको मारनेके लिए कहा वह तो ठीक नहीं है; किन्तु इस समय मुझे स्वयं अपनी ही बलि दे डालना कहीं अधिक उचित है। यह सोच कर वह पवित्रात्मा स्वयं अपनी बलि देनेके लिए तैयार हुआ। उसने अपने भाइयोंको कहा कि भाइयो, तुम लोग हमेशा भक्ति और मानके साथ माताकी सेवा करना। देखो, माताकी सेवासे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और मनचाही सम्पत्ति मिलती है। अतः तुम कभी माताकी सेवासे विमुख न होना। तथा परोपकारसे तुम हमेशा लोगोंको प्रसन्न रखना। देखो, जो परोपकारी होते हैं, परोपकार करते है वे संसारके सिरताज बन जाते हैं। तुम लोग कभी कौरवोंका विश्वास नहीं करना; क्योंकि वे सब बड़े विश्वासघाती हैं, दूसरोंके मनोरथोंमें बाधा डालनेवाले हैं। अधिक क्या कहूँ वे आशीविष साँपके समान हैं। उन पर विश्वास करनेसे तुम्हें कभी सुख नहीं हो सकेगा। किन्तु इसके विपरीत मौका पाकर तुम कौरवोंके वंशका विध्वंस करके अपने अद्भुत पराक्रमसे सारे देश पर अधिकार जमाना और सुख-पूर्वक रहना। युधिष्ठिरने सुशिक्षित और दक्ष भीम आदिको इस तरह खूब समझाया।

इसके बाद वह गीले वस्त्रसे शरीरको साफ कर, मनके मैलको धोकर ध्यानमें स्थिर हो गये और पंच परमेष्ठीका नाम जपने लगे। इस समय उनके मनमें राग-द्वेषको बिल्कुल ही जगह न थी, अतः शत्रु-मित्र, भाई-बन्धु सब पर उनका एक सा भाव हो गया था। वह शरीरसे भिन्न आत्माकी भावना करते थे तथा इच्छाओंके जालको तोड कर निरीह हो गये थे। वह संसारको विनश्वर और परम पदको नित्य-रूपमें देखते थे। और इसी कारण वह दो प्रकारका संन्यास धारण करके निर्भय हो गये थे। इसके बाद उन शुद्धमनाने अपने सब भाइयोंको क्षमा कर उनसे क्षमा करवाई

और माताको नमस्कार किया । अब वह बली युधिष्ठिर अपनी बलि देनेको तैय्यार हुए । यह देख भयके मारे काँपते हुए भीम आदि सब भाई बडे दुखी होकर बोले कि देव आपने यह क्या दुःखका कारण उपस्थित कर दिया है, जिसको कि हमने कभी स्वप्नमें भी नहीं विचारा था। यह बात बड़ी दुराराध्य, दुःसह तथा कष्ट-मय है । देव, आपका यह प्रयत्न हमारे लिए असह्य है; हमें बड़ा दुःख हो रहा है । हमारी तो यह इच्छा थी कि हम लोग अपना वनवास समाप्त कर फिर वापिस जायँगे और इन दुष्ट कौरवोंको घोर युद्ध करके यम-राजका ग्रास बनायँगे । सो हम तो इच्छा ही करते रह गये और दैवने एक दूसरी ही अवस्था सामने खड़ी कर दी । इस दैवको धिक्कार है जो पुरुषार्थको जगह ही नहीं देता ।

इन सबकी यह दशा देख दैवको दूषण देती हुई, करुणासे पूर्ण-चित्त कुन्ती भी इस दुःखदशासे पीड़ित होकर विलाप करने लगी । हा पुत्र, हा पवित्रात्मन्, हा करुणरससे कोमल-चित्त, हा राज्ययोग्य, हा राज्य भोगनेवाले भव्य, हा भव-भाव विदांवर, हा बाहुबलसे वैरियोंको खंडित करने-वाले युधिष्ठिर, तुम्हारे बिना अब कुरुजांगल देशको कौन पालेगा । पुत्र, शत्रुओंको मार कर अब राज्यको तुम्हारे बिना कौन हस्तगत करेगा, क्योंकि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है जो कौरवोंका ध्वंस करनेके लिए समर्थ हो । इस प्रकार बिजलीकी प्रभाके समान प्रभावाली कुन्ती रोती हुई और हाथोंसे छाती पीटती हुई मोहके वश हो, मूर्च्छित हो गई । सच है मोह चेतना—सुध-बुध—हर लेता है । कुन्ती तो इधर मूर्छित ही पड़ी थी कि इतनेमें युधिष्ठिर जलमें कूद पड़नेके लिए उद्यत हुए ।

इसी समय भयसे विह्वल हो कर उनसे भीम बोला कि स्वामिन्, आप तो स्थिर रह कर पृथ्वीका पालन कीजिए और शत्रुओंको यमका घर दिखाइए । हे कुरु-वंश-रूप आकाशके चंद्रमा, आप मुझे गंगामें कूद पड़नेकी आज्ञा दीजिए । मैं अपनी बलिसे तुंडिकाको सन्तुष्ट कर दूँगा । इस पर युधिष्ठिरने कहा कि भाई भीम, तुम्हें व्यर्थ यमके मुँहमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है । भीमने कहा कि मैं उस महासुरी तुंडिकाके साथ अपने वज्रके जैसे हाथोंके प्रहारोंके द्वारा युद्ध करके अभी उसे पद-दलित किये देता हूँ और देखता हूँ कि उसका पुरुषार्थ कितना है । यह कह

कर निर्भय भीमने देवीसे कहा कि "देवि, लो मेरी वलि लो, मुझे ग्रहण करो"। इसके बाद वह गंगाके अथाह जलमें कूद पड़ा। उसे सचमुच ही कूदा हुआ देख कर युधिष्ठिर आदि रोने लगे और कुन्ती भी हाहाकार करती हुई विलाप करने लगी। हा भीम, हा महाभाग, हा पराक्रमशाली भुजाओंवाले, हा परोपकारपारीण और हा शत्रुपक्षके विध्वंसक भीम, तुमने हमारे लिए सारा जगत सूना कर दिया। तुम्हारे विना हमें यह सारा जगत सूना देख पडता है। तुम्हारे विना हमारा मन विचार-विमूढ हो गया है। कहो अब हम इस दुःख-रूपी सागरको तुम्हारे विना कैसे पार करेंगे। उधर भीम ज्यों ही गंगामें कूदा कि देवताने नौकाको छोड़ दिया। फिर क्या था थोड़ी ही देरमें नौका पार पहुँच गई और शोकसागरमें डूबे हुए दुःखी चार पांडव भी कुन्ती-सहित गंगाके पार पहुँच गये। परन्तु वे भीमके वियोगसे वड़े दुःखी थे। अत एव वे विचक्षण वार वार भीमकी ओर देख रहे थे। इस समय महान दुःखसे उनका हृदय जला जा रहा था। भीमके गुणोंका स्मरण कर उनकी आँखोंमें आँसू भर आते थे। परन्तु दैव-वश वे कर कुछ नहीं सकते थे। आखिर नौकामेंसे उतर कर उन्होंने अपना रास्ता लिया।

महान् भयंकर भीमके गंगामें कूदते ही तुंडी मगरका रूप कर उसकी ओर दौड़ी। उसको अपनी ओर आती हुई देख कर भीमको वडा भारी क्रोध आया। वह जल पर तैरता हुआ उसके साथ युद्ध करने लगा। भीमका और तुंडीका आपसमें पैरोंके आघातों द्वारा खूब ही युद्ध हुआ। जान पड़ता था कि मानों जलके ऊपर रोषके भरे दो निष्ठुर मल्ल ही लड़ रहे है। इस समय अखंड और प्रचंडात्मा भीमने पावोंके प्रहार द्वारा तुंडिकाको अधमरा कर दिया, जिससे वह वड़ी क्रुद्ध हुई और उसने भीमको एकदम ही निगल लिया। तब भीमके भी क्रोधकी सीमा ही न रही और उस वीरने अपने हाथके वज्र जैसे प्रहारके द्वारा उसका पेट ही फाड़ डाला तथा उसकी पीठकी हड्डीको जो कि खूब ही मजबूत और वज्रके जैसी थी, उखाड़ कर फेंक दिया और आप आरामके साथ उसके पेटसे वाहिर निकल आया। देवी भीमकी भयानक मारसे अत्यन्त विह्वल हो गई। उससे जब कुछ भी न वन पड़ा तब वह गंगाके उस मार्गको छोड़ कर उसी समय भाग गई। इस प्रकार-उसे पराजित कर भीम हाथोंसे गंगाको तैर कर आ गया। उसे आता हुआ देख कर, लौट लौट कर पीछेकी ओर देख रहे स्थिरव्रत युधिष्ठिर आदि

पांडव और प्रसन्न-मुख कुन्ती सब वहीं ठहर गये। भीमने जाकर उन सबके चरणोंको नमस्कार किया और बड़ी भारी उत्कंठाके साथ गले लग कर उन सबका आलिंगन किया। इसके बाद उससे युधिष्ठिरने पूछा कि भाई, तुम इतनी गहरी अथाह गंगाको हाथोंसे कैसे तैर आये और तुमने हाथोंसे ही उस दुष्ट तुंडिकाको कैसे जीता। इसके उत्तरमें भीमने कहा कि पूज्यवर, मैं आपके पुण्यके प्रभावसे ही हाथोंके प्रहारसे तुंडिकाको हरा कर गंगाको तैर कर यहाँ आया हूँ।

इस प्रकार अथाह गंगाको तैर कर, तुंडी देवीको जीत कर तथा शत्रुओं पर विजय लाभ कर वे जयशील पांडव परस्परमें खूब ही आनन्दित हुए।

भव्यजीवो, देखो, यह सब धर्मका ही प्रभाव है। और है भी ऐसा ही कि यदि धर्मका समागम हो तो जीवोंको भला क्या क्या सम्पत्ति नहीं मिल सकती—धर्मात्माओंको सब सम्पदायें अपने आप खोज कर उनकी सेवामें उपस्थित हो जाती है। तात्पर्य यह कि धर्मके प्रभावसे जीवोंको सब कुछ मिल जाता है—कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।

जिसे धर्मसे प्रेम होता है वही संसारमें सुख पाता है, वही मोक्षके लिए प्रयत्न कर सकता है और वही अपने शरीरकी प्रभासे अँधेरेको दूर करता है अर्थात् देवतों जैसे सुन्दर तेजशाली शरीरको पाता है। उसकी देव रक्षा करते हैं, जिसका कि धर्म सहायक होता है। उसीको धन-समृद्धि मिलती है और वही उत्तम उत्तम पुरुषों द्वारा पूजा जाता है।

चौदहवाँ अध्याय।

उन चन्द्रप्रभ भगवानको प्रणाम है जो गुणोंके भंडार हैं, जिनके चरणोंमें चन्द्रमाका चिन्ह है, जिनके शरीरकी प्रभा चन्द्रमाकी प्रभाके समान है, जो चन्द्र द्वारा पूजे जाते हैं; और जिनकी चन्दन आदि उत्तम द्रव्योंके द्वारा पूजा होती है। वे हमें शान्ति दें; हमारे कर्म-कलंकको दूर करें।

इसके बाद उन तेजस्वी पांडवोंने ब्राह्मणका रूप बनाया और कुन्तीकी गतिके अनुसार धीरे धीरे चल कर वे लोग कौशिकपुरीमें आये। कौशिकपुरी सब तरह शोभासे युक्त थी। उसमें जो उत्तम उत्तम विशाल महल बने हुए थे वे स्वर्गसे च्युत होकर वहाँ आये हुए विमानसे देख पड़ते थे। उनकी सुन्दरता स्वर्गके विमानों जैसी थी। उस नगरीका कोट बहुत ऊँचा था। अतः जान पड़ता था कि मानों उसने पृथ्वीका आधार पाकर इस कोटके बहानेसे आकाशमें निराधार ठहरे हुए स्वर्गोंको जीतनेके लिए ही जानेका इरादा किया है।

उसके स्वामीका नाम वर्ण था। वर्ण राजा श्रीमान् था, सुमति था, शास्त्रका ज्ञाता और उत्तम वर्णका था। उसका रूप-सौंदर्य वर्णनातीत था—उसका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता था। उसकी रानीका नाम प्रभाकरी था। वह भी अपने पतिके जैसी ही थी। अत एव वर्ण उस पर खूब ही प्यार करता था। उसके शरीरकी कान्ति सब ओर फैल रही थी, जिससे उसकी खूब शोभा हो रही थी। उसका मुँह चाँदके जैसा था, अतः उसकी ज्योत्स्नाके मारे कौशिकपुरीमें कभी किसी जगह अँधेरेको जगह न मिलती थी; सब जगह हमेशा ही प्रकाश रहता था। वर्ण और प्रभाकरीके एक पुत्री थी। उसका नाम था कमला। कमलाका रूप कमला (लक्ष्मी) के जैसा ही था। वह रूप-सौन्दर्यकी सीमा थी। उसके नेत्र बहुत ही सुहावने थे, उन्हें देखनेवालेकी तृप्ति ही नहीं होती थी। वह गुणोंकी समुद्र थी। उसका शरीर तेज-शाली था। अतः वह तेजकी दूसरी मूर्ति सी देख पड़ती थी।

एक दिन उस मुग्धाके मानसमें वनक्रीड़ाकी उत्कंठा हुई और वह अपनी सखी-सहेलियोंको साथ लेकर निर्मल, श्रीयुक्त, उत्तम वृक्षोंवाले और चंपक आदि भाँति भाँतिके फूलोंसे सुंदर प्रमद नाम उद्यानमें गई और वहाँ जाकर उसने

सखियोंके साथ खूब क्रीड़ा की । एवं उस लज्जा-रूप भूषणसे विभूषित सुन्दरीने झूलेमें झूल कर बहुत आनन्द-विनोद किया ।

इसके बाद कमलाने दूरसे एक जिन मन्दिरको देखा । वह बिल्कुल सुधाके जैसा सफेद था, समृद्धशाली था । उस पर सोनेके सुन्दर कळश चढ़े हुए थे । उसे देख कर जिन भगवानकी वन्दना करनेके लिए जानेकी उसकी इच्छा हुई । इसी समय पांडव भी उस जिनमन्दिरके पास आये । उसमें चन्द्रप्रभकी मनोज्ञ प्रतिमाको देख कर और प्रासुक जलसे स्नान कर पवित्र हो, निःसहि निःसहि कहते हुए उन्होंने मंदिरमें प्रवेश किया । भगवानकी पूजा-वन्दना करके वे, पवित्र, परमोदय और विचित्र स्तोत्र-मंत्रोंके द्वारा उनकी भक्तिभावसे स्तुति करने लगे कि जिनेन्द्र, भव्योंके जीवनाधार और जन्म-मरणके दुःखोंको हरने-वाले प्रभो, तुम्हारी जय हो । सदाकाल धर्मका उपदेश करनेको उद्यत, अजय्य और शत्रु-समूहको जीतनेवाले चन्द्रप्रभ भगवन्, आपके कान्तिशाली शरीरकी प्रभा ऐसी है कि उससे आपने चाँदको भी जीत लिया है । और प्रभो, इसमें तानिक भी सन्देह नहीं है, नहीं तो चंद्रमा चिन्हके वहाने भला आपके चरणोंकी सेवा ही काहेको करता । प्रभो, आपकी जय हो । आप केवलज्ञानके स्वामी हैं, संसारके उद्धारक हैं, कृपा-पारंगत हैं । अतः स्वामिन्, आप हमारी रक्षा करो । हमें संसारसे पार कर इन दारुण दुःखोंसे हमारा पिंड छुड़ाओ । इस प्रकार भक्तिभावसे प्रभुकी स्तुति कर उन्हें बड़ा आनंद हुआ । उन्होंने खूब पुण्य-कर्मका बंध किया ।

इसके बाद वे पुण्यात्मा वहाॅं बैठे ही थे कि इतनेमें वहीं सखी-सहेलियोंसहित प्रभुकी वन्दना करनेके लिए कमला भी आ गई । उसके नेत्र-कमल खिल रहे थे और गलेमें मनोहर हार पड़ा था । वह अपने बिछुओंके शब्दोंके द्वारा कोयलोंके कंठोंको लज्जित करती थी । उसके नितम्ब बड़े भारी भारवाले थे, अतः वह स्खलित चालसे चलती हुई अपनी मंद गतिसे हंथिनीकी गतिको जीतती थी । उसकी कमर करधौनीसे सुशोभित थी । वहाँ आकर वह जिनभवनके भीतर गई । वहाॅं जाकर उस सुखिनीने जैसी विधिसे चाहिए प्रभुकी भक्तिभावसे वन्दना की और बाद उसने सुगन्धित चन्दनके द्वारा जिस पर कि भौंरे गूॅंज रहे थे, प्रभुके चरण कमलोंकी पूजा की; उनके चरण-कमलोंमें मंदार, मालिका केतकी, कुंद, कमल, चंपक आदिके उत्तम उत्तम सुगन्धित पुष्प चढ़ाये; उसने सब दिशा-ओंको सुगन्ध-मय कर देनेवाली धूपको आगमें खेकर अपने कर्म-जालको जलाया

और मनोहर, उत्कृष्ट फल प्रभुकी भेंट रक्खे। तात्पर्य यह कि उसने आठ द्रव्योंसे प्रभुकी खूब भक्तिके साथ गुण गा-गा कर पूजा की।

इसके बाद वह जिनभवनसे बाहिर निकली और वहाँ उसने पवित्र पांडवोंको देखा। उनमें तेजशाली और रूप-सौन्दर्यशाली युधिष्ठिरको देख कर वह उनके अतिशय सुन्दर रूप पर मोहित हो गई और मन-ही-मन विचारने लगी कि यह कौन है? सुर है या सुरेश, चाँद है या सूरज, नगेन्द्र है या किन्नरदेव। ये मनुष्यसे देख पड़ते हैं पर देवतोंके जैसी ही इनकी प्रभा है, अतः सुरके जैसे देख पड़ते हैं। लेकिन वास्तवमें ये हैं कौन। इतने विचारके बाद नेत्रोंके पलक झपकनेके कारण उसने पक्का निश्चय कर लिया कि यह कान्तिशाली कोई पुण्यात्मा पुरुष ही हैं। इन पुण्यात्माने मेरे मनको बिल्कुल ही चुरा लिया है, अतः मैं इनके बिना बिल्कुल ही अधीर हूँ। अब इन प्राणोंकी मैं मनके बिना कैसे रक्षा करूँगी। इस प्रकार वह कामके बाणोंके द्वारा बिल्कुल ही जर्जरित हो गई, जिससे उसे वहाँसे घर जाना तक मुश्किल हो गया। वह पैर रखती थी कहीं, पर वह जाके पड़ता था और ही कहीं। क्योंकि उसका मन बिल्कुल ही उसके काबूमें न रह गया था। वह जैसे तैसे सखियोंके सहारे, उनकी जबरस्तीसे महल तक पहुँची। वहाँ वह सालसा न तो कुछ खाती थी और न बोलती-चालती ही थी; न हँसती थी और न किसीकी ओरको देखती थी। किन्तु खेदखिन्न होकर कभी रोने लगती और कभी सो जाती; कभी उठ बैठती और कभी बैठे बैठे हँसती हुई स्वयं ही गिर पड़ती। कमलाकी ऐसी अवस्था देख कर उसकी माताने सखियों वगैरहसे पूछ कर उसकी ऐसी बुरी हालत होनेके कारणको जान लिया। और फिर जाकर उसने सब हाल अपने स्वामी वर्णसे कह सुनाया। सुन कर वर्णने उसी समय मंत्रियोंको बुलाया और उन्हें पुत्रीकी क्लेश-मय दशा बता कर उसने पांडवोंको बुला ले आनेके लिए भेजा। पांडव आकर राजासे मिले। राजाने भोजन, वस्त्र, आभूषण आदिसे उनका जैसा चाहिए उचित्त आदर किया। अतः वे प्रेमके वश हो वहीं ठहर गये। इसके बाद वर्ण राजाने युधिष्ठिर महाराजसे कन्याके लिए प्रार्थना की और उनकी अनुमति पाकर शुभ मूहूर्तमें विधिपूर्वक उनके साथ कमलाका प्रेमविवाह कर दिया और साथमें उन्हें बहुत धन भी दिया।

कमलाका पाणिग्रहण कर पांडव भी उसके साथ दिव्य भोगोंको भोगते हुए माता और भाइयों सहित वहाँ कितने ही दिनों तक रहे। इसी बीचमें एक दिन

उनसे उनके ससुर वर्णने पूछा कि प्रभो, आप कौन हैं, आपके साथ यह कौन है ? और ये दूसरे चार पुरुष कौन हैं ? आप सब यहाँ आये कहाँसे हैं ? वर्णके इन प्रश्नोंके उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा कि महाराज, आप हमारे कर्म-कौतुककी बात सुनिए। हम पाँचों पांडु पण्डितके पुत्र पांडव हैं, हमें कौरवोंने जला कर मारना चाहा था और हमारे महलमें आग लगा दी थी । परन्तु पुण्ययोगसे हम वहाँसे निकल आये—हमें कोई कष्ट नहीं हुआ, और अब हम द्वारिका पुरीको जा रहे हैं । द्वारिकाके राजा समुद्रविजय हमारे मामा हैं और उनके पुत्र नेमिनाथ तीर्थंकर तथा कृष्ण, बलदेव हमारे बन्धु हैं। उनके दर्शनोंकी हमें बहुत ही उत्कंठा लग रही है। इस लिए यहाँसे हम द्वारिकाको जायँगे। इस प्रकार अपनी सारी बातें कह कर वे धर्मात्मा और सत्यवादी कमलाको वहीं छोड़ कर वहाँसे चल दिये।

इसी प्रकार वे सदाचारी और विचारशील तथा परमोत्साही पांडव और भी जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँके माननीय पुरुषोंने उनका खूब सत्कार किया । वे जहाँ पहुँचते थे पुण्योदयसे उन्हें वहाँ सब कुछ सामग्री मिल जाती थी । आसन, शयन, सवारी, आहार वगैरह सब कुछ लेले कर लोग स्वयं ही उनके सामने आ जाते थे। उनका विक्रम दशों दिशाओंमें व्याप्त हो रहा था। रास्तेमें उन्हें जहाँ जहाँ जिनमंदिर मिलते थे उन्हें वे पूजते हुए आगेको जाते थे। इस प्रकार धीरे धीरे वे वृक्षोंसे परिपूर्ण और शोभाके स्थान पवित्र पुण्यद्रुम नाम वनमें पहुँचे । उस वनके ठीक बीचमें बहुतसे जिनमंदिर थे । वे खूब लम्बे-चौड़े पूरे विस्तारको लिए हुए थे, शरद कालके मेघों जैसे स्वच्छ थे, आकाश तक ऊँचे तथा सोनेके सुन्दर कलशोंसे सुशोभित थे। दुंदुभियोंके गंभीर शब्दोंसे वे शब्द-मय हो रहे थे और जय शब्दोंका उनमें कोलाहल हो रहा था । वे निर्मल और विशाल थे, भाँति भाँतिके भूषणोंसे विभूषित भव्योंसे सुशोभित थे और जीवोंको नित्यानंदके दाता थे । उनको दूरसे देख कर धर्मामृतके पिपासु पांडव प्रसन्न होते हुए उनकी ओर गये । वहाँ चित्रोंसे चित्रित भींतोंवाले उन जिनालयोंको देख कर उन्होंने हर्षके साथ, माता-सहित उनमें प्रवेश किया। सोनेके घरोंसे सुसज्जित उन सुन्दर जिनालयोंमें प्रवेश कर उन्हें अपूर्व आनंद हुआ। इसके बाद जब उन पुण्यात्माओंने उन मंदिरोंमें विराजमान सोने और चाँदीकी अतिशय रूपवाली, पवित्र परमोदयवाली प्रतिमाओंका दर्शन किया तब उनके आनंदकी कुछ सीमा ही न रह गई । इसके बाद उन्होंने फल-फूल आदि द्रव्योंके द्वारा जिनबिम्बोंकी अतीव भक्ति-भावसे पूजा

की। क्योंकि पुरुषोंको पवित्र जीवन प्रभुकी पूजाके फलसे ही मिलता है। उन्होंने सैकड़ों स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति कर मस्तक झुका कर प्रभुको प्रणाम किया। इसके बाद सच्चे धर्मको चाहनेवाले उन पांडवोंने गुण-गौरवशाली, गंभीर और सम्यग्ज्ञानी गुरुकी वन्दना करके उनसे जिन-पूजाके फलको पूछा। उत्तरमें मुनि बोले कि भव्य, सुनिए मैं पूजाके फलको कहता हूँ, अतः इधर ध्यान दीजिए। जो भव्यजन सदा बड़ी भक्तिके साथ जिनपूजा करते हैं उन चतुर पुरुषोंको जिनेन्द्र देवकी पूजासे और तो क्या परम पद भी मिल जाता है, उनके सभी दुःख दूर हो जाते हैं और वे आत्मिक सुखको भोगने लगते हैं। उन्हें फिर कभी दुःख, कष्ट आदिका सामना नहीं करना पड़ता।

देखो, जो जिन भगवानके चरण कमलोंके आगे जलधारा देता है उसकी कर्मरज उपशान्त हो जाती है। जो सुगन्धित चन्दन चढाता है उसे सुगन्धित शरीरका लाभ होता है। अक्षत चढ़ानेवालेको अक्षय सुख मिलता है। जो पुष्पोंसे पूजा करता है उसे स्वर्गमें दिव्य फूलोंकी मालायें पहिननेको मिलती हैं। नैवेद्य पूजाका फल धन-दौलतकी प्राप्ति और दीप पूजाका फल शरीरमें दीप्ति होना है। अगुरु-चंदनकी धूपसे जो प्रभुकी पूजा करता है उसे नेत्रोंको सुहावना शरीर मिलता है। फलकी पूजाका फल यह है कि उसे मोक्ष लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। और अर्घ्यसे जो पूजा की जाती है उसका फल होता है देवों द्वारा पूज्य अनर्घपदका लाभ। इस तरह मुनिराजके मुख-कमलसे पूजाके फलको सुन कर महान् श्रीशाली और क्रोध आदि कषायोंसे रहित अत एव निर्मल-चित्त, श्रावकव्रती पांडव हर्षसे गद्गद हो गये; उनके रोमाञ्च हो आये।

इसके बाद पांडवोंने नाना लक्षणोंसे लक्षित एक अर्जिकाको देखा। वे उसे नमस्कार कर उसके आगे बैठ गये और कुन्ती एक ओर बैठ गई। वहीं एक कन्या बैठी हुई थी। वह सुंदर लक्षणोंसे युक्त थी। उसके नेत्र चंचल थे और उनकी सुन्दर पलकें थीं। उसकी चितवन मनको मुग्ध कर देती थी। चंचलता, प्रेम और क्षमाका वह भंडार थी। प्रोषधसे उसका शरीर बहुत कृश हो रहा था। वह अच्छे सुशील रक्षकों द्वारा रक्षित थी। लिखना पढ़ना उसने अभी आरंभ ही किया था। उस सुन्दरी कन्याको देख कर कुन्तीने अर्जिकाको नमस्कार कर पूछा कि आर्ये, धर्मध्यानको धारण करनेवाली और धर्म-कर्ममें धुरीण यह साध्वी कन्या जो तप तपती है, इसके तप तपनेमें कारण क्या है। क्योंकि

ऐसी विषम यौवन अवस्थामें जिसमें कि कामका खूब जोर रहता है, कारणके विना वैराग्य नहीं हो सकता। अतः इसके वैराग्यका कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। यह रंगीन वस्त्र पहिने हुए है, अतः अभी दीक्षित नहीं हुई है; परन्तु फिर भी यह स्थिरमना आपके पास वनमें किस कारणसे रहती है। उसके रूप-सौंदर्यको देख कर कुन्तीकी इच्छा उसे अपनी वधू बनानेकी हुई। अत एव उस साध्वीने उस चंचल नेत्रोंवाली कन्याको अपने मनोहर चक्षुओंकी एक टक दृष्टिसे देखा। उधर वह कन्या भी अपनी चंचल दृष्टिसे वैठी वैठी चुपचाप युधिष्ठिरको देख रही थी। और युधिष्ठिर भी कन्याके मुख-कमलकी ओर दृष्टि डाल रहे थे। फल यह हुआ कि अपनी अपनी दृष्टिके साथ युधिष्ठिरने कन्याको और कन्याने युधिष्ठिरको अपना अपना मानस दे दिया। वे चंचलात्मा मन ही मन एकमें एक खूब मिल गये। केवल शरीरसे एक दूसरेका सेवन और वचनसे आपसमें बातचीत न कर सके। इतनेमें कुन्तीके प्रश्नोंके उत्तरमें अर्जिकाने कहा कि देवी, इसका चरित बड़ा विचित्र है। मैं थोड़ेमें कहे देती हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो।

इस पुरीका नाम कौशाम्बी है। इसमें उत्तम उत्तम जनोंका निवास है। यह उनके धैर्य, चातुर्य और उत्तम आचरणसे शोभित है। यहाँका राजा विंध्यसेन है। वह पुण्यात्मा है और उसका मुँह चंद्रमाके जैसा है। उसकी रानीका नाम विंध्यसेना है। वह सदा प्रसन्नचित्त रहती है, अत एव उन दोनोंमें बड़ी गाढ़ी प्रीति है। उनके एक पुत्री है। उसका नाम वसंतसेना है। वह सर्वगुण-सम्पन्न, सुन्दरी, सुन्दर नेत्रोंवाली, साध्वी, कला-विज्ञानमें पारंगत यही वह कन्या है। राजाने विचार करके इसके सम्बन्धमें यह निश्चय कर लिया था कि भाँति भाँतिके भूषणोंसे विभूषित इस सुन्दरी कन्याका व्याह मैं युधिष्ठिरके साथ करूँगा। परन्तु थोड़े ही समयमें लोकमें फैलती हुई यह अफवाह सुनी गई जो कि बहुत ही दुःख देनेवाली है। वह यह कि कौरवोंने पांडवोंको महलमें आग लगा कर जला दिया है। उसे सुन कर वसन्तसेनाने मनमें सोचा कि पतिका जल-मरना बहुत ही बुरा हुआ। परन्तु इसमें मेरे पापके उदयके सिवा और कुछ भी कारण नहीं है। इस चतुराने तब इस बात पर बहुत विचार कर स्थिर किया कि मै अब युधिष्ठिरके सिवा और किसीको अपना स्वामी नहीं बनाऊँगी। वह जल चुके हैं, अब मिलनेके तो है नहीं, अतः मैं अब उत्तम तप ही तपूँगी। जिससे अब आगे और किसी भवमें ऐसे निंद्य कर्मका बंध न हो। यह

सोच कर जब यह दीक्षा लेनेको तैयार हुई तब इसके पिता आदिको बड़ा दुःख हुआ और संसारसे भयभीत हुई वसन्तसेनाको उन्होंने बहुत समझाया कि बेटा, पत्तोकी नाँई बड़े कोमल तुम्हारे हाथ है, चाँदके जैसा सुहावना तुम्हारा मुँह है और कमलके जैसे कोमल पाँव हैं। तात्पर्य यह कि तुम्हारा सारा शरीर ही अत्यंत कोमल है; सुकुमार है। फिर ऐसे कोमल शरीरसे इतना भारी दुष्कर तप भला कैसे होगा। क्या कहीं मछली भी अपने दाँतोंसे लोहेके चने चबा सकती है। अथवा हे मधुरभाषिणी पुत्री, यदि तुझे दीक्षा ही लेना है तो कुछ दिन और ठहर जा और किसी अर्जिकाके पास सच्चे शास्त्रका अभ्यास कर। कदाचित् तेरे पुण्य-प्रतापसे ही युधिष्ठिर निर्विघ्न हों; उनके ऊपर आई हुई आपत्ति टल गई हो। तू इतनी जल्दी क्यों करती है। देख, ऐसे पुण्यात्मा पुरुषोंकी थोड़ी आयु नहीं होती; वे दीर्घजीवी होते हैं। यदि वे जीवित होंगे तो सुवासिनी पुत्री, तू उनकी पत्नी होकर उनके साथ आनन्द-चैनसे घरगिरस्तीके सुखोंको भोगना-और नहीं तो दीक्षा लेकर तप तपना। पर अभी कुछ दिनोंके लिए मेरा कहना मान जा और दीक्षा मत ले।

इस प्रकार माता पिताके समझानेसे वसन्तसेना समझ गई और इसने कुछ दिनके लिए दीक्षा लेनेका अपना इरादा बदल दिया। परन्तु यह हमेशा मेरे पास आकर कायक्लेश करके शरीरको सुखाया करती है। यह संयम पालती है, रसपरित्याग तप तपती है और कायोत्सर्ग करके कठोर तप किया करती है। यह साध्वी है—शीलवती है। इसका चरित बिल्कुल निर्दोष है। एवं यह शुद्ध सिद्धान्तको जाननेके लिए सदा अच्छे अच्छे शास्त्रोंको सुना करती है। इधर वसंतसेनाने मनमें सोचा कि कहीं यही सुगुण कुन्ती और ये पाँचों पांडव ही तो नहीं हैं। आखिर वह अपनी उत्सुकताको न दाब सकी और वह बोली कि गुणोंकी खान पुण्यात्मा और चमरके जैसे बालोंवाली महाभाग देवीजी, आप कौन हैं और सर्व-गुण-सम्पन्न ये पाँचों कौन हैं। विचार-शील माताजी, आप मुझसे सब बातें कहें। कुन्ती बोली कि बेटी, सुनो मैं तुम्हें सब बातें बताये देती हूँ। हम सब ब्राह्मण हैं—ब्रह्मविद्याके जानकार दैवज्ञ हैं। इस लिए पुत्री, मैं जो कुछ कहूँ तुम उस पर पूरा भरोसा करना। अपनी सब बातें कहकर कुन्तीने वसन्तसेनासे हँस कर कहा कि पुत्री, तुम पवित्र हो, पुण्यात्मा हो, सुन्दरी सुहावनी हो, गुणज्ञा और गुणाधार हो, उत्तम और महोदया हो, अतः जन्मपर्यन्त शीलको धारण करो और दीक्षाकी आशा छोड़ कर श्रावकके व्रतोंमें

मनको स्थिर करो। सम्भव है तुम्हारे पुण्यसे पांडव अवश्य ही जीवित होंगे क्योंकि ऐसे महान् पुरुषोंको मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं मार सकते हैं। यह सुन कर कान्ति-हीन और खेदखिन्न वसन्तसेना आर्तध्यानसे संतप्त हो उठी; परन्तु उसने अपने मनरूप मत्त गजेन्द्रको रोका और अपने पूर्वकर्मकी निंदा करती हुई वह कठोर तप तपने लगी।

इधर प्रतापी पांडव कुन्ती-सहित वहाँसे चल कर नाना विनोदोंमें मस्त हुए और प्रकृतिकी सुन्दरताको देखते हुए त्रिशृंग नाम नगरमें आये। यह नगर बड़ा सुंदर था। इसके महल-मकान इतने भारी ऊँचे थे कि उनके शिखरों पर आकर चन्द्रमा विश्राम करता था। यहाँका राजा चंडवाहन था। उसने अपने भुजा-रूप दंडोंके द्वारा बड़े बड़े वैरियोंका सर्व नाश कर दिया था, अतः वे भुजायें उसका भूषण हो गई थीं। उसकी प्रिया विमलप्रभा थी। वह नित्य आनन्दित रहती थी। उसका शरीर कान्तिका पुंज था, निर्मल था और उसके पाँव अतीव सुन्दर थे। चंडवाहन और विमलप्रभाके दस पुत्रियाँ थीं। वे सब सुशिक्षिता, विदुषी थीं। उनमें सबसे बड़ी पुत्रीका नाम था गुणप्रभा। वह गंभीर थी और गुणज्ञा थी। बाकीकी और नौ पुत्रियोंके नाम ये थे। सुप्रभा, ह्री, श्री, रति, पद्मा, इन्दीवरा, विश्वा, आश्चर्या, अशोका। ये सभी गुणवती परम शोभाकी स्थान थीं, रूप-सौभाग्यसे सुशोभित थीं और यौवन अवस्थाको प्राप्त हो चुकी थीं। एक दिन उन सबको यौवन-अवस्थामें देख राजाने एक निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इनका स्वामी कौन होगा। निमित्त-ज्ञानीने निमित्तज्ञानसे कहा कि महाराज, इनका वर युधिष्ठिर नाम पांडव होगा। यह बात सुन कर उन गुणवती कन्याओंने युधिष्ठिरको ही अपना पति निश्चित किया और वे सुखसे वहीं रहने लगीं। परन्तु कुछ दिनों बाद उन्हें पांडवोंके सम्बन्धमें कुछ और ही बात सुन पड़ी, जिससे वे बहुत ही दुःखी हुईं।

यहीं एक सेठ और था। उसका नाम प्रियमित्र था। वह धनी था, श्रीमान् था। मित्र (सूरज) के समान उसकी प्रभा थी। मित्रोंके द्वारा वह वृद्धिंगत था। उत्तम गुणवालोंमें श्रेष्ठ था। उसकी प्रियाका नाम सौमिनी था। उनके नयनसुन्दरी नाम एक कन्या थी। वह मृगाक्षी थी, उसका मानस बहुत ही निर्मल था। वह बड़ी सुन्दरी थी, गुणोंकी खान थी। राजाकी तरह सेठने इसको भी निमित्तज्ञानीके वचनसे युधिष्ठिरको देनी कर रक्खी थी। अतः वह

भी पांडवोंके जलनेकी बात सुन कर खेदखिन्न हुई और गुणप्रभा आदि राज-पुत्रियोंके साथ रहने लगी। इसके बाद ये ग्यारहकी ग्यारह ही कन्यायें धर्म-ध्यानमें लीन होकर व्रत-उपवास वगैरह करने लगीं। और राजा, सेठ तथा उन दोनोंकी भार्यायें ये चारों अपनी कन्याओंके ब्याह देनेकी चिंतामें मग्न होकर दुःखसे अपना समय बिताने लगे। ये मधुरभाषिणी कन्यायें सभी पर्व-दिनोंमें स्थिरचित्तसे दुष्कर उपवास करती थीं। इसी प्रतिज्ञाके अनुसार इन्होंने एक दिन चतुर्दशीको सोलह प्रहरका उपवास किया और वे एक वनके जिन मंदिरमें—जहाँ किसी तरहका कोई उपद्रव न था—गईं। वहाँ उन्होंने धर्म-ध्यान पूर्वक कायोत्सर्ग धर कर रात और दिनको बिताया तथा अपनी आत्माको शुद्ध किया। उस दिन जिन भगवान्, चक्रवर्ती तथा अन्य महापुरुषोंकी कथाओं और उनके पवित्र जीवन-चरितोंके श्रवण-पूर्वक रात बिता कर सवेरे उन्होंने सामायिक आदि क्रियायें कीं। इस समय उन सबसे श्रीमती गुणप्रभा राजपुत्रीने कहा कि हम लोग आज यहीं पारणा करेंगी। और यदि आज मुनिदानसे हमारा पारणा सफल हो गया तो समझो कि जन्म ही सफल हो गया। तथा एक बात यह है कि मुनिको दान देकर उनके पाससे हम उत्तम तप ग्रहण करेंगी। इसके बाद वह शुद्धमना इस प्रकार भावना भाने लगी कि संसार बड़ा भारी विचित्र है, इसमें मोहके वश होकर बुद्धिमान् लोग भी ममत्व करने लग जाते हैं—इसकी विचित्रतासे अपनेको भूल जाते हैं। फिर भी यहाँ यह स्त्रीपना तो और भी निंद्य है, यह पापके उदयसे प्राप्त होता है।

देखो, कन्याके उत्पन्न होते ही तो माता-पिता संकटमें पड़ जाते हैं। वे उसके जन्मकी खबर पाते ही निसासें डालने लगते हैं और पुत्रकी आशा छोड़ कर निराशाके समुद्रमें गोते लगाने लगते हैं। इसके सिवा जब वह सयानी होती है तब उन्हें उसके विवाहकी चिन्तामें जलना पड़ता है। एवं किसी तरह आपत्तियोंको सह कर भी वे उसके विवाहसे पार पड़े तो उन्हें इस बातकी चिन्ता लगी रहती है कि कन्याको पतिके समागमसे सुख होगा या नहीं। सुख हुआ तब तो अच्छा ही है; अन्यथा कहीं पापके उदयसे वर दुष्ट, व्यसनी, झूठा, लबार, गैरसमझ, अविनयी, अन्यायी, व्यभिचारी, रोगी, दरिद्री, परस्त्री-लंपट, क्रोधी, अधर्मी और दुर्बुद्धि हुआ तब तो उस बेचारीके दुःखका पार ही नहीं रह जाता। फिर उस स्त्रीके दुःखोंको—जिसको कि ऐसा पति मिला हो—कौन जान

सकता है। और माना कि वर निर्दोष भी मिल गया; परंतु कहीं सौतका समागम हो गया तव और भी अधिक दुःखका पहाड़ ही उसके सिर पर आ पड़ता है। क्योंकि स्त्रियोंको जैसा दुःख सौतका होता है वैसा दुःख संसारमें न तो किसीको है, न हुआ और न होगा ही । इसके सिवा यदि स्त्री-पतिकी प्यारी न हुई या वाँझ हुई तव भी दुःख ही है और कदाचित् पतिको प्यारी हुई और वाँझ भी न हुई तो गर्भवती होने पर नौ महीने गर्भका दुःख होता है । यह तो सभी जानते हैं कि गर्भवती स्त्रीको गर्भके भारके मारे सुख नहीं मिलता । इसके बाद भी जव वालवच्चा पैदा होता है तव स्त्रीको इतना दुःख होता है कि उस दारुण दुःखको कोई कह ही नहीं सकता । इसके सिवा स्त्रीको भारी दारुण दुःख पतिके मर जाने पर विधवापनेका भोगना पड़ता है । सच पूछो तो इस दुःखके समान संसारमें कोई दुःख ही नहीं है। परन्तु फिर भी जो स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं वे अपने सतीत्वका पालन कर इन कष्टोंको भी सह लेती हैं । तात्पर्य यह है कि स्त्रीजन्मका दुःख कोई कह ही नहीं सकता । परन्तु देखिए तो इन दुष्ट कर्मोंकी लीला जो हम सव विवाह न हुए ही विधवा हो गईं । अत एव वास्तवमें यह स्त्री-पर्याय ही धिक्कार योग्य है । और अव सांसारिक भोगोंसे भी हमारी मनसा पूरी हो गई है । अतः इसके द्वारा हमें कल्याण ही करना उचित है। और सुनो कि स्त्री सर्वथा पतिके अधीन होती है और इसी लिए पतिकी प्रसन्नतासे ही उसके धर्म, अर्थ और कामजन्य मनोरथ सिद्ध होते हैं—वह सुखी होती है। अतः पतिके विना स्त्रीका जन्म व्यर्थ है और उसका निर्वाह भी नहीं हो सकता। इस लिए वहिनो, हम जव संयमका शरण लेंगी तभी हमें सुख होगा; और तरह सुख मिलनेका नहीं। देखो, शील, संयम और सच्चे ध्यानके वलसे और तो क्या हम दारुण दुःखदायी इस स्त्रीलिंगको छेद कर तथा पुरुष जन्म पाकर मुक्तिको भी पा सकेंगी।

गुणप्रभाके इन वचनोंको सुन दीक्षा लेनेको उद्यत हुई कोई दूसरी राजपुत्री बोली कि सखी, तुमने जो कुछ भी कहा है वह अक्षरशः सत्य है। उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह सुन गुणप्रभा वोली कि सखी, और भी सुनो। देखो, पतिके स्नेहसे होनेवाले सुखकी आशासे ही स्त्री घर-गिरस्तीमें रहती है और वास्तवमें अवला स्त्रीके लिए पति ही वल है। फिर उस वलके न होने पर कौन घर-गिरस्तीमें रह कर झंझट भोगेगी । सखी, विना पतिके विधवा स्त्रीकी जनसमाजमें उसी तरह शोभा नहीं होती जिस तरह कि अविवेकी मनुष्य और

लोभी साधुकी। और भी देखो कि विधवा होने पर स्त्रीको श्रृंगार करने, अच्छे खाने-पीने आदि बातें लज्जित करनेवाली हैं। केवल सफेद वस्त्रके सिवा और कोई वस्त्र, आभूषण वगैरह उसे शोभा नहीं देता। इस लिए पतिके मर जाने या परदेश चले जाने पर स्त्रीको उचित है कि वह संयमका शरण ले और तपके द्वारा शरीरको सुखा कर इन्द्रियोंको जीते। मतलब यह है कि भोजन, वस्त्र, बोल-चाल, जीवन, धन और घरगिरस्तीसे प्रेम ये सब बातें पतिके विना स्त्रीको शोभा नहीं देतीं।

इस प्रकार वे सब राजकन्यायें आपसमें विचार कर ही रही थीं कि इतनेमें ही वहाँ जिनालयमें संयम-कुशल और ज्ञानी दमतारि नाम एक मुनि आ गये। उन्हें देख कर वे सब बड़ी प्रसन्न हुईं और उन्होंने तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिभावसे उनके चरण-कमलोंमें नमस्कार किया। इसके बाद वे बोलीं कि स्वामिन्, योगीन्द्र, योगभास्कर और मनोमल रहित स्वच्छ भगवन्, आप कृपा करके हमें दीक्षा-दान दीजिए। हम दीक्षाके लिए बहुत दिनोंसे उत्सुक हैं। अब आप हमारी, उत्सुकताको मिटाइए। उत्तरमें योगीन्द्रने कहा कि पुत्रियों, सुनो एक तो तुम्हारी अभी बाल्यावस्था है और दूसरे तुम अबला हो, ऐसी अवस्थामें तुम सब वैराग्य क्यों धारण करना चाहती हो, इसका कोई कारण होना चाहिए। यह सुन कन्याओंने मुनींद्रको पांडवों पर बीती हुई सारी कथा कही और कहा कि जब हमारे पति मर चुके हैं तब हमारे लिए दीक्षा लेना ही श्रेष्ठ है, शुभ है और इसीमें हमारा कल्याण भी है। क्योंकि कुलीन नारियोंका एक ही पति होता है। कन्याओंके इन वचनोंको सुन कर उन अवधिज्ञानी मुनिने कहा कि तुम अभी ठहरो। देखो, अभी एक क्षणमें ही पवित्रात्मा पाँचों पांडव यहीं आये जाते हैं और उनके साथ अभी तुम्हारा समागम होता है। मुनिराजके इन वचनोंको सुन कर वहाँ जितने श्रावक थे वे सब बड़े अचम्भेमें पड गये। वे सोचने लगे कि भला जले हुए पांडव कैसे अभी यहाँ आये जाते हैं। सब इसी सोच-विचारमें उलझ रहे थे कि इतनेमें पवित्रात्मा पाँचों पांडव सफेद वस्त्र पहिने हुए निःसहि निःसहि कहते हुए वहीं आ पहुँचे। और आते ही उन्होंने मुनिराजको नमस्कार किया तथा स्तुति कर उन्होंने उनकी भक्तिभावसे पूजा की। वे भक्तिके भाजन थे और मुनियोंको जिन भगवानका प्रतिनिधि जानते थे। पांडवों देख कर सब कन्यायें मुनिराजके ज्ञानकी प्रशंसा करने लगीं कि देखो, इन प्रभुका ज्ञान कितना बड़ा है कि ये सारे लोकको जानते हैं—

इनसे कोई बात छुपी नहीं है। धन्य है ज्ञानकी महिमा, जिसके द्वारा कि हो गई, हो रही और होनेवाली सभी बातें सामने आ जाती हैं। इसके बाद इन्द्र जैसे और अद्भुत श्री-युक्त युधिष्ठिर महाराजको देख कर उन सब कन्याओंको बड़ा सन्तोष हुआ।

उधर चंडवाहन राजाने ज्यों ही पवित्र पांडवोंके आगमनको सुना त्यों ही उसे उनसे मिलनेकी बड़ी उत्सुकता हो उठी और उससे फिर एक मिनिट भी न रहा गया। अतः वह गुणोंका भंडार वहाँसे उसी समय उनके दर्शनके लिए चल पड़ा। उसके सिर पर छत्र लग रहा था और आगे आगे मेघकी नाँई गर्जने-वाले बाजे बजते जाते थे; तथा साथमें सुन्दर सुन्दर बहुतसे घोड़े थे। उसने वहाँ जाकर पहले मुनिराजको नमस्कार किया—उनकी वन्दना की और बाद मस्तक झुका कर पाँचों पांडवोंका गाढ़ आलिंगन किया—उनसे भेंट की। इसके बाद सबने परस्परमें एक दूसरेसे कुशल-वार्ता पूछी। ऐसा करनेसे आप-में प्रेम बढ़ता है, अत एव ऐसा करना ही चाहिए। क्योंकि साधर्मी भाइयोंके साथ वात्सल्य दिखानेसे चित्तमें बड़ी प्रसन्नता और स्नेह होता है—एक दूसरे-के प्रति निजी भाव पैदा होता है। और फिर धीरे धीरे आत्मबल बढ़ता जाता है। यहाँ तक कि वह शत्रु, मित्र सबको एक दृष्टिसे देखने लगता है। इसके बाद राजा उनको साथ लेकर पुत्रियों सहित नगरको चला आया। वहाँ उसने भोजन आदिसे उनका खूब आदर किया और उन्हें अपने एक महलमें ठहरा दिया। इसके बाद उसने युधिष्ठिरसे विवाहके लिए प्रार्थना की।

चंडवाहनने विवाहोत्सवके लिए एक बड़ा सुंदर मंडप बनवाया, जो मंगल-नादोंसे शब्द-मय और नटियोंके नृत्योंसे नृत्य-मय हो रहा था। उसमें जो मोतियोंकी झालरें लगी थीं उनसे वह हँसता हुआ सा दीखता था, लटकती हुई मालाओंसे बोलता हुआ सा जान पड़ता था और तल्तोंसे आदर करता हुआ सा देख पड़ता था। विवाहके समय उसमें विवाह-मंगलके सूचक सोनेके सुन्दर कलश सजाये गये थे, जिनसे उसकी अपूर्व ही शोभा हो गई थी। ऐसे सुन्दर मनको मोहनेवाले अपूर्व मंडपमें राजा चंडवाहनने विवाहोत्सव किया। इसके बाद युधिष्ठिरने पुण्योदयसे मंगल-गीतोंकी मधुर ध्वनिके साथ उन ग्यारह ही कन्या-ओंके साथ विवाह किया—उनका पाणि-ग्रहण किया। उस समय युधिष्ठिरके पासमें खड़ी हुई वे कन्यायें ऐसी शोभती थीं मानों वाञ्छित अर्थको देनेवाले

कल्पवृक्षोंके पासमें खड़ी हुई कल्पलतायें ही हैं। यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि जीवोंको इस लोक और परलोकमें जो सुख मिलता है, वह सब पुण्य-वृक्षका ही फल है। इस लिए जो सुख चाहते हैं उन्हें सदा धर्ममें लगा रहना चाहिए। देखो, यह सब पुण्यका ही फल है, जिससे कि युधिष्ठिर सारे संसारमें युद्धमें पीछे पाँव नहीं देनेवाले प्रसिद्ध हुए। उन्हें श्रेष्ठ बन्धुओंका लाभ हुआ। वे देश, विदेश, भयानक वन-जंगलोंमें जहाँ कहीं गये वहीं राजों महाराजोंने उनका आदर किया; स्त्रियोंने उनकी पूजा की और उन्हें अपना पति बनाया। वह युधिष्ठिर वाञ्छित फलको देनेवाले इन्द्रके जैसे सुशोभित हुए।

और भी देखो, कि कहाँ तो हाथियोंके नादोंसे शब्दमय होनेवाला हस्तिनापुर है—और कहाँ कौशिकपुरी जहाँसे युधिष्ठिरको कन्याका लाभ हुआ; कहाँ कौशाम्बीपुरी जहाँसे उन्हें वसन्तसेना मिली; और कहाँ त्रिशृंगपुर जहाँसे उन्होंने ग्यारह सुंदरियाँ लाभ कीं। यह सब क्या है, इस प्रश्नका उत्तर यही है कि पुण्यका फल।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

उन पुष्पदन्त भगवानको प्रणाम है जिनके दाँत कुन्दके पुष्प-तुल्य हैं, कान्तिशाली है, जिनके शरीरका वर्ण भी कुन्दके पुष्पके जैसा निर्मल है और जो संसारके प्राणियोंको निर्मल—कर्ममल रहित—करते हैं । वे मुझे निर्मलता प्रदान करें ।

इसके बाद गंभीर पांडव आनन्द-चैनसे त्रिशृंगपुरके गली-बाजारों वगैरहकी सुंदर शोभाको देखते हुए वहाँसे चले और एक महान् अरण्यमें पहुँचे, जो उत्तम प्राणियोंका शरण और वृक्षावलिसे प्रच्छन्न था । वहाँ मार्गकी थकावट और सूरजकी गर्मीसे युधिष्ठिरको प्यासकी पीड़ा सताने लगी । उन्होंने पीड़ित होकर भीमसे कहा कि प्यारे भीम, मुझे बहुत प्यास लग रही है और उसके कारण अब मैं आगे एक कदम भी नहीं जा सकता हूँ । इस लिए तुम सब कुछ देर तक यहीं ठहर जाओ । यह कह कर युधिष्ठिर पृथ्वी पर बैठ गये । उनके इस समयके प्यासके दुःखको सूरज भी अपनी आँखोंसे देख न सका, सो इसी लिए मानों वह पच्छिमकी ओर अस्ताचल पर जाकर छिप गया । बात भी यही है कि दुर्द्धर आपत्ति किसीसे देखी नहीं जाती । सूरजके अस्त होते ही भौंरोंके समान बिलकुल काले अँधेरेके समूहने सभी दिशाओं पर अपना अधिकार जमा लिया ।

इस समय प्याससे अत्यन्त दुःखी होकर युधिष्ठिरने पुनः भीमसे कहा कि भाई भीम, तुम जल्दी जाओ और कहींसे ठंडा जल लाकर मेरी प्यासको शान्त करो । तुम्हें यह नहीं मालूम कि प्यासा पुरुष न तो मार्ग ही तय कर सकता है और न अपने शरीरकी ही रक्षा कर सकता है । इतना कह कर कष्टसे युधिष्ठिर वहीं भूमि पर लेट गये । उनकी ऐसी अवस्था देख कर भीम बड़ा भयातुर हुआ और वह उसी समय बर्तन ले, जल लानेके लिए दूसरे वनमें गया । दैवयोगसे वहाँ पहुँचते ही उसे एक सुन्दर तालाब दीख पड़ा । उसे देख कर उसके हृदयका भय कम हुआ । तालाब हंसोंके द्वारा हँसता हुआ और चकवे चकवीके शब्दों द्वारा बोलता हुआ जान पड़ता था । उसमें तरंगें लहरा रही थीं और सुन्दर कमल खिल रहे थे । वह लम्बा-चौड़ा भी खूब था । उसके किनारों पर सघन वृक्षावलि उसकी अपूर्व ही शोभा बढ़ा रही

थी। भाँति भाँतिके वृक्षोंके फल उसमें उतरा रहे थे। वह अपनी अतीव चंचल लहरोंसे ऐसा जाना जाता था मानों तरंग-रूपी हाथोंके इशारेसे प्यास बुझानेके लिए प्यासे पुरुषोंको ही बुला रहा है। भीमने उसमेंसे जल भर लिया और कमलसे वर्तनका मुँह ढक वह पवनकी नाँई तेजीसे वापिस गया; परन्तु वह जल्दी न जा सका। युधिष्ठिर इसके पहलेसे ही प्याससे बड़े पीडित होकर एक वरगदके पेड़के नीचे सो गये थे। उनको सोया देख कर भीमके हृदयमें बड़ा विषाद हुआ। वह सोचने लगा कि इस संसारकी विचित्रता बड़ी विषम है। वह जीवोंको भींतमें लिखे हुए चित्रकी नाँई केवल देखनेमें प्यारी लगती है; परन्तु वास्तवमें उसमें कुछ भी तथ्य नहीं है। देखो, इस संसार-रूप नाटकमें कर्मके उदयकी प्रेरणासे पवित्रात्मा पुरुष भी सुघर नटकी नाँई स्वाँग वना वना कर नाचते हैं और दुःखोंका भार सिर पर ढोते हैं। अधिक क्या कहा जावे यहीं देख लो कि जो कौरवोंका स्वामी है और पांडव जिसको अपना राजा मानते हैं, वही आज यहाँ जमीनका विस्तर लगा कर सो रहा है; और जिसे अपने तन वदनकी भी सुध तक नहीं है। वह न बोलता है, न कुछ लेता-देता है और न कुछ खाता पीता ही है। और तो क्या वह किसीकी ओर दृष्टिपात तक नहीं करता है। इस समय मुझे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता कि मेरा इस समय कर्तव्य क्या है। वास्तवमें मैं इस समय कर्तव्य-विमूढ़ सा हो रहा हूँ।

भीम इस प्रकार विचार कर रहा था कि इतनेमें उसके पास अपनी कन्याको साथ लिए एक विद्याधर वहाँ पहुँचा। उस पके हुए विंवा-फलके समान ओठोंवाली, चन्द्र-वदनी, सुलोचना और कठिन तथा गोल कुचोंवाली कन्याको देख कर भीम मन-ही-मन विचारने लगा कि यह लक्ष्मी है या मंदोदरी, सीता है या शची, एवं पद्मा है या रोहिणी। यह कितनी सुंदरी है! इतनेमें उसके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर वह विद्याधर राजा वोला कि देव, आप विधि-पूर्वक विवाह कर इस कन्याको ग्रहण कीजिए। यह सुन कर भीमने उससे पूछा कि तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? यह कन्या कौन है और इसके माता-पिता कौन हैं? एवं तुम यह कन्या मुझे क्यों देते हो? कृपा कर आप मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिए। फिर विचार करके मैं आपकी वातका उत्तर दूँगा। इस पर विद्याधर वोला यि महाभाग, सुनिए, मैं इस कन्याके चरितको कहता हूँ, जो कि वहुत उत्तम और सुखकर है। राजन्, यहाँ एक

संध्याकार नाम पुर है । वह सायंकालके मेघोंकी रंग-विरंगी छटासे युक्त है । वहाँ पर तीनों संध्याओंमें आत्म-साधन करनेवाले सिद्ध योगीजनोंका निवास है ।

वहाँका राजा सिंहघोष है । वह हिडंव-वंशी है और वैरी-रूपी हाथियोंके लिए सिंह है । उसकी रानीका नाम है लक्ष्मणा । वह भी उत्तम लक्षणोंवाली और मृगाक्षी है । वह इतनी मधुर और प्यारी बोलनेवाली है कि जिसकी बोली सुन कर कामदेव भी जीवित हो जाता है । उसीकी यह रतिको भी जीतनेवाली हिंडबा नाम कन्या है । यह रूप-लावण्यकी सरसी है, शरीरकी कान्तिसे अँधेरे-को दूर करती है, मंदगतिसे हथिनीकी चालको जीतती है । यह यौवन अव-स्थाको प्राप्त है, कामदेवका निवास-स्थान है और इसी कारण सदाकाल काम-देवकी विडम्बनाको अपने सुन्दर शरीर द्वारा भोग रही है ।

सब प्रकार शोभा-सम्पन्न यह कन्या एक दिन सुंदर वस्त्राभूषण पहिने अपनी सखी-सहेलियोंके साथ गेंद खेल रही थी । इसको खेलती देख कर सिंहघोषने मन-ही-मन विचार किया कि अब यह युवती हो गई है, अतः किसी योग्य वरके साथ इसका अति शीघ्र ही ब्याह कर देना चाहिए । वह वर इसीके समान रूपशाली, शक्तिशाली, सुंदर आचार-विचारवाला, अच्छे स्वभावका और प्रीतिपात्र होना चाहिए । यह सोच कर उसने भविष्यके ज्ञाता निमित्तज्ञानीसे पूछा कि हिडंबाका वर कौन होगा । उसने विचार कर उत्तर दिया कि जो महान् पुरुष पिशाच-वटके नीचे ठहर कर निश्चिन्त हुआ जागता रहेगा वही पुरुष इसका वर होगा । अथवा जो वटवृक्षमें रहनेवाले पिशाचको अपनी भुजाओंके विक्रमसे जीतेगा वह इसका वर होगा । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । निमित्तज्ञानीके इन वचनों पर भरोसा करके सिंहघोष राजाने मुझे तभीसे यहाँ रख छोड़ा है । अतः आपको यहाँ जागते हुए देख कर मैं इसे यहीं ले आया हूँ । स्वामिन्, जिस-तरह आप धरा, धृति बुद्धि, सिद्धि आदिको ग्रहण किये हुए हैं उसी तरह इसको भी ग्रहण कीजिए । हे बुद्धिमान् धर्मात्मा और हित-अहितके जानकार विद्वन्, आप-अब देर न कर जल्दी इसे स्वीकार कर, स्वर्गीय सुखोंका अनुभव कीजिए । हिडंबाने भी संकोच छोड़ कर कहा कि स्वामिन्, आप मेरा पाणिग्रहण करनेमें विलम्ब न कीजिए और न दिलमें कुछ संदेह कीजिए । यह शीघ्रता इस लिए की जाती है कि इस विशाल वटवृक्षमें एक पिशाच रहता है । वह बड़ा दुष्ट है । दूसरे एक विद्याधर एक दिन आकाशमें जा रहा था सो इसके नीचे आते ही न

जाने कैसे उसकी सारी विद्यायें नष्ट हो गई । अतः वह भी विद्या साधनेके लिए यहीं रहता है । वह बड़ा मानी और मूढ़बुद्धि है । वह मनुष्योंको कष्ट दिया करता है । वह मुझे भी कष्ट देने लगेगा । और हे विक्रमशाली वीर, आपके वचनोंको सुन कर अचिंत्य विक्रमवाला वह पिशाच क्रोधित भी होगा । क्योंकि वह बड़ा भारी क्रोधी है—उसे क्रोध आते देर नहीं लगती । इस लिए जीवनाधार, अब आप कुछ न कह कर मुझे स्वीकार कीजिए ।

हिडम्बाके इन वचनोंको सुन कर भीमने वज्रके शब्द जैसी बड़ी भारी गर्जना की, जो कि उस पिशाचके कानोंको फाड़ देनेवाली थी । मदोन्मत्त यमराजकी भाँति मानी भीमात्मा भीम पिशाचको बुलानेके लिए बोला कि हे पिशाचराज, यहाँ आकर अपनी भुजाओंके पराक्रमको दिखाइए, जिसके अभिमानमें आ तुम लोगोंको कष्ट दिया करते हो । भीमके वज्र जैसे महान् निर्घोषको सुन कर यम सदृश और काले मुँहका वह भयानक निशाचर पिशाच भीमके पास आया और किलकारियाँ मारता हुआ क्रोधसे भीमके साथ लड़नेको तैयार हुआ । उसको देखते ही भीम बोला कि पिशाचेश, अब देर न करो; और जल्दीसे द्वंद्व युद्धके लिए तैयार हो । रे पशुघातक, तू अपने गर्वको दूर कर दे, नहीं तो अभी तेरे गर्वको खर्व किये देता हूँ । इसके बाद वे दोनों खूब क्रोधमें भरे हुए और अपने शब्दोंसे पर्वतोंको भी भेद डालनेवाले शब्दोंको करते हुए एक दूसरेसे लड़ने लगे । वे वज्रके प्रहारसे पर्वतकी नाँई एक दूसरेको जबरदस्त मुष्टिके प्रहारसे गतविक्रम करने लगे । एवं वे मदसे उद्धत हुए पाँवके प्रहारसे पृथ्वी पर एक दूसरेको गिराने लगे । इस तरह उन दोनोंमें खूब युद्ध हुआ । उन दोनोंका युद्ध तो समाप्त ही नहीं हो पाया था कि इस बीचमें वह विद्याधर भी, जो कि विद्या साधनेके लिए वटवृक्षमें रहता था, हिंडबाके पास आकर नाना भूषणोंसे मंडित हिंडबाको पीड़ा देने लगा । वह उससे बोला कि आश्चर्य है हिंडंबा, मेरे यहाँ होते हुए कोई दूसरा ही तुझे ब्याहे । यह कह उस खेचरने ज्यों ही हिंडंबाको पकड़नेके लिए हाथ बढ़ाये त्यों ही भीमने उसे अपने दाहिने हाथके घूँसेसे दूर हटा दिया । और उधर पिशाचकी पीठमें एक जोरकी लात मार कर उसे भी नीचे गिरा दिया । परन्तु वह निर्लज्ज पापी पुनः उठ खड़ा हुआ और लगा लड़ने । इतनेमें दौड़ कर वह विद्याधर भी आ गया, जिसको कि भीमने घूँसेसे दूर हटा दिया था और पिशाचको हटा कर स्वयं भीमसे खूब ही मुस्तैदीके साथ लड़ने लगा । इधर इन दोनोंका युद्ध हो रहा था । उधर क्रोधसे काल

हुए उसे पिशाचको भी कब चैन पड़नेवाली थी, अतः वह भी भीमके ऊपर झपट रहा था। भीम उसका भी प्रतिकार करता जाता था। उसे गिरा कर भीमने पहलेके जैसा ही उसे जमीन पर गिर पड़ने पर न छोड़ दिया; किन्तु उसकी पीठके ऊपर अपना पाँव पूरी तौरसे जमा रक्खा। एवं क्षणभरमें उसने उस विद्याधरका भी मान-मद चूर डाला, जिससे वह निर्बल बड़ा दुःखी हुआ। उसका शरीर काँपने लगा। इसके बाद उसने भीमको प्रणाम कर उससे अपने अपराधकी क्षमा कराई और उससे कितने ही गुणोंको ग्रहण करके वह विद्याको सिद्ध कर अपने घर चला गया। इतनेमें युधिष्ठिर जाग उठे और उन्होंने भीमसेनके द्वारा हिडम्बाका पाणिग्रहण करवा दिया। इसके बाद युधिष्ठिर आदि पांडव बहुत दिनों तक वहीं रहे। भीमने हिडम्बाके साथ खूब ही सुख भोगा। भीमके साथ भोग भोगती हुई हिडम्बा गर्भवती हो गई। और गर्भके दिन पूरे हो जाने पर उसने जगत्प्रसिद्ध पराक्रमवाले पुत्र-रत्नको जन्म दिया। पुत्र-जन्मसे सबको बड़ा आनन्द हुआ। उसका नाम घुटुक रक्खा गया। घुटुक सब लक्षणोंसे लक्षित था, अतः उसकी बहुत जल्दी संसारमें प्रसिद्धि हो गई।

इसके बाद पांडव वहाँसे चले और भीम नामके एक भयानक जंगलमें आये, जो सिंह आदि हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण था। यहाँ एक भीमासुर नाम देव था। वह बहुत ही प्रसिद्ध था, दुष्ट था, दुर्द्धर था, जीवोंको दुःख देनेवाला था तथा उसके भुजदंडोंमें पूर्ण बल था। वह इन्हें वनमें आया देख कर मेघकी नाँई गर्ज कर अपने स्थानसे निकला और इनके पास आकर कहने लगा कि तुम लोग यहाँ किस लिए आये। क्या तुम लोग मेरे इस पवित्र वनको अपवित्र बना देनेकी इच्छासे यहाँ आये हो। नहीं तो तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे यहाँ आनेका दूसरा और कारण ही क्या है? मैं जानता हूँ कि ऐसी सामर्थ्य किसी मनुष्यमें नहीं है जो मेरे इस पवित्र वनमें आवे और अपने पाँवोंकी धूलसे इसे अपवित्र करे। फिर तुम लोगोंने यहाँ आकर इसे क्यों अपवित्र किया?

उस भीमासुरको ऐसी बेढब बातें करते हुए देख कर विचक्षण भीमने कहा कि तू व्यर्थ ही मेंड़ककी नाँई या गाल फुलानेवाले दुष्ट पुरुषकी नाँई क्यों गर्जता है और खेदखिन्न होता है। तू हमें अपवित्र बता कर आप पवित्र बनना चाहता है, यह तेरा झूठा अभिमान है। हम अपवित्र नहीं हैं; किन्तु बड़े पवित्र हैं। हम सदाचारी हैं; जैसे कि चक्रवर्ती वगैरह होते हैं। बात यह है कि मनुष्य

पर्याय सदा ही पवित्र है; क्योंकि तीर्थंकर, नारायण वगैरह उत्तम उत्तम पुरुष सब इसीमें उत्पन्न होते है और इसे पवित्र बनाते हैं। फिर तू क्या कह रहा है, जरा हित-अहितको भी विचार। और सुन, यदि तुझमें कुछ ताकत हो, तुझे अपने असुरपनेका अभिमान हो तो आ हमारे साथ युद्ध कर। हम अभी ही तुझे तेरे असुरपनेका फल चखाये देते हैं। बाद वे दोनों भीम और भीमासुर अपने अपने बाहु युगलको ठोक ठोक कर मदोद्धत मल्लोंकी नॉई युद्ध करनेको तैयार हो गये। इन दोनोंके पॉवोंके कठोर आघातसे पृथ्वी कॉंपती थी। इनके वज्र जैसे भयंकर शब्दोंको सुन कर सिंह वगैरह वनजन्तु भी अपने प्राणोंको लिये इधर उधर भाग रहे थे और दुःखी हो रहे थे। इन दोनोंका बडी देर तक घनघोर युद्ध हुआ; परन्तु आखिरमें अपनी मुष्टिके प्रहारसे भीमने भीमासुरको निर्मद कर दिया; जैसे सिंह हाथीका मद उतार कर उसे निर्मद कर देता है। इसके बाद भीमासुरने भीमके चरणोंमें प्रणाम किया और उसकी दासताको मंजूर कर वह अपने स्थानको चला गया। इधर पांडव भी अति शीघ्र उस वनसे चल दिये। ये आगे जानेको बहुत ही उत्सुक हो रहे थे।

पांडव वहॉसे चल कर धीरे धीरे श्रुतपुर नामके एक नगरमें आये और यहॉ उन्होंने एक जिनालयमें जा भगवानकी प्रतिमाओंका पूजन किया और भक्तिभावसे उनकी स्तुति की। वहॉ कुछ देर ठहर कर वे गतमे रहनेके लिए एक वणिकके घर पर आये वे बहुत थके हुए थे, इस लिए शयन करना चाहते थे। वे उसकी कुटीमें ठहर गये। संकटको हरनेवाले विकट पराक्रमी, पांडव बैठे हुए वहॉके विचित्र जिनालयोंकी बाबत कुछ चर्चा कर रहे थे कि इतनेमें संध्या होते ही, उस घरवाले वैश्यकी भार्या महान् शोकसे पीडित होकर अत्यन्त दीनताके साथ विलाप करने लगी। तब दयालु कुन्तीने उसके पास जाकर उसे आश्वासन दिया—धीरज बॅधाया और ऑसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाली खेदखिन्न उस वैश्यभार्यासे प्रेमके साथ पूछा कि तुम इतना भारी शोक क्यों कर रही हो? वैश्यभार्याने कहा कि सुनिए, मैं अपने दुःखपूर्ण रोनेका कारण बताती हूँ।

देवी, इसी श्रुतपुरमें श्रीमान् वक नाम राजा था। वह बगुलेकी नॉई ही धर्म-हीन था; परन्तु प्रजाके ऊपर शासन करनेमें अच्छा प्रवीण था। उसे कारण-वश मांस खानेकी चाट पड़ गई और वह इतनी जबरदस्त

कि वह हमेशा मांसके संबंधमें ही अपनी सारी बुद्धि खर्च किया करता था। उसका रसोइया उसे सदा पशुका मांस पका-पका कर देता था और वही नीच निर्दय उसके लिए पशुओंका घात करता था। लेकिन एक दिन कहींसे भी जब उसे पशुका मांस न मिला तब वह दुष्ट मांसकी खोजमें नगरसे वाहिर निकला और मसानभूमिसे किसी गढ़ेमेंसे एक मरे हुए बच्चेको खोद कर ले आया। एवं उस पापीने उस बच्चेको मसाला आदि डाल कर बड़ी चतुराईसे पकाया और उसका मांस बक राजाको खिला दिया। राजाको वह मांस बहुत ही अच्छा स्वादु मालूम पड़ा। अतः उस मांस लोलुपीने बड़े भारी आग्रहके साथ रसोइयेसे पूछा कि पाककार, तुम ऐसा अच्छा सुस्वादु मांस कहाँसे लाये। मैंने तो कभी ऐसा उत्तम मांस खाया ही नहीं। यह सुन रसोइया अभयदान माँग कर डरता डरता बोला कि प्रभो, माफ कीजिए, यह मांस मनुष्यका है। आज कहींसे भी जब मुझे पशुका मांस न मिल सका तब मैंने इसे ही चतुराईसे पका कर आपको खिलाया है।

यह सुन कर राजा बोला कि प्रिय, यह मांस मुझे बहुत ही अच्छा मालूम हुआ है और इससे मुझे तृप्ति हुई है। इस लिए अबसे तुम मुझे मनुष्यका ही मांस खिलाया करो। राजाकी इतनी सम्मति पाकर वह रसोइया और भी निडर हो गया। और अब वह हमेशा मनुष्यके मांसकी खोजमें गली-कूचोंमें जाकर नगरके बच्चोंको मिठाई आदि बाँटने लगा। मिठाई लेकर सब बच्चोंके चले जाने पर जो बच्चा पीछे रह जाता उसे पकड़ कर वह उसका गला घोंट देता और उसका मांस राजाको खिला देता। ऐसा दुष्कृत्य वह रोज रोज करने लगा।

उधर धीरे धीरे जब नगरके बच्चे प्रति दिन कम होने लगे तब सारे नगरमें खलबली पड़ गई और लोगोंने छुप-छुप कर बच्चोंके घातकको देखना-खोजना आरम्भ कर दिया। इसके थोड़े ही दिनोंमें वह रसोइया पकड़ा गया। लोगोंके पूछने पर उसने साफ साफ कह दिया कि मेरा तनिकसा भी इस दुष्कृत्यमें अपराध नहीं है। किन्तु मुझसे राजाने जैसा करवाया वैसा ही मैंने किया। इस पर सब लोगोंकी सम्मतिसे राजा बक राजगद्दी परसे उतार दिया गया। इसके बाद बक वनमें रह कर मनुष्योंको मार कर खाने लगा। धीरे धीरे जब उसने नगरके बहुतसे मनुष्योंको मार खाया तब नगरके लोगोंने मिल कर विचार

कर यह निश्चय किया कि इसके लिए बारी बारीसे हर रोज एक मनुष्य खानेको देना चाहिए। बस, इसी नियमके अनुसार अपनी अपनी बारी पर सब लोगोंने उसे घर घरसे एक एक मनुष्य प्रति दिन खानेको दिया और धीरे धीरे आज बारह वर्ष ऐसे ही बीत गये। पापयोगसे आज मेरे प्यारे बच्चेकी बारी है; और इसीसे दुःखी होकर मै रो रही हूँ। देवी, मेरे रोनेका दूसरा और कोई निमित्त नहीं है। नगरके लोग आज ही एक गाड़ीमें मिठाई आदि भर कर और उसके बीचमें मेरे प्यारे पुत्रको बैठा कर उस अधर्मीकी भेंटमें देंगे तथा साथमें एक भैसा भी देंगे। माता, मेरे यह एक ही तो प्यारा आँखोंका तारा सर्वस्व पुत्र है और यही आज कालके गालमें पहुँचाया जा रहा है। इसके बिना हाय अब मैं क्या करूँगी और कैसे अपना जीवन बिताऊँगी। पुत्रके वियोगका चित्र मेरी आँखोंके सामने खिंच रहा है और वह मेरी छाती चीरे डालता है—हृदयमें वज्रके जैसी चोट कर रहा है। बताइए अब मैं कैसे और किसके भरोसे धीरज धरूँ। मुझे तो कोई उपाय ही नही सूझ पड़ता।

यह सुन कर कुन्तीका हृदय दयासे भींग गया। वह मिष्टभाषिणी उसके लिए सुखका उपाय सोचती हुई उसे शान्ति देकर बोली कि वणिग्वधू, तुम डरो मत। सवेरा होने दो। तुम्हारे पुत्रकी बारी आने पर मैं उसकी रक्षाका उपाय करूँगी। सुनो, मै उस भूतकी बलिके लिए अपना अतीव रूप-शाली पुत्र भेज दूँगी। तुम्हारा पुत्र आनंद-चैनसे अपने मंदिरहीमें रहेगा। तुम्हें और उसे कोई चिंता न करनी चाहिए। उस वैश्य-भार्याको इस तरह समझा कर कुन्ती वहाँ गई जहाँ कि भीम बैठा हुआ था। उसे आती देख कर भीम उठ खड़ा हुआ और उसने उसके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया। इसके बाद कुछ देर बैठ कर सबके मनको अपनी ओर झुकानेके लिए कुन्तीने भीमको उस दुष्ट बक राजाका सारा हाल कह सुनाया। वह बोली कि भीम जरा शान्तचित्तसे मेरी बात पर ध्यान दो। इस बेचारी वैश्यपत्नीके एक ही तो पुत्र है और उसीकी लोग आज नरभक्षी बक राक्षसके लिए बलि देंगे। पुत्रके बिना यह बेचारी जन्म-भरके लिए दुःखिनी हो जायगी। इसे अपना जीवन भी बोझ-मय हो जायगा। देखो, आज रातमें तुम लोग इसके घर बड़े आरामके साथ ठहरे हो। इसके सिवा इसने तुम्हारा खूब अतिथि-सत्कार किया है; वस्त्र, जल आदि द्वारा तुम्हारी पाहुनगत की है। अस्तु, जब कि तुम लोग परोपकारी हो और तुम्हारा यही

सच्चा व्रत है तब तुम्हें इन बातोंकी तो परवाह नहीं है कि कोई तुम्हारी भलाई करें या न करे। तब तुम परोपकार दृष्टिसे ही ऐसा काम करो जिससे कि इसका प्यारा पुत्र जीता रह जाय—इसकी आँखोंके सामने बना रहे। और बेटा, भीम, आगेके लिए कोई ऐसा उपाय कर दो जिससे यह मनुष्य जो कि हमेशा मनुष्योंको खाया करता है और महान् निर्दय है, नरभक्षणसे रुक जाय । आगे ऐसा दुष्कृत्य न करे; जिससे लोगोंमें बड़ी भारी खलबली मच रही है । कुन्तीके वचनोंको सुन कर कर्मवीर भीमने कहा कि माता, भला आप यह क्या कहती हो, मैं तो तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ। तुम्हारी आज्ञा-पालनेके लिए आज ही उस मनुष्य-राक्षसके पास जानेको तैयार हूँ । इस प्रकार अति प्रवीण और न्यायके जानकार माता-पुत्र इस प्रकार परोपकारकी बातें कर ही रहे कि इतनेमें उस वैश्य-पुत्रको ले जानेके लिए कोतवालने आकर उससे कहा कि वैश्यवर, उस मनुष्य-राक्षसकी बलिके लिए गाड़ीमें सवार होकर अति शीघ्र मेरे साथ चलो; देर न करो। और जरा देरके जीवनके लिए देर करनेसे भी क्या होगा।

कोतवालकी बात सुन कर उससे भीमने कहा कि आप जाइए, मैं आकर उस नर-पिशाचको अपनी बलि दे दूँगा । भीमके वचनोंको सुन कर यमके दूत जैसा कोतवाल हर्षित होता हुआ चला गया । इसी समय पूर्व दिशामें सूरजका उदय हो आया। जान पड़ता था कि मानों उसके दुश्चरितको देखनेके लिए ही आया है। और है भी सच कि दयालु पुरुष लोगोंके दुश्चरित्रको देख कर—जहाँ तक बन सकता है—उसे सुधारनेकी कोशिश करते हैं।

इसके बाद एक गाड़ी सजाई गई और उसमें कढ़ाईभर भोजन रक्खा गया। उसके ऊपर भीम बड़ी निर्भयता-पूर्वक सवार होकर चला । वह ऐसा जान पड़ता था मानों उस नर-पिशाचको जलानेके लिए आग ही जा रही है। वह थोड़ी ही देरमें उस यमके जैसे पापी बकके पास पहुँच गया । उसे सामने आया देख कर वह दुष्ट उसके ऊपर झपटा और क्रोधसे गर्जना कर उसने सभी दिशाओंको शब्द-मय बना दिया । उसे इस तरह क्रोधित देख कर भीमने कहा कि दैत्येन्द्र, आओ मैं आज तुम्हारे भुजदण्डोंका पराक्रम देख कर ही तुम्हें अपनी बलि दूँगा; वैसे नहीं । खेद है कि इतने काल तक तुमने इन गरीब लोगोंको व्यर्थ ही सताया । सच है कि जो दीनता दिखाते है, दाँतोंमें तिनकोंको दबा कर रहते हैं वे संसारमें मारे जाते है । तात्पर्य यह कि गरीबों

पर ही सबका वश चलता है, बलवानों पर नहीं। क्योंकि बलीका सामना करनेके लिए कुछ ताकतकी जरूरत होती है।

इसके बाद क्रोधसे उद्धत हुए वे दोनों ही खम ठोक कर भिड़ गये; और आकाश तथा पृथ्वीको उन्होंने गुँजा दिया। वे कभी मस्तकके द्वारा और कभी पाँवोंके द्वारा एक दूसरे पर प्रहार करते थे; तथा हाथोंकी कुहनियोंसे एक दूसरेका सिर फोड़ते थे। इस समय वे दोनों ही दयासे कोसों दूर थे—कोई भी किसी पर तीव्र प्रहार करनेमें कसर न रखता था। दोनों ही निर्दय-भावसे एक दूसरे पर टूटते थे। यमके पुत्र जैसे उन दोनोंमें बड़ा भारी भीषण युद्ध हुआ। आखिर निर्भय भीमने उस पापी, नरभक्षक, दुष्ट और क्रोधसे काँप रहे नर-पिशाचको तृणके जैसा निःसत्व कर उसके सिरमें अपने भुज-दण्डका एक ऐसा भीषण प्रहार किया कि वह बिल्कुल ही हतप्रभ हो गया। इसके बाद ही वह फिर न उठ खड़ा हो इसके लिए क्रोधमें आकर बली भीमने उसकी पीठमें एक ऐसी जोरकी लात मारी कि जिससे वह अधम जमीन पर लोट गया। भीमने उसका तब भी पिण्ड न छोड़ा और वह उसके दोनों पाँव पकड़, उसे आकाशमें चारों ओर घुमाने लगा। जान पड़ता था कि वह उसे जमीन पर पछाड़ना ही चाहता है। तब वह नर-पिशाच बड़ा डरा और भीमके हा हा खाने लगा। यह देख भीमने उसे सब लोगोंके सामने जो कि उन दोनोंके युद्धको सुन कर वहाँ अति शीघ्र आ गये थे और खड़े खड़े क्रोधसे उद्धत हुए उन दोनोंका युद्ध देखते थे, अपना सेवक बना कर छोड़ दिया; और उससे आगेके लिए मनुष्य-घात न करनेकी प्रतिज्ञा करवा ली। तात्पर्य यह कि भीमने उसका सारा मद उतार कर उसे सीधा साधा मनुष्य बना कर छोड़ दिया। उसको इस तरह निर्मद हुआ देख कर दर्शक लोगोंको बड़ी खुशी हुई और वास्तवमें खुशी होनेकी बात ही थी। उस खुशीके मारे वे लोग भीमका जय जयकार करने लगे तथा भक्तिसे स्वाभिमानी भीमकी मुक्त कंठसे प्रशंसा करने लगे कि आप अवश्य ही बड़े बड़े पुरुषों द्वारा मान्य है, संसारको आनन्दित करनेवाले हैं और संसारको अपने निर्मल यशसे पवित्र करते है। अतः हे सज्जन आपकी जय हो। देखिए हम लोगोंको यहाँ जीना भी मुश्किल पड़ रहा था; परन्तु महाभाग, आपके प्रसादसे अब हमें कोई भी खटका नहीं रहा। अतः अब हम बेफिक्र होकर अपने जीवनको आनंद-चैनसे बिता सकेंगे। तात्पर्य यह है कि आजसे हम सब अपनी नींद सोयेंगे और अपनी ही नींद

उठेंगे। हमें अब कुछ चिन्ता नहीं है। कौन नहीं जानता कि जब मेघोंकी कृपा होती है तब तृण वगैरह सब खूब हरे भरे रहते हैं। वे जरा भी नहीं मुरझाते हैं। इस प्रकार उन दक्षोंने भीमकी खूब स्तुति की और भेंटमें उसे अनन्त धन-सम्पदा दी। और है भी यही बात कि भक्त लोग जिसके ऊपर मुग्ध हो जाते हैं उसके लिए वे फिर कोई बात उठा नहीं रखते—जो कुछ सम्पत्ति उनके पास होती है वह सब देनेको वे तैयार हो जाते हैं।

इसके बाद जिनभक्त परमोदयशाली पांडवोंने वह सब सम्पत्ति जो कि उन्हें लोगोंने भेंटमें दी थीं, श्रुतपुरमें ही एक विशाल जिनालय बनवानेमें लगा दी। इसी बाचमें वर्षाका आरम्भ हो गया और मेघोंने धारासार जलवर्षा कर नदी, पर्वत और पृथ्वीको जल-मय कर दिया। ऐसा भान होता था मानों सूरजके तापको दूर करनेके लिए ही मेघोंने वह धारासार वर्षा की है। अपने अपने वैरी-को नष्ट करनेके लिए सभी महान् पुरुष तैयार होकर प्रयत्न करते हैं। इस समय इतनी वर्षा हुई कि जलके मारे मार्ग भी नहीं देख पड़ता था; और पानी-ही-पानी दीखता था। जान पड़ता था मानों लोगोंको सुखी करनेके लिए पृथ्वी पर मेघ ही आ गये है। वर्षा ऋतुको आ गई जान कर पांडव वहीं ठहर गये और उन्होंने धर्म-ध्यान पूर्वक बरसातके चार महीने वहीं विताये। वहाँ वे वर्षा ऋतुके योग्य महोत्सवोंको करते हुए अपने निजके बनवाये जिनालयमें रहते थे।

जब चौमासा पूरा हो गया तब वे वहाँसे चले और पृथ्वीको लाँघते हुए कुछ समयमें कुन्ती-सहित उस पवित्र और प्रसिद्ध चंपापुरीमें आये जहाँ कि कर्ण राजा था। वहाँ आकर वे सुन्दर सुन्दर घड़ों और चक्रोंसे सुशोभित एक कुँभारके घर ठहरे। वहाँ विनोदमें आकर भीम स्थास, कोश, कुशूल वगैरह कैसे बनते हैं यह देखनेके लिए कुँभारका चाक फिराने लगा एवं हंसी-विनोदमें ही उसने दण्डको हाथमें ले उस कुँभारके ढक्कन, मटके, कूँड़े आदि बहुतसे वर्त्तन फोड़ डाले। उनके फूटनेकी आवाज सुन कर निर्मलमना कुन्तीने कुछ कोप और भय दिखा कर भीमसे कहा कि भीम, तुम बड़े चंचल हो। तुमने यह क्या किया। तुम जहाँ जाते हो वहीं अनर्थ करते हो। तुम बड़े दुष्ट हो। तुम्हारे पास शिष्टाचारकी तो बू भी नहीं है। तुम्हारे हाथोंमें भी चंचलताका बड़ा दोष है। भाई, तुम तो अपराधके सिवाय दूसरा काम करना जानते ही नहीं। माताके ऐसे उलाहनेको सुन कर भीम चुपका हो गया। और माताकी मर्यादाके भयसे वह उसी समय वहाँसे चल दिया।

इसके बाद भोजन करनेकी इच्छासे वह पवित्रात्मा प्रवीण भीम हलवाईकी दूकान पर पहुँचा। वहाँ उसने एक हलवाईसे कहा कि भाई, यह चमकती हुई सोनेकी मोहर लेकर हमें भोजनके लिए मिठाई दे दो। देर मत करो; क्योंकि हमारे भाई भूखसे दुःखी हो रहे हैं। हलवाई उस मोहरको लेकर खूब संतुष्ट हुआ। सो ठीक ही है कि सोनेको पाकर कौन सन्तुष्ट नहीं होता। इसके बाद हलवाईने भीमको भोजन करनेके लिए एक मजबूत आसन पर बैठाया और भक्ति-भावसे उसके सामने भोजनका थाल परोस दिया। भीम बहुत ही भूखा था सो उसने धीरे धीरे कंठ तक—वहाँ जितनी सामिग्री मिली उसे—खूब खाया; जरा भी कोई चीज उसने बाकी न छोड़ी। भीमने खा-पी कर संतुष्ट हो हलवाईसे कहा कि अब भाइयोंके लिए भोजन दो। यह देख वह चकराया और डरता डरता बोला कि अब आप ही कहिए कि मैं क्या दूँ; कुछ बाकी तो बचा ही नहीं है। हाँ, कहें तो क्षणभरमें मैं तैयार करवाये देता हूँ। यह कह कर उसने भक्तिभावसे भीमके चरणोंमें नमस्कार कर उसे सन्तुष्ट किया। यह सुन भीम थोड़ी देरके लिए वहीं ठहर गया। इतनेहीमें कर्णका एक महाकाय हाथी मदसे उन्मत्त होनेके कारण निरंकुश हो साँकल तोड़ कर निकल भागा। और जो जो—बाजारके मनोहर मकान, वृक्ष वगैरह—उसके सामने आये उन्हें उसने उखाड़ कर फेंक दिये। धीरे धीरे उसके उत्पातकी खबर भीमके कानोंमें पड़ी और वह उसके पास पहुँचा। लोग उसे देखते ही कहने लगे कि हम सब आपकी शरणमें हैं, हमें इससे बड़ा भय हो रहा है। देखिए इसीके कारण हम सब काँप रहे हैं। अतः अब आप हमारी रक्षा कीजिए; हमे इस संकटसे बचाइए। महाराज, आप बड़े बली हैं, अतः आपको प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि आपको बड़े बड़े बली भी मानते हैं और आपका नाम भी विपुलोदर है। ऐसे भयानक समयमें बलवानोंकी ही हिम्मत पड़ सकती है। उन लोगोंके ऐसे दीनता भरे वचनोंको सुन कर भीम उस मदोद्धत हाथीको जीतनेके लिए तैयार हुआ। उसने वज्रके जैसे अपने मुष्टि-प्रहार, पैरोंके प्रहार और भुजदण्डोंके प्रहारसे उसे क्षणभरमें निःसत्व कर उसके दाँतोंको उखाड़ कर मद-रहित कर दिया। यह देख एक मनुष्यने जाकर भीमकी यह सारी लीला कर्णको कही। उसने कहा कि देव, एक प्रचंड ब्राह्मणने आपके हाथीको एक क्षणमें ही वशमें कर लिया है। महाराज, बड़े अचम्भेकी बात है कि जिस हाथीको युद्धमें कोई भी नहीं जीत सकता था उसी हाथीको उस बलीने एक क्षणमे ही निर्मद कर दिया है। देव,

वह बड़ा बलवान है, शायद कोई उपद्रव खड़ा कर दे । अत एव आप युद्धके विना ही छलसे उसका निग्रह कर डालिए। उसके वचनोंको सुन कर कर्णने उसे समझा कर टाल दिया और आप अपने महलमें चला गया।

इसके बाद विजयी पांडव कुछ दिन तो वहाँ और रहे, बाद वहाँसे चल कर वे वैदेशिकपुरमें आये । यहाँका राजा वृषध्वज था । वह धर्मात्मा था। उसकी रानीका नाम दिशावली था। उसका यश सब दिशाओंमें फैला हुआ था। वृषध्वज और दिशावलीके एक पुत्री थी। वह बड़ी शुद्ध हृदयकी धारक थी। उसका नाम दिशानंदा था। वह आपने जघन और स्तनोंके भारसे मंद मंद चलती हुई हथिनीकी गतिको जीतती थी और अपने चन्द्रमा समान मुखसे वह सारे घरके अँधेरेको दूर करती थी।

वहाँ पहुँच कर भूखे और थके हुए पांडवोंको किसी विश्रामकी जगह छोड़ कर उत्तम गुणोंका सागर और बलशाली भीम अकेला ही भिक्षाके लिए नगरमें गया और ब्राह्मणका वेष बना वह राजाके महलके आगे पहुँचा। उस समय झरोखेमें बैठी हुई शुभानना दिशानन्दाने उसे देख कर मन-ही-मन सोचा कि कहीं यह मनुष्य रूपधारी मानो कामदेव ही तो भीख माँगनेके छलसे यहाँ नहीं आया है । क्योंकि ऐसा सुन्दर रूपशाली दूसरा कोई और तो हो ही नहीं सकता। भीमको देखते ही वह उसके रूप पर निछावर हो गई और एकटक दृष्टिसे उसीकी ओर देखने लगी। उसकी यह दशा राजाको भी मालूम पड़ गई कि इस सुन्दर युवा पर पूर्ण मोहित होकर दिशानन्दाने अपना सर्वस्व भी इसे अर्पण कर दिया है। यह देख उसने भीमको बुलाया और उससे पूछा कि विप्र, तुम यहाँ किस लिए आये हो। यदि सचमुच ही भीख माँगनेके लिए आये हो तो लो मेरी इस राजकुमारीको भीखके रूपमें ग्रहण करो । यह कह कर राजाने महान् रूपशाली, भाँति भाँतिके गहनोंसे विभूषित और लोगोंको आनंद देनेवाली दिशानन्दाको लाकर भीमके आगे खड़ा कर दिया । यह देख भीम बोला कि राजन्, इस सम्बन्धमें मैं कुछ भी नहीं कह सकता । मेरे बड़े भाई जो कुछ करेंगे वही मुझे प्रमाण होगा । इस पर राजाने पूछा कि वे कहाँ हैं। भीमने बतलाया कि वे नगरके बाहिर प्रदेशमें ठहरे हुए हैं । तब राजा भीमके साथ साथ—जहाँ पांडव ठहरे हुए थे—वहाँ गया।

वहाँ युधिष्ठिरके पास पहुँच कर उसने उन्हें नमस्कार किया तथा स्नेहके साथ उनसे कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद बड़े स्नेहसे राजाने उनसे नगरमें

चलनेके लिए प्रार्थना की और पांडव भी राजाके स्नेह-वश नगरमें चले आये। वहाँ राजाने भोजन आदिसे उनकी खूब भक्ति की—उनका उचित आदर किया। इसके बाद राजाने भीमके साथ अपनी कन्याका विवाह करने लिए युधिष्ठिरसे प्रार्थना की। युधिष्ठिरने उसके लिए अपनी स्वीकारता दे दी। तब शुभ लग्नमें राजाने उन दोनोंका बड़े ठाट-बाटके साथ विवाह कर दिया। देखो, पुण्यकी महिमा कि भीम आया तो था भिक्षाके लिए और प्राप्त हुआ उसे कन्या रत्न। राजाकी भक्तिसे पांडव बड़े सन्तुष्ट हुए।

इसके बाद पांडव कुछ दिनों तक और ठहर कर वहाँसे चल दिये और विना श्रमके वे मनोहर नर्मदा नदीको पार कर विंध्याचल पर्वतके पास आये। वहाँ दूरसे ही उनकी दृष्टि विंध्याचलके उन्नत शिखर पर बने हुए जिनालय पर पड़ी, जो नाना प्रकारकी शोभासे शोभित और कैलास पर बने हुए सोनेके मंदिर सरीखा देख पडता था। उस समय यद्यपि वे थके हुए थे, पर भक्तिके आवेशमें आकर विंध्याचलके अतीव ऊँचे शिखर पर चढ़नेको तैयार हुए और थोड़े ही समयमें वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर उन सत्पुरुषोंने उस चैत्यालयकी विचित्रताको देख कर बड़ा हर्ष प्रकट किया। उस जिनालयके चारों ओर एक सुन्दर कोट था, जिससे उसकी अपूर्व ही शोभा थी। उसमें जाने-आनेके लिए सोनेकी मनोहर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। उसमें भाँति भाँतिके चित्र बने हुए थे। उसके दरवाजोंके किवाड़ बड़े सुन्दर थे। उसमें चित्र विचित्र खंभे लग रहे थे। ऐसे विशाल जिनभवनको देख कर उन्हें पहले तो बड़ा हर्ष हुआ; परन्तु जब वे किसी तरह उसके भीतर न जा सके तब दुःखसे कुछ उद्विग्न हुए। इसके बाद द्वारके किवाड़ खोलनेकी इच्छासे भीमने उठ कर ज्यों ही किवाडोंको हाथ लगाया त्यों ही किवाड़ खुल गये। तब पांडव जय जय ध्वनि करते हुए उस जिनालयके भीतर गये और वहाँ उन्होंने भव्य प्रतिमाओंके दर्शन किये। इसके बाद उन्होंने फलों और पुष्पोंसे उनकी पूजा की—उनके आगे भक्तिभावसे अर्घ चढ़ाया और शान्त-चित्तसे उनके गुणोंका गान कर खूब स्तुति की कि हे जिनेन्द्र, आपके दर्शन करनेसे आज हमारा जन्म सफल हो गया—हमें मनुष्य पर्यायका फल मिल गया। हमारे नेत्र भी सफल हो गये। हे प्रभो, आपके गुणोंका चिन्तवन करनेसे आज हमारा हृदय सफल हुआ; एवं हमारी सब थकावट दूर हो गई। भगवन्, आपकी यात्रासे आज हमारे हाथ-पाँव भी सफल हो गये तथा परिणाम भी सफलीभूत हुए। अधिक

क्या कहें हम आज कृतार्थ हो गये, मनोहर और मान्य हो गये---मानों हम आज ही मोक्षको प्राप्त कर चुके । इस प्रकार जिनदेवकी स्तुति कर तथा उन्हें नमस्कार कर वे जिनालयसे बाहिर निकले । वे बाहिर आकर वहाँ बैठे ही थे कि इतनेमें वहाँ श्री मणिभद्र नामका यक्ष आया और उनको नमस्कार कर बोला कि नरोत्तम, आप बड़े विवेकी हैं, श्रेष्ठ हैं और गुण-सम्पदासे युक्त हैं। अतः मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। हे मान्य पुरुष, आपने इस जिनालयके किवाड़ खोले हैं, मैंने इसीसे जान लिया है कि आप बड़े पुण्यात्मा जीव हैं, और ऐसा ही एक योगिराजने कहा था । इतना कह कर उस यक्षने महान् धीरजधारी, शूरवीर भीमको शत्रु विघातनी नाम एक गदा दी, जिसके नामको सुनते ही भीषण युद्धके लिए उद्यत शत्रु भी रणांगण छोड़ कर भाग जाते हैं; जैसे कि दवाईसे मनुष्योंके रोग भाग जाते हैं । इसके बाद उस यक्षने रत्नोंकी बरसा कर भक्तिसे प्रेरित हो उन पाँचों ही पांडवोंको वस्त्र, आभूषण और मणि-मुक्ता वगैरह भेंटमें दिये । एवं उसने उन्हें निर्दोष विद्या भी दी। उस निर्दोष विद्या और शत्रुघातकी गदाको पाकर पांडव निर्भय होकर ठहरे।

वह भीम योद्धा जयको प्राप्त हो, जो भाँति भाँतिकी लीलासे युक्त गज गामिनी ललनाओंको पाकर सांसारिक सुखकी सीमा पर पहुँच गया; जो रणमें शत्रुओं पर विजयको लाभ कर चुका; जिसकी राज-गणोंने वन्दना-स्तुति की और जो शुद्ध पक्षवाला, सबको हर्ष देनेवाला और निर्दोष था।

एवं जिसने सैकड़ों युद्ध करके निशाचर और विद्याधरको भय-चकित कर---गर्व-रहित कर---हिडंबा नामकी विद्याधर-कन्याको पाया, हाथीका मद उतारा, दिशानन्दाको ब्याहा और जिनालयके द्वारके किवाड़ोंको खोल कर गदाको प्राप्त किया वह विपलोदर भीम सदा जयको पावे।

सोलहवाँ अध्याय।
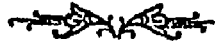
उन शीतलनाथ भगवानकी मैं स्तुति करता हूँ जो पूर्ण शीलके स्वामी हैं, जिनका अतीव मनोहर शरीर है, जो जीवोंको शान्ति-दाता हैं, उत्कृष्ट लक्ष्मीके स्थान हैं और जो श्रीवृक्षके लक्षणसे युक्त हैं।

इसके वाद युधिष्ठिरने उस यक्षसे पूछा कि यक्षराज, तुमने भीमके लिए जो गदा दी है उसके देनेका क्या कारण है। इसके उत्तरमें उस उत्तम पक्षवाले और शासन-कुशल यक्षने कहा कि राजन्, सुनिए, मैं गदा देनेका कारण वताता हूँ।

इस भरत क्षेत्रके वीचमें एक अति ऊँचा विजयार्द्ध नाम पहाड है। वह पूर्व और पच्छिमकी ओरको लम्वा है और दोनों ओरके कोनोंसे लवण समुद्रको छूता है। अतः वह ऐसा जान पडता है मानों भरत क्षेत्रको नापनेके लिए मान-दंड ही है। वह पच्चीस योजना ऊँचा है, पचास योजनका उसका विस्तार है और सवा छह योजनकी उसकी जड़ है। उसकी दो श्रेणियाँ हैं। एक दक्षिण श्रेणी और दूसरी उत्तर श्रेणी। दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नाम एक नगर है। उसका स्वामी मेघवाहन था। उसने रणमें वहुतसे वैरियों पर विजय पाई थी। उसकी प्रियाका नाम प्रीतिमती था। वह राजाको वहुत प्यारी थी और वह भी राजा पर पूर्ण प्रेम रखती थी। इन दोनोंके एक पुत्र था। उसका नाम था घनवाहन। घनवाहनके वहुतसे अच्छे अच्छे वाहन थे। वह विद्या साधनेमें दत्तचित्त था। उसने अपने पराक्रमसे वहुतसे शत्रुओंको तो वशमें कर लिया था और अपने राज्यको वढ़ानेकी इच्छासे वाकी शत्रुओंको जीतनेको वह तैयार था। इसी लिए वह गदा देनेवाली विद्या साधनेके लिए विंध्याचल पर्वत पर गया था। वहाँ उसने वहुत दिनों तक विद्या साधी। उसके फलसे उत्तम विद्या-साधनसे सिद्ध होनेवाली और तीन लोकमें प्रसिद्ध यह गदा उसे प्राप्त हुई। इसी समय आकाश मार्गसे देव जा रहे थे। उनको जाते हुए देख कर विद्याके वैभवसे युक्त उस विद्याधरोंके राजाने कहा कि ये देव कहाँ जा रहे है और किस लिए जा रहे हैं। इस पर एक देवने कहा कि सुनिए, मैं आपको सव हाल कहता हूँ।

विंध्याचल पर्वत पर क्षमाधर नाम योगीराजको तीन लोकको प्रकाशित करनेवाला केवल ज्ञानलाभ हुआ है । इस लिए ज्ञान-सम्पत्तिको चाहनेवाले हम सब धर्मामृत पीनेकी इच्छासे प्रभुका ज्ञानकल्याण करनेके लिए वहाँ जा रहे हैं । यह सुन कर वह विद्याधर भी वहाँ गया और पापसे पराङ्मुख हो उसने मुनिके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके धर्मा-मृतका पान किया; और संसारसे विरक्त होकर संयम लेनेकी इच्छासे उस क्षमाके भंडार और शान्त परिणामी विद्याधरने दीक्षाके लिए मुनिराजसे प्रार्थना की । यह देख उस गदा विद्याको बड़ी चिन्ता हुई और वह आकर उस विचक्षणसे कहने लगी कि हे कृत अर्थको जाननेवाले विद्वन्, आपने मेरे साधनेमें इतना भारी कष्ट सहा तब कहीं मैं सिद्ध हुई। और अब आप मेरा कुछ भी फल प्राप्त न कर दीक्षा ले रहे हैं, यह क्या बात है । यदि आपकी ऐसी ही मनसा थी तो फिर मेरे साधनेके लिए आपने व्यर्थ ही इतना क्लेश उठाया । यह प्रौढ़ और दृढ़ गदा युद्धमें जय दिलाती है, संसारमें कीर्ति फैलाती है और भाँति भाँतिके दिव्य भोगोंको देती है। अत एव जब आपने इसे साधा है और यह सिद्ध हो गई है तब इसका आप अवश्य ही फल प्राप्त कीजिए और गंभीरतासे काम लीजिए। भला जिसके प्रभावसे देव भी आकर नौकरी बजाते हैं और मनुष्य सदा ही सेवामें हाजिर रहते हैं ऐसी उत्तम विद्यासे आप उदास होते हैं, यह कहाँ तक उचित है । अतः आप इससे किसी तरह भी उदास मत हूजिए। विद्याके इन वचनोंको सुन कर उसने उत्तम वचनोंमें कहा कि विद्यादेवि, तुमसे मैंने यही भारी फल पा लिया है जो मुझे तुम्हारे प्रभावसे ऐसे महा मुनिराजका समागम मिल गया। तुम्हीं कहो कि यदि मैं विद्या न साधता तो इनका समागम प्राप्त कर सकता। अतः मैं जो तुमसे मुनि समागम रूप फल पा चुका—यही मेरे लिए बहुत है । इस उत्तरसे उसको निश्चल जान कर विद्याने मधुर वाणी द्वारा फिर भी कहा कि नरेन्द्र, तुम बड़े विचक्षण पुरुष हो, सब कुछ जानते हो। देखो, मै फिर भी कहती हूँ कि तुम मुझें साध कर मत छोड़ो । मै तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे ही अपना स्थान छोड़ तुम्हारे पास आई हूँ, और तुम मुझे छोड़ना चाहते हो। तब आप ही कहें कि मै दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर अब क्या करूँ। इस वक्त मेरी वैसी ही गति हो रही है जैसी कि राज्य छोड़ कर दीक्षा ले पुनः दीक्षासे भी भ्रष्ट हो जानेवाले पुरुषकी होती है । वह न इधरका रहता है और उधरका । यही हाल मेरा भी है जो मैं न इधरकी रही न उधरकी—मेरा कोई

ठिकाना ही नहीं रहा। राजन्, उस विद्याके ऐसे दीन वचनोंको सुन कर मैंने उन कृती मुनिराजसे पूछा कि प्रभो, अब इस विद्याका कौन नीतिवान् विनयी पुरुष पति होगा। मुनिराजने उत्तर दिया कि यक्ष, इसका स्वामी अब महा-पुरुष भीम होगा। यह सुन कर मैंने फिर मुनिराजसे पूछा कि भीम कौन है? और वह कैसे जाना जायगा? इसके उत्तरमें संसारको आनन्द देनेवाले वे मुनिराज प्रमोदके साथ यों कहने लगे—

इसी भरत क्षेत्रमें एक हस्तिनापुर नाम नगर है। वहाँका राजा पांडु था। वह गुणोंका समुद्र था। भीमसेन उसीका पुत्र है। और वह शुद्ध परिणामी तीन लोकमें सुन्दर इस चैत्यालयकी वन्दनाके लिए अपने भाइयों सहित अति शीघ्र ही यहाँ आवेगा। स्पष्ट बात यह है कि जो कोई यहाँ आकर इस जिनालयके किवाड़ोंको खोलेगा वही इस गदाका स्वामी होगा। यह सुन कर वह विद्याधर राजा तो विद्याको समझा कर मुनिके पास दीक्षित हो गया और मैं तभीसे इसकी रक्षा करता हुआ और आप लोगोंकी प्रतीक्षा करता हुआ यहीं ठहरा हुआ हूँ। आज आप लोगोंको आया देख कर मुझे बड़ा भारी संतोष हुआ और मुनिके कहे अनुसार मैंने भीमको यह गदा दी। इसके बाद उस यक्षने वस्त्र, आभूषण आदिके द्वारा उनकी पूजा-भक्ति की और अन्तमें उनके गुणोंको याद करता हुआ वह अपने स्थानको चला गया।

इस प्रकार पांडव दक्षिणके देशोंमें विहार करते और धर्मके फलको भोगते हुए हस्तिनापुर जानेको तैयार हुए। वहाँसे चल कर वे धीरे धीरे मार्गमें पड़नेवाली माकन्दी नाम नगरीमें आये। वह देवतों जैसे सत्पुरुषोंका और देवां-गनाओं जैसी ललनाओंका निवास थी, अतः स्वर्गपुरी सी जान पड़ती थी। उसके चारों ओर एक सुन्दर विशाल कोट था। जैसे स्त्रियाँ माँगमें उत्तम लाल वर्णका सिंदूर भर कर शोभा पाती हैं वैसे ही उसमें भी उत्तम वर्णके लोग भर रहे थे, अतः वह भी अतीव शोभा पाती थी। तात्पर्य यह कि वह सुंदर सजावटसे ऐसी जानी जाती थी मानों स्वर्गपुरी ही नीचे उत्तर कर यहाँ आ गई है। वहाँ पहुँच कर वे ब्राह्मण वेष-धारी पांडव एक कुँभारके घर गये और वहाँ ठहर गये। इसके बाद वे पवित्र और लोकोंको पालनेवाले पंडितोंसे परिपूर्ण उस पुरीको देखनेके लिए निकले। उसकी शोभा देख कर वे बडे संतुष्ट हुए; जैसे कि स्वर्ग-पुरीको देख कर अमर-गण संतुष्ट होते है। वहाँका राजा द्रुपद था। वह द्रुक्षकी

जड़ जैसा स्थिर था, वीर्यशाली था, धीरज-धारी था और शत्रुओंको जीतनेवाला था। वह स्वयं किसीसे नहीं जीता जाता था । उसकी प्रियाका नाम भोगवती था। वह वास्तवमें भोगवती ही थी—भोगोंकी खान थी । भाँति भाँतिके मनोहर भोगोंको भोगती थी। वह आभूषणोंसे खूब सजी हुई थी। द्रुपदके कई पुत्र थे। वे सुवर्णके समान कान्तिवाले थे। उन्होंने अपने पराक्रमसे सब दिशाओं पर अधिकार जमा लिया था । वे इन्द्रकी नाँई मनोहर थे । उनके नाम धृष्टद्युम्न आदि थे। इनके सिवा उसके एक पुत्री भी थी। उसका नाम द्रौपदी था। वह उत्तम लक्षणोंवाली थी और अपने सुन्दर रूप तथा गुणोंसे इन्द्राणीको भी जीतती थी। अपनी चालसे वह हंसीको और नखोंसे तारा-गणको जीतती थी । चरणोंसे कमलोंको और जाँघोंसें केलेके स्तंभोंको जीतती थी । जघनोंसे कामक्रीड़ाके घरको और नितम्बोंसे सोनेकी शिलाको जीतती थी । नाभि-मंडलसे भँवरोंवाले सरोवरको और वक्षःस्थलसे कैलासके तटको जीतती थी । जिन पर हार लटक रहा था ऐसे कुचोंके द्वारा वह साँपोंसे वेष्टित कुंभोंको जीतती थी । हाथोंके द्वारा कल्पवृक्षकी शाखाओंको, मुखसे चाँदको और स्वरसे कोकिलाको जीतती थी। आँखोंसे मृगीको, नाकसे बाँसकी सुंदर बाँसुरीको और ललाटसे अष्टमीके चंद्रमाको जीतती थी। अपने सुंदर केशपाससे वह भुजंगको जीतती थी । वह कला-कौशलमें पूर्ण कुशल थी। उसका कटिभाग कृश था और स्तन गोल और कठिन थे।

एक दिन द्रुपदने देखा कि पुत्री अब युवती हो गई है, अतः इसका जल्दी विवाह कर देना चाहिए । यह सोच कर उसने अपने मंत्रियोंको बुलाया और उनसे इस सम्बन्धमें सलाह ली। उन्होंने भी अपनी अपनी योग्यता और बुद्धिके अनुसार सलाह दी और बहुतसे राजोंके नाम कहे और कहा कि इनमेंसे राजन्, आप जिसे पसन्द करें, उसीके साथ द्रौपदीका ब्याह कर दें । मंत्रियोंकी इस सम्मतिके अनुसार राजाने भी किसी किसी कुमारकी ओर दृष्टि दौड़ाई पर फिर याचना भंग होनेके भयसे उसने यही निश्चित किया कि स्वयंवरकी तैयारी करके अति शीघ्र एक सुन्दर स्वयंवर-मंडप बनवाया जाय। स्वयंवरके विना ठीक नहीं होगा। किसीसे वरकी याचना की गई और उसने मंजूर न की तो उल्टा दुःख ही होगा। इसके बाद राजाने दूतोंको बुलाया और उन्हें निमंत्रण पत्र देकर कर्ण और दुर्योधन आदि राजोंको पास भेज दिया।

खगाचल पर्वत पर एक विद्याधर राजा रहता था। उसका नाम सुरेन्द्रवर्धन था। उसे सब साधन प्राप्त थे। उसके एक कन्या थी । एक समय उसने

एक नैमित्तिकसे पूछा कि मेरी कन्याका वर कौन होगा । नैमित्तिकने कहा कि राजन्, माकंदी पुरीमें आकर जो बलवान् पुरुष गांडीव धनुष चढावेगा वही पुण्य-शाली, श्रीमान् और परमोदयशाली तुम्हारी कन्या और द्रौपदीका वर होगा । यह सुन कर कुंदके समान यशवाला वह विद्याधर गांडीव धनुष और अपनी कन्याको लेकर माकन्दी पुरीमें आया और वहाँ द्रुपद राजाके पास जाकर उससे उसने कन्याके सम्बन्धकी सारी बात कह दी; और साथ ही उस स्पष्टवक्ताने द्रुपदको वह धनुष भी दे दिया ।

इसके बाद द्रुपदने अति शीघ्र एक सुन्दर मंडप तैयार करवाया । उसमें सोनेके खंभे लगे हुए थे और सोनेका ही तोरण बाँधा गया था । उस पर मुक्ताफलोंसे विभूषित चँदोवे तने हुए थे । भाँति भाँतिके चित्रोंसे सुशोभित सोनेकी उसकी भीतें थीं । उस पर इतनी पताकायें फहरा रही थीं कि उनसे सारा गगन-मंडल ढँक गया था । वह नगरके जैसा दीख पड़ता था । उसमें बहुतसी गलियाँ बनी हुई थीं । उसके ठीक बीचमें एक ऊँची वेदिका बनाई गई थी । दीप्तिशाली सोनेके पायोंके उसमें बहुतसे तख्त पड़े हुए थे । वह बहुत ही सुन्दर आकारका था और भाँति भाँतिकी भोग-सम्पतिका दाता था ।

स्वयंवरके समय कर्ण, दुर्योधन आदि यादव, मगधाधीश, जालंधर, और कौशल आदिके सब राजा आये और वे महान रूप-सौन्दर्यशाली मंडपमें आकर विराजे । ब्राह्मण-वेषमें पाँचों पांडव भी यहीं माकन्दी पुरीमें ठहरे हुए थे । इसी समय द्रुपद और सुरेन्द्रवर्द्धन विद्याधरने मेघके शब्दको भी जीतनेवाली घोषणा करवाई कि जो कोई गांडीव धनुष चढ़ा कर राधावेध करेगा वही पुण्यवान इन दोनों कन्याओंका वर होगा । कन्याओंकी यह प्रतिज्ञा-घोषणा सुन कर कर्ण आदि सब राजा आकर उस धनुषको देखने लगे । वह इतना कान्तिशाली था कि उसके तेजको वे लोग सह न सके । उसे फिर छूने और चढ़ानेके लिए तो उनमें शक्ति ही कहाँ थी ।

इसी समय अनेक प्रकारके गहनोंसे विभूषित और रेसमी ओढ़नीसे अपने शरीरको ढँके हुई द्रौपदी मंडपमें आये हुए राजोंको देखनेकी इच्छासे वहाँ आई । वह बारीक कंचुकीसे प्रच्छन्न कुचकुंभोंके भारसे युक्त थी और अपने नूपुरोंके रण-झण शब्दसे रतिको भी जीतती थी । उसकी नासाके अग्रभागमें मुक्ताफलोंसे जड़ी हुई सोनेकी सुंदर नथ सुशोभित थी । तात्पर्य यह कि इस वक्त वह अपूर्व

ही शोभायुक्त थी और इन्द्राणीके जैसी देख पड़ती थी। वह रूपलावण्यकी खान थी। उसके सब ओर उसकी सखियाँ थीं। धायके हाथमें उसने मणियोंकी माला दे रक्खी थी। वह निर्मल थी और अपने कटाक्षपात द्वारा उन राजोंके मनको मोहित करती थी। ऐसी मनमोहिनी मूर्तिवाली द्रौपदीको उन राजोंने ज्यों ही देखा कि उनकी कामाग्नि धधक उठी। वे मन-ही-मन बोले कि ऐसी सुन्दरी रूप-सौन्दर्यकी सीमा दूसरी स्त्री तो हमने आज तक नहीं देखी। इसका रूप-सौन्दर्य संसार भरसे बढ़ा चढ़ा है।

इस समय वहाँ जितने राजा थे सबकी विचित्र ही चेष्टा हो रही थी। कोई अपने मित्रके साथ बातें करता हुआ द्रौपदी पर मंद कटाक्ष फेंक रहा था। कोई मंद मुसक्यानसे अपने पानके रंगसे लाल हुए दाँतोंको दिखाता हुआ दाँतोंके नीचे पान दबा कर उसे बड़े जोरसे चबा रहा था। कोई पाँवके अँगूठेके द्वारा सिंहासन पर लिख सा रहा था। कोई दाहिने पॉवको बायें पॉव पर रक्खे हुए था। कोई जँभाई ले रहा था। कोई सिर पर मुकुट रख रहा था। कोई अपने हाथोंके कड़ोंको इधर उधर घुमा रहा था, जिससे उसकी भुजायें ऐंठती सी थीं। कोई हाथसे मूँछोंको मरोड़ता था। कोई अँगूठियोंकी कान्तिसे प्रकाशित हाथोंको ऊँचे उठा उठा कर दिखाता था। इस प्रकार विचित्र चेष्टायें करते हुए वे लोग वहॉं बैठे हुए थे। उसी समय वीणा, मृदंग, बाँसुरी, नगाड़े आदिकी आवाज हुई, जिससे सब दिशायें गूँज उठीं।

इसके बाद उस मिष्टभाषिणी सुलोचना धायने जो कि वरमाला हाथमें लिये हुए थी, वहाँ बैठे हुए राजोंका द्रौपदीको परिचय कराया। वह बोली बेटी, देखो ये अयोध्याके राजा हैं। ये सूर्यवंशके शिरोमणि हैं। इन्द्रके जैसी विभूतिके धारक हैं। पण्डित लोग इनका आश्रय लेते हैं। इनका नाम सूरसेन है। ये शत्रुपक्षके विघातक बनारसके राजा हैं। ये सुवर्णकी सी कान्तिवाले चंपापुरीके राजा कर्ण हैं। ये हस्तिनापुरके राजा दुर्योधन हैं। बड़े बुद्धिमान हैं। और यह इन्हींका भाई दुश्शासन है। यह शत्रुओंका नाश करनेवाला दुर्मर्षण राजा है। देखो, ये यादव-वंशीय राजा हैं। ये मगध देशके अधिपति हैं। ये जलंधर देशके राजा हैं। ये वाल्हीक देशके राजा हैं। पुत्री, मैं नहीं कह सकती कि इन राजोंमेंसे कौन धनुषको उठा कर बाणके द्वारा राधावेध

करेगा। बहुतसे राजे लोग तो उस धनुषके उठानेके लिए इसी लिए असमर्थ हुए कि वह जलती हुई आगकी महान् ज्वालासे व्याप्त था; नागोंके फणोंकी फुंकारोंसे वह शब्द-मय हो रहा था। अतः जो उसे उठानेके लिए उसके पास जाते उन्हें वह अपनी प्रचंड ज्वालाके द्वारा भस्म किये डालता था; जिससे वे अपनी आँखें बन्द कर करके उससे दूर भागते थे। कोई राजा उन भयंकर जहरीले साँपोंको देख कर दूरहीसे डरके मारे काँपते थे और उनको न देख सकनेके कारण अपने नेत्रोंको ढँक लेते थे। कोई हिम्मत बाँध कर उसके पास तक जाते भी थे तो उसकी विषम ज्वालासे पीड़ित होकर वे जमीन पर गिर पड़ते थे और उनमें बहुतोंको मूर्छा तक आ जाती थी। कोई बिचारे कहते थे कि हमें द्रौपदी नहीं चाहिए; किन्तु हम सकुशल अपने घर पहुँच जायँ तो बड़ी खुशी मनावें और आनंद-पूर्वक दीन, अनाथ और दरिद्रोंको दान दें। कोई कहते थे कि हम तो अपने घर जाकर अपनी स्त्रियोंके साथ ही-क्रीड़ा, मनोविनोद करेंगे, हमें ऐसी सुन्दरी द्रौपदी नहीं चाहिए, जिसके पीछे प्राणोंके ही लाले पड़ जायँ। और जिन राजोंके कामिनियाँ न थीं वे कहते थे हमें ऐसे प्राणोंके घातक विषय-सुखकी चाह नहीं है। इससे तो हम घर जाकर कुछ समय ब्रह्मचर्यसे रहें यही परम उत्तम है। देखिए एक तो यह अपने रूपसे ही लोगोंके प्राण लिये लेती है और उस पर साँपके विषकी तीव्र ज्वाला जैसे कामके वेगसे मारे डालती है। यह कन्या नहीं है; किन्तु कहना चाहिए कि महान् विष ही है।

यह देख कर मदके आवेशमें आ दुर्योधन बोला कि मेरे सिवा इस राधावेधके लिए दूसरा और कौन समर्थ हो सकता है। इस राधाके मोतीको तो मैं ही वेधूँगा। इतना कह कर वह नेत्रोंको लाल करके उठा और धनुषके पास पहुँचा; परन्तु उस धनुषसे उत्पन्न हुई ज्वालासे पीड़ित होकर वह भी उसके पास ठहर न सका और असमर्थ होकर भूमि पर गिर पड़ा और बड़ी कठिनतासे उठ कर अपनी जगह पर आकर बैठा। इसी प्रकार कर्ण आदि और और राजा भी उसकी ज्वालाको न सह सकनेके कारण मानको छोड़ कर अपने अपने स्थान पर चुपचाप आ बैठे। जब कोई भी उस धनुषको न चढ़ा सका तब युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई अर्जुनसे उसके चढ़ानेके लिए कहा। वे बोले कि जान पड़ता है इन राजोंमेंसे कोई भी यह धनुष नहीं चढ़ा सकता है। इसके लिए ये सब असमर्थ हैं, अतः तुम उठो और इस धनुषको चढ़ाओ। तुम्हारे सिवा इस धनुषको और कौन ऐसा है जो सिद्ध करेगा। युधिष्ठिरके वचनोंको सुन

कर सिद्धोंको और अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको प्रणाम कर विशुद्ध-बुद्धि अर्जुन उठ खड़ा हुआ। उस समय उस द्विज-वेष-धारी और कामदेवसे भी अतिशय रूपशालीको दूरसे ही देख कर द्रौपदी उसके रूप पर मोहित हो कामके बाणों द्वारा वेधी जाने लगी।

इसके बाद अर्जुन सब राजोंको लाँघ कर धनुषके आगे जाकर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुँचते ही पुण्यसे वह सब ज्वाला उसी समय बिल्कुल शान्त हो गई और सब साँप अन्तर्हित हो गये। पुण्यात्मा पुरुषोंके सम्बंधसे बहुधा सब शान्त हो जाते हैं। और वे यदि शूरवीर हों तब तो कहना ही क्या है। धनुर्धर अर्जुनने उस गांडीव धनुषको उसी क्षण हाथमें उठा लिया और चढ़ा कर उस पवित्र आत्माने उसकी डोरीका शब्द किया, जिसे सुन कर वहाँ बैठे हुए सब राजा बहिरे हो गये और घोड़े भड़क कर इधर उधर भागने और हींसने लगे। हाथी चिंघाड़ने लगे तथा दिग्गज अपनी प्रतिध्वनिके द्वारा शब्द करते हुए ऐसे जान पड़ने लगे मानों सूँड़ उठा कर गर्ज ही रहे हैं। उस विशाल शब्दको सुन कर द्रोणाचार्य चकित होकर बोल उठे कि क्या यहाँ मरा हुआ अर्जुन आ गया है! इसके बाद उस महान् विक्रमी पार्थने धनुषबाण चढ़ाया और घूमते हुए राधाकी नाकके मोतीको बातकी बातमें ही वेध दिया। उस समय मोतीके साथ बाणको पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर वहाँ बैठे हुए सभी राजोंको बड़ा भारी हर्ष हुआ और वे उसके गुणोंको ग्रहण करनेके लिए उत्कंठित हो उठे। इस द्विज-वेष-धारी पार्थकी यादव, मागध आदि राजोंने बड़ी प्रशंसा की और द्रुपद राजा तथा उसके पुत्र भी मन-ही-मन बहुत आनंदित हुए। इसके बाद ही द्रौपदीने अपनी धायके हाथमेंसे 'वरमाला' लेकर अर्जुनके गलेमें पहिना दी। परन्तु दैववशात् वह माला वायुके अति वेगसे टूट गई, जिससे वहीं पासमें बैठे हुए चार पांडवोंकी गोदमें भी उसके मोती जा पड़े। अतः लोगोंकी मूर्खतासे यह दन्तकथा चल पड़ी कि इसने पाँचों ही पांडवोंको वरा है। उन दुर्जनोंने—जहाँ तक उनसे बन सका—इसकी संसारमें खूब घोषणा कर दी।

इस समय द्रौपदी अर्जुनके पासमें खड़ी हुई ऐसी शोभती थी मानों साक्षात् लक्ष्मी ही है। अर्जुनकी आज्ञाको पाकर द्रौपदी कुन्तीके पास जाकर बैठ गई। इस समय वह मनमोहनी ऐसी जानी जाती थी मानों मेघमालासे युक्त

बिजली ही है। ये सब बातें दुर्योधनसे न सही गई, अतः वह दुर्मुख राजा लोगोंको भड़काने लगा कि आप लोग ही कहिए कि इतने राजोंके यहाँ होते हुए एक दीन ब्राह्मणको भला इस बातका अधिकार ही क्या था कि राजोंकी सभामें राधावेध करे। इसके बाद उसने और सब कौरवोंसे सलाह करके द्रुपद राजाके पास चन्द्र नामके एक सुशिक्षित दूतको भेजा। उसने द्रुपदके पास जाकर नम्रताके साथ कहा कि महाराज ये सब तेजस्वी राजे मेरे द्वारा कहते है कि द्रोण, दुर्योधन, कर्ण, यादव, मागध इत्यादि सभी राजोंके होते हुए कन्याने जो एक दीन ब्राह्मणको वरा है यह बड़ा भारी अन्याय किया है। आप ही सोचिए कि जो परदेशी है, जिसके देशका कुछ पता नहीं है और जो एक लोभी ब्राह्मण है जैसे कि और और ब्राह्मण होते हैं तब वह इतने राजोंके रहते हुए यहाँसे कन्या-रत्नको कैसे ले जा सकता है? अतः आप इस लोभी ब्राह्मणको कुछ रत्न वगैरह भेंटमें देकर सीधी-साधी बातोंसे टाल दीजिए और राजोंके योग्य इस कन्याको किसी राजाके हवाले कीजिए। यदि यह बात आपके काबूकी न हो तो आप इन राजोंके साथ युद्ध करनेको तैयार होइए। चंद्र दूतके मुँहसे राजोंके अभिप्रायोंको सुन कर क्रोधमें आ द्रुपदने उत्तरमें कहा कि न्यायके जानकार और स्वयंवर विधिको जाननेवाले राजोंको अपने मुँहसे ऐसे वचनोंका निकालना ही अधर्म हैं। इस सम्बन्धमें और विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। साध्वी द्रौपदीने स्वयंवर विधिसे जिसको वरा है वही यह भूसुर (ब्राह्मण) इसका वर है। मैं इसमें कुछ भी फेर-फार नहीं कर सकता। इसमें युद्ध करनेका इन राजोंको अधिकार ही क्या है। क्योंकि चाहे नीच हो या ऊँच स्त्रीका वही वर होता है जिसे वह अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वरती है। इस लिए युद्धकी प्रतिज्ञा करना इनका ठीक नहीं है। हाँ, यदि वे न मानें और उन्हें युद्ध करने हीमें मजा है तो मैं भी इन व्यर्थ ही बुरे मार्ग पर जानेवालोंको युद्धके लिए निमंत्रण देता हूँ। यह सुन दूत लौट कर दुर्योधन आदिके पास आया और उसने द्रुपदके संदेशेको ज्योंका त्यों उन्हें सुना दिया। यह देख दुर्योधन आदि बड़े क्रुद्ध हुए और रणके लिए तैयार हो गये। उन्होंने उसी वक्त रणके आमंत्रणको सूचित करनेवाली रण भेरी बजवा दी। जिसे सुन कर युद्धके सब साधनोंसे युक्त होकर राजा लोग निकल पड़े।

वे हाथियोंकी विशाल सेनासे युक्त और अपने अपने वाहनों पर सवार थे। उनके साथमें जो योद्धा-गण थे उनमें कोई रथों पर सवार थे, कोई अन्य अन्य

वाहनों पर थे तथा कोई पैदल थे । वे भाँति भाँतिके हथियार लिये हुए थे । कोई दंड लिये था, कोई ढाल तलवार बाँधे था और कोई भाला लिये थे । वे सभी मदसे उद्धत हुए मन-मानी बातें करते जाते थे । कोई क्रोधमें आकर कहते थे कि जल्दीसे कन्याको पकड़ लो और इन दुष्ट तथा मतवाले ब्राह्मणोंको यहाँसे मार भगा दो । यह सुन कर कोई मानी कहते थे कि ऐसा क्यों, पहले मानी द्रुपदको ही पकड़ कर न मार डालो, जिसके कारणसे यह सब झगड़ा खड़ा हुआ है । इस प्रकार शत्रुओंके शब्दोंको सुन कर द्रौपदी काँप उठी । उसे पसीना आ गया । वह अर्जुनकी शरण आ गई । उसको इस तरह घबड़ाई हुई देख कर भीमने कहा कि तुम डरो मत । प्रसन्न होकर मेरी भुजाओंके पराक्रमको देखो । मैं अभी इन वैरियोंको मार कर भगाये देता हूँ । मेरे मारे ये अभी एक क्षणभर भी यहाँ नहीं ठहर सकेंगे और पर्वतकी गुहाओंकी जाकर शरण लेंगे ।

इसके बाद रणांगणमें आई हुई उभय पक्षकी सेनाओंमें प्रचंड बाणोंके छोड़नेका शब्द होने लगा और बड़ा भारी क्षोभ मच गया । यह देख कर कि यमके तुल्य शत्रु पक्षकी सारीकी सारी सेना चढ़ करके युद्ध स्थलमें आ पहुँची है, द्रुपद आदि भी युद्धके लिए तैयार हो गये । इसी समय द्विजोतम युधिष्ठिरने द्रुपदसे प्रार्थना की कि आप हमें अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित पाँच रथ दीजिए । यह जान कर धृष्टद्युम्न आदि द्रुपदके पुत्रोंने मन ही मन सोचा कि ये लोग जो अस्त्र-शस्त्रोंसे सजे हुए रथ चाहते हैं इससे जान पड़ता है कि ये कोई महान् पुरुष हैं । इसके बाद धृष्टद्युम्न पाँचाली (द्रौपदी) को अपने रथमें बैठा कर उसकी रक्षा करने लगा । इधर युधिष्ठिर रथ पर आरूढ़ हो सौधर्म इन्द्रके जैसे शोभने लगे और गांडीव धनुष लेकर अर्जुन सफेद घोड़ोंके रथ पर सवार हो प्रतीन्द्र जैसा शोभने लगा । वह धनुष पर बाण चढ़ाये हुए था । इसी प्रकार द्रुपद भी सोनेके कवचको पहिन कर वैरियोंको कष्ट देनेके लिए तैयार हुआ अपने वैभव और मुकुटसे अपूर्व ही शोभा पाता था ।

इतनेहीमें शत्रुकी दुर्द्धर सेनाको चढ़ आई देख कर भीम एक वृक्षको जड़से उखाड़ उसके ऊपर दौड़ पड़ा और यमके समान क्रुद्ध हो उसने अपने आगे आनेवाले राजोंको, हींसते हुए घोड़ोंको, गर्जते हुए हाथियोंको मारा और रथोंको चूर करके उन्हें चक्र-रहित कर दिया । बात यह है कि वहाँ ऐसा कोई भी नहीं बचा जो भीमके द्वारा अधमरा न कर दिया गया

हो। इस समय भीम अपनी गंभीर वाणीके द्वारा गजेन्द्रके जैसा गर्जता था और यमकी तुल्य निर्भय होकर शत्रुओंको दंड देता था। इस तरह सम्पूर्ण सेनाको मारता पीटता हुआ भीम रमणीय रणांगणमें सिंहके जैसा शोभता था और घास काटने-वाला जैसे घासको काटता जाता है उसी तरह वह भी शत्रु-दलका संहार करता जाता था। भीमके ऐसे अपूर्व पराक्रमको देख कर वहाँ जो मध्यस्थ राजा थे वे उसकी जय जय ध्वनिके साथ तारीफ करते थे। इस तरह भीमके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट हुई देख कर तूर्यनादसे सारे शत्रुओंको त्रास देता हुआ दुर्योधन उठा। उधरसे सेना लेकर कर्ण भी धनंजय पर टूट पड़ा और उस वीरने विघ्न-समूहके जैसे वाणोंको सब ओर छोड़ कर सारे आकाशको वाणोंसे पूर दिया। इस प्रकार अपने योद्धाओंको लेकर उसने अर्जुनके साथ खूब भीषण युद्ध किया। उधरसे पार्थ भी कर्णके छोड़े हुए वाणोंको बड़ी शीघ्रताके साथ छेदता जाता था। क्योंकि वह लक्ष्यवेध करनेमें बड़ा भारी कुशल था। अतः जैसे वायु मेघोंको उड़ा देता है वैसे ही वह कर्णके बाणोंको वारण करता था। उसके ऐसे अपूर्व धनुष-बाण-कौशलको देख कर कर्णको बड़ा भारी अचम्भा हुआ। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि मैंने पृथ्वी पर आज तक ऐसा धनुष-बाण चलाने-वाला कोई पुरुष नहीं देखा। कर्ण अपने हृदयके भावोंको न रोक सका। वह बोल उठा कि द्विजेश, तुम धनुष-विद्याके बड़े अच्छे पंडित हो। तुमने आज धनुप-विद्याके कौशलको दिखानेमें कमाल ही कर डाला। हम तुम्हारी इस कुशलताकी प्रशंसा ही नहीं कर सकते। यह तुम्हारी कुशलता संसार भर द्वारा स्तुत्य है।

इसके बाद कर्णने वाणोंसे अर्जुनको पूरते हुए हँसते हँसते कहा कि द्विजेश, भला तुमने यह महोन्नत विद्या कहाँ पर सीखी है जो तुम्हारे आत्माके जैसे विल-क्षण चमत्कारको दिखाती है और मनको मोहित करती है। तुम्हारी यह विद्या लब्धिके तुल्य है। हे द्विजोत्तम, क्या तुम पुण्यके उदयसे स्वर्गसे तो यहाँ नहीं आये हो। क्योंकि मैंने तुम्हारे जैसा धनुष-विद्याका पंडित और कहीं नहीं देखा। तुम इन्द्र हो या सूरज; अथवा अग्नि हो या रणमें उद्धतपनेको दिखानेवाले मरे हुए अर्जुन ही यहाँ जी कर आ गये हो। सच कहो तुम हो कौन ? कर्णके इन प्रश्नोंको सुन कर हँसता हुआ अर्जुन बोला कि राजन, मैं ब्राह्मण ही हूँ; लेकिन पार्थका सारथी रह कर मैंने यह धनुषविद्या पाई है और इसीके बल यहाँ ठहर सका हूँ। इस पर कर्णने कहा कि अच्छी बात है विप्र, पहले तुम अपने उत्तमसे उत्तम

बाणोंको चला लो और फिर बाद अपनी सामर्थ्यसे मेरे महान शरोंको सहो। इतनी बात-चीतके बाद वे दोनों सिंहकी तरह पराक्रमी योद्धा कान तक धनुषोंको खींच खींच कर युद्ध करने लगे और एक दूसरेके हृदयको विदारने लगे। अन्तमें पार्थने कर्णके वचनोंकी नाँई उसकी धुजा, सूरजकी गर्मीको दूर करनेवाले छत्र और कवचको छेद डाला।

उधर सारे शत्रुओंको आपदाके पंजेमें फँसानेके लिए द्रुपदने कौरवोंकी सारी सेनाको बाणोंकी बरसा करके पूर दिया। इसी तरह वैरियोंको नष्ट करनेके लिए धृष्टद्युम्न आदि धीर वीर स्थिरताके साथ रण-स्थलमें युद्ध करने लगे। एवं रथ पर सवार होकर भीमसेनने दुर्योधनका सामना किया और बातकी बातमें उसका बखतर छेद डाला। इस महा समरमें ऐसा कोई भी मनुष्य, मत्त हाथी और महान् उत्कट घोड़ा न बचा जो कि पांडवोंके बाणोंसे न वेधा गया हो। अपनी सेनाको इस तरह नष्ट होती हुई देख कर भीष्म पितामह समरके लिए तैयार हुए और उन्होंने युद्ध-कुशल शूरोंकी रण-कुशलताको अपनी कुशलतासे भुला दिया। उनको इस तरह युद्धस्थलमें उतरे हुए देख कर युद्ध-कुशल अर्जुनने अपने शरों द्वारा उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया; और वह पार्थ केसरी पितामहके बाणोंको अपने रण-कौशलसे निष्फल करने लगा। इतनेमें द्रोणाचार्यने दुर्योधनसे कहा कि राजन, देखो, घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलसे आकाश कैसा ढँक गया है और रणमें अद्भुत क्रीड़ा करनेवाला यह पराक्रमी कैसी रण-कुशलता दिखा रहा है। राजन्, जान पड़ता है यह अर्जुन ही है; क्योंकि अर्जुनके सिवा और किसीमें इतनी धनुष-कुशलता आई कहाँसे सकती है। यह बिल्कुल ही झूठ है कि विद्वान पांडव लाखके महलमें जल गये। क्योंकि वे जले नहीं; किन्तु जीते जागते ही वहाँसे निकल गये और वे ही ये युद्धमें आ गये हैं। यह सुन कर दुर्योधनका चित्त बड़ा व्याकुल हुआ और मस्तक घूम गया। वह चकित हो हँसता हँसता बोला कि वाह गुरुराज, आप भी अच्छी बातें कहते हैं। भला, जब पांडव लाखके महलमें ही जल चुके तब फिर वे यहाँ कहाँसे आ गये। उनके साथ ही अर्जुन भी वहीं जल चुका था फिर वह कहाँसे आया। गुरुवर, आश्चर्य है कि इतना होते हुए भी आप धनंजयके नामकी रटंतको नहीं छोड़ते हैं। मैंने तो संसारमें आपके मोहका महत्व एक निराला ही देखा जो आप मरे हुए अर्जुनको निर्द्वंद हुए याद करते रहते हैं।

कर्णकी यह मर्म भेदी वाणी सुन कर द्रोणाचार्यने हाथमें धनुष-वाण लेकर अर्जुनसे ललकार कर कहा कि वीरवर, युद्धके लिए तैयार हो। अपने परम गुरु द्रोणाचार्यको सामने देख कर धनंजयने चित्तमें विचारा कि यह तो मेरे पूज्य गुरु हैं, गुणोंके समुद्र हैं। इन्हींके प्रसादसे मैंने इस युद्धमें विजय पाई है। फिर मैं इतना विचारशील होकर इनके साथ कैसे युद्ध करूँ। मैं नहीं जानता कि वे पापी कहाँ जायँगे, कौनसी दुर्गतिमें पड़ेंगे जो असंख्य गुणोंके भंडार और हितैषी गुरुओंको भूल जाते हैं। यह विचार कर धनंजयने सात पैंड़ आगे जाकर द्रोणके चरणोंमें नमस्कार किया और द्रोणके पास लिख हुए पत्रके साथ एक वाण छोड़ा। वाण जाकर द्रोणके पास गिरा। उसे देख कर द्रोणने उठा लिया और उसमें वँधे हुए पत्रको वाँचा। पत्र पढ़ कर हर्षके उत्कर्षसे द्रोणका मन खिल उठा। उस पत्रमें लिखा था कि "परम गुरु द्रोणाचार्यके चरणोंमें मेरा मस्तक नम्र है। मैं कुन्तीका पुत्र और आपका गुण-सागर शिष्य हूँ। गुरो, मेरा नाम अर्जुन है। मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। उसे आप सुनिए। वह यह कि मैंने विना कारण ही जो इस रणमें इतने योद्धाओंको मारा है इसका मुझे वड़ा दुःख है। गुरो, दुष्ट कौरवोंने हम लोगोंको विना कारण ही जला देनेका उपक्रम आरम्भ किया था। परन्तु पुण्य-योगसे किसी तरह हम उस महलसे निकल आये। वहाँसे नाना देशोंमें घूमते हुए सुखके सदन-रूप इस माकंदीपुरीमें आये। पुण्यसे आज यहाँ हमें आपके चरणोंके दर्शन हुए, इसका हमें वड़ा आनन्द है। अन्तमें आपसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि आप थोड़ी देर ठहर जाइए और चुपचाप अपने इस विद्यार्थीकी भुजाओंके वलको देखिए ताकि मैं भी सार्थक हो जाऊँ। दुर्योधन आदिने जो पांडवोंको जला कर मारना चाहा था—इन्हें भी इनकी करतूतका फल चखा दूँ।"

उस पत्रको पढ़ कर द्रोणाचार्यकी आँखोंमें पानी भर आया। उन्होंने जाकर कर्ण और दुर्योधन आदिसे पत्रका सारा हाल कहा। पत्रको सुन कर कर्णने कहा कि सच है कि अर्जुनके विना और किसमें ऐसी सामर्थ्य थी जो इस तरह रणमें वाणोंके द्वारा शत्रुओंके सिरोंको छेदता। इसी तरह एक भीम ही सारे रणका संहार करनेके लिए सदा समर्थ है; तथा युधिष्ठिर आदि पांडव भी इसके लिए खूब समर्थ हैं। यह सव हाल सुन कर कौरवाग्रणी दुर्योधन क्षणभरके लिए इति-कर्तव्य-विमूढ हो चकित सा रह गया। इतनेमें ही द्रोण पांडवोंके पास पहुँचे। पांडवोंने उनके दर्शन कर, उनका आलिंगन कर उनके चरण-

कमलोंमें नमस्कार किया और अपने पर बीता हुआ सारा हाल कह सुनाया । अन्तमें भाई-भाइयोंमें होनेवाले इस महान् युद्धको द्रोणाचार्यने रोक दिया । इसके बाद उन्होंने पांडवोंसे कहा कि तुम लोग मेरी एक बात सुनो । वह यह कि तुम लोगोंको कौरवोंके इस दोष पर ध्यान नहीं देना चाहिए; क्योंकि तुम जानते हो कि हित किसमें है । पुत्रो, तुम लोगोंको अब रोष करना उचित नहीं । कारण रोष करनेसे कुछ हित साधन नहीं होता । तुम लोगोंके पुण्यके माहात्म्यको कौन कह सकता है कि जिसके प्रभावसे जलते हुए महलमेंसे भी तुम जीते जागते निकल आये; और जहाँ जहाँ गये वहीं वहीं कन्या आदि सम्पदाके द्वारा पूजे गये । पांडव इस तरह द्रोणाचार्यके साथ वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतनेमें भीष्म पितामह कर्ण, आदि कौरव राजा भी वहीं आ पहुँचे । और वे सब प्रीतिके साथ आपसमें नम्रता-पूर्वक यथायोग्य रीतिसे मिले-भेंटे । तथा गर्व-रहित हुए कौरव नीचा मुँह करके चुपचाप बैठ गये और वे बड़े लज्जित हुए ।

इसके बाद कर्ण, द्रोण, भीष्म (गांगेय) आदिने कौरवोंकी और पांडवोंकी परस्परमें क्षमा करवाई—उनके हृदयका मैल दूर करवाया । यह ठीक ही है कि सज्जनोंका समागम शुभ कृत्योंके लिए ही होता है । अन्तमें दुर्योधनने कहा कि लाखके महलमें मैंने आग नहीं लगाई और इस विषयमें मैं श्रीजिनेन्द्रकी साक्षी देता हूँ । मैं तो यही कहता हूँ कि जिस दुष्टने महलमें आग लगाई हो वह जन्तु-पीड़क पुरुष घोरातिघोर नरकमें पड़े । परन्तु यह बड़ा अच्छा हुआ जो आप लोगोंका समागम फिर हो गया और इससे हम लोगोंका अपवाद दूर-गया । नहीं तो लोग हमें ही कलंक लगा रहे थे कि इन्होंने पांडवोंको जला दिया है । यह सच है कि पहले जन्ममें किये हुए कर्मको कोई रोक नहीं सकता चाहे फिर उससे जीवोंकी कीर्ति हो या अपयश । इस तरह बहाना करके कौरवोंने अपना दोष छिपा कर मुख पर मीठापन दिखाया । सच है दुष्टोंकी दुष्टता घट नहीं सकती । इस प्रकार कौरवोंने सब राजोंके दिलोंमें जैसे बना सन्तोष करा दिया ।

इसके बाद कुँभारके घर जाकर भक्ति-भावसे नम्र राज-गणने कुलकी मर्यादा पालनेवाली कुन्तीको बड़े विनयसे नमस्कार किया । इसी प्रकार दुर्योधन आदि भी कुंतीको मस्तक झुका नमस्कार कर और उसे सन्तोषित कर

स्थिर-चित्तसे उसके आगे बैठ गये। तब कुन्तीने दुर्योधनसे कहा कि भाई, धृतराष्ट्रके इस महान् वंशमें तुमने न जाने क्यों कालिमा लगाई। दुर्योधन, तुमने यह क्या किया जो अपने वंशको भी जलानेका यत्न कर वंशके नाश ही की चेष्टा की। देखो, जो अपने कुटम्बका नाश कर उत्तम सुख चाहते हैं वे वैसे ही कुमौत मरते हैं जैसे कि आगसे हरे बाँस जल कर खाक हो जाते हैं। यह राज्य भी तो तभी तक सुख देता है जब तक कि दिलमें इसकी चाह रहे। जब दिलसे इसकी चाह निकल जाती है तब यही उसे संताप, दुःख देनेवाला हो जाता है और बड़े बड़े अनर्थका कारण हो जाता है। क्योंकि यह राज्य वास्तवमें तृणके अग्र भागमें लगी हुई ओसकी बूँदके समान ही नष्ट होनेवाला है। फिर न जाने इसको चाहनेवाले क्यों अपने वंशके लोगोंको भी मार कर इसे चाहते हैं। ऐसे स्वार्थियोंके जीवितको धिक्कार है—एक बार नहीं, सौ बार नहीं; किन्तु असंख्य बार अनंत बार धिक्कार है। यह सुन कर दुर्योधन आदिका मुँह काला पड़ गया और लज्जाके मारे वे नीचा मस्तक करके रह गये।

इसके बाद जब द्रुपदको यह जान पड़ा कि ये ब्राह्मण वेषधारी पांडव हैं तब उसे बड़ी खुशी हुई और वह अति शीघ्र द्रोपदीका विवाह करनेको तैयार हो गया। उसने पांडवोंको एक सुन्दर महलमें ठहराया। इसके बाद रथमें सवार होकर बाजोंके शब्द और जय कोलाहलके साथ अर्जुन विवाह-मंडपमें आया और उसने मंडपकी वेदीके ऊपर शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमें उस विद्याधरकी पुत्री सहित द्रोपदीका पाणिग्रहण किया।

इस समय नगाड़ोंके सुन्दर शब्द हुए, दुंदभियोंकी गर्जना हुई और नटियोंके मनोरम नृत्य हुए। कान्तिशाली द्रुपद राजाने इस समय आगन्तुक राजोंका दिव्य वस्त्राभूषण और उत्तम उत्तम वस्तुओं द्वारा खूब आदर सत्कार किया। इसके बाद भीष्म, कर्ण आदि अर्जुनके विवाहोत्सवको देख कर युवतिजनोंके साथ अपने अपने सुन्दर महलोंमें चले गये और चतुरंग सेना सहित चतुर पांडव तथा कौरव हस्तिनापुर चले आये।

वहाँ पांडवोंने बड़े ठाट-बाटके साथ नगरमें प्रवेश किया। इस समय हस्तिनापुरमें घर घर तोरण बाँधे गये थे और द्वार द्वार पर सुन्दर शोभाशाली कलश रक्खे गये थे। तात्पर्य यह कि इस वक्त हस्तिनापुरमें खूब ही शोभा की गई थी।

सती द्रोपदी पवित्र थी, बड़ी विदुषी थी, शील-सम्पतिसे युक्त थी, रूप-सौन्दर्यकी सीमा थी। वह उत्तम गुणोंके आकर एक अर्जुनको ही भजती थी; अन्य पांडवोंको नहीं। क्योंकि यदि वह और और पांडवों पर भी आसक्त-चित्त होती तो सती कैसे कही जाती; तथा उस वंश-भूषणका नाम सारी सतियोंमें पहले क्यों लिया जाता।

इस सम्बन्धमें कोई मत्त पुरुष कहते हैं कि द्रोपदी दिव्य रूप-सम्पतिको पाकर कामासक्त हो गई थी, अत एव उसने पाँचों पांडवोंको अपना हृदय दिया। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जिन पाँचोंको वह भजती थी वे तो बड़े सुशील और निर्मल-बुद्धि थे। फिर वे कैसे एक पत्नी पर आसक्त चित्त हुए। वे तो स्वयं श्रीमान थे; उनके लिए कोई कमी नहीं थी। जब दीन, दरिद्र लोगोंके भी जुदी जुदी स्त्रियाँ होती हैं तब ऐसे समझदार पाँचोंके बीच एक ही स्त्री हो यह आश्चर्य है। हम पूछते हैं कि यदि मान भी लिया जाय कि द्रोपदी पाँचों पर आसक्त थी तो क्या फिर कोई उसे सती कहनेके लिए तैयार हो सकता है। नहीं, हरगिज नहीं। बुद्धिमानोंको इस पर विचार करके उसे शुद्ध और गंभीर-बुद्धि साध्वी ही कहना चाहिए। जो अपने मतके अन्ध श्रद्धालु ऐसी सतीको दोष देते हैं भगवान जाने वे पापी कौनसी दुर्गतिमें पड़ेंगे।

जो जीव ज्ञान और सुखको देनेवाले, मोक्षके मार्ग, उत्तम पुरुषों द्वारा प्रशंसा और सेवा किये गये, अमृतका स्थान और सारे संसारमें सार वस्तु शील-धर्मका आदर करता है वह कभी शोकका पात्र नहीं होता और उसे कभी क्रोध आदि कषायें भी नहीं सता सकतीं। उसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका लाभ होता है, जिससे कि उसका सारा मोह, अज्ञान और विषय-राग नष्ट हो जाता है।

सत्रहवाँ अध्याय।
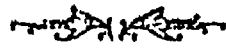
मैं उन श्री श्रेयांस भगवान्का आश्रय लेता हूँ जो कल्याण-मय है, जिन्होंने घातिकर्मोंको आत्मासे जुदा कर दिया है अत एव जिन्हें जिन कहते हैं, जो बाह्य और अभ्यन्तर लक्ष्मीसे युक्त हैं, आश्रितोंको श्रेयके दाता हैं और उन्नत हैं। वे प्रभु मुझे भी कल्याण-मार्ग पर लगावें।

इसके बाद पांडव और कौरव सारे राज्यको आधा आधा बाँट कर एक दूसरेके साथ स्नेह रखते हुए राज्य भोगने लगे। इसी तरह पांडव भी अपने हिस्सेके पाँच भाग कर और पाँच मुख्य स्थान नियत कर जुदा जुदा रहने लगे। उनमेंसे शत्रु-विजयी, स्थिर-चित्त युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ (देहली) में रहते थे। गंभीराशय भीमसेन वहीं देहलीके पास ही तिलपथ पुरमें रहते थे। नीति-निपुण और विचारशील अर्जुन शत्रुओंको व्यर्थ कर नीतिसे पृथ्वीको पालते हुए सुनपतमें रहते थे। नकुल अपने कुलको सफल करते हुए जलपथमें निवास करते थे और प्रीतिभाजन सहदेव वणिकपथ पुरमें रहते थे। तात्पर्य यह कि वे महाभाग इस तरह जुदा जुदा रह कर अपने अपने हकके अनुसार आनंद-चैनसे उत्तम लक्ष्मीको भोगते थे। जब सब समुचित प्रबन्ध हो चुका तब युधिष्ठिर और भीमने जो देश-देशमें राज-पुत्रियाँ व्याही थीं, उन सबको वे वहीं ले आये। साथ ही वे कौशाम्बी पुरीसे विंध्यसेन राजाकी पुत्री वसन्तसेनाको भी लिवा ले आये और युधिष्ठिरने उसके साथ व्याह कर लिया। भीमसेन आदि युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीको पालते हुए सदा उत्तम सुख भोगते थे और उनकी सेवाके लिए तैयार रहते थे। इन्हें धन-धान्य और सोने-चाँदी आदि जंगम विभूतिसे कुछ अधिक प्रयोजन न था; किन्तु ये सदा ही अपनी सेनाकी बढ़तीमें दत्त-चित्त रहते थे। तात्पर्य यह कि इनका अपनी सेनाको बढ़ानेमें खूब यत्न था। इनके हृदय बिल्कुल साफ थे और यही कारण है कि इनके चेहरे सदा ही कमल से खिले रहते थे; ये अपने मनकी स्वच्छतासे सब कामोंमें सफल होते थे। इन लोगोंको राज्यका बिलकुल गर्व न था। ये सरल भावसे सदा ही गंगाके जलके जैसे स्वच्छ भीष्म पितामहकी भक्ति भावसे सेवा-उपासना करते थे। और इसी लिए पितामह भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे।

पांडवोंके साथ पितामहकी ऐसी प्रीति देख कर एक समय कौरवोंने उनसे कहा कि कलुषित-चित्त पितामह, तुमने यह क्या करना शुरू किया है। भला सोचिए तो जब आप पांडवों और कौरवोंकी राज-सम्पत्तिको बराबरीसे भोगते हो तब फिर इस प्रकार पांडवकी ओर ही आपका झुकाव क्यों है? इसका कारण क्या है। दुर्योधन आदिके ऐसे क्रोध भरे शब्दोंको सुन कर पितामहने कहा कि कौरवाधीश, सुनिए, इसका भी कारण है। और वह यह कि ये सत्पुरुष हैं, शूरवीर हैं, अच्छे गुणोंके पात्र हैं, नीति-न्यायके पण्डित हैं और सच्चे धर्म-रूप अमृतके पीनेवाले हैं। इसके सिवा इनमें बड़ा भारी गुण यह है कि ये बीती हुई और आनेवाली बातोंकी व्यर्थ चिन्ता नहीं करते। ये वर्तमानमें उपस्थित विषय पर ही पूरा पूरा विचार करते हैं। बस, इसीसे ये मुझे अतीव प्यारे हैं।

एक समय कृष्णने प्रेमके वश हो अर्जुनको क्रीड़ाके लिए गिरनार पर्वत पर बुलाया। विशाल गिरनार पर्वत मनुष्यकी तुलना करता था। मनुष्यके वंश होता है उसमें वंश—बाँस—थे। मनुष्यके पाँव होते हैं उसके किनारेकी भूमि ही पाँव थे। मनुष्य तिलक लगाते हैं उसमें भी तिलक वृक्ष थे। वह बड़ा भारी उन्नत था और उसमें नाना जातिके जीव-जन्तु रहते थे। कुछ समयमें उधरसे तो कृष्ण गिरनार पहुँचे और इधरसे क्रीड़ामें दत्तचित्त अर्जुन भी वहाँ पहुँच गया। उन दोनोंने प्रेमके साथ एक दूसरेका आलिंगन किया और वे महामना आनंद-चैनसे गिरनार पर क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करते हुए वे दोनों स्नेही ऐसे जान पड़ते थे मानों इन्द्र और प्रतीन्द्र ही क्रीड़ा करते हैं। उनकी क्रीड़ा बिलक्षण ही थी। वे कभी वनमें दौड़ते फिरते थे; कभी पानीमें डूबते निकलते थे; कभी एक दूसरे पर वे केसर मिले हुए चंदनकी पिचकारी भर कर छोड़ते थे; कभी दौड़ते दौड़ते गिरनार पर चढ़ जाते और पीछे पाँव लौट आते थे; कभी देवांगनाओंके जैसी नृत्यकारणियोंके नृत्यों और गीतों द्वारा मनोविनोद करते थे और कभी गेंद खेलते थे। तात्पर्य यह है कि इस तरहसे उन दोनोंने स्नेहके साथ गिरनार पर खूब क्रीड़ा-विनोद किया और दिलको बहलाया।

इसके बाद कृष्णके साथ साथ अर्जुन भी द्वारिकामें आया। वह उसमें प्रवेश करता हुआ अतुल विभूतिके धारक इन्द्रके जैसा शोभता था। अर्जुन मनो-विनोद पूर्वक काल बिताता हुआ कृष्णके साथ द्वारिकामें बहुत दिनों तक रहा। उसके साथ अन्य राजा भी सुख-पूर्वक अपने समयको बिताते हुए वहीं रहे। इन राजोंके साथ पूरी पूरी राजविभूति थी। हाथी घोड़ों आदिकी पूरी पूरी सेना थी।

एक समय महत्वशाली अर्जुनने स्वच्छमना और भद्र विचारोंवाली सुभद्राको जाते हुए देख कर सोचा कि रूप-सौन्दर्यसे इन्द्राणीको भी जीतनेवाली यह सुन्दरी कौन है । यह अपने रण-झण शब्द करते हुए नूपुरोंके शब्दसे देवांगनाओंको जीतती है और कटाक्ष-निक्षेपसे उस कामको भी जीवित कर देती है जिसे पहले ध्यान-रूपी अग्निके द्वारा योगीजन जला चुके हैं। नहीं जान पड़ता यह रूप-सौन्दर्यकी सीमा कौन है। रति है या लक्ष्मी; पद्मावती है या रोहिणी; या सूरज की प्रिया है । जो हो यदि यह मृगनयनी और मुख-चन्द्रसे अँधेरेको दूर करनेवाली अनिंद्य सुन्दरी मुझे मिले—मेरी प्रिया बने तब ही मैं अपना सौभाग्य समझूँगा और तब ही मुझे सुख होगा । इसके बिना मेरा जन्म ही व्यर्थ है । अतः किसी-न-किसी उपायसे मैं इसे अपनी प्राण-वल्लभा बनाऊँगा । मन-ही मन यह सोच कर उस मनस्वीने कृष्णसे पूछा कि महाराज, साक्षात् लक्ष्मी जैसी और उत्तम लक्षणोंवाली यह किस महाभागकी पुत्री है । उत्तरमें कृष्णने कुछ मुसक्या कर कहा कि धनंजय, क्या तुम इसे सचमुच ही नहीं जानते । यह अतीव रूप-सौन्दर्यशालिनी मेरी सुभद्रा नाम बहिन है । यह सुन पार्थने हँस कर उत्तर दिया कि तब तो यह गजगामिनी मेरे मामाकी पुत्री है और मेरे सम्बन्धके योग्य है । इस पर कृष्णने कहा कि अच्छी बात है धनंजय, तुम्हारी इस रायसे मैं खुश हूँ और इसके साथ तुम्हारा संबंध स्थिर करता हूँ । तुम इसे स्वीकार करो। यह सुन अर्जुन कृष्णके मुख-कमलकी ओर देखने लगा । तब कृष्णने अर्जुनका अभिप्राय जान कर उसके लिए वायुके वेग जैसे शीघ्रगामी घोड़ोंवाला एक सुन्दर रथ मँगवा दिया, जिसे पाकर अर्जुन प्रसन्न हुआ । इसके बाद वह सुभद्राको परस्पर प्रेमालाप द्वारा अपने पर मोहित कर, रथमें बैठा, वायुके वेगसे भी जल्दी चलनेवाले घोड़ोंके द्वारा, वायुके वेगकी नाँई अति शीघ्र ही वहाँसे चल दिया। उधर जब यादवोंने सुभद्राके हरे जानेकी बात सुनी तब वे बड़े क्रुद्ध हुए और कवच वगैरह पहिन पहिन कर, धनुष-बाण ले उसी वक्त दौड़ पड़े । कोई कवच पहिन कर हाथमें मुद्गर लेकर दोड़े; कोई भाला और चमकती हुई तलवार लेकर भागे; कोई रथोंमें सवार होकर और कोई पैदल ही शक्ति हाथमें लेकर चले; कोई आकाश-तलमें तरंगोंकी नाँई उछलने कूदनेवाले घोड़ों पर सवार होकर चले और कोई यह कहते हुए चले कि घोड़े आदि सवारियोंकी जरूरत ही क्या हैं, आखिर काम तो तलवारोंसे ही पड़ेगा । अतः वे कवच वगैरह बिना पहिने ही हाथमें तलवार लिये हुए भागे । कुछ वीरगण अर्जुनकी इस धोखे-

वाजी पर बड़े क्रोधित होकर कहने लगे कि यादवोंकी कन्याको हर लेजा कर यह दुर्जन अर्जुन छिप करके जायगा ही कहाँ ? हम लोगोंके मारे पानीमें डूबने पर भी तो नहीं बचेगा।

इस प्रकार समुद्रके जैसा गंभीर और चतुरंग सेना-रूप तरंगोंसे तरंगित समुद्रविजय अपने वन्धु-वर्गको साथ लेकर चला और घोड़ेके हींसनेके शब्दसे उन्नत सेना-सहित वलदेव भी चला। इनके साथ ही पराक्रमी नारायण धनुष-बाण लेकर, पाँचजन्य शंखका मंद मंद शब्द करता हुआ कुछ सेनाको साथ ले सिंहकी नाँई बढ़ा। इसी प्रकार भूरि विभूतिवाले, लोकोत्तम, तेजस्वी और निर्भीक राजा भी इनके साथ रवाना हुए। इसके बाद नारायण इधर उधर कुछ घूम कर सेना-सहित द्वारिका वापिस आ गया और वलदेव आदिको बुला कर उसने कहा कि दादा, बात यह है कि अब ज्यादा झगड़ा बढ़ानेसे कुछ लाभ नहीं। अतः अच्छा यही है कि सुलक्षणा होने पर भी हरे जानेके दोषसे दूषित हुई बहिन सुभद्रा पार्थको ही दे दीजिए। और अर्जुन अपना भनेज ही है तव उसके लिए यह सर्वथा योग्य है। अत एव सोच कर उसे अर्जुनके लिए अपने हाथसे ही देना योग्य है। क्योंकि अर्जुनके साथ झगड़ा करना अब व्यर्थ ही है। कृष्णके ऐसे माया भरे शब्दोंको सुन कर उन लोगोंने अर्जुनके लिए सुभद्रा देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद कृष्णने अपने चतुर मंत्रियोंको बुलाया और उन्हें सुभद्राको ले आनेके लिए सुनपत भेज दिया। उन्होंने वहाँ जाकर अतीव विनयके साथ अर्जुनको प्रणाम किया और अर्जुनको वचन देकर सुभद्राके साथ वे द्वारिका वापिस आगये।

इसके बाद वहाँ व्याहकी सब तैयारी की गई और एक सुन्दर विवाह-मंडप निर्माण किया गया। उसमें परम उत्साहके साथ शुभ मुहूर्त, शुभ लग्नमें परम प्रीतिके साथ अर्जुनने सुभद्राका पाणिग्रहण किया। अर्जुन उसके लिए बड़ा उत्सुक हो रहा था। विवाहके समय अनेक प्रकारके बाजोंके शब्दसे दिशायें शब्द-मय हो रही थीं। नट-नटियोंके मनोहारी नृत्य हो रहे थे। दीन-हीन गरीब अनाथोंको खूब दान-मान, धन-दौलतसे तृप्त किया जा रहा था। इस विवाहोत्सवमें यादवोंके बुलाये हुए सब पांडव भी आकर सम्मिलित हुए थे। इस प्रकार अपनी प्यारी सुभद्राको पाकर अर्जुन सुखके साथ समय विताने लगा। इधर भीमसेनने लक्ष्मीमती और शेषवतीका पाणिग्रहण और किया। तथा नकुलने विजयाका और सहदेवने जो सबसे छोटा था, सुरतिका पाणिग्रहण किया।

इस प्रकार विवाहोत्सवके समाप्त हो जाने पर सब राजा जब अपनी अपनी राजधानीमें चले गये तब एक दिन पार्थके साथ कृष्ण उपवनमें क्रीड़ा करनेको गया। और वहाँ उन दोनोंने सफल-मनोरथ होनेके कारण अतीव प्रसन्नताके साथ जल-कल्लोलोंसे खूब क्रीड़ा की। वे जल-क्रीड़ामें निमग्न हो रहे थे कि इतनेमें उधरसे जाते हुए और अपने मीठे वचनोंसे सबको सन्तुष्ट करनेवाले एक ब्राह्मणने अर्जुनसे कहा कि पार्थ, मुझे भोजन और उत्तम उत्तम वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट करो।

राजन्, मैं दावानल हूँ और आप कौरवोंके वीर पुत्र हैं। मैं चाहता हूँ कि आप अपने समर्थ सेवकोंको साथ लेकर मेरे इस वनको जला कर नष्ट कर दीजिए। उसके इन वचनोंको सुन कर उत्तरमें तेजस्वी पार्थने कहा कि आज न तो मेरे पास रथ है और न कोई धनुर्धर ही है। और मेरे सब कार्योंके साधक दिव्य शर भी मेरे पास नहीं हैं। यह सुन कर उस द्विजने अर्जुनको एक ऐसा रथ दिया जो वानरके लक्षणसे युक्त था और शत्रु जिसको जीत नहीं सकते थे। इसके बाद फिर उस द्विज-वेष-धारी देवने मुसकरा कर अर्जुनको वन्हि, वारि, भुजंग, तार्क्ष्य, मेघ और वायु आदि बाण दिये। नारायणको उसने गदा और गरुड़की धुजासे चिन्हित एक रथ दिया और नाना कार्य करनेवाले बहुतसे रत्न नारायणकी भेंट किये। इस समय इन बाणोंको पाकर पार्थने उस वनको जलानेके लिए एक बाण छोड़ा, जिससे भयभीत हुए वनेचर जन्तुओंको जलाता हुआ दावानल धीरे धीरे सारे वनको घेर कर सब ओरसे वनको जलाने लगा। पक्षी, साँप, हाथी, सिंह और मृगों आदिको जलाती हुई वह आगकी ज्वाला आकाशमें बहुत ऊँचे तक जाने लगी। उसने थोड़ी ही देरमें सारे वृक्ष और तृण-समूहको जला कर खाकमें मिला दिया। सच है जब भूखा यम क्रोध करता है तब देव-दानव और मनुष्य आदि किसीको भी वह नहीं छोड़ता। इसके बाद अर्जुनको एक बाण देते हुए उस द्विजने कहा कि इस बाणके प्रभावसे जिस वस्तुको आप चाहें जला सकते हैं और निश्चय रक्खें कि जिसको आप जला देंगे उसको फिर न तो सुरेन्द्र बचा सकता है और न यम ही।

इस प्रकार सारे वनके समस्त जीव-जन्तुओंको जलते हुए देख कर एक तक्षक नाम नागको बड़ा भारी क्रोध आया और उसने सब देवतोंको निमंत्रित किया। उससे क्रोधमें आकर सब देवता यह कहते हुए दौड़े आये कि महानुभाव पार्थ,

ठहरिए। अब तुम हमारे क्रोधसे बच कर जाओगे कहाँ ? हम तुम्हें कहीं छोड़नेके नहीं। यह कह कर उन देवोंने सारे गगन-मंडलको मेघोंसे भर दिया। काजलके जैसे काले वे मेघ महान् ध्वनि करते हुए गर्जने लगे। उनको गर्जते हुए देख कर अर्जुनने बिजलियोंको दिखाते हुए कृष्ण कहा कि देखिए मैं इस मेघमालाको एक ही बाणसे अभी उड़ाये देता हूँ। मैं सुरोंकी इस मेघविद्याको एक ही बाणके द्वारा अभी छेदे डालता हूँ। इसके बाद वह दावानलसे बोला कि हे दावानल, तुम यथेष्ट रीतिसे विहार करो। तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तुम्हारे साथ द्वेष करनेवाले या तुम्हारी भक्षक इस मेघमालाको तो मैं अभी नष्ट किये देता हूँ। इतना कह कर अर्जुनने गांडीव धनुष हाथमें उठाया और उसे चढ़ा कर उसने उसकी टंकार की, जिसको सुन कर सारा जगत बहिरा हो गया और धनुषकी यमके हुंकार जैसी ध्वनिको सुन कर अर्जुनको डरानेके लिए देव-गण बोले कि अर्जुन, कपटसे वनको जला कर तुम हम जैसे विक्रमशाली देवोंसे बच कर कहाँ रहोगे ? गरुड़के आगे बलवान साँपकी भी क्या चल सकती है ?।

इसके बाद देवोंने क्षुब्ध होकर धारासार जलकी बरसा की और थोड़ी ही देरमें सारी पृथ्वीको जलमय कर दिया। उन्हें अर्जुनकी वनको जला डालनेकी इच्छाको नष्ट करना था। यह देख अर्जुनने शर-समूहके द्वारा एक उत्तम मंडप रचा और पानीकी एक बूँद भी दावानल पर नहीं पड़ने दी, जिससे दावानल न बुझ कर बढ़ता ही गया। अन्तमें देवतोंने और अधिक बरसा की पर उससे भी वह दावानल शान्त नहीं हुआ।

इसी समय क्रोधमें आकर कृष्णने वायु बाण छोड़ा, जिससे उन मेघोंको बड़ा त्रास हुआ और साथ ही अर्जुनने बाण चलाये, जिससे बातकी बातमें सब मेघ नष्ट हो गये; जैसे कि गरुड़के मारे पूर्ण बलशाली फणेश्वर भी भाग जाते हैं। तब अर्जुनसे इस प्रकार तिरस्कृत होकर देवगण महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्रके पास गये। और इन्द्रसे उन्होंने अपना सारा हाल कह कर कहा कि देव, आपके क्रीड़ा करनेके योग्य, सुंदर वृक्षावलीसे सुशोभित खांडव वनको अर्जुनने जला कर खाक कर दिया है। हम लोगोंने उसके बचानेका बहुत कुछ उपाय किया; परंतु उस मानीने हमें वहाँसे मार भगाया और हमारा बड़ा तिरस्कार किया, जिससे भयातुर होकर हम सब आपकी शरणमें आये हैं। यह सुन कर इन्द्रको बड़ा क्रोध आया। वह उद्विग्न हुआ। इसके बाद वह ऐरावत हाथीको

सजा कर रणके लिए तैयार हुआ उसकी रणभेरीको सुन कर आये हुए देवगणको उसने चलनेके लिए आदेश दिया और वह स्वयं भी हाथमें वज्र लेकर चला। परन्तु इस समय अकस्मात् यह आकाशवाणी हुई कि "सुरेश, स्वर्गको छोड़ कर देवतोंके साथ कहाँ जाते हो। तुम अर्जुनके लिए कुछ भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते। क्योंकि वह उसी-पवित्र वंशका है, जिस वंशमें प्रसिद्ध और तीन लोकके स्वामी नेमिप्रभु, कृष्ण नारायण और पांडव जैसे महान् पुरुष पैदा हुए हैं। इस लिए तुम अपना हठ छोड़ कर आनन्दसे अपने स्थान पर ही रहो।" यह सुन कर सुरेन्द्र अपने स्थान पर ही रह गया। उधर अर्जुन भी सब विघ्नोंको दूर करके प्रेमके साथ हस्तिनापुर चला आया। एवं उत्कंठित कृष्ण भी प्रमोदके साथ अपनी नगरीमें आ गये। अपनी राजधानीमें पहुँच कर अर्जुन सुभद्राके साथ रमता हुआ दिव्य भोगोंको भोगने लगा। इसके कुछ काल बाद उसके सुभद्राके गर्भसे पुत्र रत्नका जन्म हुआ। वह सब उत्तम लक्षणोंसे युक्त था। उसका नाम अभिमन्यु था।

एक समय दुष्टबुद्धि दुर्योधनने कपटसे पांडवोंको बुलाया और स्नेह-वचनों द्वारा धीर-बुद्धि युधिष्ठिरसे कहा कि कौन्तेय, आइए, हम आप दिल वहलानेके लिए अक्षक्रीड़ा करें—जूआ खेलें। यह कह कर कौरवाग्रणी दुर्योधनने युधिष्ठिरके साथ जूआ खेलना शुरू किया। कपटसे कौरव जो पासे फेंकते थे वे उनके अनुकूल ही पड़ते थे। देख कर ऐसा जान पडता था मानों अच्छी तरहसे सिखाये गये दोनों पासे कौरवोंके आज्ञा-धारी सेवक ही है। और वे जो कभी भीमके हुंकारके मारे इधर उधर जाकर पडते थे उससे ऐसा जान पडता था मानों भीमके नादके डरके मारे वे स्थिर ही नहीं होने पाते; किन्तु इधर उधर जाकर उल्टे पड जाते हैं। यह देख कौरवोंने किसी वहानेसे भीमको महलसे वाहर भेज दिया और उन छलियोंने अब पूरे कपटसे द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ की; और थोड़े ही समयमें छली दुर्योधनने छलसे धर्मात्मा युधिष्ठिरको जीत लिया। युधिष्ठिर अपना सर्वस्व हार गये। उन्होंने बाजूबंद, कुंडल, विशाल हार, सोनेके कंकण, धन-धान्य, रत्न-मुकुट आदि और समस्त देश, घोडे, हाथी, रथ, योद्धा वगैरह सब धन-सम्पत्ति जूआमें हार दी।

यहाँ तक कि सुखको देनेवाली तमाम वस्तुएँ हार कर भी युधिष्ठिरने द्यूतक्रीड़ा बंद न की। अन्तमें वे अपनी रानियों और प्यारे भाइयोंको भी दाव पर

रखनेको तैयार हो गये। इतनेमें ही हुंकार करता हुआ भीम वहाँ आ पहुँचा और सारी सम्पत्तिको हारी हुई तथा बाकीको दाव पर रक्खी हुई देख कर उसने भयभीत हो युधिष्ठिरसे कहा कि पूज्य भाईसाहब, यह क्या है? तुमने सारी हानि करनेवाला यह जूआ काहेको शुरू किया। क्या आपको नहीं मालूम है कि इस जूआसे सारा यश नष्ट हो जाता है और सारे संसारमें बदनामी होती है। इससे पद पद पर हानि भोगनी पड़ती है। महाराज, यह द्यूत सभी अनर्थोंका मूल है और इस लोकका बिगाड़नेवाला तो है ही, परन्तु एक क्षण भरमें जीवोंके परलोकको भी बिगाड़ देता है।

यह सब व्यसनोंमें प्रधान है, दुर्द्धर दुःखोंका दाता है। विद्वान् मुनिजनोंने इसी लिए इसे भी मदिराकी नाँई बिल्कुल ही हेय बताया है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि इसके समान संसारमें न तो कोई पाप है, न हुआ और न होगा। भीमके ऐसे उत्तम वचनोंको सुन कर युधिष्ठिर क्षुब्ध हो उठे और जूआ खेलना उन्होंने बंद भी कर दिया; परन्तु इसके पहले ही वे बारह वर्षके लिए सारी पृथ्वीको पण पर रख कर हार चुके थे।

इसके बाद व्यथित मन हो युधिष्ठिर भीम आदिके साथ घरको चले आये। उनके घर पहुँचते ही दुर्योधनने एक दूतको उनके पास भेजा। दूतने आकर युधिष्ठिरको प्रणाम किया और कहा कि हे महीनाथ, मेरे मुखसे दुर्योधन महाराज कहते हैं कि बारह वर्षके लिए आप यहाँसे चले जायँ; क्योंकि यहाँ रहनेमें आपका हित नहीं है। आप अपना भला चाहते हैं तो आपको बारह साल तक वनमें रहना चाहिए और सो भी इस तरह कि जिसमें इतने दिनों तक कोई आप लोगोंका नाम भी न सुन सके। कहनेका मतलब यह है कि आपको इसीमें सुख है कि आप वनवास स्वीकार करें। आप लोग आज ही रात यहाँसे चले जायँ, नहीं तो आप लोगोंको संताप भोगना पड़ेगा। दूत इतना निवेदन करके चला गया।

इधर दुष्ट दुःशासन द्रोपदीके महलमें आकर, द्रौपदीकी चोटी पकड़ उसे महलसे बाहर खींच लाया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों उसने कमल-वनमें रहनेवाली महान लक्ष्मीको ही कमल-वनसे निकाल लिया है। यह हाल देख भीष्म पितामहने कौरवोंसे कहा कि यह आप लोग अच्छा नहीं करते। इससे सारे संसारमें तुम्हारी अपकीर्ति होगी। काम वह करो, जिससे

संसार भरमें तुम्हारा यश विस्तृत हो । देखो, यह तुम्हारे भाईकी स्त्री है, पवित्र है, जिसको कि तुमने घरसे निकाल कर बाहिर कर दिया है । विश्वास रक्खो कि जो कोई अपनी भौजाईका तिरस्कार करता है उसे दुर्गतिके दुःसह अनन्त दुःख झेलने पड़ते हैं ।

अपनी इस दुर्दशासे दुःखी हो आँसू बहाती और रोती हुई द्रौपदीने पांडवोंके पास आकर कहा कि देखिए जितना आप लोगोंका तिरस्कार हुआ है उससे भी अधिक—चोटी पकड़ कर खींची जानेके कारण—मेरा हुआ है । हाय, जिसके आगे मेरा सिर कभी खुला नहीं रहा उसीने मेरा सिर खोल कर चोटी खींची । बतलाइए अब मेरा बचा ही क्या ! यमके जैसे दुष्ट दुःशासनके आगे मैं कर ही क्या सकती थी । उसने मेरी सब इज्जत ले ली । द्रौपदीने भीमको सम्बोधित करके कहा कि हा भीम, यह मैं जान चुकी कि मेरे इस अपमानका बदला तुम्हारे बिना कोई नहीं ले सकता । किसीमें ऐसी सामर्थ्य नहीं जो इस पराभवको दूर करे । द्रौपदीके ऐसे तिरस्कार भरे वाक्योंको सुन कर क्रोधमें आकर भीमने युधिष्ठिरसे कहा कि स्वामिन्, मैं आज शत्रुओंके कुलको जड़ मूलसे उखाड़े फेंके देता हूँ । द्रौपदीके इस तिरस्कारको न सह सकनेके कारण पार्थ भी उठा । यह देख कर युधिष्ठिरने कहा कि यह हम लोगोंके लिए उचित नहीं है । जिस तरह वायुके वेगसे क्षोभित होने पर भी समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता उसी तरह ही महान् पुरुष भी किसी भी अवस्थामें अपनी मर्यादाको नहीं लाँघते । युधिष्ठिरने इस तरह समझा कर वचन-रूपी अंकुशसे भीम-रूपी मदोन्मत्त हाथीको अनर्थ करनेसे रोका और अर्जुनकी क्रोध-वन्हिको भी उसने वचनरूपी शीतल जलसे शान्त कर दिया । वह उन्हें समझाने लगे कि भाइयो, अभी कुछ समय धीरज रक्खो । बाद जब मैं समर्थ हो जाऊँगा तब शत्रु-कुलका अवश्य ही नाश करूँगा—इसमें तनिक सा भी सन्देह नहीं । परन्तु यह निश्चित है कि चाहे जो हो, अपने वचन नहीं हारूँगा । मेरे अद्भुत पराक्रमी वीर भाइयो, अब यहाँ रहनेकी मति छोड़ कर शीघ्र चल दो और वनमें जाकर डेरा डालो । अबसे हमें वन ही अपनी राजधानी बनानी होगी ।

युधिष्ठिरके इन वचनोंको सुन कर भीम, अर्जुन आदि चारों भाई मान छोड़ कर वन चलनेके लिए उठ खड़े हुए और अपने वियोगसे अतीव दुःखित अतएव रोती हुई जननी कुन्तीको विदुरके घर ही छोड़ गये । उन्होंने अपमानसे

दुःखी हुई द्रोपदीको भी वहीं छोड़ना चाहा, पर वह रूप-सौन्दर्यकी सीमा वहाँ नहीं ठहरी । वह उनके साथ ही वनको चली । धर्मात्मा पांडव मन-ही-मन भावनाओं पर विचार करते हुए द्रोपदीकी गतिके अनुसार मंद मंद चले जाते थे। वे वन, उपवन, शिला और पहाड़की चोटी पर सिंहकी नाँई निर्भय हो कर वास करते थे । वे मार्गमें जो फले हुए वृक्ष मिलते थे उनके फलोंको खाते, रास्तेमें पड़नेवाली नदियोंका पानी पीते और वल्कलोंके वस्त्र पहिनते थे ।

इसके बाद वे मार्गके कष्टोंको सहते हुए पहाड़ों आदि विषम स्थलोंको लाँघ कर भाँति भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित कालिंजर नामके वनमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने एक ऐसा वरगदका पेड़ देखा, जो पत्तों और डालियोंसे खूब छायादार था । उसे देख कर भूख-प्याससे थके हुए पांडव उसके नीचे घनी छायावाली भूमिमें आराम करनेके लिए ठहर गये ।

जूआ नरकका रास्ता है, दुःख-रूपी साँपका बिल है, धर्मका विध्वंसक है, सब दोषोंका स्थान है, पराभवको देता है, आपत्तिका समुद्र है और हित-अहितके विवेकको भुला देनेवाला है । इस लिए सुखके चाहनेवालोंको उससे सदा दूर ही रहना चाहिए ।

और भी देखो कि यह द्यूतकर्म दुर्गतिको देनेवाला है, झूठ तथा पापका खजाना है । माँस मदिराकी रुचिको बढ़ाता है, अत एव शिकारमें प्रवृत्ति कराता है, वेश्या और परस्त्रीकी चाहको बढ़ाता है और चोरीकी शिक्षा देता है । इसकी संगतिसे जीवोंकी लोलुपता बढ़ जाती है । मतलब यह कि यह सभी व्यसनोंमें प्रवृति कराता है । और इसी कारणसे आचार्योंने इसे सारे व्यसनोंमें प्रधान बताया है, अतः उत्तम पुरुषको इसका नाम भी नहीं लेना चाहिए ।

देखो, यह सब इसी जूआका ही प्रभाव है कि जिसके निमित्तसे उपमा-रहित प्रवीण पांडव भी अपने देशसे भ्रष्ट होकर व्याघ्र, साँप वगैरहके निवास-स्थान वनमें रहे और सो भी आहार आदिके बिना दारुण दुःखोंको सहते हुए । अतः महान महान पुरुषोंको भी दारुण दुःखोंमें डालनेवाले इस दुष्ट कर्मको चेष्टाकी धिकार है और यह सब अनर्थोंका मूल छोड़ने योग्य है ।

अठारहवाँ अध्याय ।

उन वासुपूज्य तीर्थेश्वरको प्रणाम है जो वसुपूज्यके पुत्र हैं, इन्द्र, नरेन्द्र आदि जिनकी पूजा-स्तुति करते हैं और जिनके प्रसादसे जीव स्वयं भी पूज्य बन जाते हैं। वे प्रभु मुझे संसार-समुद्रसे पार करें।

इसके बाद जहाँ पांडव ठहरे हुए थे, वहाँ एक मुनियोंका संघ आ गया। वह सब गुण-सम्पन्न था, निर्मल-बुद्धिका धारक था, ईर्यापथ शुद्धिका पालक था, परिग्रह-रहित और शीलसे विभूषित था। उसको देख कर पांडव बहुत हर्षित हुए; और वे धर्मात्मा उसी वक्त मुनियोंकी वन्दनाके लिए गये तथा उन्हें विनीत भावसे प्रणाम कर उनके आगे बैठ गये।

इसके बाद विचार-चतुर युधिष्ठिरने मन-ही-मन विचार किया कि मेरे पापका बड़ा उदय है और उसीका प्रेरा हुआ मैं वनमें बस रहा हूँ। इस समय मैं अपने कर्तव्यको कैसे निवाह सकता हूँ; जब कि मैं स्वयं यहाँ फलों पर निर्भर रह कर ज्यों त्यों अपने कुदिनोंको बिता रहा हूँ। मेरे पास कुछ धन भी नहीं है। तब ऐसी हालत में इन महात्मा मुनिजनोंको दान कैसे दूँ और जन्म सफल करूँ। मुर्दे जैसे मुझ गरीबका यह जीवन धिक्कारका पात्र है। मुनि-दानके बिना दिये जीते रहनेसे तो कहीं मरना ही अच्छा है।

युधिष्ठिर इसी चिन्तामें उलझ रहे थे। उन्हें इस प्रकार चिंतित देख कर संघ-नायक महामुनिने उनसे कहा कि युधिष्ठिर, जब कि तुम संसारकी हालतको जानते समझते हो तब तुम्हें इस सम्बन्धमें तनिकसा भी विषाद और खेद नहीं करना चाहिए। विनयके आगार और वात्सल्यके भंडार भव्य, तुम देखो कि हमारा तुम्हारा जो समागम हो गया है यह भी एक भारी धर्मका वैभव है, इसे तुम कुछ थोड़ा न समझो। और एक बात यह है कि यहाँसे आगे तुम्हें और भी बड़े बड़े कष्ट होंगे; परन्तु तुम उससे विचलित न होकर उन्हें शान्तिसे सह लेना।

इसके बाद वह मुनियोंका संघ तो सिंह, शार्दूल आदिके निवास-स्थान और महान उन्नत सद्गिरि नाम पहाड़ पर चला गया और न्यायके ज्ञाता तथा गंभीराशय पांडव धर्म द्वारा अपना समय बिताते हुए बहुत दिनों तक वहीं रहे।

एक समय रूप-सौन्दर्यशाली अर्जुन, हाथमें गांडीव धनुष ले इन्द्र-क्रीड़ा-के लिए निकला। उस समय उस निर्भयने किसी भयंकर रास्तेमें जाते हुए

एक मनोहर नामके मनोहर पहाड़को देखा। देखनेकी इच्छासे वह उस पर चढ़ गया। वहाँसे उसने बड़े बड़े विशाल पत्थरों और वृक्षोंसे विषम पृथ्वी तलको देखा। इसके बाद वह जोरसे चिल्ला कर बोला कि इस पहाड़ पर कोई देव, विद्याधर या मनुष्य है ? यदि हो तो वह मेरे सामने आवे और मुझे कोई ऐसा उपाय बतावे जिससे मेरा अभीष्ट सिद्ध हो; और अन्य जनोंके सब मनोरथोंको साधनेवाले पदार्थोंकी सिद्धि हो । इसके उत्तरमें आकाशमें फैलती हुई आकाशवाणी हुई कि पार्थ, मेरी बात एकाग्र चित्तसे सुनो ।

इसी भरत क्षेत्रमें वैताढ्य नाम एक पहाड़ है । उसकी दो श्रेणियाँ हैं। एक उत्तरश्रेणी और दूसरी दक्षिणश्रेणी । आप वहाँ जाइए। वहाँ अतिशीघ्र ही आपको जयलक्ष्मी अपनावेगी और आपके सौ ऐसे शिष्य होंगे जो आपके सभी मनोरथोंको साधेंगे। परन्तु वहाँ आपको पाँच साल तक रहना चाहिए। निश्चय रखिए कि इसके बाद नियमसे आपका आपके बान्धवोंके साथ समागम होगा । इस आकाशवाणीको सुन कर अर्जुनको बड़ी खुशी हुई। वह बैठा ही था कि इतनेमें वहाँ एक भील आ गया। उसका शरीर भौंरे जैसा काला और लम्बा था। उसका मुँह और ओंठ सूखे हुए थे । वह वातुल था, दन्तुर था, काले केशोंवाला था। वह एक हाथमें प्रचंड अखंड धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये था । और उसे चढ़ानेके कारण उसके नेत्र रक्त जैसे लाल हो रहे थे।

सारांश यह है कि वह बड़ा भयंकर मूर्ति था। उसको देख कर अर्जुनने कहा कि वनेचर, यह धनुष मेरे योग्य है, इस लिए इसे तुम मुझे दे दो। तुम व्यर्थका भार क्यों लिये फिरते हो। ऐसा उत्तम धनुष महान पुरुषोंके ही हाथमें शोभा देता है। तुम व्यर्थ ही अपने आपको कष्टमें काहेके लिए डाल रहे हो अर्जुनकी इन बातोंसे तो उसे बड़ा क्रोध आया और वह उसके विरुद्ध खड़ा हो गया। उसने आकाशमें मेघकी नाँई गर्जनेवाले धनुषका टंकार किया और उस पर बाण चढ़ाया । इस समय उसके धनुषकी आवाज सुन कर सारे वनेचरोंके दिल दहल गये ।

इसके बाद धनंजय और वह भील दोनों ही युद्धके लिए आमने सामने खड़े हुए। उन शूरवीरोंमें परस्परमें खूब ही तीव्र प्रहारों द्वारा युद्ध छिड़ा । कर्ण पर्यन्त डोरीको खींच खींच कर छोड़े गये तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा उनमें खूब युद्ध

हुआ। दोनों ओरसे इतने बाण छोड़े गये कि उनके द्वारा उन दोनोंके बीचमें एक मंडपसा बन गया। वह ऐसा शोभने लगा मानों भग्नहृदय पुरुषोंके लिए आश्रय ही खड़ा किया गया है। इस समय क्रोधके आवेशमें आकर उस भील पर अर्जुनने जो जो बाण छोड़े उस भीलने उन सबको ही व्यर्थ कर दिया। उसे दुर्जय देख कर अर्जुनने धनुष-बाण तो छोड़ दिया और वह बाहु-युद्ध करनेके लिए उस पर झपटा।

तब रण-कुशल और तेजस्वी वे दोनों बाहुदण्डोंके द्वारा परस्परमें भिड़ते हुए ऐसे जान पड़े मानों दो मल्ल स्नेहमें आकर एक दूसरेका आलिंगन ही करते हैं। परन्तु इस बाहुयुद्धमें भी जब पार्थ उस पर विजय न पा सका तब वह उसे सर्वथा अजय्य समझ कर कुछ हतोत्साह सा हुआ। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी। इसके बाद उसने बड़े साहसके साथ चटसे उस किरातके दोनों पाँव पकड़ कर उसे मस्तककी ओरसे चारों ओर खूब घुमा डाला। तब बचारे भील पर बड़ी विपत्ति आई और कुछ समयमें ही उसके प्राण शिथिल हो गये।

इसके बाद अर्जुन उसे पृथ्वी पर पछाड़ना ही चाहता था कि वह विकट महाभट प्रकट होकर भूषणोंसे विभूषित एक दिव्य रूपमें देख पड़ा। उसने पृथ्वी तक मस्तक झुका कर विनयके साथ अर्जुनको नमस्कार किया और कहा कि नराधीश, मैं तुम्हारे ऊपर अतीव प्रसन्न हूँ। अतः तुम चाहो जो दिव्य वर माँगो। मैं इस समय तुम्हें सब कुछ देनेको तैयार हूँ। उसकी बातें सुन कर परमार्थके ज्ञाता अर्जुनने उत्तर दिया कि अच्छा मैं यही चाहता हूँ कि तुम मेरे सारथी बनो। इसके उत्तरमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उस विद्याधरने कहा कि तुम जो कहते हो मुझे वह स्वीकार है। उसके ऐसे प्रतिज्ञा-बद्ध शब्दोंको सुन कर पार्थको बड़ा संतोष हुआ और उसने प्रेमभरे शब्दोंमें उससे पूछा कि भाई, तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और तुमने यह युद्ध किस मतलबसे किया था? उत्तरमें विद्याधरने कहा कि प्रभो, सुनिए। मै युद्धका कारण तुम्हें बताता हूँ।

इसी भरत-क्षेत्रमें एक विजयार्द्ध नाम मनोहर पहाड़ है। वह इतना ऊँचा है कि उसके शिखर आकाशको छूते हैं। जान पड़ता है कि वह पृथ्वी और आकाशके बीचको नाँपनेके लिए ही इतना ऊँचा उठा हुआ है।

उसकी दक्षिण श्रेणीमें एक रथनूपुर नाम उत्तम नगर है, जो कि अपने विशाल कोटसे स्वर्गके विमानोंकी भी तर्जना करता है। वहाँका राजा विद्युत्प्रभ

था । वह नमिके वंशका था । वह कान्तिशाली और विद्याओंके विधानसे विशुद्ध आत्माका धारक था । वह विद्याधर था । उसके पुत्रका नाम इन्द्र है । वह स्फूर्तिवान् और बड़ा शक्तिशाली है । इसके सिवा उसका एक पुत्र और भी है। उसका नाम विद्युन्माली है । वह शत्रु-सन्ततिका बड़ा भयानक शत्रु है । एक दिन क्षणमें नष्ट होनेवाले बादलोंको देख कर विद्युत्प्रभ संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो गया, अत एव इन्द्रको राज-पाट और विद्युन्मालीको युवराज-पद देकर वह स्वयं निःशल्य हो, दीक्षित हो गया ।

इसके बाद युवराज विद्युन्मालीने प्रजा पर बड़ा अन्याय करना आरम्भ किया । वह कभी नगरके लोगोंकी स्त्रियोंको पकड़ लेता, कभी उनका धन हरण कर लेता और कभी उन्हें और और संकट देता । सारांश यह कि वह सब तरह प्रजाको दुःख देता था । अखिर परिणाम यह हुआ कि उसके मारे सारे नगरमें उपद्रव ही उपद्रव मच गया । यह देख उसे एक दिन इन्द्रने एकान्तमें बुला कर कुछ उचित सीख दी । परन्तु उसका विद्युन्माली पर विपरीत ही प्रभाव पड़ा, जिससे वह इन्द्रसे भी विमुख हो गया; और मदसे मत्त हो उससे वैर रखने लगा । इसके बाद वह क्रोधमें आ नगरी छोड़ कर ही चला गया और बाहिर रह कर लोगोंको लूटने-खसोटने लगा । वहाँसे कुछ दिनोंमें वह खरदूषणके वंशके लोगोंके साथ स्वर्णपुरमें जाकर वहीं रहने लगा ।

इस प्रकार जब इन्द्रको शत्रुकी ओरसे अत्यधिक संताप पहुँचा तब उसे राहुके द्वारा ग्रसे गये चंद्रमाकी भाँति क्षणभरके लिए भी सुख पाना कठिन हो गया । वह हमेशा ही चिन्तासे व्यग्र रहने लगा और यही कारण है कि भयके मारे वह अब नगरीके फाटक बन्द करवाये रहता है और गुप्त रीतिसे अपने दिन बिताता है ।

महाराज, मैं उसी इन्द्रके सेवकका एक पुत्र हूँ, जिसका नाम विशालाक्ष है; और मेरा नाम चन्द्रशेखर है । अतः पिताके स्वामीको इस तरह चिन्तासे संतप्त और शोकाकुल देख कर मुझसे नहीं रहा गया । और इसी कारण मैंने एक निमित्तज्ञानीको प्रणाम कर विनयके साथ पूछा कि विभो, इन्द्रके शत्रुदलका नाश कैसे और कब होगा । उत्तरमें उन निमित्तज्ञानीने कहा कि जो मनोहर गिरि पर तुझे जीतेगा वही पार्थ धनुर्धर इन्द्रके शत्रुओंका भी संहार करेगा । बस, प्रभो, उस नैमित्तिकके वचनों पर विश्वास करके ही मैं गुप्त वेशमें इस

गिरि पर रहता हूँ। स्वामिन्, पुण्ययोगसे आज मुझे आप जैसे महामति पुरुषोंके दर्शन भी मिल गये हैं, जिसके लिए कि मैं बहुत दिनोंसे लालायित था। अब अन्तमें आपसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि आप मेरे साथ चलिए और अपना कर्तव्य कीजिए। इसके बाद वे दोनों फहराती हुई धुजाओंवाले एक व्योमयानमें बैठ कर वहाँसे चल दिये। जिस विमान पर वे सवार थे वह बड़ी तेजीसे चलता था और रण-घन्टाके शब्दसे शब्दमय किया जा रहा था।

वे थोड़ी ही देरमें विजयार्द्ध महागिरि पर पहुँच गये। उनके आनेका हाल सुन कर इन्द्र सन्मुख आकर उनसे बड़े स्नेहके साथ मिला। उधर इन्द्रके शत्रुओंको ज्यों ही पार्थके आनेकी खबर लगी त्यों ही वे विमानों पर सवार हो-हो कर आये और उन्होंने सब दिशाओंको घेर लिया। यह देख कर अर्जुन खेवटियाकी भाँति इन्द्रके साथ विमानमें बैठ शत्रुओंके सामने गया और उसने रण-घोषणा कर दी।

जिसको सुन कर प्रचंड धनुषधारी रण-कुशल शत्रु पार्थ धनुर्धरके साथ युद्धके लिए तैयार हुए और उन्होंने उसके साथ युद्ध छेड़ दिया। वह युद्ध इतना भीषण था कि जिससे पार्थको भी यह पता चल गया कि शत्रु सामान्य शस्त्रसे नहीं जीते जा सकेंगे; किन्तु दिव्य शस्त्रसे पराजित होंगे। अतः उसने दिव्यास्त्रके द्वारा कितने ही शत्रुओंको नागपाशसे बाँध लिया, बहुतोंको जला कर भस्म कर दिया और बहुतोंको अर्द्धचन्द्र बाण द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्तमें वह इन्द्रको शत्रु-रहित करके नगाड़ोंकी आवाजके साथ-साथ रथनूपुर चला आया। इस समय रथनूपुरकी स्त्रियोंने घर घरमें मंगल गीत गाये और धनंजयकी जयके समाचार दिगंगनाओंके कानों तक पहुँचाये। गाथकोंने पांडवोंके वंशकी तारीफ की और उसका यश वर्णन किया तथा मद-रहित हुए सब विद्याधरोंने भक्तिभावसे पार्थकी पूजा-प्रशंसा की।

इसके बाद अर्जुन बहुतसे विद्याधरोंको साथ लेकर विजयार्द्धकी दोनों श्रेणियोंको देखनेके लिए गया और थोडे ही समयमें उन्हें देख कर वह वापिस रथनूपुरमें आ गया।

इसके बाद उसने विद्याधरोंके आग्रहसे गंधर्व आदि मित्रोंके साथ वहाँ पाँच साल बिताये और बाद वह वहाँसे मित्रों सहित चला आया। उस यशस्वीके साथ ही धनुषविद्या सीखनेवाले चित्रांगद आदि उसके सौ शिष्य भी चले

आये । वह वहाँ आया जहाँ उसके भाई युधिष्ठिर आदि ठहरे हुए थे । उन्हें देख कर वह विमानसे उतरा और उसने उन्हें भक्तिभावसे यथायोग्य नमस्कार किया ।

जबसे अर्जुन चला गया तबसे उसके वियोगसे पांडव बड़े दुःखी हो रहे थे । अतः उसके समागमसे उन्हें भी बड़ा हर्ष हुआ । कौन ऐसा पुरुष है जिसे अपने बन्धुके समागमसे सुख न हो ।

इसके बाद पुण्यात्मा पार्थ जाकर प्रणयवती द्रोपदीसे मिला । उससे मिल कर उस प्रतापीको बहुत शान्ति मिली ।

इस समय धनुष-विद्या-कुशल चित्रांगद आदि सत्पुरुष विद्याधर भक्तिसे सदा धनंजयकी सेवामें उपस्थित रहते थे तथा महामान्य और विज्ञानी युधिष्ठिरकी आज्ञाको भी शिरोधार्य करते थे ।

उधर एक दिन दुर्योधनको खबर लगी कि न्याय-मार्ग-गामी पांडव सहाय वनमें आ गये हैं । यह सुन उसे बड़ा क्रोध आया और वह बहुत सी सेनाको साथ लेकर उनको मार डालनेके लिए निकला ।

इसी समय इस बातकी खबर देनेके लिए ऋषितुल्य संयमी नारद चित्रांगदके पास आये । वे उससे बोले कि चित्रांगद, तुम वैरियोंसे भरे हुए और भयावने इस जंगलमें किस लिए रहते हो । उन्होंने गंधर्व आदिको भी सम्बोधित करके कहा कि कुछ समझमें नहीं आता कि तुम लोग इन वनवासी पांडवोंकी सेवामें ऐसे क्यों लीन हो रहे हो । यह सुन कर चित्रांगदने कहा कि प्रभो, महापुरुष धनंजय हमारा गुरु है । इस महाभागने वैरियोंको वारण करके इन्द्रको राज-गादी पर बैठाया है, अतः यह हमारा स्वामी है और हम सब सदाके लिए इसके सेवक हैं । यह सुन नारदने कहा कि देखो, अभी यहाँ दुर्जय दुर्योधन आ रहा है । इस लिए हम तुम्हारा सच्चा शिष्यपना तभी समझेंगे जब कि तुम लोग एक क्षणमें ही उसे साथियों सहित मार भगाओगे और यमका घर दिखा दोगे । नहीं तो तुम्हारा यह गाल-फुलाना किसी भी कामका नहीं कि हम अर्जुनके बड़े सेवक हैं ।

क्या तुम लोग मुझे जानते हो, यदि नहीं जानते तो सुनो, मै आजन्म ब्रह्मचारी—स्त्रीके नामसे भी विमुख—और धर्मकर्ममें लीन रहनेवाला नारद हूँ । देखो, भीष्म पितामह महान बुद्धिशाली और बड़े पराक्रमी हैं ।

परंतु ये कलहकारी कौरव उनकी भी सीख नहीं मानते और न ये अपने परम गुरु द्रोणाचार्य और चाचा विदुरकी बात सुनते हैं। ये उन्मार्ग-गामी जो जीमें आता है वही वैर-विरोधका काम कर बैठते हैं। ये न्याय-शून्य अपनी मन-मानी कर यहाँ युद्धके लिए आ रहे हैं। इस लिए भक्तिवत्सल और रणको आतिथ्य देनेवाले आप लोग भी युद्धके लिए तैयार हो जाइए।

नारदके इन उत्तेजक वचनोंको सुन कर चित्रांगद क्रोधसे लाल हो उठा और वैरी-रूपी-जंगलके लिए दावानलके जैसे उस वीर योद्धाने उसी समय गर्वके साथ रणके लिए तैयारी कर दी।

इसी समय उधरसे दुर्योधनकी चतुरंग सेना भी सज कर युद्धके लिए आ गई। इसमें दुर्योधनके सब भाई थे और वे जी-जानसे युद्धका प्रयत्न करते थे।

दुर्योधनकी सेनाको देख कर चित्रांगद क्रोधसे संतप्त हो उठा और उसके मनमें नाना प्रकारकी तरंगें उठने लगीं। वह स्वच्छ यशशाली गंधर्वके साथ ही शत्रु पर टूट पड़ा। यह देख दुर्योधनके सेना-समुद्रमें बड़ा क्षोभ मच गया। देखते देखते ही उस विचित्र योद्धाने—जैसे अगस्त ऋषिने समुद्रको सुखा दिया था वैसे ही उस—सारे सेना-समुद्रको सुखा दिया।

अपने पक्षकी सेनाको इस तरह नाश होती हुई देख कर बलशाली दुष्ट-चित्त शल्य, विशल्य और दुःशासन आदि योद्धा युद्धके लिए उठे। उन्होंने खूब जोरसे बाण चलाना शुरू किया। परन्तु उधर चित्रांगद उनके छोड़े हुए बाणोंको अपने शर-कौशलसे छिन्न-भिन्न करता जाता था। इस तरह रणकी लालसा रखनेवाले दोनों ओरके वीरोंमें परस्पर खूब बाणोंकी मारा-मार हुई, जिसमें हजारोंको तो प्राणोंसे हाथ धो बैठना पड़ा। इस युद्धमें योद्धागण महान तीक्ष्ण बाणों, गदाओं, भालों और तीक्ष्ण तलवारोंके द्वारा एक दूसरेसे घोर युद्ध कर रहे थे। इस रणमें मूशलोंकी मारसे कितने ही युद्ध-कुशल प्राणोंको खोकर धराशायी हो गये थे। सच तो यह है कि ऐसा कोई भी अनिष्ट नहीं जो कि उस युद्धमें न हुआ हो।

कितने ही युद्ध-वीरोंके हृदय हलोंसे चिर गये थे। अतः वे पृथ्वी पर पड़े हुए ऐसे जान पड़ते थे मानों मूर्च्छाके कारण पृथ्वी पर सोये हुए ही हैं। इस समय जब गंधर्वने देखा कि कौरवोंके तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा मेरी सेना वेधी

जा रही है तब उसने मोहन-वाण छोड़ कर सब कौरवोंको मूर्च्छित कर दिया उनमें केवल अपयशका पात्र एक दुर्योधन ही होशमें रहा।

इस प्रकार अपनी सारी सेनाको मूर्च्छित देख कर दुर्योधन बड़ा घवड़ाया। वह तव अपनी मर्यादा भूल कर विह्वलसा हुआ रण-स्थलमें इधर उधर घूमने फिरने लगा। यह देख चित्रांगदने उसे ललकारा। फिर क्या था, उन दोनोंका तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा परस्परमें भीषण युद्ध होने लगा, जिसे देख कर देवोंने उन दोनोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

इस तरह चित्रांगदको युद्धमें धीरतासे डटा देख कर अर्जुनने उसकी खूब तारीफ की। उसने अपने और और शिष्योंको भी युद्धके लिए आदेश किया। इससे लक्ष्य वाँधनेमें प्रवीण गंधर्वको अच्छा मौका मिला। उसने उसी वक्त अपने शीघ्रगामी वाणोंके द्वारा वातकी वातमें ही दुर्योधनकी धुजाको छेद दिया और बड़ी वहादुरीके साथ वाण-प्रहार जारी रक्खा। अन्तमें उसने थोड़े ही समयमें उसके रथके घोड़ोंको वेध कर अपने अपूर्व पराक्रमसे रथको भी वे-काम कर दिया। इसके वाद वह धनुर्धर गंधर्व दुर्योधनसे वोला कि दुष्ट, तू अव भाग कर कहाँ जायगा? हे खल, तूने अपनी खलतासे सारे संसारको खल वना डाला है। पर अव तुझे देखता हूँ कि तू कैसा वहादुर है। अव मेरे मारे तू कहीं भी नहीं वचेगा। पाप-पण्डित, तूने अपनी दुर्जनतासे वहुतेक प्राणियोंका व्यर्थ ही वध किया है। देख, यह तुझे तेरे उसी पापका फल मिला है और उसीके कारणसे तू हथियार-रहित विल्कुल ही दीन वन गया है। इसके वाद उसने दुर्योधनको पशुकी नाँईं नागपाशसे वाँध लिया। यह देख डरके मारे उसके और और वीर-गण दिशारूपी स्त्रियोंकी शरणमें भाग गये। फिर उनका कुछ पता न चला।

इधर दुर्योधनको वाँध लेनेसे चंद्रमाके जैसा निर्मल गंधर्वका यश भी संसारमें फैल गया। लोग मुक्तकंठसे उसके गुण गाने लगे कि तू धन्य है जिसने कि दुर्योधन जैसे वीर शिरोमणिको भी वाँध लिया। सच है न्यायसे किसकी जीत नहीं होती। अर्थात् नीतिसे सभीकी विजय होती है। उधर दुर्यो-धनके पकड़े जाने पर सब योद्धा, सवार, महावत और हाथियों पर चढ़े हुए कौरव शोकसागरमें डूब गये। यह सब ही पापका फल है जो उसके योद्धा-ओंका इतना भारी अपमान हुआ।

उधर दुर्योधनकी स्त्री भानुमतीने ज्यों ही उसके पकड़े जानेकी खबर सुनी त्यों ही वह रोती हुई वहाँ आई । वह शोक-संतापमें बिल्कुल ही डूब रही थी और आँसुओंकी अविरल धारासे पृथ्वीतलको सींच रही थी। वह चित्रांगद आदिके पास आकर रोती हुई उनसे बोली कि हे वीरगण, आप लोग एक दूसरेके मुँहकी ओर ताकते हुए क्या बैठे हैं। बताइए कि आप लोगोंने जो मेरे स्वामीको बाँध लिया है इससे आपको क्या सुख और लाभ होगा। अत एव अच्छा हो यदि कौरवोंके अधीश्वर मेरे पतिदेवको आप छोड़ दें; अन्यथा आप लोगोंकी वड़ी अपकीर्ति होगी। और ऐसी हालतमें आप लोग कैसे शान्ति लाभ करेंगे और कौन आप लोगोंको अच्छा कहेगा।

भानुमतीको इस तरह विलाप करती हुई देख कर भीष्म पितामहने उसे आश्वासन दिया और कहा कि कृपापात्रे, तू क्यों इतनी घबरा रही है, और क्यों हर एकके पास जा-जा कर रोती है । देख, यदि तुझे अपने पतिको छुड़ाना ही है तो तू मेरा कहना मान और युधिष्ठिरकी शरणमें जा। वे तेरे दुरात्मा पतिको बंधनसे तुरंत छुटकारा दे देंगे । यद्यपि युधिष्ठिरके साथ तेरे पति दुर्योधनने वड़ा भारी अन्याय किया है; परन्तु फिर भी वह धर्म-बुद्धि है, अतः अपराधी कौरव राजोंको वह अवश्य क्षमा कर देगा । वह धीर सब राजोंको आपत्तिसे छुटकारा दिलानेके लिए समर्थ है। वह अपने दयालु स्वभावको कभी नहीं छोड़ता, अतः मुझे आशा तथा विश्वास है कि वह अवश्य ही दुर्योधनको छोड़ देगा।

पितामहकी बात मान कर भानुमती वहीं गई जहाँ अपने बन्धुवर्गके साथ युधिष्ठिर बैठे हुए थे। वहाँ पहुँच कर वह बोली कि दयाधीश, शान्त-चित्त और विवेकी राजन्, आप हम लोगोंके सब अपराधोंको भूल जाइए और सब सुखोंकी देनेवाली मुझे पतिकी भीख दया करके दीजिए।

उधर गंधर्व विद्याधर दुर्योधनको बाँध कर और रथमें बैठा कर इन्द्रपुरीके जैसी अपनी नगरीको ले गया। इस समाचारको सुन भीम बोला कि दुर्योधन पकड़ा गया यह अच्छा ही हुआ। इसमें शोक करनेकी बात ही क्या है। जिसका वध मुझे या तुम्हें करना था वह दूसरेके द्वारा हो गया। यह तो खुशीकी बात हुई। इस तरह हँसते हुए भीमको युधिष्ठिरने रोका और कहा कि भाई, उत्तम पुरुषोंका ऐसा स्वभाव होता है जो किसी हालतमें भी विकृत नहीं होता; किन्तु सदा

एक सा रहता है । देखो, जिस तरह राहुके द्वारा ग्रसे जाने पर भी चंद्रमा अपनी उज्ज्वलताको नहीं छोड़ता उसी तरह महान पुरुष भी दुर्जनोंके द्वारा कष्ट दिये जाने पर भी विकार भावको नहीं प्राप्त होते । इसके बाद धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पार्थसे कहा कि भाई, इसी समय दुर्योधनको छोड़ देनेका यत्न करो, जिससे संसारमें पांडवोंकी ऐसी अपकीर्ति न उड़ने पावे कि उन्होंने अपने कुटुम्बीके साथ ही ऐसा खोटा व्यवहार किया । तुम शीघ्र जाओ और वह मर न जाय इसके पहले ही छुड़ा कर उसे यहाँ ले आओ । उसके मर जानेसे पांडवोंकी भारी अपकीर्ति होगी । युधिष्ठिरके वचन शिरोधार्य कर अर्जुन उसी वक्त रथ पर सवार हो कर दौड़ा गया और गंधर्वके पास पहुँच कर उससे उसने कहा कि दुर्योधनको यहीं और अभी छोड़ दो, इसे न ले जाओ । यह सुन कर गंधर्वने अपने वीर्यको प्रगट करते हुए अर्जुनसे कहा कि हम इसे नहीं छोड़ेंगे । यदि तुममें ताकत हो तो अपनी अपूर्व धनुष-विद्याके बल पर छुड़ा लो ।

यह देख अर्जुनका एक शिष्य उससे विमुख हो, रथमें सवार हो कर उसीकी ओर दौड़ा । तब क्रोधमें आकर पार्थने शिष्यके साथ खूब युद्ध किया और देखते देखते बाणोंकी पंक्तिसे सारे आकाश-मंडलको ढँक दिया । यह देख शत्रु विद्याधरने यह कह कर कि आपके धनुर्वेदको देखता हूँ, हँसते हँसते अपने बाणोंसे धनंजयको ही प्रच्छन्न कर दिया ।

इसके बाद चित्रांगद भी रथमें सवार होकर युद्धके लिए उठा और अपने रथको लेकर अर्जुनकी और आया । उसे देख यह जान पड़ता था मानों वह अर्जुनके साथ महती क्रीड़ा करनेको ही आ रहा है ।

इस समय चित्रांगदने अर्जुनके ऊपर जो जो बाण चलाये उन्हें अर्जुनने मेघोंको नष्ट करनेवाले वायुकी भाँति बिल्कुल नष्ट कर दिया । तब वे क्रोधसे लाल होकर दोनों ही धनुर्धर दिव्य हथियारोंके द्वारा भीषण युद्ध करने लगे, जिसको देख कर डरपोकोंको अपने प्राणोंकी ही आ पड़ती थी । यह देख चित्रांगदने दावानल बाण छोड़ा जिसको कि पार्थने जलद बाणसे वारण कर दिया । बाद चित्रांदगने वायुबाणके द्वारा जब पार्थके जलदको छेद दिया तब धनंजयने वाड़व-बाणसे उसके सर्वहारी वायुबाणको नष्ट कर दिया । तब चित्रांगदने नागपाश बाणको छोड़ा, जिसे कि धनंजयने गरुड़ बाणसे वारण कर दिया । तात्पर्य यह है कि

इस प्रकार अपने शर-कौशलसे धनंजयने चित्रांगदके छोड़े हुए सभी बाणोंको जब निवार दिया तब जयलक्ष्मी स्वयं ही उसके हाथमें आ गई और लोग उसे साधुवाद देने लगे। यह देख पार्थके शिष्योंने उसकी भक्तिसे खूब पूजा-स्तुति की। इसके बाद पार्थने दुर्योधनको विश्वास दिला कर प्रसन्न किया और बाणोंकी सीढ़ी रच कर दुर्योधनको पहाड़के शिखरसे उतारा। इसके बाद उसे युधिष्ठिरके पास लाकर उसने बंधन रहित कर दिया। सच है कि बंधनसे सभीको खेद होता है। इस उदारताके बदले दुर्योधनने युधिष्ठिरकी बहुत बहुत स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। युधिष्ठिरने भी उससे कुशल पूछा, जिसके उत्तरमें दुर्योधनने कहा कि नाथ, मुझे बंधनका उतना दुःख नहीं हुआ जितना कि छूटने पर हुआ है। यह छुटकारा मुझे बहुत ही खटकता है। क्योंकि इससे मुझे नीचा देखना पड़ा है और पडेगा भी। महाराज मानभगके दुःखके बराबर प्राणियोंके सुखका घातक दूसरा नहीं है। यही एक संसारमें भारी दुःख है, जिसके मारे जीव जीते जी ही मरेके जैसे हो जाते है।

इसके बाद युधिष्ठिरने उसे उसके नगरको भेज दिया। यद्यपि वह सकुशल अपनी राजधनीमें पहुँच गया पर उसके हृदयमें मानभंगकी शल्य भालेकी नोंक जैसी चुभ रही थी। अतः उसने मन-ही-मन सोचा कि हाय, मेरा यह मनुष्य जन्म क्षणमें ही व्यर्थ हो गया। कहाँ तो मैं कौरवोंका स्वामी और कहाँ मेरे उन्नत विचार। परन्तु यह सब बातें उसने मुझे रणमें छोड़ कर पद-दलित कर दीं। मेरा सब कुछ महत्व धूलमें मिला दिया गया। मुझे जितना रणमें पकड़े जानेका दुःख नहीं उतना अर्जुनके द्वारा छुड़ाये जानेका दुःख है। नहीं मालूम प्राणोंको हरनेवाले मेरे इस दारुण दुःखको कौन निवारण करेगा। मुझे विश्वास है कि जो कोई महापुरुष इन तेजस्वी पांडवोंको यमालय भेजेगा वही महाभाग मेरी इस पराभव-रूपी शल्यको भी मिटा सकेगा। उसने पुकार कर कहा कि क्या संसारमें कोई ऐसा पुरुष है जो मेरे इस दुःखको दूर करे। मैं उसे अपना आधा राज्य दूँगा।

यह सुन बुद्धिशाली कनकध्वज राजाने कहा कि महाराज, मै विश्वास दिला कर कहता हूँ कि मैं मैं आजसे सातवें दिन अवश्य ही पांडवोंका काम तमाम कर दूँगा। यदि न करूँ तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने आपको अग्नि देवकी भेंट कर दूँगा।

इसके बाद वह दुर्बुद्धि वहाँसे निकला और वनमें ऋषियोंका जहाँ एक

आश्रम था वहाँ पहुँचा । वहाँ वह उद्धत कृत्या विद्याको साधने लगा और होम-मंत्र-आदि विधि करने लगा ।

जब इस बातकी खबर नारदजीको हुई तब वे उसी समय पांडवोंके पास आये और उनके हितकी वाञ्छासे मधुर शब्दोंमें बोले कि आजसे सातवें दिन कृत्या विद्याके प्रभावसे दुरात्मा कनकध्वज तुम लोगोंको मारना चाहता है और इसी लिए वह कृत्या विद्याको वनमें साध रहा है ।

नारदके वचनोंको सुन कर पवित्र-बुद्धि धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपनी सारी इच्छाओंको एकदम रोक दिया और वह मेरुवत् निश्चल होकर धर्म-ध्यान करने लगे । उन्होंने परिग्रहसे ममता छोड़ कर नाकके अग्रभाग पर दृष्टि जमाई । वह संसारसे एकदम विमुख—उदासीन—हो गये और अपने मन पर उन्होंने पूरा पूरा अधिकार जमा लिया । वह आत्म-स्वरूपकी चिन्तनामें ऐसे उलझे कि सब तरफसे मनको मोड़ कर आत्मामें ही लीन हो गये ।

उन्होंने अपने भाइयोसे कहा कि भ्रातृगण, धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जिसके प्रभावसे प्राणियोंके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । अतः आप लोग भी अपने मनोरथोंकी सिद्धिके लिए एक धर्मका ही अद्वितीय शरण ग्रहण करें । देखिए जिस धर्मको परलोकके लिए सुर-असुर आदि सब सेवन करते हैं, करते थे और सदा काल करते रहेंगे वह धर्म विश्वास रक्खो कि अवश्य ही तुम्हारे विघ्नोंको दूर करेगा और तुम्हें सब सुख देगा । मेरा तो यही विश्वास है कि धर्मके सिवा जीवोंको और कोई भी ऐसा नहीं जो सुखी करे या सुख दे । इस धर्मके प्रभावसे आपत्ति भी पुरुषोंके लिए सम्पत्ति-रूप हो जाती है और सुख देती है । कौन नहीं जानता कि ग्रीष्मके सूरजकी किरणें भी वृक्षोंमें फल-फूल रूप ऋद्धि पैदा करती है ।

इस प्रकार युधिष्ठिर धर्मकी प्रशंसा कर रहे थे कि इसी समय अपने आसनके कंपित होनेसे एक अवधि-ज्ञानी देवको पांडवोंके इस उपद्रवकी खबर लगी। वह उसी समय वहाँ आया और बोला कि मैं नष्ट होते हुए पांडवोंके कुलकी रक्षा करूँगा; उन्हें तिलमात्र भी दुःख न होने दूँगा । इसके बाद वह प्रगट होकर पांडवोंसे बोला कि तुम लोग ऐसे वेफिक्र होकर मेरे स्थानमें क्यों ठहरे हो । क्या तुम लोग मेरे महात्म्यको नहीं जानते; और न पहले क्या कभी तुमने उसे सुना ही है । देखो, मेरा महात्म्य ऐसा है कि मेरे कोपके मारे कोई मनुष्य पृथ्वी

पर एक क्षण भी नहीं टिक सकता। इसके बाद उस विशुद्धात्माने द्रौपदी सतीको हर लिया। उसके द्वारा द्रौपदीको हरी गई देख कर पांडवोंको बड़ा भारी क्रोध आया और वे उसे मारनेको उसके पीछे भागे। उनके साथ ही नकुल और सहदेव क्रोधित हो उसके पीछे वेगसे यह कहते हुए दौड़े कि दुष्ट तू द्रौपदी सतीको हर कर कहाँ जायगा। अब तू अपने आपको मरा हुआ ही समझ। काहेको इधर उधर भागता फिरता है। निश्चय समझ कि हम तुझे अब जीता न छोड़ेंगे। इसके बाद पांचाली सहित वह जहाँ जहाँ भागता गया नकुल और सहदेव भी वहीं वहीं उसके पीछे पीछे भागे गये। भागते भागते वे दोनों भाई एक निर्जल वनमें आ गये। उन्हें प्यासकी बड़ी पीड़ा हो रही थी। वे जलकी खोजमें उस वनमें इधर उधर घूमने लगे। इतने हीमें एक ओर उस देवका निर्माण किया हुआ तालाब उन्हें दिखाई पड़ा जो जलकी कल्लोलोंसे व्याप्त था, कमलोंसे भरपूर था। उसको देख कर वे पवित्र आत्मा दोनों भाई पानी पीनेके लिए उस पर गये और उसका पानी पीनेके साथ ही वे जमीन पर गिर कर मूर्च्छित हो गये; जैसे कि विषैले जलको पीकर मनुष्य सुध-बुध-रहित हो जाते हैं। बड़ी देर तक उन्हें वापिस लौटे न देख कर अर्जुन दुखित हो बोला, हाय! मेरे प्यारे भाई कहाँ चले गये? उन्हें अति शीघ्र ही लौट आना चाहिए था सो इतना काल बीत गया तब भी वे वापिस नहीं आये; न जाने कहाँ चले गये।

इतनेमें एक मनुष्यने आकर उनकी जो हालत हुई थी, वह सारीकी सारी अर्जुनसे कह सुनाई। सुन कर धनंजय फिर एक क्षण भर भी न ठहरा और वह युधिष्ठिरको प्रणाम कर अति शीघ्र ही उन्हें देखनेके लिए निकला। थोड़ी देरमें वह उसी तालाब पर पहुँचा जहाँ दोनों मूर्च्छित पड़े हुए थे। उन्हें उस तालाबके किनारे मरे हुएकी भाँति बेहोश पड़े देख कर उसे बड़ा भारी विषाद हुआ। वह शोकसागरमें डूब गया। उसका मुँह मलिन हो कर मुरझा गया। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। और आखिर उसका धीरज छूट गया। वह अतीव कातर हो विलाप करने लगा कि हाय! ये कौन हैं? क्या आकाशसे पृथ्वी पर सूरज और चाँद ही तो नहीं आ पड़े हैं; या महायुद्धके समय युधिष्ठिरकी दोनो भुजायें भग्न हो कर तो नहीं गिरी हैं। देखो, ये कैसी हालतमें पड़े हुए हैं। इन्हें देख कर तो मेरा हृदय ही फटा जाता है; वह बिलकुल धीरज ही नहीं धरता। हाय! मैं यहाँसे जाकर इनके सम्बन्धमें बड़े भाईको क्या उत्तर दूँगा। इस प्रकार अर्जुनने बड़ा विलाप किया।

जब उसका हृदय कुछ शांत हुआ तब क्रोधमें आ उसने अपने भयावने स्वरसे सारी दिशाओंको क्षोभित करते हुए कहा कि जिस किसी दुष्टात्माने मेरे इन परम प्यारे भाइयोंको मारा है मै उस दुष्टको अभी ही यम-मन्दिरका अतिथि बनाये देता हूँ।

अर्जुनकी इस विभीषिकाको सुनते ही साक्षात् धर्म-रूप और निर्भय उस देवने, जैसे कोई शत्रुसे कहता है वैसे ही छिपे छिपे, अर्जुनसे कहा कि वीर पार्थ, तुम्हारे इन दोनों योग्य भाइयोंको, सच कहता हूँ कि मैंने ही मारा है और तुमसे भी कहता हूँ यदि तुममें कुछ ताक़त हो तो तुम भी मेरा एक कहना कर देखो। तुम थोड़ी देरके लिए अपने क्रोधको तो छोड़ दो और अपनी प्यास बुझानेके लिए मेरे इस तालावका थोड़ासा पानी पी देखो।

देवकी ऐसी आश्चर्य-पूर्ण बात सुन कर क्रोधमें भूल अर्जुनने भी उस तालावका पानी पी लिया और इसके थोड़े ही समयमें वह भी उस विषैले जलसे बेसुध हो चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा।

उधर जब बहुत काल तक पार्थ भी वापिस न लौटा तब खेदित होकर युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि भाई, मालूम नहीं पड़ता कि अर्जुनको भी इतना विलम्ब क्यों लगा। तुम जल्दी जाकर वह जहाँ हो उसे खोजो। युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर जगतको प्रसन्न करनेवाला भीम उसी वक्त वहाँसे चल कर अपने पाद-प्रहारसे जमीनको कंपित करता हुआ वहीं जा पहुँचा जहाँ वे तीनों ही बे-सुध पड़े थे।

भीम उनकी मृतक जैसी दशा देख कर बड़ा दुःखी हुआ और विलाप करने लगा। उनकी वह दुःख-मय अवस्था न सह सकनेके कारण उसका दिल टूट सा गया। वह देवको उलहना देने लगा कि राक्षस, तूने यह क्या अनिष्ट उपस्थित कर दिया है! आज यह जान पड़ता है मानों मेरे भाई ही नहीं मरे; किन्तु समस्त लोक ही नष्ट हो गया! दुष्ट, अब तू ही बता कि इन्हें छोड़ कर हम कहाँ जायें, कहाँ रहें, किससे बातें करें और कहाँ अब इन प्यारे सहोदरोंको देखें! इस प्रकार विलाप करता हुआ महाभट भीम दुःखके मारे मूर्च्छित हो कर पृथ्वीकी गोदमें लेट गया; जैसे कि काट दिया गया पेड़ क्रिया-विहीन हो कर जमीन पर गिर पड़ता है। इसके बाद जब वह ठंडी हवाके स्पर्शसे कुछ सचेत हुआ तब उठ कर चकितकी भाँति सब दिशाओंकी ओर देखने लगा और

बोला कि जिस दुष्टने मेरे इन परम प्यारे भाइयोंके प्राण लिये है उसको यदि मैं देख पाता तो कभी न छोड़ता। अपने हाथोंके वज्र जैसे प्रहारसे उसे गत-प्राण कर दिशाओंकी बलि चढ़ा देता। भीमके गर्व-युक्त वचनोंको सुन कर आकाशमें ठहरा हुआ वह देव बोला कि सुनिए, आप चाहे अपने मुँह मियां-मिट्ठू भले ही बनें, पर मैं तो उसीको निरंकुश शक्तिवाला मानूँगा जो निर्भय हुआ मेरे इस तालावमें जाकर पानी पियेगा।

देवके कहनेके साथ ही भीम तालाव पर गया और उसने निर्भय हो स्नान कर उसका पानी पिया। इसके वाद ज्यों ही वह महा बली बाहिर आकर वैठा कि उसे भी उसी वक्त मूर्च्छा आ गई और वह एकदम बे-होश हो गया। आखिर अन्य भाइयोंकी भाँति उसे भी पृथ्वीकी गोदमें लेट जाना पड़ा। सच है कि बड़े बड़े महात्मा भी अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको नहीं जान पाते हैं।

उधर जब समय बहुत बीत गया और भीम भी पीछा न लौटा तब युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ताने घेरा। उनका मुँह फीका पड़ गया। वह मन-ही-मन सोचने लगे कि इतना समय बीत गया और अब तक भी बन्धु-गण पीछे नहीं आये। मालूम नहीं क्या हुआ। जाकर देखूँ कि क्यों नहीं आये। इसके बाद वह उठे और वनको देखते हुए वहीं पहुँचे। वहाँ उन सबको मूर्च्छित देख कर उन्हें भी मूर्च्छा आ गई। इसके बाद जब वे सुधमें आये तब विलाप करने लगे कि बन्धु-गण, जान पड़ता है आप लोग इस तालावके पानीसे मूर्च्छित हो गये हैं। खेद है कि सड़ी चीजोंमें लग जानेवाला घुन इन वज्र कैसे खंभोंमें कैसे लग गया। हाय! आज यहाँ पांडव-कुलका सर्वनाश हो गया। अब दुष्ट और क्रोधके भंडार दुर्योधनकी खूब बन पड़ेगी। वह सारे राज्यका अधीश्वर बन कर मनकी मुराद पूरी कर लेगा। उस दुष्टको अन्यायके रोकनेवाला अब कोई नहीं रह गया है। जब उस दुष्टको क्रुद्ध हुए योधाओंने युद्धमें बाँध लिया था तब दैवके हाथसे मैंने ही उसे छुड़ाया था; उसे मारने नहीं दिया था। परन्तु हाय! उसी दैवने अब मेरे ही प्यारे भाइयोंको मार डाला है। मुझमें उस दुष्ट दैवको भी हतप्रभ करनेकी शक्ति है और उसीका यह फल था जो मैंने उस वक्त उन मत्तोंके हाथसे कौरवोंको मौतसे बचा लिया था। परन्तु फिर भी दुष्ट दैवको भय न लगा और उसने मेरे ही साथ ऐसा व्यवहार किया।

दैवके प्रति यह उलाहना सुन वह देव बोला कि धर्मराज, तुम्हारे इन प्रचंड धनुषधारी बान्धवोंको मैंने ही अपने प्रभावसे इस अवस्थाको पहुँचाया है। इसमें

तनिक भी सन्देह नहीं है । तुम भी मेरी एक बात सुनो । वह यह कि यदि तुम भी कुछ शक्ति रखते हो तो इस तालावका पानी पिओ । अन्यथा अपनी शक्तिका व्यर्थ अभिमान क्यों करते हो । क्यों मेंडकके जैसे गाजते हो । तुम्हारी इस टर टरसे कुछ काम न चलेगा । कुछ करके दिखाना पड़ेगा । देवकी ऐसी अचम्भेमें डालनेवाली बात सुन कर प्रवुद्ध, पवित्रमना और धर्म-बुद्धि युधिष्ठिर चटसे तालावमें घुसे और उन्होंने निडर हो उसका पानी पी लिया । इसके थोड़ी ही देर वाद वह भी अन्य भाइयोंकी तरह विष पीनेवाले पुरुषकी नाँई, उसी वक्त धराशायी हो गये । हाय ! धिक्कार है उस दैवकी दुष्ट चेष्टाको जिसने कि ऐसे धर्म-बुद्धि और धर्मके अवतारोंकी भी ऐसी शोचनीय हालत कर दी ।

उधर कनकध्वजके मंत्र-विधानसे सातवें दिन उसे कृत्या विद्या सिद्ध हो गई और उसके पास आ कर उससे आज्ञा माँगने लगी । कनकध्वजने कहा कि यदि तुम्हारी शक्ति अतुल और विपुल है तो तुम अति शीघ्र जाकर पांडवोंका सर्व-नाश कर दो । उसके इस आदेशको पाकर क्रोधसे लाल हो वह चली गई और वहाँ पहुँची जहाँ कि पांडव मूर्च्छित हो मरे से पड़े थे । इसी समय धर्मदेव शोकातुर भीलका रूप बना कर वहीं आया और उन्हें इधर उधर लौट लौट कर देखने लगा । तव उन्हें निश्चयसे मरा हुआ जान कर उससे वह विद्या बोली कि मुझे पांडवोंको मारनेके लिए कनकध्वज राजाने भेजा था; परन्तु मैंने यहाँ आकर कुरुजाङ्गल देशके इन स्वामियोंको अपने आप ही मरा पाया । भीलराज, कहो अव मैं क्या करूँ ? विद्याके इन वचनोंको सुन कर भीलने कहा कि वह दुष्ट इतना नीच है तो तुम जाकर उस हताशय कनकध्वजको ही यमालय भेजो । भीलकी यह सलाह उसे ठीक जँच गई । वह उसी वक्त उस विफल-मनोरथको मारनेके लिए वहाँ पहुँची । और उस पापीके सिर पर पड़ कर उसने उसका सर्व-नाश कर दिया; जैसे अति कठोर वज्र-प्रहार पर्वतका चकनाचूर कर देता है । इस प्रकार अपने कृत्यको पूरा करके वह कृत्या अपने स्थानको चली गई ।

इसके वाद उसने उन पांडवोंको अमृतकी बूँदोंके द्वारा सींचा और सोनेसे उठ वैठनेकी भाँति उन्हें पूरा पूरा सचेत कर दिया । उस वक्त युधिष्ठिरने उससे पूछा कि शुभ कर्मके जैसे हमारे उपकारी तुम कौन हो । देवने कहा कि धर्मात्मा धर्मराज, मैं सौधर्म इन्द्रका प्रीतिपात्र एक देव हूँ । तुमने जो अभी विशुद्ध

धर्मकी आराधना की थी उसीके प्रभावसे अवधिज्ञान द्वारा तुम्हारे भावी उपसर्गको जान कर उसे दूर करनेके लिए मैं आया हूँ।

मैंने यहाँ आकर वज्र पापके जैसी कृत्या विद्याको वारण किया जो कि तुम्हारा सर्वनाश करनेके लिए कनकध्वजकी भेजी हुई यहाँ आई थी। मैंने सब बातें जान कर उसे ऐसी सम्मति दी कि जिससे उसने जाकर कनकध्वजको ही भस्म कर दिया। यह सब वृत्तान्त कह कर, पार्थको द्रोपदी सौंप कर और उनके चरण-कमलोंको नमस्कार कर वह धर्मदेव अपने स्थानको चला गया।

इसके बाद वहाँसे चल कर पांडव मेघदलपुरमें आये। यहाँका स्वामी सिंह राजा बहुत प्रसिद्ध था। उसकी रानीका नाम कांचनाभा था। वह वास्तवमें कंचनके जैसी आभावाली थी और सच पूछो तो इसी कारणसे ही कांचनाभा उसका नाम पड़ा था। सिंह और कांचनाभाके एक पुत्री थी, जो रूप सौन्दर्य-सम्पन्न थी। उसका नाम कनकमेखला था। वह इन्द्रकी इन्द्राणी जैसी थी। सबको वह बड़ी प्यारी थी। बड़े भाईकी आज्ञासे राजाकी दी हुई उस राज-कन्याका भीमने पाणिग्रहण किया।

इसके बाद पांडव बहुत दिनों तक वहीं रहे और उन्होंने कोशल देशको खूब देखा। बाद वहाँसे भी चल कर धीरे धीरे वे रामगिरि पहाड़ पर आये। यहाँसे घूमते हुए वे सुन्दर विराट नगरमें पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने विचार किया कि हमारे पूरे बारह वर्ष तो वनमें वनेचरोंकी नाँई बीत गये। अब एक वर्ष और है जो अधिक मासका है। अतः एक साल भेष बदल, छिपे रह कर यहीं बिताना चाहिए। इस निश्चयके अनुसार युधिष्ठिरने कहा कि मैं भोजन पकानेवाला रसोइया बनूँगा। अर्जुनने कहा कि मैं नाटककी नायिका बनूँगा, उत्तम नृत्य करना सिखाऊँगा और साड़ी तथा चोली पहिन कर रहूँगा। अपना नाम मैं रक्खूँगा बृहंनला। नकुलने कहा कि मैं घोड़ोंकी रक्षा परे रहूँगा और धीर-चित्त सहदेवने कहा कि मैं धन-धान्यको बढानेवाले गोधनकी रक्षा करूँगा। एवं द्रोपदीने भी कहा कि मैं उत्तम माला गूँथनेवाली मालिन बनूँगी।

इस प्रकार सब बातें ध्यानमें रख कर उन्होंने अपना अपना वेष बदला और मैले कपडे पहिन कर कपट-वेषसे वे राजमन्दिर गये। राजमन्दिर देखनेमें बड़ा सुंदर और आनंद देनेवाला था। वहाँका राजा विराट था। उसने शत्रु-समूहका दमन कर बहुतसे राजोंको नमा दिया था—वह बहुतसे राजों द्वारा

पूजा जाता था। पांडव उसके पास गये । उसने भी उनका यथायोग्य आदर किया और बाद उनकी इच्छा जान कर उन्हें उनके योग्य कामों पर नियुक्त कर दिया। वे भी उस चतुर और न्याय-मार्ग-गामी राजाको अपने अपने कामोंसे खुश करते हुए कुशलतासे काल बिताने लगे। इस प्रकार वहाँ उनके बारह महीने बीत गये । उधर पांचालीने भी विराटकी रानी सुदर्शनाको खुश कर अपना समय सुखसे पूरा किया।

चूलिका नाम पुरीके राजाका नाम चूलिक था और उसकी प्रियाका नाम विकचा था। उसके नेत्र खिले हुए कमलके जैसे मनोहर थे । चूलिक और विकचाके कीचक आदि सौ पुत्र थे। वे सब गुणी थे और विराटके साले थे। अतः इसी बीचमें एक समय कीचक अपनी बहिनके पास विराट देशमें आया और वहाँ उसने रूप-सौन्दर्यकी खान द्रौपदीको देखा। वह उसे इन्द्रकी इन्द्राणी जैसी या लक्ष्मीके जैसी दीख पड़ी। उसे देखते ही वह उस पर जी जीनसे निछावर हो गया। उसे अब खाना-पीना, सोना-उठना आदि कुछ भी नहीं सुहाने लगा। वह सब कामोंसे उदासीन हो गया। उसको दिन रात एक मात्र द्रौपदीकी रट लगी रहने लगी। वह हमेशा द्रौपदीके ही मीठे आलापको सुनना चाहता था; उसीके अनोखे रूपको देखना चाहता था: उसीका स्पर्श करना चाहता था और उसीके मुँहकी सुगन्ध सूँघना चाहता था। सच तो यह है कि द्रौपदीके सिवाय उसे और कुछ सुहाता ही न था। जहाँ द्रौपदी जाती वह वहाँ उसके पीछे पीछे जाता और कामसे अन्धा होकर उसके साथ चाटुकार पनेकी बातें बनानेका यत्न करता। उसका यह हाल देख कर एक बार पार्थ-पत्नीने उसे खूब डाटा और उससे अतीव कटुक शब्दोंमें कहा कि कीचक, यह बात तुम्हें बिल्कुल शोभा नहीं देती। देखो सोचो-समझो और कुछ विवेकसे काम लो तो तुम्हें जान पड़ेगा कि यह व्यवहार अनुचित है, नीच है, निंद्य है एवं नीचोंके जैसा है। परन्तु वह इतने पर भी अपने खुशामदी चाटुकार वाक्योंसे बाज न आया। तब द्रौपदीको बड़ा क्रोध आया और उसने अतिशय कठोर शब्दोंमें यों कहना आरम्भ किया कि कीचक, पर-स्त्री-लम्पट कीचक, तू मुझे अकेली मत समझ, मै अकेली नहीं हूँ। किन्तु मेरे साथ अद्भुत पराक्रमवाले पाँच गंधर्व और हैं। और देख कहीं उन्होंने तेरे इस क्षुद्र वर्त्तावको जान लिया तो सन्देह नहीं कि वे तुझे क्षणभरमें यमालयका अतिथि बना देंगे। इस पर कीचकने मुसक्या कर कहा कि द्रौपदी, प्यारी द्रौपदी, सुनो, जिन पाँच गन्धर्वोंका तुम्हें अभिमान है

वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते । मेरे पास अनेकानेक हाथी-घोड़ों आदिकी सेना है; मेरे पास इतनी शक्ति है कि मैं चाहूँ तो जबरदस्ती लेकर तुम्हें भोग सकूँ । पर नहीं, मैं ऐसा करना ठीक नहीं समझता; अपनी प्यारीको कष्ट देना नहीं चाहता । सुन्दरी, अब विलम्ब मत करो । देखो मैं बड़ा दुःखी हो रहा हूँ, अतः कृपा करके मेरे इस दुःखका इलाज करो; प्रसन्न हो । प्यारी, अब मैं तुम्हारे साथ रमनेके सिवा अपने जीनेका और कोई उपाय नहीं पाता हूँ । अतः जैसे उचित समझो, मेरी रक्षा करो । उसकी इस नीचताका वह शीलवती कुछ उत्तर न देकर चली गई । इधर कीचक भी कामके शरोंकी मारसे मुर्दे जैसा होकर पड़ रहा ।

इसके बाद एक समय किसी एक शून्य मकानमें उस दुष्टने द्रोपदीका हाथ पकड़ लिया और उससे बोला कि देवी, बस, अब तुम मुझे सुखी करो, मैं मरा जा रहा हूँ । यह देख द्रोपदी भारी आपत्तिमें फँस गई । उसके ऊपर मानों वज्रपात हुआ । परन्तु फिर भी हिम्मत बाँध कर उस वीर नारीने उस दुष्टके हाथसे उस समय भी छुटकारा पा लिया । इसके बाद वह रोती हुई युधिष्ठिरके पास आई । वहाँ आकर उसने उस दुष्टके सारे दुष्कृत्यको युधिष्ठिरसे कहा और वह बोली कि हे देव, ऐसी विषम अवस्थामें भी जो मैंने आपके प्रभावसे अपने शीलरत्नको बचा पाया यह मेरे लिए बड़े सौभाग्यकी बात है । द्रोपदीकी इन बातोंको सुनते ही युधिष्ठिरकी क्रोधसे भौंहें चढ गईं और उन्होंने कहा कि हाय, जहाँ राजा भी इतना दुराचारी है वहाँकी प्रजाके दुराचारका तो फिर ठिकाना ही क्या है ! विद्वानोंने ठीक कहा है कि—

> राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः, पापे पापाः समे समाः ॥
> राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥

अर्थात्—जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है । राजा धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा पापी हो तो प्रजा भी पापी होती है । तात्पर्य यह कि जैसा राजा होगा वैसी ही प्रजा भी होगी; क्योंकि प्रजा राजाकी नकल करती है ।

इसके बाद उन्होंने घबराई हुई द्रोपदीको ढाढस बँधाया और कहा कि सुशीले, तुम बड़ी वीर नारी हो जो तुमने स्वयं शीलकी रक्षा की । तुम अब कुछ भी चिन्ता-भय न करो । क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि शील-सम्पत्तिके बलसे ही सीताकी

देवतोंने पूजा की थी; और मन्दोदरी, मदनमंजूषा आदिकी भी इसीके द्वारा इतनी प्रतिष्ठा हुई। तुम सच करके मानो कि संसारमें स्त्रियोंकी शोभा शीलसे ही होती है। यह शील ऐसी कला है कि इसके होते हुए जीवोंमें और और गुण स्वयं आ जाते हैं। इसीसे जीवोंको सब सम्पत्ति मिलती है। सच पूछो तो संसारमें शीलके सिवा कोई उत्तम पदार्थ नहीं है, न हुआ और न होगा।

इस समय अर्जुन भी वहीं द्रौपदीकी दुःख भरी बातोंको सुन रहा था। उसकी ऐसी अवस्थाको न सह सकनेके कारण उसे बड़ा क्रोध आया और वह वह सिंहकी नाँई गर्ज कर उठ खड़ा हुआ। परन्तु उसे युधिष्ठिरने यह कह कर रोक लिया कि अभी कुछ दिन ठहरो, बाद जो जीमें आवे, करना। धीरे धीरे सूरज अस्त हुआ, और रातका आगमन हुआ। इस समय द्रौपदी नेत्रोंमें आँसू भरे हुए युधिष्ठिरके पाससे भीमके पास गई और लज्जासे खेद-खिन्न हो बोली कि आप जैसे महाबली के रहते यह नीच कीचक दुष्ट मेरी ऐसी बुरी हालत करे, इससे अधिक और क्या लज्जाकी बात हो सकती है। यह सुनते ही हाथीकी सूँड़ जैसी मजबूत भुजावाले उस वीरने कहा कि भ्रातृजाये, कहो, उस दुष्टने तुम्हें क्या दुःख दिये हैं। उस दुष्टका तिरस्कार करके मैं उसे अभी यमालय भेज सकता हूँ। बोलो क्या कहती हो। तुम्हारा तिरस्कार मैं नहीं सह सकता। इस पर पांचालीने कहा कि महाभाग सिंह जैसे पराक्रमी आपके रहते मुझे दुःख तो दे ही कौन सकता है। परन्तु मुझे अपने इस अपमानका बड़ा ही दुःख है कि दुष्ट कीकचने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझसे अपनी नीच वासना प्रकट की। आप मेरे इसी अपमानका बदला लीजिए। प्रभो, मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। देखिए उसके कर-स्पर्शसे मेरा शरीर अब तक भी थर थर काँप रहा है। यह सुनते ही भीम दावानलकी भाँति क्रोधसे लाल हो उठा और कीचकको मार डालनेके लिए तैयार होकर उसने कहा कि सती, इसके लिए एक उपाय करो। वह यह कि तुम जाकर उससे दूसरे दिन रातमें वनमें आनेके लिए संकेत कर आओ, पर इस बातका ख्याल रखना कि वह जगह ऐसी हो जहाँ कि मनुष्योंका संचार न हो।

इसके बाद द्रौपदी भीमके कहे अनुसार कीचकके पास गई और उसने कामसे पीड़ित हुए उस कपटीसे कहा कि मैं आपको चाहती हूँ। अत एव जो जगह आपको रुचे आप वहीं आ जानेके लिए मुझे संकेत बताइए। मैं वहीं आ

जाऊँगी। द्रौपदीके इन वचनोंको सुन कर अतीव प्रसन्न कीचकने कहा कि मानिनी, तुम शामके समय नाट्यशालामें आना। वहाँ मैं तुम्हारी सब इच्छाकी पूर्त्ति कर सकूँगा। इसके बाद द्रौपदी भीमके पास आई और उसने भीमसे उस दुष्टकी कही हुई सारी बातें कह दी। द्रौपदीकी बातोंको सुन कर हर्षके साथ, शामके समय सौभाग्य और स्फूर्त्तिशाली भीमने पैरोंमें नूपुर पहिने, कमरमें करधौनी, हाथोंमें सुन्दर कंकण और हृदयमें हार पहना। कानोंमें कुण्डल पहिने और मस्तकमें तिलक लगाया। नेत्रोंमें कज्जल लगाया और सिर पर दीप्तिशाली चूड़ामणि गूँथा। इस प्रकार दिव्य वस्त्राभूषण आदिके द्वारा उसने अपने आपको खूब ही अलंकृत किया। वह बिल्कुल ही सीमन्तिनी—सौभाग्यवती—स्त्रीके जैसा ही बन गया। उसको देख कर ऐसा भ्रम होता था कि वह रति है या इन्द्राणी, अथवा पृथ्वी पर अव तरित हुई लक्ष्मी ही है। इस प्रकार लोगोंको भ्रम पैदा करता हुआ भीम झपाटेके साथ संकेत-स्थान पर पहुँचा। निर्भय भीम वहाँ क्षण भर बैठा ही था कि उधरसे द्रौपदी पर निछावर हुआ कामसे जर्जरित हृदय दुष्ट कीचक भी वहीं आ गया। उसके हृदयमें रागकी उत्कटता और गाढ अँधेरा इतना व्याप्त हो रहा था कि उसके मारे उसे उस समय कुछ भी भान न हुआ। उसने उसे सचमुच ही द्रौपदी समझा। अतः वह उसकी ओर आगे बढ़ा और उसने उसका हाथ पकड़ा। इसके बाद ही वह हाथकी कठोरताका अनुभव कर बडे सोच-विचारमें पड गया। उसे जान पड़ा कि वह द्रौपदी नहीं है, किन्तु कुछ छल है। और कोई दुष्ट धूर्त ही इस द्रौपदीके वेषमें आया है। देखूँ, आगे क्या होता है। एक बात और याद पडती है कि एक समय नैमित्तिकने कहा था कि कीचककी मृत्यु महाबली भीमके हाथसे होगी। जान पड़ता है कि उसका कहना बिल्कुल ही सच्चा है। यह सोच करके उसने अपना हाथ उसके हाथसे छुड़ानेका यत्न किया, पर वह उसे नहीं छुड़ा सका। फिर क्या था, वे दोनों हाथ-पैरोंके प्रहारोंके द्वारा निर्दयता-पूर्वक परस्परमें युद्ध करने लगे। क्रोधके मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। वे अपने अपने ओंठ और दाँत पीसने लगे। पसीनेकी बूँदोंसे उनका शरीर चमकने लगा। इस समय उन दोनोंका इतना भयंकर युद्ध हुआ कि उसे देख कर डरपोंक—कायरों—के प्राण पखेरू ही उड़े जाने लगे। अन्तमें भीमने हुंकार नाद करके कीचककी छातीमें एक वज्रके आघात जैसा हाथका ऐसा प्रहार किया कि वह धड़ामसे पृथ्वी पर गिर गया और उसके शरीरकी सब हड्डियाँ चटक गईं। इसके सिवा भीमने उसकी छातीमें

एक ऐसी लात और लगाई कि जिससे उसकी साँस रुक गई और फिर उसे एक शब्द बोलना भी कठिन हो गया। उसका कंठ रुक गया । उसकी छाती पर पाँव देकर भीमने उससे कहा कि दुष्ट, अनिष्टकारी, संक्लिष्ट-चित्त, परस्त्री-रत नीच, देख यह सब परस्त्री-लंपटताका ही दोष है ।

इसके बाद भीमने उसे बड़ी निष्ठुरतासे पीस कर कहा कि तू अब कहाँ जायगा। मैं तुझे कभी जीता न छोड़ूँगा। इतने पर भी भीमको सन्तोष न हुआ सो उसने उस दुष्टकी छातीमें एक ऐसी जोरकी लात जमाई कि जिससे उसका एक क्षणभरमें ही काम तमाम हो गया; वह मर गया ।

इसके बाद द्रोपदीने राज-मंदिरमें जाकर समाचार दिया कि आज गंधर्वोंने कीचकको मार डाला है। जिसे सुन कर विराट बड़ा भयभीत हुआ ।

यह समाचार ज्यों ही कीचकके सेवकोंके कानों पड़ा त्यों ही वे दौड़े हुए उस नृत्यशालामें आये । उस समय वह हजारों जनोंसे व्याप्त हो रही थी। उन्होंने वहाँ आकर कीचकको मरा हुआ पाया । वह वहाँ मृत्युकी गोदमें अचेत पड़ा था । जान पड़ता था मानों उसे दैवने ही मार डाला है । उन्हें जब यह जान पड़ा कि इसे गंधर्वने मारा है तब वे महाभट बड़े लज्जित हुए और उन्होंने परस्पर सलाह कर यह निश्चय किया कि चुपचाप इसी समय गंधर्व सहित इसे दग्ध कर देना चाहिए। सवेरा होने पर यदि यह समाचार लोगोंमें फैल गया तो बड़ी भारी हँसी होगी। इसके बाद वे वहाँ पहुँचे जहाँ कि सौभाग्यवती पांचाली थी। उन्होंने जबरदस्ती उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाला। द्रोपदी भयसे चिल्लाती, आँसू बहाती तथा गंधर्वको पुकारती हुई निकली।

द्रोपदीका यह हाहाकार शब्द जो कि करुणाजनक था, भीमके कानोंमे जाकर पड़ा । उसे सुनते ही भीमको इतना क्रोध आया कि वह उसी वक्त कोटकी दीवाल लाँघ कर, बाल बखेरे हुए, एक वृक्षको उखाड़ हाथमें लेकर वायुके वेगकी भाँति अति शीघ्र दौड़ा। उसे देख कर लोगोंको ऐसा भ्रम होता था कि क्या यह राक्षस है जो कि देखते देखते ही सब नष्ट किये देता है; या सबको एकदम ग्रस लेनेके लिए जबरदस्त काल ही आ पहुँचा है । इस समय ज्यों ही इसे कीचकके भटोंने इस हालतमें देखा त्यों ही वे सब उस मुर्देको वहीं छोड़ कर भयसे चकित हुए अपने प्राणोंको ले कर—जिसे जिधर जगह मिली—भागे । परन्तु किलकारियाँ मारते हुए यमके जैसे भीमने तब भी

उनका पीछा न छोड़ा—वह उनके पीछे भागा ही गया; जैसे कोई मतवाला हाथी लोगोंके पीछे पड़ जाता है और फिर उनका पीछा नहीं छोड़ता । इस वक्त उन भटोंका यह हाल था कि वे बेचारे भग्न हुए न तो पीछेको मुंड कर देखते थे और न कहीं ठहरते ही थे । और है भी यही बात कि मृत्युसे डरा हुआ कोई भी ऐसा नहीं जो फिर स्थिर रह सके।

इसके बाद बलसे उद्धत हुए कीचकके सौ भाइयोंने जब कहीं भी कीचकको न पाया तब उन्होंने सबसे पूछताछ की और किसी तरह द्रौपदीके द्वारा उसे मरा हुआ जान कर द्रौपदीको ही जला कर खाक कर देना चाहा; और इसके लिए उन्होंने चिता भी रच डाली । यह सब बातें महाबली भीमके कानोंमें पहुँची । उसका परिणाम यह हुआ कि उसने उसी वक्त जाकर उन सौके सौ ही भाइयोंको उस चिता पर बलात् डाल कर जला डाला; जैसे कि कोई एक कॉटेको उठा कर आग पर फेंक जला देता है । इस प्रकार द्रौपदीकी रक्षा कर भीमने स्नान वगैरहसे उसे पवित्र किया।

सवेरा हुआ। पांचालीको नगरमें प्रवेश करते हुए सभी नागरिकोंने देखा। वह किसीको प्रलयश्री सी और किसीको आनंद देनेवाली लक्ष्मी सी देख पड़ी। उधर कीचकके सब भट अपने माथेमें कलंकका टीका लगा कर लज्जित हो अपने स्थानको चले गये । इसके बाद भीमने युधिष्ठिरके पास जा कर उनसे द्रौपदीके साथ गई रातमें किये हुए कीचकके सारे वृत्तको कह सुनाया, जिसको सुन कर युधिष्ठिरने कहा कि हम लोगोंको यहाँ तेरह दिन और चुप-चाप रहना चाहिए और कोई बखेड़ा खड़ा न करना चाहिए। इस प्रकार अपने बड़े भाईके मना करने पर वे धर्ममना सब भाई बिल्कुल मौन हो रहे।

इसी बीचमें दुर्योधनने अपयश पाये हुए अपने सेवकोंको पांडवोंकी खोजमें भेजा। उन्होंने पहाड़, पृथ्वी, वन, जल, दुर्ग आदि सभी स्थान देख डाले, पर उन्हें कहीं भी पांडवोंका पता न लगा । आखिर वे सब जगह देख-भाल कर वापिस आ गये और दुर्योधनको नमस्कार कर उससे बोले कि महाराज, हमने न तो कहीं पांडवोंको देखा, न किसीके मुखसे कहीं जीता सुना और न कहीं उन्हें हमने मरे हुए पड़े पाया। इस प्रकार दुर्योधनको सन्तुष्ट कर और धन-मान पाकर वे अपने अपने घर चले गये।

यह देख भीष्म पितामहने कौरवोंसे कहा कि राजन्, मेरी एक बात सुनिए। वह यह है कि प्रचंड पांडव बिना मौत तो मारे नहीं जा सकते, चाहे

जो भी तुम उपाय करो। कारण कि वे बड़े भारी पराक्रमी हैं, मेरु जैसे अचल हैं, दीप्तिके धारक तेजस्वी है, मोक्ष-गामी है, सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं । एक मुनीश्वरने मेरे सामने ही कहा था कि युधिष्ठिर राज्यभोगी बनेगा और पीछे तप तप कर शत्रुंजय पहाड़ परसे मोक्ष जायगा । मुझे विश्वास है कि वे अपने गुणों द्वारा पूज्य और पूज्योंकी पूजामें तत्पर रहनेवाले गुणोंके भंडार अब तक जीते हैं; मरे नहीं हैं ।

वे पांडव तुम्हारा कल्याण करें, जिन्होंने सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंको नष्ट कर स्थान स्थान पर प्रतिष्ठा पाई, जो बड़े बड़े शिष्ट पुरुषों द्वारा पूजित हुए, जिनकी सभी चेष्टायें परोपकारके लिए ही हुईं, जो उत्तम पुरुषोंके अग्रगण्य हुए, जिनको कोई भी कष्ट नहीं दे सका और जो स्पष्ट मिष्ट भाषी हुए ।

उस पांचाली—द्रोपदी—के शीलधर्मकी जय हो जो परम पवित्र और मिष्ट-भाषिणी हुई, शीलकी प्रवर्तक हुई, लावण्यामृतकी बावड़ी हुई, उत्तम गुण, गंभीरता और धीरजकी खान हुई और जिसके शीलके प्रभावसे महापापी कीचक कालके गालमें गया और लोकहास्यका पात्र बना ।

उन्नीसवाँ अध्याय।
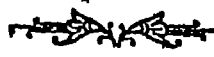
उन विमल प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ जिनकी ध्वनि निर्मल है, जो मल रहित विमल हैं, जिनके शरीरकी प्रभा विमल है और पवित्र पुरुष भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा-भक्ति करते हैं। वे जिन मेरे कर्म-कलंकको हरें और मुझे निर्मल करें।

इसके बाद भीष्म पितामहने प्रपंचके साथ द्रोणाचार्यसे कहा कि आजसे चौथे-पाँचवें दिन पांडव अवश्य ही आ जायँगे और भरोसा है कि वे महाभट प्रगट होकर दुर्घट कामोंको कर दिखावेंगे। इस समय निष्ठुर और अविचारी जालंधर राजा बोला कि मैं शीघ्र ही विराट देशको प्रयाण करता हूँ। सुना जाता है कि सारे संसारमें प्रसिद्ध महाभट, परचक्रको भयभीत करनेवाला, रणमें दुर्जय और कौरवोंका पक्षपाती कीचक किसी गंधर्वके द्वारा मारा गया है। और इसी कारण इस समय विराट देशका राजा भी निःसहाय हो रहा है। उसके यहाँ संसार भरमें विख्यात भारी गो-समूह है, अतः इस अवसर पर मैं वहाँ जाकर उसका गो-धन हरूँगा। कारण कि फिर कभी ऐसा अवसर मिलना दुःसाध्य है। एवं गायोंको हर कर लाते वक्त जो रण-शूर विकट भट मेरा पीछा करेंगे उनको मार कर मैं अखिल गो-समूहको यहाँ ले आऊँगा। सन्देह नहीं कि उस वक्त वहाँ युद्धकी अभिलाषासे प्रगट होकर पांडव भी युद्ध-भूमिमें उतरें। अतः उन गुप्त-वेष-धारी महा द्रोहियोंको भी मैं यमालयका अतिथि बना सकूँगा। जालंधरके इन वचनोंसे दुर्योधनका हृदय फूल गया और उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की। परिणाम यह निकला कि उसने प्रसन्नताके साथ जालंधरको विराटके गोकुलको हरनेके लिए भेज दिया। वह अपने साथमें चंचल, ऊँचे और हिनहिनाते हुए घोड़े, सजे हुए हाथी और फहराती हुई धुजाओंवाले रथ आदिकी बहुतसी सेना लेकर रवाना हुआ। वह क्रोधसे उद्धत हुआ वहाँ पहुँचा और पहुँच कर उसने ग्वालोंसे सुरक्षित विराटके सारे गोकुलको हर लिया। तब भय-भीत होकर रोते चिल्लाते हुए ग्वालोंने भाग कर विराट नरेशके सामने पुकार की। वे कहने लगे कि देव, दुःख है कि जालंधर राजाने सारा गोकुल हर लिया है और जलसे युक्त समुद्रकी नाँई चतुरंग सेनासे युक्त हो वह उसको ले करके अपने देशको जा रहा है। ग्वालोंकी इस दुःख भरी पुकारको सुनते ही विराट

नरेश्वरको बड़ा क्रोध आया। उसने उसी समय युद्धकी उद्धतताको फैलानेवाली रण-भेरी बजवा दी—युद्धकी घोषणा कर दी। जिसको सुन कर योद्धा कवच आदि अस्त्र-शस्त्रसे सज कर उठ खड़े हुए और उन्होंने धनुषोंकी ध्वनियोंके द्वारा आकाशको बहिरा कर दिया। इस वक्त युद्ध-स्थलके लिए सोनेके पलानोंसे विभूषित, युद्ध-समुद्रकी तरंगोंकी नाँई चंचल और खूब सजे हुए घोड़े चले। उन सब पर सवार सुशोभित थे। सुन्दर चालवाले हाथी गर्जते हुए निकले और गलियोंकें मार्गको रोक कर चलनेको तैयार खड़े हुए रमणीय रथ सुशोभित हुए। इस प्रकार चतुरंग सेना सहित पुरकी रक्षाका उचित प्रबन्ध करके रथमें सवार हो विराट नरेश नगरसे बाहिर निकला।

उसके पीछे पर्वतके जैसे उन्नत गुप्त वेषधारी पांडव रथमें सवार हो चले। उधर धनुषोंके शब्दसे मिला हुआ रण-भेरियोंका शब्द हुआ। विराट और जालंधरके इस वक्तके भीषण युद्धको देख कर भीरुओंके प्राण संकटमें पड़ गये और महाभटोंके रोमाञ्च हो आये। दोनों ओरके रण-शौंडीर योद्धा धनुषोंको कर्ण पर्यन्त खींच कर अविरल बाणोंकी वरसासे शत्रुओंके हृदयोंको बड़ी निर्दयतासे वेधते थे। वज्र प्रहारसे खंडित होनेवाले पर्वत की नाँई तलवारोंके प्रहारसे खंडित होकर योद्धागण पृथ्वी पर पड़ते थे। सारांश यह है कि उन दोनोंमें रात रात तक बड़ा भीषण युद्ध हुआ। इस समयके उनके युद्धको देख कर ऐसा कोई भी जीवधारी नहीं रहा, जिसे कि भय न मालूम पड़ा हो। अन्तमें अपने धनुषके द्वारा बाणों पर बाण छोड़ता हुआ और योद्धाओंकी धर-पकड़ करता हुआ जालंधर राजा विराटकी ओर दौड़ा। वह योद्धाओंके हाथ-पाँवोंको काटता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानों वृक्षोंको डालियोंसे रहित ही करता जा रहा है। आखिर विराट तक पहुँच कर उसने उसे ऐसा ललकारा कि उसके होश-हवाश बिगड़ गये। बाद क्षणभरमें ही अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा विराटको सारथी सहित वेध दिया और कूद कर वह उसके रथमें पहुँच गया। इसके बाद उसने संकटमें पड़े हुए वीर विराटको बाँध कर विवश कर दिया और अपने रथमें बैठा कर वह वहाँसे चलता बना; जैसे कि भयंकर साँपको लेकर गरुड़ आकाशमें चला जाता है।

उधर यह बात जब युधिष्ठिरने सुनी कि दुष्ट जालंधरने विराटको पकड़ लिया है तब उसने शूरवीरताके स्थान भीमसे कहा कि भीम, रथको जल्दी लेजा

कर इस महारणमें पकड़े गये विराट नरेशको बन्धनसे मुक्त करो; और जालंधरसे अखिल गोकुलको छीन लाकर तुम मुझे अपना बल दिखाओ। तुम्हारे बलकी परीक्षाका यही समय है। हे महारथी, तुम जाकर संकटमें फँसे हुए और दृढ़ बन्धनोंसे बँधे हुए विराट नरेशको बन्धन मुक्त कर—आपत्तिसे छुड़ा कर—मेरे मनोरथको पूरा करो। अपने भाईके ऐसे वाक्योंको सुन कर त्रिपुलोदर उसी वक्त तैयार हो गया और युधिष्ठिरको प्रणाम कर एक वृक्षको जड़से उखाड़ वह उस महायुद्धमें घुस पड़ा। घोर शब्द करते हुए उसने इधर उधर खूब दौड़ लगाई। उस समय वह अपने घोर शब्दसे यमके जैसा और उखाड़े हुए वृक्षसे मतवाले हाथीके जैसा जान पड़ता था। एवं युधिष्ठिरकी प्रेरणासे गांडीव धनुधारी पार्थ, विपुलाशय नकुल और सहदेव भी मर्यादा रहित समुद्रकी नाँई उमड़ कर युद्धके लिए उद्यत हुए।

इस समय भीमाकृति भीमने ग्यारहसौ रथोंको चूर डाला, पार्थने अपने शर-कौशलसे साढ़े नौसौ घोड़ोंको बेकाम कर दिया, नकुलने अपने आरम्भ किये घन-घातके द्वारा वैरियोंके कई कुलोंको नष्ट कर दिया और सहदेवने भी दुर्जय शत्रुओंके साथ बड़ी भारी शूरतासे युद्ध किया। जिससे कि जालंधरके सैन्य-समुद्रमें बड़ा भारी क्षोभ मच गया। कहीं भी शान्तिको जगह न रह गई। यह देख जालंधर जल कर आग हो गया और धनुष-बाण लेकर भीमके ऊपर टूट पड़ा। एवं उस धीरज धारीने भीमको बाणोंकी अविरल बरसासे एकदम ढँक दिया; जैसे मेघ आकाशको ढँक देते हैं। उधरसे भीमने भी अपने बाणोंकी बरसा शुरू की और बातकी बातमें ही उसने जालंधरके सारथीको मार गिराया। बाद रण-रंगका ज्ञाता भीम उछल कर उसके रथ पर जा झपटा और साहसके साथ उसने जालंधर महीपतिको बाँध कर विराटको बंधन-मुक्त कर दिया। यह देख शरोंकी मारसे जर्जरित हुई जालंधरकी सारी सेना अपने प्राण लेकर भाग गई। इस प्रकार विराट तथा गोधनको स्वतंत्र कर भीमने आकर युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया। युधिष्ठिरने भी भीमकी पीठ थप-थपा कर बड़ा सन्तोष प्रगट किया।

उधर जालंधरके पकड़े जानेका समाचार ज्यों ही दुर्योधनके कानों तक पहुँचा त्यों ही क्रोधमें आ, युद्धके लिए उद्यत हो वह सेना-संहित विराट देशको चल पड़ा। और विराट नगरके पास आकर उस महायोद्धाने उत्तर

दिशाकी ओरवाले नगरके फाटक पर पड़ाव डाल दिया। और वहाँ पर जो विराटका श्रेष्ठ गोकुल चरता फिरता था उस पर उसने अपना अधिकार जमा लिया। यह देख उत्तरकी ओरका पुर क्षोभ-मय हो गया। वहाँ सब जगह भयने अपना अड्डा जमा लिया। वहाँके सब लोग भयके मारे विह्वलसे हो गये। और चिन्ता-रूपी वज्र पातकी ताड़नासे शोकाकुल होकर वे मन-ही-मन सोचने लगे कि हम इस वक्त क्या करें, कहाँ जायें, एवं इस समय हमारी रक्षा कैसे हो। आखिर निराश होकर वे कहने लगे कि क्या करें हमारा कोई भी सहायक नहीं है। इसीका यह परिणाम है कि वैरीने हमारा साराका सारा ही गो-कुल छीन लिया है। यदि हमारा कोई सहायक होता तो ऐसा दृश्य कभी भी हमारे देखनेमें न आता। यह देख कर द्रौपदीने अर्जुनकी ओर उँगुली उठा कर उन लोगोंसे कहा कि देखो यह बड़े वीर हैं और रण-कलाके ज्ञाता विद्वान हैं। इन्होंने कई वार पार्थका सारथीपन किया है। तुम इनकी शरण लो। यह तुम्हारी रक्षा करेंगे।

द्रौपदीके बचनोंको सुन कर विराटके पुत्रने उस नटवरको एक महारथ दिया और आप स्वयं भी हाथी, घोड़े, रथोंकी सेना सहित नगरसे वाहिर निकला। और वाहिर आकर उसने ज्यों ही दुर्योधनकी असंख्य सेना पर दृष्टि डाली त्यों ही उस चंचल बुद्धिके देवता कूच कर गये और वह एक क्षणभरमें ही वहाँसे भाग-निकलनेका मार्ग देखने लगा। वह अर्जुनसे बोला कि मैं तो इस रणसे बिल्कुल ही सन्तुष्ट हो गया, मुझे अब युद्धकी इच्छा नहीं है। शत्रुकी सेना बड़ी प्रबल है। देखो, यह घोड़ोंकी सेना कितनी भारी और विकट है। मै तो इस प्राणहारी युद्धमें एक क्षण भी नहीं टिक सकता हूँ। इतना कह कर वह राजपुत्र चुप हो गया और किसी बातका उत्तर न देकर वह वहाँसे एक दम भाग खड़ा हुआ। उसे इस प्रकार भागते देख अर्जुनने उससे स्पष्ट शब्दोंमें यों कहा कि आप युद्धमें वैरियोंको पीठ देते हैं और अपने कुलको लजाते हैं! तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे अर्जुन जैसे वीरका सारथी मैं तुम्हें मिल गया फिर भी तुम कातर होते हो! यह तुम जैसे क्षत्रियोंको उचित नहीं। युवराज! डरो मत और मेरे साथ रणमें इन उद्धत शत्रुओंकी उद्धतताका इलाज करो। अर्जुनने उसे इस प्रकार यद्यपि बड़ा साहस दिलाया; परन्तु उसने न माना और युद्ध-स्थल छोड़ भागनेके लिए स्वयं अपना रथ वापिस फेर लिया। यह देख अर्जुनने फिर कहा कि युवराज! कायरोंकी भाँति डर कर भागो मत। मेरी बात सुनो। मैं वही प्रसिद्ध अर्जुन हूँ जिसका नाम सुन कर शत्रु काँप उठते हैं। इसमें तानिक भी सन्देह

मत करो। अब स्थिर होइए और भयको हृदयसे निकाल कर शत्रु-समूहका शिर छेदनेके लिए अपने समुत्कट शरोंको छोड़ना शुरू कीजिए। थोड़ी देरके लिए भला मेरा बल ही तो देखो कि मैं क्षण भरमें ही दुर्योधनकी सेनाको कैसी भयभीत और तितर बितर किये देता हूँ। अर्जुनके इन वचनोंको सुन कर भी अविश्वासी और भयभीत लोगोंने विश्वास नहीं किया कि यह 'वही अर्जुन है'। वे इसी विचारमें उलझ रहे थे कि पार्थने घोड़ोंको चलानेमें तत्पर हुए विराट-पुत्रको अपना सारथी बना कर अति शीघ्रतासे रथको शत्रुकी ओर दौड़ाते हुए कहा कि युवराज! तुम रणांगणमें शीघ्रतासे रथ चलाओ और मैं शरोंके तीक्ष्ण प्रहारसे अभी शत्रुओंको धराशायी किये देता हूँ। मै शत्रुओंका नाश कर, यश सम्पादन कर, जय-सम्पन्न हो, पुण्य सम्पत्ति लेकर ही अपने पुरको जाऊँगा।

इसके बाद अर्जुन वैरियोंसे यह कहता हुआ कि ठहरिए, स्थिर होइए, रथमें बैठ कर शत्रुकी ओर चला। इधर शत्रु-समूहको निरुत्तर करता हुआ महत्वशाली उत्तर-कुमार भी बड़े वेगसे रथको चलाये लिये जा रहा था। पार्थके साहससे खुश होकर ज्वलन नाम देवने पार्थको नंदिघोष नाम एक समर्थशाली रथ भेंट किया। अर्जुन भी देवताधिष्ठित उस रथ पर सवार हो, उत्तरको सारथी बना शत्रु-समूहका नाश करनेके लिए युद्ध-स्थलमें आगे बढ़ा। उसको इस प्रकार निर्भयतासे आगे बढ़ता देख कर द्रोणचार्य अचम्भेमें पड गये और वह क्रूर स्वभाववाले उन धनुर्धर कौरवोंसे बोले कि कौरवो, अब भी कुछ नहीं गया, युद्धकी प्रतिज्ञाको छोड़ कर आप लोग सन्धि कर लीजिए, जिसमें कि आपको सुख हो। नहीं तो आप लोग ही बताइए कि इसमें कौन राजे ऐसे समर्थ हैं जो कि पार्थके तीक्ष्ण वाणोंको सह सकेंगे। क्या कहीं दावानलके जलते हुए कोई काठ बिना जला रह सकता है। मेरी तो यही सम्मति है कि अब आप लोगोंका कपट खुल गया है, अतः आप लोग कपट, गो-धन और युद्धकी प्रतिज्ञाको तो छोड़ कर और परस्परमें प्रीति करके अपने घरको चलिए। क्या आप लोगोंको खयाल नहीं है कि घरसे निकलते समय सैकडों खोटे अशुकन हुए थे, जिनसे सभी अकुशल ही अकुशल झलकता था। अतः युद्ध न छेड़ कर यही उचित समझ पड़ता है कि आप लोग सन्धि करके घर चलें। द्रोणके इन वाक्योंको सुन कर दुर्योधनकी आँखें क्रोधसे लाल रक्तके जैसी हो गईं। वह अपने भटोंको बढ़ते हुए देख कर द्रोणसे बोला कि नय-नीति-विहीन द्रोण, तुम ऐसे विद्रोहके वचन कहते हो! भला यह वैरियोंकी तारीफका अवसर है। जान पड़ता है कि तुम

अभी तक क्षत्रियोंके स्वाभाविक मार्गसे परिचित नहीं हो। यदि यही बात हो तो सुनो, मेरे क्रोधके सामने पार्थ क्या वस्तु है और तुम सरीखे निर्बल मनवाले कायर भला कर ही क्या सकते हैं।

उधर रथ पर सवार हुए कर्णने भीष्म पितामहसे कहा कि गुरुराज, क्या तुमने मुझ सरीखे बलीको भी रणमें किसीके द्वारा जीता गया देखा है। अब जरा मेरे पराक्रमको भी देखो कि मैं देखते देखते महाभाग अर्जुनको उत्तर-सहित कैसा छिन्न भिन्न किये देता हूँ, जिसमें कि पृथ्वी पर उसका नाम-निशान भी न रहे। कर्णके इन वचनोंको सुन कर पितामहको बड़ा रोष आया और उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। वे बोले कि कर्ण, पहले तुम यही बताओ कि पृथ्वी पर तुमने ऐसा भयंकर युद्ध कहीं देखा भी है? सच करके मानों कि युद्धमें अर्जुनका बाल भी बाँका कर सकनेवाला संसारमें कोई पुरुष नहीं है। यदि वह रोषमें आ जायगा तो सन्देह नहीं कि तुम सबको एक क्षणमें ही पृथ्वी पर सुला देगा। इसी बीचमें कूद करके शल्य बोल उठा कि तात, सच तो यह है कि यह जो हम सरीखे लज्जाशील पुरुषोंमें परस्पर युद्ध छिड़ा है यह सब आपहीकी करामात है; और कोई भी इसमें कारण नहीं है। द्रोणाचार्यने देखा कि दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी। तब वे तथा भीष्म पितामह उसकी सुशिक्षित हाथी, घोड़े, रथोंवाली सेना सहित उमड़ करके पार्थसे भिड़नेके लिए आगेको बढ़े। उधरसे पार्थने अति शीघ्र ही गांगेयके पास दो बाण ऐसे छोड़े कि जिन पर उसका नाम लिखा हुआ था। बाण जाकर गांगेयका पास पड़े। गांगेयने देख कर उन्हें बाँचा। उनमें लिखा था कि "धनंजय, पितामहसे प्रार्थना करता है कि मैं नत होकर आपके चरण-कमलोंमें मस्तक झुकता हूँ। मैं हमेशा ही आपकी सेवाके लिए तैयार रहता हूँ। हर्ष है कि आज तेरह वर्ष पूरे हो गये और भाग्यसे हमें फिर आपके चरणोंकी सेवाका अवसर मिला। अब आगे मै शत्रु-समूहका विनाश करु अपनी वीरतासे पृथ्वीको भोगूँगा।" पितामहने उस बाणको कौरवोंको दिखाया। देख कर वे क्षोभित हो उठे और उन्हें बड़ा भय हुआ।

इसके बाद लक्ष्यवेधी पार्थने शत्रु-दलको अपना लक्ष्य बनाया और उसीके अनुसार शत्रुकी ओर उसने अपना रथ भी चलाया। बाद वह दुर्योधनसे बोला कि अधम दुर्योधन, तू अब मेरे मारे कहाँ जायगा? मैं तुझे अब यमालयका अतिथि बिना बनाये कभी न छोड़ूँगा। इसके साथ ही सहसा पार्थके रथको अपनी ओरको आता देख कर मूर्ख और दुष्टचित्त दुर्योधन काँप उठा और बड़ा भयभीत हुआ।

इसी बीचमें पार्थके सामने कौरवोंकी सेना आ डटी और उसने अपने संख्यातीत बाणोंके द्वारा विराट-पुत्रको जर्जरित कर दिया । यह देख धनंजय आगकी नाँई जल उठा और उसने एक ऐसा बाण छोड़ा जिसकी ज्वालासे कौरवोंकी सारी सेना दावानलसे जलनेवाले वनकी भाँति जलने लगी। इसके बाद ही धनंजयने गांडीव धनुष उठा कर कौरवोंकी सेनाको ललकार कर कहा कि यदि तुममें कोई भट कुछ भी सामर्थ्य रखता हो तो वह आये और मेरे आगेसे दुर्योधनको जीता बचा ले जाये। पार्थके इन वचनोंसे कर्ण क्रोधसे आगकी नाँई जल उठा और युद्धके लिए तैयार होकर अर्जुन पर टूट पड़ा। फिर क्या था, वे दोनों ही वीर आपसमें भिड़ गये और अपने पाँवोंके प्रहारसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए तथा हँसी भरे वाक्योंके द्वारा एक दूसरेकी हँसी उड़ाते हुए एक दूसरेको अपने अपने महान् तीक्ष्ण बाणों द्वारा अच्छादित करने लगे। वे परस्परमें कभी तो महान् प्रखर बाणोंकी वरसासे एक दूसरेके छोड़े हुए शरोंको छेदते और कभी विघ्नोंके समूह जैसे खड्गोंके द्वारा एक दूसरेका हनन करते। वे लड़ते हुए जो शब्द करते थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानों घोड़े ही हींसते हैं । वे अपनी मारकाटसे पृथ्वीको चकचूर करते हुए हाथीके जैसे जाने जाते थे। वे सिंहकी भाँति ही जीवोंको मार रहे थे। अब और बढ़ा कर कहनेकी आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपने संख्यातीत बाणोंके द्वारा सारेके सारे गगन-मंडलको ही पूर दिया था।

इसके बाद भी पार्थने बाणोंकी वरसा जारी रक्खी और मेघोंकी नाँई बाणोंसे आकाशको बिलकुल ही ढँक दिया । अर्जुनकी वीरता देख शत्रु-दल युद्ध-स्थलको छोड़ कर ऐसा भागा जैसे वायुके मारे मेघ भागते हैं । इसके बाद धनुषधारी अर्जुनने अपने शर-कौशलसे कर्णके धनुषकी डोरीको काट डाला और बातकी बातमें ही उसके रथको भी सारथी-सहित नष्ट कर दिया । कर्ण तब रथ रहित हो गया । इसके बाद शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे दुर्योधनका छोटा भाई शत्रुंजय, शत्रु-दलको बाण-प्रहारसे प्रच्छन्न करता हुआ सिंहके जैसा गर्ज कर पार्थ पर झपटा। उसको युद्ध-स्थलमें उतरा देख करके उससे अर्जुनने कहा कि बालक, जाओ, रणसे वापिस लौट जाओ। तुम व्यर्थ ही अपने प्राण क्यों गँवाते हो? क्या कहीं बेचारा हिरण भी सिंहके पाँवके आघातको सह सकता है? या महान् सर्प भी गरुड़के पक्षके प्रहारको सह सकता है? तुम अभी बालक हो, शक्ति-विहीन हो, असमर्थ हो, इस लिए तुम पर बाण छोड़नेको मै तैयार नहीं। अर्जुनकी इस गर्वोक्तिसे उसे बड़ा क्रोध आया । उसने अर्जुनके ऊपर

अत्यन्त तेजीके साथ एकदम पाँच वाण चलाये जो पार्थकी छातीसे टकरा कर बे-काम हो गिर पड़े। यह देख पार्थने उस पर दस वाण चलाये, जिनसे उसके प्राण पखेरू उड़ गये और वह धराशायी हो गया। शत्रुंजयको मरा देख अर्जुनके वाणोंको काटता हुआ भयानक युद्ध करनेवाला कर्णका छोटा भाई विकर्ण अर्जुन पर दौड़ पड़ा। फल यह हुआ कि अर्जुनने सारथीको मार कर उसका भी रथ नष्ट कर डाला। और जब वह असमर्थ हो गया तब अर्जुनने उसे भी वाणोंसे पूर दिया।

इसी बीचमें धनुष चढ़ाये हुए यमके जैसा एक वीभत्स नाम योद्धा कौरवोंकी सेनाको तितर वितर करता हुआ युद्ध-स्थलमें उतरा और उसने देखते देखते अपने एक ही वाणके द्वारा विकर्णका मस्तक धड़से जुदा कर दिया। तब एकदम विकर्णका चिल्लाना वन्द हुआ और वह यम-मन्दिरको प्रयाण कर गया। विकर्णको धराशायी होता देख कर कौरवोंकी सारी सेना उसी वक्त पार्थ पर टूट पड़ी। परन्तु वह पार्थका बाल भी बाँका न कर सकी। पार्थने उसे उसी दम आगे बढ़नेसे रोक दिया। यह देख उधरसे कर्णने सेनाको भागनेसे रोका और उसे नष्ट करनेको उद्यत हुए पार्थको ललकारा। फिर क्या था, अर्जुन भी कर्ण पर वाणोंकी बरसा करने लगा और कर्ण उसके वाणोंको व्यर्थ करनेकी चेष्टा करने लगा। अन्तमें कर्णने एक साथ चलाये हुए तीन बाणोंके द्वारा धनंजयको, उसके सारथीको, रथको और उसकी धुजाको वेध दिया। यह देख धनंजयको बड़ा क्रोध आया और उसने थोड़ी ही देरमें अपने वाणोंकी मारसे कर्णको धराशायी कर दिया, जिससे उसे मूर्च्छा आ गई। वह बे होश हो गया। उसी वक्त कौरवोंने कर्णको रथमें बैठा कर युद्धस्थलसे वाहिर किया और वे उसका उपचार करने लगे। इधर क्रोधसे अन्धा हुआ दुःसाध्य दुःशासन युद्ध-स्थलमें कूद पड़ा और उसने यह कह कर अर्जुनके हृदयमें एक बाण मारा कि यदि ताकत हो तो तू मेरे वाणोंको सह देख। उसके बाणके लगते ही धनंजयको भी बड़ा क्रोध आया और उसने उसके ऊपर एकदम पच्चीस बाण चलाये, जिनसे उसे एक क्षणमें ही अधमरा सा हो जाना पड़ा। इसके बाद और और राजा भी जो पार्थके आगे आये, उन्हें भी उसने मार गिराया और दिगीशोंको उनकी वलि चढ़ा दी। अन्तमें इस प्रकार सब शत्रुओं पर विजय पाकर अर्जुन बड़ा कृतार्थ हुआ और उस शत्रु-समूहके विध्वंसकके सारे मनोरथ सिद्ध हुए।

इसके बाद अति शीघ्रतासे पार्थके साथ युद्ध करनेके लिए पितामह युद्ध-स्थलमें उतरे और उन्होंने पार्थको भीषण ध्वनिके द्वारा ललकारा । तब पार्थने तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर उनसे नम्र शब्दोंमें कहा कि पूज्यपाद, वनमें घूमते हुए हम लोग तेरह साल बिता कर बड़े पुण्ययोगसे फिर भी आपके चरणोंमें आये हैं । अतः प्रभो, अब आप धनुषको रख दीजिए और धीरजकी शरण लीजिए, जिससे इन आपके सेवकोंका राज्य हो जाय । परन्तु पितामह गांगेयने अर्जुनकी बात पर कुछ भी ध्यान न दिया और रोषमें आकर अर्जुनके ऊपर उन्होंने एक साथ सोलह बाण छोड़ दिये । तब उधरसे अर्जुनने भी बाण-प्रहार शुरू किया और गांगेयके रथको सारथी-सहित वेध दिया । यह देख मद-माते गांगेयके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा । फिर दोनोंमें बाणोंकी तीव्र मारके द्वारा महान् भीषण युद्ध होने लगा । युद्ध करते करते जब वे सामान्य बाणोंके द्वारा एक दूसरे पर विजय न पा सके तब उन्होंने विशेष बाणोंका प्रहार जारी किया । पहले ही पितामहने शत्रुकी सेनाका मोहन, उच्चाटन और स्तंभन करनेवाले मोहन, उच्चाटन और स्तंभन नाम बाणोंको छोड़ा और उन सबको महाभाग पार्थने अपने कौशलसे व्यर्थ कर दिया ।

इसके बाद पार्थने मन-ही-मन अग्निदेवको याद किया । अर्जुनके याद करते ही वह देव पृथ्वी, वन और सेनाको भस्म करता हुआ आया और सर्वत्र अपना प्रभाव जमाने लगा । गांगेयने उसे पार्थका बाण समझ कर अपनी विद्याके बलसे छेद दिया । इस वक्त देवगण आकाशमें ठहरे हुए उन दोनोंका भीषण युद्ध देख रहे थे और उनके कला-कौशल्यकी तारीफ कर रहे थे । बलसे उद्धत हुए अर्जुनने गांगेयके उस बाणको भी छेद दिया जो कि उसने अर्जुनके अग्निबाणको छेदनेके लिए छोड़ा था । लेकिन अब तक उन दोनोंमेंसे कोई भी हारा और जीता न था । इसके बाद अर्जुनने अपने एक प्रबल बाणके द्वारा पितामहका बाण छेदा ही था कि इसी बीचमें उन दोनोंके मध्यमें द्रोणाचार्य आ गये । शत्रुको कष्ट देनेवाले वे निरंकुश हाथीकी भाँति खड़े थे । अर्जुनने उनके चरणोंमें झुक कर बड़े भक्तिभावसे प्रणाम किया और उनसे वह बोला कि आप मेरे गुण-गरिष्ठ गुरु हैं, फिर हे नीति-नयके परम विद्वान् आप ही कहिए कि मैं आपहीका शिष्य हो कर आपके साथ कैसे युद्ध करूँ । अतः गुरुवर्य, आप अपने स्थानको जाइए । मैं आज वैरियोंको यम मन्दिरका अतिथि बनाऊँगा । यह सुन द्रोणने कहा कि पार्थ, तुम जल्दी तैयार हो और बराबर

बे-रोक टोक मेरे ऊपर प्रहार करो । इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है । द्रोणाचार्यके इन वचनोंसे डर कर पार्थने उनसे कहा कि गुरुवर्य, तब पहले आप ही बाण छोड़ें, पीछेसे यथाशक्ति मैं भी आपकी सेवा करूँगा और आपके बलको देखूँगा। इसके बाद अभिमानमें भूल कर वे दोनों गुरु-शिष्य आपसमें युद्ध करनेको उद्यत हुए । इस समयके इन दोनोंके भीषण युद्धको आकाशमेंसे देवगण और नीचेसे दोनों पक्षकी सेनाके लोग देखते थे और देख कर बड़े अचम्भेमें पड़ रहे थे। इसके बाद द्रोणने एक साथ बीस बाणोंको छोड़ कर सारे आकाशको ढँक दिया । उधरसे उद्धत पार्थने उन आते हुए बाणोंको आधे मार्गमें ही छेद डाला । तब क्रोधमें आ द्रोणने अर्जुनके ऊपर एकदम लाख-बाण छोड़े जिनको कि उसने दो लाख बाणोंसे निवार दिया । यह देख जय-लक्ष्मी अर्जुन जैसे शुभंकर भव्य मूर्ति पर निछावर हो गई । इस प्रकार अर्जुनने अपने प्रखर बाणोंकी मारसे द्रोणाचार्यको युद्ध स्थलसे हटा दिया ।

इसी बीचमें युद्धकी प्रतिज्ञा करता हुआ उधरसे द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा युद्धस्थलमें आ उतरा। फिर क्या था, अर्जुन और वह दोनों महायोद्धा परस्पर भीषण सिंहके बच्चोंकी भाँति भीषण युद्ध करने लगे । इतनेहीमें बीभत्सने अश्वत्थामाके रथके दोनों घोड़ोंके छेद दिया, जिससे वे प्राणरहित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े । इधर अश्वत्थामाने भी अपने महाबाणोंके द्वारा अर्जुनके गांडीव-धनुषकी डोरीको छेद दिया। परन्तु अर्जुनने धनुष पर उसी वक्त दूसरी डोरी चढ़ा कर अश्वत्थामाके हृदयमें कई ऐसे बाण मारे कि जिनसे वह अति शीघ्र बे-होश हो कर जमीन पर गिर पड़ा। इसके बाद उत्तर सारथीने अर्जुनसे कहा कि नाथ, अब मैं दुर्योधनकी ओरको रथ फेरता हूँ, अतः हे धनुधर, आप धनुष पर शर संधान कर अति शीघ्र ही इन शत्रुओंका कम तमाम कर दीजिए। इस पर अर्जुनने दुर्जेय शत्रुओंको अपनी ओर आकर्षित कर मर्मको नर्म करनेवाले वचनों द्वारा समझाया और साथ ही उस शौंडीरने अपने विषम-बाणोंके द्वारा आकाशको पूर दिया । यह देख राजबिन्दु पार्थ पर झपटा और उसने अपनी सेनाके द्वारा उसे चारों ओरसे घेर लिया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों हाथियोंने सिंहको घेर लिया है । अर्जुन सिंह जैसा था और राजबिन्दुके सैनिक-गण हाथियों जैसे । लेकिन वह सेना अर्जुनका कुछ भी न कर सकी और है भी ऐसा ही कि क्या कहीं हाथी बहुतसे मिल कर भी एक सिंहका कुछ कर सकते है । राजबिन्दुकी सारी सेनाको अकेले अर्जुनने ही

तितर-बितर कर दिया; जैसे कि थोड़ीसी वायु भी बड़े बड़े मेघोंको तितर बितर कर देती है। इसके बाद उस महाबलीने लक्ष्य बाँध कर राजबिन्दुके हाथी, घोड़े, रथ और धुजाओंको छेद कर सबको धराशायी कर दिया। यह सब मार काट देख अर्जुन बड़ा विपन्न हुआ और उसने अन्तमें सोचा कि इस युद्धमें मैं किस किस राजाको मारूँ; किस किसके प्राण लूँ। हिंसा करनेसे तो बड़ा पाप होता है, अतः किसीको भी मारना उचित नहीं। यह सब सोच-विचार कर हिंसा दूर करनेके लिए धनंजयने मोहन-बाण छोड़ा और उन्हें ऐसा बे-सुध कर दिया मानों उन्होंने धतूरेका फल ही खा लिया है। वे उसके नशेसे बेसुध हो गये; सबके सब राजा मुर्देके जैसे पृथ्वी पर गिर पड़े।

इस प्रकार शत्रुओं पर विजय पाकर और उनके छत्र-धुजा, हाथी-घोड़े, रथ-महारथ वगैरह पाकर अर्जुन बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

इसके बाद विराटने उसी वक्त नौबते झड़वाईं और असंख्य वीरोंके साथ पार्थका बड़ा भारी आदर और अपूर्व उत्सव किया। इसी समय हर्षित-चित्त और शिष्टों द्वारा सेवित निर्भय युधिष्ठिरने उधरसे गो-कुलको भी छुड़ा लिया। इसके बाद किसी तरह जब कौरव होशमें आये तब वे बड़े लज्जित और निर्मद हो दीनकी भाँति अपने पुरको चले गये।

इधर जब विराटको यह निश्चय हो गया कि ये पाँचों ही वास्तवमें पांडव हैं तब हाथ जोड़, नमस्कार कर उसने युधिष्ठिरसे कहा कि देव, इतने समय तक मैंने आपको जाना नहीं था कि आप ही धर्मपुत्र हैं। अतः आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें। प्रभो, अबसे इस राज्यके आप ही स्वामी हैं और मैं आपका किंकर हूँ। अतः आप बन्धुवर्ग सहित यहीं राज्य कीजिए। इसके बाद विराट गोकुलको बाड़ेमें बन्द करवा कर आप स्वयं पांडवों-सहित बड़े भारी उत्सवके साथ नगरमें आया। विराटने युधिष्ठिर आदिसे बड़े विनय-पूर्वक वहीं रहनेके लिए प्रार्थना की और पार्थसे इच्छा प्रकट की कि वह उसकी पुत्रीके साथ विवाह करे। वह बोला कि धनंजय, मेरी भोग-योग्य और सब तरहसे कृतार्थ एक पुत्री है। वह रूप-सौन्दर्यकी सीमा है। पहले जरासंधके पुत्रने मुझसे उसके लिए बहुत बार प्रार्थना की थी; परन्तु मैंने उसे नहीं दी। इस लिए हे पार्थ, आप उसका पाणिग्रहण कीजिए। इस पर पार्थने कहा कि महाराज, सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ अभिमन्यु नाम मेरा एक पुत्र है। आप अपनी

सुंदरी कन्याको उसे दीजिए । अर्जुनको इस कहनेको स्वीकार कर विराटने विवाह-मंगलोंके द्वारा बड़े भारी ठाट-वाटके साथ अभिमन्युके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया ।

इसके वाद पांडवोंका यह सब हाल जब द्वारिकामें पहुँचा तब वहाँसे वलभद्र, नारायण, प्रद्युम्न, भानु आदि विराट नगरमें आये । तेजस्वी धृष्टार्जुन और अखंड सत्ताशाली महाभाग शिखंडी भी आया । इसी भाँति रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित, आनंदके भरे, सैकड़ों मनोरथोंको चित्तमें रख कर और और राजा भी आये । विवाहके वाद भी पांडव और राजा लोग कितने ही दिन वहाँ और रहे । इसके वाद वस्त्राभूषण आदिके द्वारा सम्मानित हो वे अपनी अपनी राजधानीको चले गये । सवको विदा कर नारायण और बलभद्र आदि राजा लोग तीन अक्षौहिनी सेना लेकर प्रीतिके साथ, पांडवों सहित वहाँसे रवाना हो द्वारिकामें आ गये और वहाँ वे परस्पर वड़ी प्रीतिसे रहते हुए अपना समय विताने लगे ।

इसी समय श्रेणिकने गौतम भगवान्से पूछा कि भगवन्, अक्षौहिणीका प्रमाण कितना होता है? गौतमने उत्तर दिया कि २१७८० हाथी, इतने ही रथ, ६५६१० घोड़े, १०९३५० पयादे योद्धा इन सवको मिला एक अक्षौहिणी होती है ।

द्वारिकापुरीमें रहते हुए अर्जुनने एक दिन नीतिसे बृहस्पतिको भी जीतनेवाले कृष्णसे कहा कि कौरवोंने छलसे हमें लाखके महलमें रक्खा और बाद उन शठोंने उसमें आग लगा दी । पुण्यसे हम लोग उस समय वाल वाल बच गये । इसके सिवा उन दुष्टोंने एक बड़ा भारी अपराध यह किया है कि द्रोपदीकी चोटी पकड़ कर उसे वलात् घर वाहर किया और उसका घोर अपमान किया । अर्जुनके वचनोंको सुन कर महामना नारायण दाँतों तले जीभ दवा कर बोले पार्थ, दुर्योधनने यह सचमुच ही वड़ा अन्याय और बहुत ही क्षुद्रता की है । यह दुष्ट न तो वन्धुवर्गको चाहता है और न इसमें कुछ कुलीनता ही है । इसी कारण संसारमें इसका इतना अपयश फैल रहा है, जिसकी कोई सीमा नहीं । कौरवोंके दुराचारोंको पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं जो सह सके । पांडवोंके साथ इस विषय पर खूब विचार कर नारायणने अपना कर्तव्य निश्चित किया और फिर दुर्योधनके पास एक दूत भेजा । दूत थोड़े ही समयमें हस्तिनापुर

पहुँच कर उसने दुर्योधनको नमस्कार किया और नीतिके साथ वह बोला कि "महाराज, मैं द्वारिकासे आया हूँ। मैं एक निपुण दूत हूँ। राजन्, पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं जो पांडवोंको जीत सके। फिर व्यर्थ ही आप अपने कुलका उच्छेद क्यों करते हैं। देखिए नारायण, संसार भरमें विकट विराट, द्रुपद, सब विघ्नोंको दूर करनेवाला प्रलंवघ्न, सब प्रकार योग्य दशार्ह-गण तथा प्रद्युम्न आदि सब राजा पांडवोंकी पक्षमें हैं; उनकी सहायताके लिए तत्पर हैं। फिर युद्धमें उनके सामने आप एक क्षण भी कैसे ठहर सकते है। इस लिए राजन्, अब आप मान छोड़ कर उनके साथ कपट रहित सन्धि कर लीजिए और आपसमें आधी आधी पृथ्वीको बाँट कर दोनों महाभाग अपने अपने हिस्सेका उपभोग कीजिए। और सच पूछो तो इसीमें आपकी भलाई है।" दूतके इन वचनोंको सुन कर दुर्योधनने विदुरसे कहा कि तात, बताइए, इस समय क्या किया जाये। वह कौनसा उपाय है जिससे हम पूरे राज्यको भोग सकें। यह सुन विदुरने कहा कि भाई, जीवोंको सुख धर्मसे मिलता है और राज्य भी निरंकुश इसीसे होता है। वह धर्म और कोई वाहिरी चीज नहीं, किन्तु आत्माकी विशुद्धि है। एवं आत्म-विशुद्धि मन-वचन-कायकी सरलताको कहते हैं। अथवा क्रोध, लोभ और गर्वके त्यागको धर्म कहते हैं। इस लिए तुम क्रोध आदि छोड़ कर अपनी बुद्धिको धर्ममें लगाओ। यदि तुम निर्मल यश चाहते हो तो वत्स, अपने आप ही पांडवोंको बुला कर विनयके साथ उन्हें आधा राज्य बाँट दो। यह सुन दुर्योधनको वड़ा क्रोध आया। उसका हृदय गर्वसे भर आया, चेहरा लाल हो उठा। वह विदुरसे बोला कि मैं हमेशासे आपकी इतनी भक्ति करता आ रहा हूँ कि जिसका कोई ठिकाना नहीं; परन्तु आप इतने कठोर है जो पांडवोंका ही गौरव और राज्य चाहते हैं और हमें उससे वंचित रखना चाहते हैं!

इसके बाद उसने अपमान भरे वचन कह कर दूतको भी सभासे निकाल दिया। अपमानके साथ द्वारिका आकर उस कुशल दूतने पांडवों और यादवोंको प्रणाम कर उनसे दुर्योधनका सब हाल कह सुनाया। वह बोला कि राजन्, कौरव बड़े दुष्ट और पापी हैं। उनका स्वभाव बिल्कुल ही क्षुद्र है। वे संधि करना नहीं चाहते। और न वे आप लोगोंसे सन्तुष्ट ही हैं। यह सुन मिष्टभाषी युधिष्ठिरने कहा कि जो हो, हम तो नीतिका पालन कर अपयशसे वरी हो गये। और अनीति न हो इसी लिए हमने तुम्हें भी भेजा। इसके बाद ही पांडव यादवों-सहित कौरवों पर चढ़ाई करनेकी तैयारीमें लग गये।

इस अध्यायमें यह बात कही गई कि पांडव सारी पृथ्वी पर घूम कर गुप्त वेषमें नाना भटोंसे परिपूर्ण विराट नगरमें आये । वहाँ उन्होंने दुर्जेय कौरवोंको युद्धमें पराजित किया और जन-समूहको आनंद देनेवाले गो-कुलकी उनसे रक्षा कर पुण्य-योगसे वे जयी हुए ।

और ठीक ही है कि धर्मसे ही वैरी नष्ट होते हैं, वन्धुओंका समागम होता है, सुन्दर शरीर मिलता है, मनको मुग्ध करनेवाली सुंदर स्त्रियाँ और सुख मिलता है, कोमल शरीर और कला-विज्ञान प्राप्त होते हैं, पुत्र पौत्र आदि सम्पत्ति प्राप्त होती है । और बढ़ा कर कहाँ तक कहें जीवोंकी मोक्ष लक्ष्मीसे भेंट भी यही धर्म कराता है । इस लिए समझदार लोगोंको सदा धर्मका सेवन करते रहना चाहिए ।

बीसवाँ अध्याय।
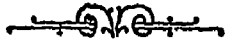
उन अनंतनाथ भगवानको प्रणाम है जो अनंत संसार-समुद्रसे पार उतरनेके लिए सेतु हैं और जो अनंत गुणोंके भंडार हैं। वे मुझे भी अनन्त चतुष्टयका दान दें।

इसके बाद विदुरने विरक्त हो सांसारिक सुखको क्षणभंगुर समझा। वैराग्यमें लीन हो वे सोचने लगे कि इस सम्पत्ति, प्रभुता और विषयजन्य सुखको धिक्कार है जिसके लिए पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, मित्र मित्रको और बन्धु बन्धुको भी मार डालता है। ये कौरव अधर्मरूपी चांडालके सम्बन्धसे मलिन हो रहे हैं। अतः ये अवश्य ही युद्धमें अपने प्राण देंगे और इसी लिए अब मैं इन दुष्टोंका मुँह देखना नहीं चाहता। इस प्रकार विचार करके विज्ञानी विदुर कौरव राजोंसे कह कर वनको चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने विपुलमना विश्वकीर्ति मुनिको प्रणाम कर उनसे धर्मका उपदेश सुना; तथा मुनिधर्मकी दीक्षा ले ली। बाद परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि हो परम तप तपते हुए वे विहार करने लगे।

एक दिन एक पुरुष राज-मन्दिर पुरमें आया और उसने जरासंधको रत्न-समूह भेंट कर प्रणाम किया। जरासंधने उससे पूछा कि तुम कहाँसे आये हो। उत्तरमें वह बोला कि राजन्, मैं आपके दर्शनोंकी इच्छासे द्वारिकासे यहाँ आया हूँ। जरासंधने पुनः पूछा कि वहाँका राजा कौन है। उस आगन्तुकने कहा कि नेमि प्रभुके साथ-साथ कृष्ण नारायण वहाँका राज्य करते हैं। वहाँ यादवोंका निवास सुन कर जरासंधके क्रोधका पारा एकदम चढ़ गया। वह असमयमें क्षुभित होनेवाले प्रलय कालकी भाँति अपनी सेना द्वारा समुद्रको क्षोभित करता हुआ द्वारिकाको चल पड़ा।

इधर बिना कारण ही इस युद्धको छिडता देख कर नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वैरियोंका विध्वंस करनेवाले जरासंधके महान् क्षोभका हाल आकर कृष्णसे कहा। तब कृष्ण नेमिप्रभुके पास आये और उन्होंने शत्रुके क्षयसे होनेवाली अपनी विजयके बाबत उनसे पूछा। उत्तरमें इन्द्रों द्वारा सेवित प्रभु कुछ न कह कर कुछ मुसकया गये। प्रभुके इस मंदस्मितसे अपनी विजय निश्चय कर कृष्ण युद्धके लिए तैयार हुए। उनके साथ ही यादवोंके अन्य

वहुतसे राजा शत्रुका ध्वंस करनेके लिए बद्ध परिकर होकर युद्ध-स्थलमें उतरनेको चल पडे। वह राजे बलदेव, नारायण, जयशील समुद्र-विजय, वसुदेव, अनावृष्टि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, प्रद्युम्न, धृष्टद्युम्न, सत्यक, जय, भूरिश्रव, भूप, सहदेव, सारण, हिरण्यगर्भ, शंब, अक्षोभ्य, त्रिद्धरथ, भोज, सिंधुपति, वज्र, द्रुपद, पौंड्र-भूपति, नारद, नकुल, वृष्टि, कपिल, क्षेमधूर्तक, महानेमि, पद्मरथ, अक्रूर, निषध, दुर्मुख, उन्मुख, कृतवर्मा, विराट, चारु, कृष्णक, विजय, यवन, भानु, शिखंडी, सोमदत्तक और वाह्लीक आदि थे।

उधर जरासंधका भेजा हुआ दूत दुर्योधनके पास गया और उसने दुर्यो-धनको प्रणाम कर उससे जरासंधके उद्देश्यको कह सुनाया। उसने कहा कि जिस बलीने दुर्द्धर विद्वान् और जरासंधके दामाद कंशका ध्वंस किया, जिसने अपने मुष्टि-प्रहारसे चाणूरको चूर डाला और गोवर्द्धन नाम पहाड़को उठा लिया वह सॉपोंका मर्दन करनेवाला, प्रजाका सुरक्षक और महान् वक्षःस्थलवाला गोपाल-कृष्ण—संसार भरमें विख्यात है। उसे सब जानते हैं। और जो यादव युद्धमें भाग कर आगमें जल गये थे, सुना जाता है कि वे सब जीते हैं और पच्छमकी ओरवाले समुद्रमें रहते हैं। यह सब हाल वहुतसे रत्न वगैरह भेंट देकर वहींसे आये हुए एक वैश्यने जरासंध चक्रवर्तीसे कहा है। उसने कहा है कि द्वारिकामें यादवोंका वड़ा भारी राज्य है और वहाँ उनका पूरा पूरा वैभव है। उसके मुँहसे यादवों और पांडवोंको द्वारिकामें रहते हुए सुन कर जरासंधको वड़ा क्रोध आया। उसने नृपोंके पास दूत भेज कर सब राजोंको बुलाया। उनके निमंत्रणसे सब राजे सज्ज होकर वहाँ इकट्ठे हो गये हैं। अतः हे दुर्योधन महाराज, आपको बुलानेके लिए भी चक्रवर्तीने मुझे आपके पास भेजा है। इस लिए विभो, आप चलनेको तैयारी कीजिए। स्वामिन्, चक्रवर्तीने यह संदेशा भेजा है कि यशस्वी वत्स, वीरोंसे युक्त, इष्टको साधनेवाली अपनी सब सेना लेकर अति शीघ्र ही आइए। दूतके हाथ जरासंधके इस संदेशेको पाकर आनन्दके मारे दुर्योधनके रोमाञ्च हो आये। खुशीमें आकर उसने वस्त्राभूषण और धन देकर दूतका खूब आदर किया। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि जिस बातको मैं पहलेसे ही चाहता था, उसीको चक्रवर्ती कर रहे हैं यह बहुत ही अच्छा हुआ।

इसके बाद वीर दुर्योधनने उसी समय रणभेरी वजवाई। जिसे सुन कर रणकी लालसा रखनेवाले वीर योद्धा बड़े प्रसन्न हुए। वे सब सेनाको सजा

कर चले। उनके साथ झूलोंसे प्रच्छन्न मतवाले हाथी चले। सारथियोंके द्वारा तेजीसे चलाये गये शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथ चले। चलते हिलते हुए किसवार-वाले चंचल घोड़े चले। हाथोंमें भाँति भाँतिके हथियार लिये हुए पयादे चले। इस प्रकार चतुरंग सेना सहित घोड़ोंकी टापोंसे उड़ती हुई धूलसे आकाशको ढँकता हुआ दुर्योधन राज-मन्दिर पुरकी ओर चला; और जैसे गंगाका प्रवाह समुद्रमें जाकर मिलता है वैसे ही वह कौरवाग्रणी वाहिनी—सेना—सहित चक्रवर्ती जरासंधकी सेनामें आकर मिल गया। जरासंधने उसका कर्ण-सहित वडा आदर किया जैसा कि लोग सूरजके साथ किरणोंको आदर करते हैं।

इसके वाद चक्रवर्तीने यादवोंके पास द्वारिकाको दूत भेजा। दूतने जाकर वहाँ यादवोंको यह सूचना दी कि आप सव यादवों पर चक्रवर्ती जरासंध यह आज्ञा करते है कि अपने देशको छोड़ कर आप लोग इस समुद्रमें क्यों रहते हैं? बुद्धिमान् समुद्रविजय और वसुदेव मुझे वहुत ही प्रिय हैं। फिर ये अपने आपको ठग कर यहाँ क्यों आ छिपे। इनके लिए ऐसी छिपनेकी वात ही क्या थी। अस्तु, अव भी कुछ गया नहीं है। वे अपने गर्वको छोड़ कर सब सुखके देने-वाले मेरे चरणोंकी सेवा करें। दूतके मुँहसे जरासंधकी इस आज्ञाको सुन कर वलशाली वलभद्रने अभिमानके साथमें यों कहना आरम्भ किया कि दूत, जाओ और अपने महाराजसे कह दो कि कृष्णको छोड़ करके और दूसरा चक्रवर्ती नहीं जिसके चरणोंकी सागर (समुद्रविजय) सेवा करे।

वलभद्रके इन वचनोंको सुन कर ओठ डसता हुआ दूत वोला कि मुझे यह तो वताइए कि जिसके भयसे आप यहाँ समुद्रके वीचमें आ छिपे है उसके चरणोंकी सेवामें दोष ही क्या है। अस्तु, आपकी जैसी इच्छा। परन्तु आपके इस गर्वको कृष्ण नहीं सह सकता और वह क्रोधसे तप्त होकर अभी यहीं आता है। उसके साथमें ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। वह आपके गर्वको खर्व करेगा; आपको पद-च्युत करेगा।

दूतके ऐसे कठोर वचनोंको सुन कर भीमको वड़ा क्रोध आया। वह प्रगट होकर वोला कि स्वतंत्रतासे वकनेवाले इस दूतको यहाँसे अभी निकाल दो। यह सुन कर दूत क्रोधके मारे उसी समय वहाँसे चल दिया और जरासंधके पास जाकर उसने उससे यादवोंकी गुजरी हुई सारी कहानी कह सुनाई। वह वोला कि देव, वे लोग मदिराके नशेकी भाँति मतवाले हो रहे हैं और ' । के

भी नहीं समझते हैं। महाराज, वे पुण्यहीन पापी हैं और इसी लिए आपकी सेवा नहीं करना चाहते। दूतके वचनोंको सुन कर जरासंधको अत्यंत क्रोध आया और युद्धके लिए उद्यत हो उसने सब दिशाओंको बहिरा कर देनेवाली रण-भेरी बजवा दी; युद्धकी घोषणा कर दी। उसकी घोषणाको सुन कर आकाश मार्गसे जाते हुए बहुतसे विद्याधरोंने आकर अपने विमानोंसे जरासंधको चारों ओरसे घेर लिया। इस वक्त वह ऐसा शोभता था जैसा कि किरणोंसे घिरा हुआ सूरज शोभता है। एवं कुमुद (कुमुदपुष्प और पक्षमें पृथ्वी) को विक-शित करनेवाले चन्द्रमाके जैसे बहुतसे भूमिगोचरी राजे आये। वे राजनीतिके अच्छे ज्ञाता और उसीके अनुसार चलनेवाले थे। गंभीराशय और सब प्रकार सुख-सम्पन्न थे। उनका सुयश सभी दिशाओंमें व्याप्त था। अत एव जैसे तारा-गणके द्वारा आकाशकी शोभा होती है वैसे ही उनके द्वारा राज-मन्दिरकी शोभा हो रही थी। इनके सिवा और भी बहुतसे वीर राजे उसके साथ हुए। वे द्रोण, भीष्म, कर्ण, रुक्मी, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृप, अर्जुन, चित्र, कृष्णकर्म, रुधिर, इन्द्रसेन, हेमप्रभ, भूमुज, दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्पण, कलिंग आदि थे। इत्यादि अनेक राजों महाराजोंके साथ अपने भारसे सारी पृथ्वीको कँपाता हुआ जरासंध राजा कुरु-क्षेत्रके युद्ध-स्थलमें जो उतरा।

उसके वहाँ आनेके समाचार सुन कर जीवनसे निराश हो बहुतसे लोगोंने जाकर प्रभुकी पूजा की और गुरुके निकट जाकर अहिंसा आदि व्रत ले वे विरक्त हो गये। एवं बहुतोंने शस्त्र-ग्रहणके लिए उद्यत अपने अधीन सेवकोंको धन आदि देकर उनसे कहा कि भृत्य-गण, अब शरीर-रक्षाकी परवाह मत करो; किन्तु हाथोंमें चमकती हुई तलवारें लो, धनुषोंको चढ़ाओ, हाथियोंको सजाओ, घोड़ों पर पलान वगैरह रक्खो और रथोंमें घोड़ोंको जोतो।

इसके बाद कृष्णका दूत कर्णके पास आया और उसे भक्तिभावसे नमस्कार कर बोला कि राजन्, नारायणका आपके लिए यह संदेश है कि राजन्, वही कीजिए जो आपको योग्य जान पड़े; परंतु मेरा तुमसे इतना ही कहना है कि कृष्ण थोड़े ही समयमें नियमसे चक्रवर्ती राजा बनेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। क्योंकि जिन भगवान्का ऐसा ही कहना है और उनका कहा झूठ नहीं होता। अतः हे नृप, तुम कुरुजांगल देशका राज्य ग्रहण करो और झगड़ेमें न फँसो। तुम पांडुके पुत्र हो और कुन्तीसे तुम्हारा जन्म हुआ है। इस कारण पाँचों पांडव

तुम्हारे भाई हैं। यह सुन कर्णने उत्तरमें कहा कि दूत, मेरी बात सुनो। न्यायके कारण मुझे इस वक्त यहाँसे वहाँ जाना योग्य नहीं है। नीति यही है कि युद्ध छिड़ जाने पर राजा लोग न्यायको नहीं छोडते। और इसी तरह सुसेवित भूपको युद्ध-समयमें भृत्य-गण भी नहीं छोडते। और जो ऐसा करते हैं समझो कि वह अन्याय करते हैं। लोग उनकी निंदा करते है। हाँ, इतना मैं अवश्य करूँगा कि युद्ध वन्द हो जाने पर वलवान् पांडवोंको कौरवोंसे राज्य नियमसे दिला दूँगा। इसमें तुम तनिक भी सन्देह मत करो। यह कह कर उसने दूतसे चले जानेके लिए कहा। दूत भी वहाँसे चल कर कौरवों-सहित बैठे हुए जरासंधके पास पहुँचा। वहाँ उसने जरासंधको नमस्कार कर यह कहा कि राजन् जरासंध, आप महाभाग यादवोंके साथ सन्धि कर लीजिए। नहीं तो जिनदेवकी यह सच्ची वाणी सुनिए कि "इस महायुद्धमें कृष्णके हाथसे आपकी मृत्यु होगी। पितामहकी मृत्यु शिखंडीके हाथसे होगी और धृष्टार्जुनके हाथसे द्रोणाचार्यकी मृत्यु होगी। इसके सिवा शल्यका युधिष्ठिरके हाथसे और दुर्योधनका भीमके हाथसे मरण होगा। और इसी प्रकार जयद्रथका अर्जुनके हाथसे और कुरु-पुत्रोंका अभिमन्यु कुमारके हाथसे वध होगा। इसमें तुम तनिक भी सन्देह न करो। क्योंकि भवितव्य ही ऐसा है"। यह कह कर दूत अति शीघ्र द्वारिका पहुँचा। वहाँ उसने कृष्णको प्रणाम कर कहा कि देव, जरासंधकी सुदारुण सेना कुरु-क्षेत्रमें पहुँच चुकी है और कर्ण किसी तरह भी यहाँ आना स्वीकार नहीं करता। वह युद्ध-स्थलमें उपस्थित है। देव, अब आपको भी कुरु-क्षेत्रमें पहुँच कर इस महायुद्धमें शत्रु-योद्धाओंके साथ घोर युद्ध करना होगा। इसके बाद ही रणभेरी दिलवा कर अपने पाँचजन्य शंखके नादसे आकाशको कँपाता हुआ कृष्ण कुरुक्षेत्रको चले। और जलको थल और थलको जल करती हुई उसकी सेनायें चलीं। जान पड़ता था मानों पृथ्वीके साथ-साथ नहरें ही बहती हुई चली जा रही हैं। इस समय सेनाके द्वारा उड़ी हुई धूलसे सारा आकाश ढँक गया। सूरज कहीं दिखाई ही न देता था। कृष्णकी अनंत चतुरंग सेनासे सारा भूतल भर गया। बाजोंकी आवाजसे दिशायें शब्द-मय हो गईं। सजे हुए दिग्गज चिंघाड़ने लगे। इस प्रकार अपनी सेनाको लेजा कर यादवोंने उसे कुरु-क्षेत्रके बाहिरी भागमें ठहराया।

इस वक्त जरासंध चक्रीकी सेनाको हारके सूचक बार बार बहुतसे अपशकुन हुए और इसी समय संसारको भय उत्पन्न करनेवाला आकाशमें

सूर्यग्रहण पड़ा। मेघने जल बरसा कर उसकी सारी सेनाको जलसे पूर्ण कर दिया। सेनाकी धुजाओं पर सूरजकी ओर मुँह कर बैठे हुए कौए बोले। छत्रोंके ऊपर क्रोधसे भरे हुए दुर्द्धर गीध पक्षी बैठे देख पड़े। इन अपशकुनोंको देख कर दुर्योध्य दुर्योधनने अपने सुचतुर मंत्रीको बुला कर पूछा कि मंत्री महोदय, ये खोटे निमित्त क्यों देख पड़ रहे हैं। इस पर मंत्रीने कहा कि देखो, यह वह भयानक कुरुक्षेत्र है जो मछलीकी नाँई सबको निगल जायगा। अच्छी बात है, कह कर दुर्योधनने फिर पूछा कि मंत्री महाशय, मतलबकी बात बताइए कि शत्रुकी सेना कितनी है और युद्धके लिए उद्यत योद्धा कितने हैं। मंत्रीने कहा कि राजेन्द्र, बलशाली दाक्षिणके जितने राजा हैं वे सब नारायणके सेवक हो चुके हैं। रणमें नष्ट होनेवाले बहुतसे राजोंसे तो क्या हो सकता है, पर उनमें एक ही अर्जुन ऐसा है जो सबसे समझ लेगा। उसने पहले भी रणमें झूठ ही वीरताकी डींग हाँकनेवाले बहुतसे वीरोंको चूर डाला था। सच तो यह है कि विष्णुको कोई देवता या मनुष्य युद्धमें जीत नहीं सकता। आप जानते हैं हरिकी पक्षमें बलभद्र है, जो मूशल और हलोंकी मारसे वैरियोंके उदर फाड़ डालता है—उसके सामने कोई भी नहीं उठ सकता; वह बड़ा दुर्द्धर है। और उस प्रद्युम्नको रणांगनमें कौन निवार सकता है जिसे कि शत्रुका विध्वंस करनेवाली प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ सिद्ध हैं। तथा उस पवित्र भीमको अपनी छाती परसे कौन हटा सकता है जो शत्रु-समूहको बातकी बातमें ही धराशायी कर देता है। इस प्रकारके हरिकी सेनामें और भी बलशाली विद्याधर राजा हैं जो असंख्य हैं और महायुद्धमें इधरसे उधर घूमते हुए दिखाई दे रहे हैं। राजन्, शत्रुघातक विष्णुके पास सात अक्षौहिणी सेना है।

दुर्योधनने सब हाल जरासंधसे कहा; परंतु तब भी वह कुछ न चेता; और क्रोधमें भर कर उस मदांधने कहा कि ओह, गरुड़के सामने साँप कितना फण फटकारेगा। क्या सूरजकी किरणोंके आगे अँधेरा कहीं ठहर सकता है? वैसे ही ये राजा-गण मेरे सामने भी कैसे ठहर सकेंगे। यह कह कर तीन खंडका स्वामी प्रचंड आत्मा जरासंध कायरोंका खंडन करता हुआ अखंड और प्रचंड धनुषको हाथमें ले रण-स्थलकी ओर रवाना हुआ। फिर क्या था, बाजोंके शब्दोंके द्वारा दिशाओंको पूरते हुए और छत्रोंके द्वारा आकाशको ढँकते हुए राजा लोग भी युद्धके लिए उद्यत हो चले। इस वक्त सेनाके द्वारा

उड़ी हुई धूलके द्वारा आकाश व्याप्त हो गया, छत्र और धुजाओंके मारे सूरजका प्रकाश रुक गया और रातसी जान पड़ने लगी। धूलके मारे सारा रणांगण अंधकारमय बन गया। इस समयके बाजोंके नादसे ऐसा जान पड़ता था मानों शब्दके बहानेसे महायुद्ध सैनिकोंसे यही कहता है कि सैनिको, तुम लोग युद्ध-स्थल छोड़ कर जल्दी चले जाओ, नहीं तो तुम पर बड़ी भारी विपत्ति आनेवाली है।

इसके बाद जरासंधने अपनी सेनामें चक्र-व्यूह रचा और कृष्णने अपनी सेनामें तार्क्ष्य-व्यूहको रचा। उस समय उभय पक्षकी सेनाओंमें इतनी धूल उड़ी कि सब जगह घोर अन्धकार छा गया। जिससे सूरजके अस्तकी शंकासे कौए घोंसलोंमें घुस गये और उल्लू पक्षी रात समझ कर अपने घू घू शब्दके द्वारा भटोंके स्वरोंकी नकल करते हुए दिनमें ही उड़ने लगे। थोड़ी देरमें दोनों सेनाओंका घोर युद्ध शुरू हो गया। इस रणमें सुभट-गण तलवारें निकाल निकाल कर सुभटोंको मारते थे और भालोंकी तीक्ष्ण नोकोंसे फलकी नाँई शत्रुओंके सिर छेदते थे। कोई मतवाले जोरकी गर्जना करते हुए अपनी गर्जनाके आघातसे ही शत्रुओंके हृदयोंको भेदते थे; जैसे वायु मेघोंको भेदता है। कोई हाथियोंके कुम्भोंको विदार कर उनके रक्तकी धारासे केसरकी भाँति दिशाओंको लाल करते थे। इस वक्त जरासंधकी सेनाने विष्णुकी सेनाको कुछ ठंडा कर दिया; जैसे जलप्रवाह जलती हुई आगको ठंडा कर देता है। यह देख अपनी सेनाके योद्धाओंको धीरज देता हुआ शंबुकुमार युद्धके लिए उद्यत हुआ और उसने शत्रु-दलके योद्धाओंको वीरतासे इधर उधर भगा दिया। तब शंबुकुमारके साथ युद्ध करनेको क्षेमविद्ध नाम एक विद्याधर उठा। शंबुने उसे बातकी बातमें ही रथ-विहीन कर दिया। अपनी दुर्दशा देख वह उसी वक्त भाग गया। इसके बाद शंबुके साथ युद्ध करनेको एक दूसरा विद्याधर उठा और वह तलवारों द्वारा युद्ध करने लगा; परन्तु शंबुने उसे भी वारण कर भगा दिया।

इसके बाद युद्धमें शत्रुओंको पछाड़ देनेवाला कालसंवर राजा बड़े साहसके साथ युद्धमें आया। यह देख सूरजकी भाँति दीप्तिशाली प्रद्युम्न शंबुको युद्ध करनेसे रोक कर स्वयं मेघ जैसे जल वर्षाते हैं वैसे ही शर-धाराको छोड़ता हुआ उसके सामने आया। उसने कालसंवरसे कहा कि प्रभो, आप मेरे पिता तुल्य हैं, इस लिए आपके साथ युद्ध करना मुझे उचित

नहीं है, अतः आप लौट जाइए । उत्तरमें उसने कहा कि प्रद्युम्न यह न कहो, मैं क्षत्रिय हूँ; वापिस नहीं लौट सकता । क्योंकि वे ही सच्चे सेवक कहाते हैं जो जी-जानसे स्वामीके कार्यमें काम आते हैं। इस लिए वीर, तुम कुछ ख्याल न करके धनुष संधान करो। अन्तमें लाचार हो प्रद्युम्नने प्रज्ञप्ति विद्याको छोड़ कर उसी समय कालसंवरको बाँध लिया और शत्रु-दलके योद्धाओंके साथ युद्ध करते हुए उसे अपने रथमें बैठा लिया। यह देख शल्य विद्याधर प्रद्युम्नके साथ युद्ध करनेको उद्यत होकर आया । प्रद्युम्नने उसे आते ही अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा उसके रथको छेद डाला । तब वह दूसरे रथ पर सवार होकर उसके साथ घोर संग्राम करने लगा। इसी बीचमें प्रद्युम्नके साथ युद्ध करनेके लिए शिशुपाल राजाका छोटा भाई तैयार हुआ और उसने प्रद्युम्न पर एक ऐसा बाण छोड़ा जिससे वह मूर्छित होकर बे-सुध हो गया। फिर क्या था, अवसर पाकर उसने शत्रुका ध्वंस करनेवाले बाणोंके द्वारा प्रद्युम्नका रथ भी तोड़ ताड़ डाला। यह देख प्रद्युम्नका सारथी बड़ा डरा और उसने भागना चाहा; परन्तु इसी समय प्रद्युम्नने होशमें आकर सारथीसे कहा कि यह क्या करते हो! युद्ध-स्थलसे भागनेका विचार भी किया तो देवतो मनुष्य, विद्याधर, पांडव, समुद्रविजय आदि यादवों और खास कर कृष्ण, बलभद्रके आगे बड़ा लज्जित होना पड़ेगा— सिर उठाना मुश्किल पड़ जायगा । फिर इस दुःखदायी और अशुचि शरीरसे बन ही क्या पड़ेगा और रसीले आहारसे पोपे गये इससे लाभ ही क्या होगा। यह कह कर शीघ्र ही प्रद्युम्न दूसरे रथ पर सवार हो युद्धके लिए उठ खड़ा हुआ। फिर क्या था, वे दोनों ही युद्ध-कुशल योद्धा युद्ध करने लगे। उनको युद्ध करते देख कर कृष्णके मनमें भी कुछ क्षोभ पैदा हो उठा और वह उन दोनोंके बीचमें आ गया। तब जरासंधकी पक्षका शल्य नाम विद्याधर यह कहता-हुआ युद्ध-स्थलमें उतरा कि मैं इन उद्धत शत्रुओंको अपने बाण-प्रहारसे अभी धराशायी किये देता हूँ। ये अब जीवित नहीं रह सकते। इसके बाद उसने थोड़ी ही देरमें अपने बाणोंसे सारा आकाश ढँक दिया और इसी कारण उस वक्त किसीको भी न नारायण देख पड़ता था और न उसका रथ तथा सारथी ही देख पड़ते थे। देख पड़ता था तो सिर्फ शरोंके बीचमें कृष्ण फँसा हुआ सा देख पड़ता था, उसके जीवितमें भी लोगोंको संशय होता था और यही उसके सारथीकी भी हालत थी ।

इसी बीचमें वहाँ एक मनुष्य आया जो मायामय था, रुधिरसे जिसका शरीर लाल हो रहा था और जो थर-थर काँप रहा था। उसने आकर

बहुतसे राजोंसे घिरे हुए कृष्णसे कहा कि कृष्ण, तुम व्यर्थ ही क्यों युद्ध करते हो । उधर जरासंधने पांडव, यादव और बलभद्रका काम तमाम कर दिया है। इतना ही नहीं, किन्तु उसने और और रणशौंडीरोंको भी कालके गालमें पहुँचा दिया है, तुम्हारी द्वारिका पुरी पर भी अधिकार जमा लिया है और द्वारिकामें सुखासीन समुद्रविजयको भी रणका आतिथ्य देकर यमालयका अतिथि बना दिया है । फिर नाथ, आप भी यहाँ व्यर्थ अपने प्राण क्यों गँवाते हैं! अतः यदि आपको सुखी होनेकी वाञ्छा हो तो आप रण-स्थल छोड़ कर चले जाइए। उस माया-मय पुरुषके इस प्रकारके वाक्योंको सुन कर कृष्णको बड़ा क्रोध आया । वह बोला कि दुष्ट, मेरे जीते रहते हुए ऐसी शक्ति किस पुरुषमें है जो यादवोंको यमालयका अतिथि बनाये ! कृष्णके ऐसे विकट वचनोंको सुन कर वह दुष्ट बुद्धि-माया-मय पुरुष उसी समय वहाँसे भाग गया। और कृष्ण हाथमें धनुष उठा कर शत्रुओंकी ओर चला। रास्तेमें कृष्णको एक निशाचर मिला, जिसे देख कर बड़ा भय लगता था। वह कृष्णसे बोला कि कृष्ण, तुम तो यहाँ युद्ध करते हो और उधर वसुदेव युद्धमें मारा गया है। उसके बिना सारे विद्याधर युद्ध-स्थलसे चले जानेको तैयार हो रहे हैं। यह कह कर छलसे उसने कृष्ण पर वृक्ष-बाण छोड़ा, जिसको विष्णुने अग्नि-बाणके द्वारा उसी वक्त जला दिया। इसके बाद उस विद्याधरने पत्थरोंको गिरानेवाला क्ष्माभृत् बाण छोड़ा और हरिने उसे वज्र-बाणसे वारण कर दिया। आखिर कृष्णके सामने वह विद्याधर न ठहर सका और भाग गया। यह देख उस वक्त नर, सुर आदि सबने कृष्णकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की। इसी समय उस विद्याधरने आकर जो पहले निशाचरके रूपमें था, कृष्णको प्रणाम करके कहा कि नरेन्द्र, जब तक मैं इस विद्याधरके साथ युद्ध करता हूँ तब तक आप उधर जाकर अपने चक्रके द्वारा जरासिंधका सिर छेद डालिए और संसारमें अपना यश विस्तृत कीजिए। व्यर्थ ही औरोंको मारनेसे क्या होगा। यह सुन कर क्रोधमें आ कृष्णने कहा कि इस महायुद्धमें जब तक मैं इसे न जीत लूँगा तब तक कैसे तो जरासंध जीता जायगा और कैसे पृथ्वी भोगी जा सकेगी। यह कह कर हरिने शल्यके साथ साथ उस विद्याधरको भी दो टूक करके प्राण रहित कर दिया, जिससे कि वह उसी समय धराशायी हो गया। इसके साथ ही मधुसूदनके हाथमें जय-लक्ष्मी आ गई और उसके सब विघ्न नष्ट हो गये। इस समय उसके ऊपर देवतोंने पुष्पोंकी बरसा की ।

इसके बाद चक्रव्यूह भेदनेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ कृष्णने तीन शूरवीरोंको अपने साथमें लिये और जाकर थोड़े ही समयमें जरासंधका चक्र-व्यूह भेद दिया; जैसे वज्र पहाड़को भेद डालता है। यह देख जरासंधको बड़ा क्रोध आया। उसने शत्रुका नाश करनेके लिए दुर्योधन आदि तीन योद्धाओंको भेजा। तब दुर्योधनके साथ पार्थ, विरूप्यके साथ रथनेमि और हिरण्यनाभके साथ युधिष्ठिर उधरसे भी महायुद्ध करनेको उद्यत हुए। ये सब युद्ध-प्रवीण योद्धा हुंकार शब्द करते हुए परस्परमें युद्ध करने लगे। उन्होंने बहुत देर तक युद्ध किया और बहुतसे घोड़े, हाथी, और रथोंको चूर डाला। उनके उस वक्तके युद्धको देख कर शूरवीर तो युद्धको तैयार हुए और कायर भागनेके लिए मार्ग सोधने लगे। यह देख नत्योद्यत नारद आदि देवगण बड़े हर्षित हुए। इस वक्त दुर्योधनने अर्जुनसे कहा कि पार्थ, उस वक्त तो आगमें जलनेसे भाग्यसे तुम बच गये! अब व्यर्थ फिर अहंकार क्यों कर रहे हो। तुम्हें कुछ लज्जा नहीं आती जो सजे हुए मेरे सामने खड़े हो। यह सुन कर धनुष हाथमें ले, प्रलय कालके मेघोंकी भाँति गर्जते हुए उस विघ्न-समूहको हरनेवाले वीर अर्जुनने धनुषका भयावना शब्द किया और फिर बातकी बातमें उसने शरोंसे दुर्योधनको पूर दिया तथा उसका धनुष भी छेद डाला। परन्तु इतनेमें ही उनके बीचमें जालंधर राजा आ गया और उसने पार्थके साथ अत्यन्त घोर, दुर्धर संग्राम किया।

इसके बाद रूप्यकुमार युद्ध-स्थलमें उतरा; और उसने पार्थसे कहा कि सुलक्षण, आप अन्याय पक्ष काहेको लेते हैं। देखो, यह विष्णु पर-कन्याका हरने-वाला बड़ा अन्यायी है। यह सुन पार्थने भयंकर चेहरा बना कर उससे कहा कि कुमार, अब तैयार हो, मैं तुम्हें न्याय और अन्याय सब यहीं बताये देता हूँ। यह कह कर धनंजयने एक क्षणमें ही विघ्न-रूप रूप्य नाम विद्याधरको अपने शरोंकी भीषण मारसे छेद डाला। इस समय स्थिरतासे युद्धमें उठा हुआ युधिष्ठिर, उन्नतिशील अर्जुन और रथारूढ़ रथनेमि ये तीनों ही जयके लिए उद्यत हुए युद्ध-स्थलमें अपूर्व ही शोभा पाते थे। इसके बाद वे शीघ्र ही जरासंधके चक्रव्यूहको भेद कर, यशस्वी बन कर सज्जनोंको प्रसन्न करते हुए यादवोंके सैन्यमें आ गये।

इसके बाद युधिष्ठिरने पुनः युद्ध-आरम्भ किया और युद्धमें लहू-लुहान हुए जरासंधके हिरण्य नाम बड़े भारी वीर योद्धाको अनेक वीरोंके साथ यमपुर भेज दिया। उसका वध देख कर सूरजको भी बड़ा खेद हुआ और इसी लिए

वह शोक-जनित श्रम दूर करनेको पच्छिम समुद्रमें स्नान करनेकी मनसासे अति शीघ्र ही पच्छिमकी ओरको चला गया। तब रात हुई जान कर मरे हुए भटोंकी यथायोग्य व्यवस्था करके राजे लोग भी अपने अपने डेरों पर आ गये।

इसके बाद जरासंधने अपने मंत्र-कुशल मंत्रियोंसे कहा कि सेनापतिके पद पर अबकी बार और कोई ऐसा समर्थ पुरुष नियत करना चाहिए जो शत्रुओं पर दबाव डाल सके। यह सुन मंत्रियोंने सम्मति करके बड़े हर्षके साथ सैनिक पद पर गेवकको स्थापित किया। इसी समय उधर दुर्योधनने पांडवोंके पास दूत भेज कर उनसे यह कहलवाया कि आज तक मैंने तुम लोगोंको जो जो दुःख दिये हैं उन्हें याद करके तुम लोग स्वयं ही अति शीघ्र युद्धके लिए क्यों नहीं आते। सच कहता हूँ कि मैं अब तुम लोगोंको जीता न छोड़ूँगा, चाहे लोग तुम्हारी और तुम्हारे शासनकी कितनी ही तारीफ क्यों न करें। यह सुन कर समर्थ पांडवोंने दूतसे कहा कि जाकर अपने स्वामीसे कह दो कि यम-पुर जानेके लिए अब वह तैयार हो जाये। हम जरासंधके साथ-साथ उसे भी यमालयका अतिथि बनावेंगे। यह सुन कर दूतने अति शीघ्र जाकर धार्तराष्ट्रोंसे वह सब हाल निवेदन किया। उसी समय मानों वह सब देखनेके लिए ही सूरज उदयाचल पर उदित हुआ। तब भटोंको उत्साहित करनेके लिए प्रातःकालीन मंगल बाजे बजे। सब योद्धा युद्धके लिए तैयार हो युद्ध-स्थलमें पहुँचे। उन्हें देख रथमें बैठे हुए पार्थने अपने सारथीसे कहा कि मुझे बताओ कि रथोंमें कौन कौन राजे हैं। सारथी उनके घोड़ों और धुजाओंको बतालाता हुआ बोला कि राजन्, देखिए तालकी धुजावाले रथमें बैठे हुए पितामह हैं। उनके रथमें काले घोडे जुते हुए हैं। यह लाल घोड़ोंवाला द्रोणका रथ है और उस बलीकी कलशकी धुजा है। नागकी धुजावाला और नीले घोडोंवाला धनुर्धर दुर्योधन है। पीले घोडोंवाला वह रथ दुःशासनका है, जिसमें कि जालकी धुजा लगी हुई है। वह सफेद घोडोंवाला अश्वत्थामाका रथ है। उस पर वानरकी धुजा फहराती है। वह लाल घोड़ोंवाला रथ जिस पर कि सीताकी धुजा है, शल्यका है। कोलकी धुजावाला और लाल घोड़ोंवाला वह रथ जयद्रथका है। इस प्रकार सब राजोंका परिचय प्राप्त कर अर्जुन युद्धके लिए उठा। उस समय हाथियोंकी घटाओंके साथ स्वामीके कार्यमें तत्पर योद्धा रण-साज सज कर युद्ध-स्थलमें आये। उधर अभिमानसे भरे हुए पितामह वहाँ आये। आते ही वह धीर-बुद्धि अपने धनुष पर डोरी चढ़ा कर अभिमन्युके ऊपर टूटे। अभिमन्युने एक क्षणमें ही अपने बाणों-

द्वारा उनकी ध्वजाको छेद दिया । उसे देख यह जान पड़ता था, मानों उसने पहले पहल कौरवोंके उन्नत महत्वको ही छेद दिया है । बाद इसके गांगेयने भी अपने बाणों द्वारा अभिमन्युकी धुजाको छेद डाला । तब अभिमन्युने उनके सारथीको बाणसे वेध कर पितामहके हाथों और धुजाको भी वेध दिया । यह देख विद्वानोंने उसकी बड़ी तारीफ की कि अभिमन्यु साक्षात् पार्थ ही है । यह बड़ा धीरज-धारी है और इसकी स्थिरता संसार-प्रसिद्ध है । इस एक ही बालकने सैकड़ो वैरियोंको नष्ट किये हैं; जैसे निरंकुश हुआ एक ही हाथी सब नष्ट कर डालता है । इतनेहीमें पार्थके सारथी उत्तर कुमारने दूसरे रण-स्थलमें रणके लिए भाला, तलवार और धनुष लिये हुए शल्यको ललकारा । यह देख शल्यको बड़ा क्रोध आया । उसने उसे एक बाणहीमें मार गिराया । उस वक्त उसे युद्ध भूमिमें गिरा हुआ देख कर यह जान पड़ता था कि मानों पार्थका प्रचंड भुज-दण्ड ही गिर पड़ा है । अपने बड़े भाईकी यह दशा देख कर विराटका दूसरा पुत्र श्वेतकुमार दौड़ा आया । और उसने उसी वक्त शल्यके धुजा-छत्र और अस्त्र वगैरह छेद कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिये । इसी समय क्रोधसे जलते हुए पितापह दौड़े । उन्हें श्वेतने बहुत रोका । पर जब वह न रुके तब उसने उन्हें शरोंकी वर्षासे बिल्कुल ही ढँक दिया । यहाँ तक कि वह देख ही न पड़ने लगे; जैसे मेघोंके द्वारा ढँक जाने पर सूरज नहीं देख पड़ता है । यह देख इसको मारो, छोड़ो मत, यह कहता हुआ दुर्योधन दौड़ा आया । परन्तु जैसे आगको जल बुझा देता है वैसे ही पार्थने उसे जहाँका तहाँ रोक दिया; आगे न बढ़ने दिया और गांडीव धनुष हाथमें लेकर उसने दुर्योधन पर एक साथ सैकड़ों बाण छोड़े । परंतु उससे दुर्योधनकी कुछ हानि न हुई । तब वे दोनों ही वीर भाला, तलवार आदिके द्वारा प्रहार करते हुए मदमत्त होकर परस्परमें भीषण युद्ध करने लगे । उधर इस महायुद्धमें युद्ध करते हुए उस विराट कुमार श्वेतने पितामहके धनुष, छत्र, धुजा आदि छेद दिये और उनके वक्षःस्थलमें तलवारका एक ऐसा आघात किया कि जिससे कौरवोंकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया । इस वक्त देवतोंने आकाशमेंसे दिव्य स्वरमें कहा पितामह, कायर मत हो, धीरजका शरण लो । हे वीर, इस महायुद्धमें वीरोंका संहार करो—घबड़ाओ मत ।

यह सुन कर पितामहने सावधान हो स्थिरतासे हथियार हाथमें उठाया और लक्ष्य बाँध कर श्वेत पर एक साथ सैकड़ों ही बाणोंको छोड़ा, जिससे वह

धराशायी हो गया और जिन भगवानका स्मरण करते हुए मर कर स्वर्गमें देव हुआ।

इसी समय सूर्य अस्ताचलगामी हुए। रात हो गई। जान पड़ता था मानों रण बन्द करने और घायल मनुष्योंका पता लगानेके लिए दयादेवी ही आई है। उभय पक्षोंकी सेनायें अपने अपने डेरेको चली गईं। रण बन्द हो गया। बाद जब घायलोंका पता लगाया गया तब जान पड़ा कि विराटके पुत्र श्वेतका देवलोक हो चुका है। यह सुन विराटको बड़ा दुःख हुआ। पुत्र-वियोगमें वह बड़ा विलाप करने लगा। हा पुत्र! युद्धमें तेरी किसीने भी रक्षा न की। हा धर्मात्मा धर्मपुत्र, क्या तुमने भी मेरे प्यारे पुत्रकी रक्षा न की। हे भीममूर्ति भीम तथा शत्रु-समूहके लिए अग्नि जैसे हे धनंजय, आपके देखते हुए मेरे पुत्रको वैरीने कैसे मार डाला! विराटकी वह दशा देख, क्रोधमें आकर बुद्धिमान् युधिष्ठिरने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं आजसे सत्रहवें दिन तक शल्यको अवश्य ही मार डालूँगा। यदि न मार सका तो अपने मानको छोड़ कर आप लोगोंके देखते हुए ही आगमें कूद पड़ूँगा और अपनेको भस्म कर दूँगा। वैरियोंका विध्वंस करनेवाले शिखंडीने यह प्रतिज्ञा की कि मैं आजसे नौवें दिन पितामहको अवश्य ही धराशायी कर दूँगा। यदि नहीं करूँ तो मै भी अपने आपको आगमें होम दूँगा। इसी तरह धृष्टद्युम्नने यह कहा कि मैं युद्धके लिए उद्यत हिरण्यनाभ सेनापतिको अवश्य ही यमलोक दिखाऊँगा।

इसी समय अँधेरेको दूर करके योद्धा लोगोंका हाल देखनेके लिए ही मानों सूरजका उदय हुआ। फिर क्या था, दोनों ओरके वीरोंने फिर भयंकर युद्ध आरम्भ किया और वे महायुद्ध करके एक दूसरेके शरीरोंको छेदने लगे। एवं क्रोधमें भर कर हाथी हाथियोंके साथ, रथ रथोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, पयादे पयादोंके साथ युद्ध करनेको उद्यत हुए। इसी समय धनंजय वीर सुभटोंके ऊपर टूट पडा और उनको क्षणभरमें ही तितर-बितर कर डाला; जैसे सिंह मदोन्मत्त हाथियोंको तितर-बितर कर देता है। धनंजयकी विजय हुई। यह देख पितामहने असंख्य बाणोंके द्वारा अर्जुनको पूर कर आगे बढ़नेसे रोक दिया; जैसे जलको नदीके किनारे रोक देते हैं। इस प्रकार अनंत बाण-बरसा कर गांगेयने सारे आकाशको ही बाणोंसे भर दिया। यह देख पार्थने उन सब बाणोंको अपने एक बाणके द्वारा ही निष्फल कर दिया। और अपने

बाणोंकी अविरल वर्षासे उसने हाथियोंकी सूँड़ोंको, घोड़ोंके ऊँचे पाँवोंको और रथोंके पहियोंको एकदम छेद डाला। इसके सिवा उस जयके अर्थीने मर्मकी भाँति शूरोंके कवच भी अपने दिव्य गांडीव धनुषके द्वारा छेद दिये।

यह देख कर पितामहकी निंदा करता हुआ दुर्योधन बोला कि तात, तुमने यह पराजयकारी युद्ध क्यों शुरू कर रक्खा है। इस तरह युद्ध करिए, जिससे अर्जुन युद्धमें ठहर ही न सके। भला, वैरीके आगे आ उपस्थित होने पर कौन ऐसा सुभट होगा जो आपकी भाँति निश्चिंत हुआ बैठा रहेगा। दुर्योधनकी यह मर्मभेदी वाणी सुन कर गांगेय पार्थके साथ युद्धके लिए फिर बड़ी वीरतासे उद्यत हुए। यह देख अर्जुनने उनसे कहा कि पितामह, आपका मेरे साथ युद्ध करना व्यर्थ है। मैं अभी आपको यमालय भेज कर इस युद्धको समाप्त किये देता हूँ।

इसके बाद ही वे दोनों सुभट बड़ी क्रूरतासे युद्ध करने लगे। इसी बीचमें द्रोण आकर धृष्टद्युम्न पर झपटे और उन्होंने महायुद्ध कर थोड़ी देरमें ही धृष्टद्युम्नके रथकी धुजा हर ली। यह देख धृष्टार्जुनने द्रोणके छत्र, धुजा आदिको हर लिया। तब शत्रुको दुःख देनेवाले द्रोणने धृष्टार्जुन पर शक्तिबाण छोड़ा, जिसको कि उस वीर धृष्टार्जुनने आधे क्षणमें ही छेद दिया।

यह देख धृष्टार्जुनने पितामहके ऊपर गदा चलाई और पितामहने उसे बीचमेंसे ही वारण कर दिया।

इसके बाद गदा वारण कर बाँये हाथमें ढ़ाल और दाहिने हाथमें तलवार लेकर युद्धके लिए तैयार हो द्रोण आये। उधर हाथमें गदा लेकर भीम दौड़ा और उसने महोन्नत कलिंग-पुत्रको मार गिराया। एवं बलसे उद्धत होकर वह कौरवोंको त्रास देता, दिशाओंको कष्ट-मय बनाता और रणमें शत्रुओंको दलता क्रीड़ा करने लगा। उसने अपनी गदाके आघातसे वैरियोंके साथ-साथ सातसौ रथोंको भी चूर डाला और उनसे पृथ्वीके बिलोंको पूर दिया। इस प्रकार रणोद्धत बलवान भीमने अपनी गदाके बलसे एक हजार हाथियोंको चूर करके जय-लक्ष्मीको प्राप्त किया।

इसी बीचमें छेदन-कला-निपुण वीर द्रोणाचार्यने धृष्टार्जुनकी उज्ज्वल तलवारको छेद दिया; जैसे कुठार वृक्षको छेद देता है। उधर अभिमन्युने द्रोणका रथ छिन्न-भिन्न कर दिया। इतनेमें दुर्योधनका पुत्र सुलक्षण लक्ष्मण आ धमका

और उसने अभिमन्युके धनुषको तोड़ डाला। तब अभिमन्यु दूसरा धनुष लेकर शत्रुओंको हटाने लगा। उसे इस प्रकार असह्य देख एक साथ हजारों ही शत्रुओंने आकर उस प्रौढ़मना और महावीर अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया। उस समय ऐसा भान होता था मानों मतवाले बहुतसे हाथियोंने महान् पराक्रमी सिंहको ही घेर लिया है। तब हाथमें गांडीव धनुष उठा पार्थ आया और उसने सब शत्रुओंको बातकी बातमें ही तितर-बितर कर अपने वीर पुत्रको स्वतंत्र कर दिया; जैसे वायु मेघोंको तितर-बितर करके सूरजको स्वतंत्र कर देता है। इस प्रकार योद्धाओंका युद्ध होते होते जब नौवाँ दिन आया तब शिखंडीने युद्धके लिए गांगेयको ललकारा।

उस समय पार्थने शिखंडीसे कहा कि वैरियोंका ध्वंस करनेके लिए सर्वथा समर्थ मेरा यह बाण लो और तुम इसके द्वारा वैरियोंका ध्वंस करो। देखो, इसी बाणके द्वारा मैंने पहले खंड वनको दग्ध किया था, अतः तुम इसकी शक्तिमें कुछ सन्देह न करो। यह सुन कर वीर शिखंडीने उस बाणको ले लिया और वैरियोंका ध्वंस करता हुआ वह यमकी नाँई युद्धके लिए उठ खड़ा हुआ। गांगेय और शिखंडी दोनों ही वीर आपसमें भीषण युद्ध करने लगे। उन्हें युद्ध करते हुए बहुत समय बीत गया पर उनमेंसे किसीने भी किसीको जीत न पाया। इस वक्त इन दोनोंको सिंहकी नाँई भिड़ते हुए देख कर देवतोंने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। यह देख बुद्धिमान् धृष्टद्युम्नने शिखंडीसे कहा कि शिखंडिन्, तुमने युद्ध तो बहुत किया है, पर अब तक भी गांगेय रणमें मेघकी नाँई गाज रहे हैं, उनका रथ भी वैसा ही अखंड है एवं पताका भी वैसी ही उड़ रही है। फिर तुम्हारे इस युद्धसे लाभ ही क्या हुआ। अतः अपने पराक्रमको बराबर काममें लाकर शत्रुका शीघ्र नाश करो। तुम निःसहाय नहीं हो, तुम्हारी पीठ पर शत्रुओंको पीस डालनेवाला पार्थ है और विराट भी इस महारणमें तुम्हारी सहाय कर रहा है। यह सुन शिखंडीको खूब जोश आया। उसने धनुष चढ़ा और एक साथ असंख्य बाणोंको छोड़ कर धनुर्धर दुर्द्धर पितामहको बाणोंसे पूर दिया; जैसे मेघ आकाशको पूर देते हैं। यह देख कौरवोंकी सेनाने भी शिखंडी पर खूब बाणोंकी बरसा की; परन्तु उसके बाण उसे न लगे, मानों वे उससे डरते थे। इसी समय वज्र जैसे कठोर मुँहवाले बाणोंको धृष्टद्युम्न भी छोड़ रहा था जो शत्रुओंके वक्ष-स्थलरूप पर्वतमें वज्रकी

नॉई विषम घाव करते थे । उधरसे गांगेयके छोड़े हुए वाण आकर शिखंडीके हृदयमें फूलके जैसे लगते थे जिनसे कि उसे उल्टा सुख होता था । और है भी ठीक ही कि पुण्यके उदयसे कष्ट भी सुख रूप हो जाता है । पितामह इस समय जो जो धनुष हाथमें लेते थे उसे समुद्धत धृष्टद्युम्न वाणके द्वारा छेदता जाता था। सच है कि पुण्य क्षीण होने पर सब कुछ देखते देखते ही विला जाता है । चाहे धन हो, चाहे आयु हो, चाहे पुत्र-मित्र-कलत्र आदि हो, एवं चाहे सुख हो।

इसी समय शिखंडीने अपने बाणोंके द्वारा गांगेयका कवच भेद डाला; जैसे बरसा कालके मेघकी धारा वनोंको भेद डालती है। उसने थोड़ी ही देरमें उसके सारथी और रथकी धुजाको पृथ्वी पर गिरा दिया तथा रथके दोनों घोड़ोंको वाणोंकी मारसे जर्जरित कर दिया। यह देख पितामह अकंप हो कर—रथ बिना ही—हाथमें तलवार ले शिखंडीको छेद डालनेके लिए दौड़े। शिखंडीने अपने मखर वाणोंके द्वारा उनकी तलवारको भी बेकाम कर दिया और उस हतात्माने उनके हृदयको भी वेध दिया।

इसके साथ ही वह पावन वीर धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़े और अपने प्राणोंको निकलते देख उन्होंने संन्यास ले लिया । इस प्रकार धर्ममें लीन होकर उन्होंने परम धैर्यका सहारा लिया। उन्होंने अपने हृदयमें सु-परीक्षित बारह भावनाओंको धारण किया। पितामहकी यह हालत देख कर सब राजे युद्ध छोड़ कर उनके पास आ गये । पांडवोंको उनकी दशासे बड़ा दुःख हुआ । वे उनके चरणोंमें प्रणाम कर आँसू बहाते हुए बोले—हे गुणी, आपने जन्म भर वह ब्रह्मचर्य पाला है जो सब व्रतोंमें उत्तम है और जिसका पालना बड़ा कठोर है । इस व्रतके बराबर कठिन दूसरा कोई व्रत नहीं है। उस समय दुःखसे जर्जरित होकर युधिष्ठिरने कहा कि हे सुव्रतिन्, हे उन्नत-हृदय वीर, यह मौत हम लोगोंको क्यों नहीं आई; आपके इस दुःखको हम नहीं सह सकते । तब वाणोंसे जर्जरित भीष्म पितामहने कौरवों और पांडवोंसे कहा कि हे भव्यो, अन्तमें मेरा आप लोगोंसे यही कहना है कि अब परस्परकी शत्रुता छोड़ कर आप लोग मैत्री कर लें और इन वेचारोंको अभयदान दें । कहते दुःख होता है कि ये नौ दिन यों ही चले गये, किसीके हाथ कुछ नहीं लगा। हाँ, इतना जरूर हुआ कि युद्धमें जो लोग मरे हैं वे बिचारे निंद्य गतिमें गये होंगे । अस्तु, जो हो गया सो तो हो गया। अब आप लोग दस लक्षण धर्मको धारण करें।

इसी समय आकाश-मार्गसे वहाँ दो चरण मुनीश्वर आ गये। उनके नाम हंस और परमहंस थे। वे शुद्ध मनवाले थे, गुणोंके भंडार थे, उत्तम उत्तम तपोंको तपने-वाले थे और उनके चरण-कमल आकाशमें चलनेसे कारण अतीव उज्ज्वल थे— धूलसे धूसरित न थे। वे महाभाग पितामहके पास जाकर बोले कि हे महा पुरुष, तुम बड़े वीर हो, वीरोंके शिरोमणि हो। इस पृथ्वी पर तुम्हारे जैसा दूसरा कोई वीर और धीर नहीं है। यह सुन कर अगणित गुणोंके पुंज और गंभीरा-शय पितामह उन दोनों मुनियोंको प्रणाम कर अपनी मधुर वाणीके द्वारा बोले कि प्रभो, इस संसार-रूप वनमें भटकते हुए मैंने अब तक यह परम धर्म नहीं पाया। अब बताइए कि मैं क्या करूँ। महामुने, मैं अब आपकी शरण हूँ। मुझे आशा है कि मैं आपके प्रसादसे संसार पार कर सकूँगा। यह सुन मुनिराजने कहा कि हे भव्य, तुम सनातन सिद्धोंको नमस्कार कर चार आराधनाओंका आराधन करो। तत्वार्थ-श्रद्धानको दर्शन-आराधना कहते हैं और इसमें सम्यक्त्वकी आराधना की जाती है। आत्माके निश्चित ज्ञानको ज्ञान आराधना कहते हैं और इसमें जिनदेवकी कही हुई भावनाओंके ज्ञानकी आराधना होती है। चैतन्य-स्वरूपमें प्रवृत्ति करनेको चारित्र-आराधना कहते हैं और इसमें कर्मोंकी निवृत्ति और आत्मामें प्रवृत्तिकी आराधना की जाती है। और जो दो प्रकारका तप तपा जाता है, दो तरहका संयम लिया जाता है उसे तप-आराधना कहते हैं। इन सब आराधनाओंमें निश्चय और व्यवहार-का सम्बन्ध लगा हुआ है। इस प्रकार आराधनाओंकी विधि बता कर वे महा-मुनि तो चले गये और इधर गुणी, बुद्धिमान् पितामहने आराधानाओंको धारण आराधना शुरू किया।

इसके बाद उन्होंने चार प्रकार आहार और शरीरसे ममता छोड़ कर तथा दर्शन-ज्ञान-चरित्रमें लीन हो सल्लेखना ग्रहण की; और सब जीवोंसे क्षमा करा कर तथा सबको क्षमा करके पंच नमस्कार मंत्रको जपते जपते उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। वह जाकर ब्रह्म नाम पाँचवें स्वर्गमें देव हुए, जहाँ कि भव्यजीव सदा आत्मासे उत्पन्न हुए सुखोंको भोगते हैं।

इसके बाद जगत्की शून्यताको नित्य मानते हुए तेजस्वी कौरव और पांडव शोक-सन्तप्त होकर खूब रोये। एवं और लोगोंने भी शोकसे वह रात

बिताई । बाद सवेरा हुआ । सूरजका उदय हुआ । ऐसा जान पड़ा कि मानों सूरज पितामहका शोक मनानेके लिए ही आया है ।

अनंत मनुष्योंको धारण करनेवाले इस संसार-चक्रमें जीव मेघ-समूहकी भाँति बिखर जाते हैं, लक्ष्मी बिजलीकी नाँई चपळ है, जीवन संध्याके रागकी प्रभाके समान चंचल है और स्वजन-सुत-सुख आदि जलकी कल्लोलोंकी भाँति विनश्वर हैं ।

इस प्रकार सब बातोंको जान कर सच्चे श्रद्धानी लोगोंको चाहिए कि वे शुद्ध-धर्ममें बुद्धि लगावें ।

जो शुभमति महान् ब्रह्मचारी पितामह युद्धमें धर्मकी प्रतिज्ञा कर और अपने आत्माको शान्त रख कर पाँचवें ब्रह्मस्वर्गको प्राप्त हुए उनकी जय हो। और उन धर्मात्मा, धर्मके ज्ञाता, नय-कुशल युधिष्ठिरकी भी जय हो जो धर्मके बलसे शुभ नय-ज्ञानको प्राप्त हुए और जिन्होंने पापसे अपने आत्माको सुरक्षित रक्खा ।

इकबीसवाँ अध्याय।

उन धर्मनाथ प्रभुको नमस्कार है जो धर्मके उपदेशक हैं, धर्मयुक्त और धर्मशाली हैं, जो अन्य जीवोंको भी धर्मात्मा बनाते हैं और धर्मराज (यम) को हरनेवाले हैं। वे मुझे भी धर्म-बुद्धि दें।

सवेरा हुआ। भट-गण उठें और निर्दय हो प्रलय कालकी वायुसे क्षोभको प्राप्त हुए सागरकी भाँति क्षुब्ध होकर रणांगणमें पहुँचे। वे पृथ्वीमें रहनेवाले साँपोंको पद-दलित करते और दिशा-नाथोंको क्षुब्ध करते युद्धके लिए उद्यत हुए। उधरसे पार्थने मृत्युका आलिंगन करनेको हाथ बढ़ाये हुए भटों, घोड़ों और मतवाले हाथियोंको तितर-बितर करके उस युद्धका और भी विस्तार कर दिया। इसी समय महान् सुभट अभिमन्यु युद्धस्थलमें आया और विश्वसेनके साथ युद्ध करनेको उद्यत हुआ। एवं हाथमें धनुष लेकर शत्रुओंको कंपित करनेवाले उस पार्थ-नन्दनने थोड़ी देरमें ही विश्वसेनके सारथीको धराशायी कर दिया। इतनेमें वैरियोंके हृदयमें शल्यसा चुभनेवाला और अपने रथको अपने आप ही चलाता हुआ शल्य-पुत्र अभिमन्युके साथ युद्ध करनेके लिए आया। वे दोनों अपने अपने बाणोंकी बरसासे परस्परमें एक दूसरेको पूरने लगे। आखिर अभिमन्युके शरोंके द्वारा शल्य-पुत्र ध्वस्त हो कालके गालमें चला गया। यह देख सुलक्षण लक्ष्मणने लक्ष्य बाँध कर पार्थ-पुत्रको वज्रके जैसे तीव्र प्रहार करनेवाले बाणोंके द्वारा खूब पूर दिया। अभिमन्युने भी तब बाणोंको चलाना शुरू किया और लक्ष्मणको यमका अतिथि बना दिया। उसने रणमें स्थिर बने रह कर अपने प्राणाहारी बाणोंके द्वारा चौदह हजार और और कुमारोंको भी मार गिराया। इस समय वह भद्र रण-क्रीड़ा करता हुआ और महान् महान् शत्रुओंको पृथ्वीकी गोदमें लिटाता हुआ ऐसा शोभता था मानों हाथियोंको तितर-बितर कर उनके मस्तकोंको विदार रहा पराक्रमी सिंह ही है।

यह देख दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया। उसका मन अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। उसने मधुर मायाभरे शब्दों द्वारा उत्साह देते हुए अपने महान् शूरोंकी ओर बड़ी आशासे देखा। उसके इस स्नेहसे कृतज्ञ हो वीरगण विचित्र और चंचल हाथी, घोड़ों तथा रथों पर सवार हो-हो कर युद्ध-स्थलको चले। वे कठोर शब्दोंका प्रयोग करते हुए चले जाते थे। उनके चेहरे भयंकर हो रहे थे। उनके साथ ही

सुलक्षणोंसे लक्षित द्रोण भी शत्रु-दलको भयभीत करता हुआ चला। कलिंग और कर्ण भी युद्ध-स्थलमें पहुँचे। दोनों ओरकी सेनाकी मुठ भेड़ हुई। अभिमन्युने थोड़ी ही देरमें कलिंगके हाथीको मार गिराया और कर्णके गर्वको खर्व कर दिया। एवं उसने द्रोणको भी जराकी नाँई अपने शस्त्र-प्रहारसे वातकी वातमें जर्जरित कर दिया। वात यह है कि अभिमन्युने जहाँ जहाँ युद्ध किया वहाँ वहाँ सब जगह ही उसने विजय पाई। उस समय ऐसा कोई वीर न था जो युद्धमें उसका सामना करता। और यह सच है कि मतवाला होने पर भी हाथी सिंहका सामना नहीं कर सकता। उस समय रण-स्थलमें घोड़े, हाथी, रथ पियादे वगैरह कोई भी ऐसे न बचे जो अभिमन्युके बाणके लक्ष्य न हुए हों; उसके बाण द्वारा न वेधे गये हों।

यह देख अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए वीर अक्षयकुमारने दस बाणोंको छोड़ कर अभिमन्युको घायल कर दिया। तब वह सुध-बुध रहित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। बाद थोड़ी देरमें जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई तब वह फिर उठ खड़ा हुआ और धनुष लिये दौड़ कर आते हुए तेजस्वी अश्वत्थामाको उसने अपने वाणोंकी मारसे एक क्षणमें ही विमुख कर दिया। यह देख कर्णने द्रोणाचार्यसे पूछा कि गुरुवर्य, अभिमन्युने लक्ष्मणको आदि लेकर हजारों कुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया। परन्तु उसे कोई भी नहीं मार सका। तब बताइए कि वह भी इस काल जैसे कराल युद्धमें मरेगा या नहीं। सुन कर द्रोणने कहा कि कर्ण, भला तुम्हीं कहो कि जिस रणशौन्डीरने अकेले ही इतने वीर राजोंको पछाड़ दिया है उसे कौन मार सकता है! इसके बाद रणनाद करते हुए द्रोणने क्रोधित हो राजा लोगोंसे कहा कि मारो मारो, इसे मार डालो और इसका धनुष छीन कर तोड़ डालो! देखो वह भागने न पावे। द्रोणकी वीर वाणी सुन कर राजा लोग जोशके साथ उठे और न्याय-अन्याय कुछ न गिन कर रणनाद करते हुए वे एक साथ उस पर टूट पड़े। परन्तु उस बलीने अकेले ही उन सबसे युद्ध कर क्षणभरमें ही उन्हें पराजित कर दिया। लेकिन थोड़ी ही देरमें पुनः उद्यत हो वे सब बड़े जोशके साथ फिर युद्धके लिए आ डटे और उन्होंने कुमारका पताका सहित रथ छिन्न-भिन्न कर डाला। यह देख अभिमन्युने वज्रदण्ड हाथमें लेकर बातकी बातमें उन सबको चूर डाला।

इसी समय जयार्द्रने अभिमन्युको अपने महा शरोंके द्वारा वेध दिया; परन्तु तब भी वह धीरजके साथ उसके सामने स्थिर हो डटा रहा। अन्तमें वह

पीड़ित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा । इस समय देवोंके हाहाकार शब्दसे पृथ्वी भर गई। न्यायी राजोंने कहा कि अभिमन्युके साथ यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है जो एक साथ इतने वीरगण एक बालक टूट पड़े । उसे पीड़ित देख कर्णने कहा कि कुमार, पानी पिओ । इससे तुम्हें कुछ शान्ति होगी । सुमना अभिमन्युने उत्तरमें निर्मल वचनों द्वारा कहा कि नृप, मैं अब जल न पीकर उपवास करूँगा और परमेष्ठीका स्मरण करते हुए प्राणोंका त्याग करूँगा । यह सुन कर द्रोण आदि क्षमाशील अभिमन्युको निर्जन स्थानमें ले गये । वह वहाँ आत्म-स्वरूपका चिंतवन करता हुआ स्थिर रहा; और काय तथा कषायको क्षीण करके जिनदेवका स्मरण करते हुए तथा सबको क्षमा कर और सबसे क्षमा कराते हुए उस वीरात्माने इस अशुचि शरीरका त्याग किया और निदान-रहित हो स्वर्गमें विक्रिया-युक्त दिव्य गुणोंके भंडार दिव्य शरीरको पाया।

उधर दुर्योधन आदि कौरवोंने जब अभिमन्युके मरणका समाचार सुना तब वे बड़े हर्षित हुए और उन्होंने खूब खुशी मनाई।

इसी समय सूर्य अस्ताचल पर पहुँचा। रात हुई । जान पडा कि मानों वह युद्धको वारण करने और कौरवोंकी सेनाको नया उत्साह देनेके लिए ही आई है।

अभिमन्युकी मृत्युसे कृष्णकी सेनामें बड़ा शोक फैल गया । विलाप करते और आँसुओंकी धारा बहाते राजा-गण बड़े दुखी हुए । अभिमन्युकी मृत्युसे युधिष्ठिर मूर्च्छित हो उन्नत कुलाचलकी भाँति पृथ्वी गिर पर पड़े। इसके बाद जब वह होशमें आये तब दुःख-पूर्ण स्वरसे यह कहते हुए रोने लगे कि हा पुत्र, तुम्हारे सिवा और कौन ऐसा संग्राम करनेवाला है जो अकेला ही हजारों शत्रुओंको इस वीरताके साथ मौतका घर दिखा सके। तुमने जालंधर राजाकी बारह हजार सेनाको नष्ट करके विजय पाई थी । हाय! न जाने किस पापीने तुम जैसे शूरको भी धराशायी कर दिया।

युधिष्ठिरको इस प्रकार विलाप करते देख शोकसे सन्तप्त हुआ अर्जुन आया और बोला कि भाई, और और सब कुमार तो युद्धभूमिसे आ गये; परन्तु अभिमन्यु अब तक नहीं देख पड़ा, यह क्यों? क्या चक्रव्यूहमें उसे शत्रुओंने मार डाला है या वह स्वयं मर गया है! युधिष्ठिरने बड़े दुःखके साथ कहा कि अर्जुन, वह हाल सुन कर ही तुम क्या करोगे! कैसे धैर्य धरोगे! कहते हुए छाती फटती है कि क्षत्रिय धर्मको

छोड़ कर नीच राजोंने एक साथ मिल कर अन्यायसे अभिमन्युको मार डाला है। सुनते ही पार्थको मूर्च्छा आ गई और वह पृथ्वी पर धड़ामसे गिर पड़ा। इसके बाद उसे जब चेतना हुई तब वह भी शोकपूर्ण हो बड़ा विलाप करने लगा कि पुत्र, तुम्हारे बिना पृथ्वीका पालन करनेके लिए कौन समर्थ है। तुम्हारे बिना कौन तो राज्य भोगेगा, कौन कुलकी रक्षा करेगा तथा कौन वैरियोंको जीतेगा। इसी समय वहाँ कृष्ण आ गये और बोले कि पार्थ, आज केवल तुम्हारा पुत्र ही नहीं गया, किन्तु वह मेरी सेनाको एक विधवा स्त्रीकी भाँति कर गया है। वह मुझे बड़ा प्यारा था। आज वह मुझे दुर्लभ हो गया है। अतः भाई, इस वक्त शोक न करो; क्योंकि अभी शोक करनेका मौका नहीं है। यदि इस वक्त तुम शोक करोगे तो इससे शत्रु बड़े खुश होंगे और उनका साहस बहुत बढ़ जायगा। इस लिए हे धर्म-विशारद, तुम धीरज धरो और युद्धमें शत्रुओंका ध्वंस करो। बात यह है कि अभिमन्युके मारनेवालेको उसके अपराधका फल चखा देना इस समय तुम्हारा पहला कर्तव्य है।

उधर अभिमन्युकी मृत्यु सुन कर सुभद्रा भी मूर्च्छित हो ऐसे गिरी जैसे जड़से उखाड़ दी गई बेल चेतना रहित हो गिर पड़ती है। इसके बाद जब वह कुछ होशमें आई तब हा हा पुत्र कहती हुई विलाप करने लगी। हा पुत्र, तुम सहायके बिना मृत्युके ग्रास बन गये! यदि कोई तुम्हारी सहाय पर होता तो तुम्हारी ऐसी हालत कभी न होती। हा पुत्र, तुम इस दुस्तर शरोंके बिछौने पर कैसे सो गये! क्या किसीने तुम्हारी रक्षा नहीं की? हा प्रभो, युधिष्ठिर! आपने भी मेरे पुत्रकी रक्षा नहीं की। अब आपके महलमें ऐसा कुलदीपक पुत्र फिर कौन अवतार लेगा। हा भीम, आपने अभिमन्युको क्यों नहीं बचाया। हे प्राणप्यारे, धीर धनंजय, तुम्हें तो अपने प्यारे पुत्रकी रक्षा करनी थी। हा प्यारे भाई कृष्ण, इस महान् भयंकर युद्धमें आपने भी प्राणोंसे अधिक प्यारे मेरे पुत्रकी परवाह न की। हा, गुणोंके भंडार बली पुत्रकी किसीने भी रक्षा न की। देखो, आज अभिमन्युके वियोगसे सारे नगरके लोग दुःखी हो रहे हैं।

हाय! मेरे कृष्णके जैसा सुखी, पृथ्वी-पालक भाई है; युधिष्ठिर, भीम जैसे उत्तम पुरुष जेठ हैं तथा पावनमना और पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले वीर अर्जुन स्वामी हैं फिर भी मुझे आज रोना पड़ा और मैं इस तरह निराधार हो गई।

इतने बड़े बड़े वीरोंके रहते हुए भी मुझे पुत्र-वियोगका विशाल और अतिशय गहरा समुद्र तैरना पड़ा ।

इस समय दीर्घ निसाँसें खींचते हुए पार्थने सुभद्रासे कहा कि प्रिये, सुनो—मेरे पुत्रका वध करके जिस दुष्टने मेरी यह दुर्दशा की है मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस जयार्द्रका सिर यदि मैं धड़से जुदा न कर दूँगा तो अग्नि-प्रवेश करूँगा । क्योंकि मुझसे अपने प्रिय पुत्रकी यह दुर्गति सही नहीं जाती है । प्यारी, अब तुम न रोओ; किन्तु धीरजका शरण लो और पानी लेकर मुँह धो डालो । इसके बाद कृष्णने धैर्य देते हुए सुभद्रासे कहा कि बहिन, तुम शोक मत करो, शोक करनेसे अब कुछ हाथ लगनेका नहीं; क्योंकि जो कुछ होना था वह तो हो चुका । अब उसके लिए शोक करनेसे लाभ ही क्या है? और देखो, यह संसार चंचल है, विचित्र है तथा इसका यह हमेशाका नियम है कि इसमें जीवोंको कभी सुख मिलता है तो कभी दुःख भी भोगना पड़ता है । इसमें सदा सुखी कोई नहीं रहते और न कोई सदा स्थिर ही रहते हैं; किन्तु इसी सुखदुःख-रूप हालतमें विलीन हो जाया करते हैं । बात यह है कि संसारमें जीव हमेशा ही जन्म-मरणके चक्कर लगाया करते हैं और दुःख भोगते हैं ।

बहिन, इस संसारमें पहले भी तो अपने पूर्व-पुरुष स्वयं अपनी ही रक्षा न कर सकनेके कारण कालकी शिकार बन गये हैं, यह क्या तुम नहीं जानती । और अपनी ही नहीं, किन्तु सारे संसारकी ही यही हालत है । कारण कि संसार रहटकी घड़ियोंके समान उलट पलट होते रहनेवाला है, और यही कारण है कि यहाँ कोई भी थिर नहीं है; सभी अथिर दीखते हैं—सभी कर्मोंके चक्करमें पड़े हुए हैं । कर्म जैसा उन्हें नचाते हैं वैसे ही वे नाचते हैं । कृष्णने इस प्रकार अपनी बहिनको बहुत कुछ समझाया और उसे धीरज दिया ।

उधर जयार्द्रके किसी हितैषीने उसे जाकर यह समाचार दिया कि भद्र, पार्थने आपको मार डालनेका दृढ संकल्प किया है । इस लिए आप उसकी शरणमें जाइए; नहीं तो परिणाम बहुत ही बुरा होगा—आप अपनी स्थिति कायम न रख सकेंगे । आश्चर्य है कि आप मृत्युके आँखोंके आगे घूमते रहते भी बेफिक्र बैठे है ! यह सुन कर जयार्द्र चिन्ताओंसे घिर गया और बहुत देर तक सोच विचार करता रहा । यह सोच कर उसका हृदय हिल उठा कि प्रभात होते ही यमकी भाँति क्रोधित हो वीर अर्जुन मेरे मस्तकको धड़से जुदा कर देगा ! कुछ स्थिर

न कर सकनेके कारण वह दुर्योधनके पास गया और उससे कहने लगा कि कि मैं बड़ा भयभीत हो रहा हूँ । मुझ पर बड़ा संकट आनेवाला है, अतः मैं तो वनमें जाकर निर्दोष तप धारण करूँगा, जहाँ कि फिर अर्जुनका भय कभी कानों तकमें भी सुनाई नहीं पड़ेगा ! धनंजय ऐसा वली है कि जब वह धनुष-बाण लेकर युद्धमें रहता है तब सुर-असुर कोई भी उसका सामना करनेके लिए समर्थ नहीं होते ।

यह सुन द्रोणने कहा कि सुमति, मेरे वचन सुनो । देखो, इस संसारमें कोई भी पुरुष अजर अमर नहीं हैं । एक दिन सभीको जराके मुँहमें होकर कालके गालमें जाना है । तब फिर क्षत्रियोंका युद्ध-स्थलको पीठ दिखाना संसारमें शोभा नहीं देता । अतः यदि शक्तिशाली पुरुषका मस्तक चला जाये तो भले ही चला जाये । इसमें भय ही काहेका है । और यदि जीत हो गई तो थोड़ी ही देरमें उन वीरोंके हाथमें जय-लक्ष्मी आ जाती है । अत एव मरनेसे तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए । और एक वात यह भी है कि आज सूर्यास्तके समयमें ही अर्जुन यमलोकको प्रयाण कर जायगा; क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा ही ऐसी है । फिर बताओ तुम्हें मारेगा ही कौन ? तुम निश्चिन्त होकर रहो, डरो मत । यह सुन कर जयार्द्र जयकी वाञ्छासे थिर हो गया और उसने सारी चिन्ताएँ छोड़ दीं ।

रात वीत चुकी । सवेरा हुआ । धनंजयका जाजूस युद्धकी खबर लानेको रवाना हुआ । उसे एक आदमी मिला । उससे उसने पूछा कि रणमें जयार्द्रका रथ कैसे जाना जायगा—उसकी विशेष पहिचान क्या है । उस आदमीने उत्तरमें कहा कि कौरव राजोंने बड़ा विषम चक्रव्यूह रचा है । उसके भीतर उन्होंने जयार्द्रको रक्खा है, अतः वह दिखाई तक नहीं पड़ता, उसके पहिचाननेकी तो बात ही जुदी है । बात यह है कि वह इतना सुरक्षित है कि उसे मनुष्यकी तो बात ही क्या है देवता भी नहीं देख सकते । यह समाचार सुन कर अर्जुनने कहा कि जयार्द्रकी चाहे देव ही क्यों न रक्षा करें; परन्तु मैं उसे आज बिना मारे छोड़नेका नहीं । यह कह कर वह एक यक्षके चबूतरे पर कुशासन डाल कर स्थिरतासे बैठ गया और धीरजके साथ शासन-देवताकी आराधना करने लगा । वह थिर चित्त मन-ही-मन शासन देवतोंसे संबोधन करके बोला कि यदि मैंने जिनदेव, जिनधर्म और गुरुकी सच्चे दिलसे आराधना की है तो हे शासनदेवते, तुम प्रगट होकर मेरी सहाय करो । यह जिन-देवका ध्यान कर ही रहा था कि

उसी समय वहाँ शासनदेवता आई और वह कृष्ण तथा पार्थसे बोली कि प्रभो, कृष्ण, पार्थ और महामना नेमिप्रभु जैसे महात्मा जहाँ कहीं भी होंगे मैं सदा उनकी सेवा करूँगी। आप मुझे जो जी चाहे आज्ञा कीजिए। यह सुन कर उन्होंने उससे वैरीके सम्बन्धका सारा हाल कहा। जिसे सुन कर शासनदेवता बोली कि आप शीघ्र मेरे साथ चलिए। आपके सब कार्य सिद्ध होंगे। देवीके कहने पर पार्थ और कृष्ण उसके साथ गये। वे कुबेरके स्नानकी बावड़ी पर पहुँचे। बावड़ी सुखकी खान थी, सुंदर थी, सुवर्ण जैसे कमलोंसे पूर्ण थी और हंस-सारस आदिकी क्रीड़ाका स्थान थी। मणियोंकी उसकी सीढ़ियाँ थीं और जलकी कल्लोलोंसे वह व्याप्त थी। वहाँ पहुँच कर देवीने पार्थसे कहा कि पार्थ, इस बावड़ीके गहरे जलमें विशाल फणवाले भयंकर दो साँप रहते हैं। उनका तुम बिल्कुल भय न कर बावड़ीमें प्रवेश कर उन्हें पकड़ लो। वे दोनों नाग तुम्हारे शत्रुको शल्यकी नाँई चुभेंगे और उनके लिए कालका काम देंगे। यह सुन निपुण पार्थ उसी दम बावडीमें घुस गया और उसने विघ्नोंको हरनेवाले उस नाग-युगलको पकड़ लिया। यह देख देवीने उनसे कहा कि इन दोनों नागोंमेंसे एक तो शरका काम देगा और दूसरा धनुषका। यह सुन कर धनुषधारी अर्जुन और कृष्णको बड़ा संतोष हुआ। इसके बाद देवीने पार्थसे कहा कि पार्थ, इनके द्वारा वैरीको जीत, जयार्द्रके मस्तकको काट कर प्रसन्न हो ओ। परन्तु सुनो जयार्द्रका पिता वनमें विद्याके साधनेकी इच्छासे तप कर रहा है। अत एव जयार्द्रको मार कर ही तुम न रह जाना; किंतु जयार्द्रके मस्तकको काट कर तुम उसके पिताके पास वनमें जाना और उसके हाथोंमें वह सिर रख देना। तुम ज्यों ही उसके हाथोंमें जयार्द्रका मस्तक रक्खोगे त्यों ही वह भी काल-कवलित हो जायगा और इस तरह तुम शत्रु-रहित हो जाओगे। बस, शत्रुके सम्बन्धमें इसके सिवा और कोई उपाय करनेकी जरूरत नहीं है; यही उपाय बस है। देवीके इन वचनोंसे पार्थको बहुत सन्तोष हुआ और वह धनुष-बाण लेकर कृष्णके साथ-साथ अपनी सेनामें चला आया।

सवेरा हुआ। मानों लोगोंको युद्धका दृश्य दिखानेके लिए ही सूरज निकला है। उभय पक्षके सबल योद्धा युद्धके लिए उठे। इस समय जयार्द्रको धीरज देकर द्रोणने कहा कि वत्स, चिन्ताको छोड़ो, अपने दिलको स्वच्छ रक्खो और आनंदसे रहो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इसके बाद द्रोणाचार्यने जयार्द्रकी रक्षाके लिए चौदह हजार हाथियोंके घेरेके बीचमें उसे रक्खा और उन हाथियोंके

चारों ओर तीन घेरे और डाले । जिनमें पहला घेरा लाख घोड़ोंका था; दूसरा साठ हजार रथोंका और तीसरा बीस लाख पयादोंका था । इस तरहसे जयाद्रंकी रक्षाका ठीक ठीक प्रबन्ध कर चुकने पर समुद्रकी भाँति धीर-बुद्धि द्रोणने अपने पक्षके राजा लोगोंसे कहा कि आप लोग तो जयाद्रंकी रक्षा करें और मैं उधर रणमें शत्रुओंका नाश करनेके लिए जाता हूँ । मैं निश्चयसे उनका ध्वंस करूँगा ।

इसी समय सिंहकी भाँति पराक्रमी कृष्णसे युधिष्ठिरने कहा कि हम लोग बिल्कुल ही कर्त्तव्य-हीन हैं । इस प्रकार बैठे बैठे हम कर क्या सकते हैं ? जान पड़ता है हमारे वशकी बात नहीं है । यही कारण है कि पार्थकी प्रतिज्ञाका निर्वाह करनेके लिए इतने समय तक वनमें रहना भी व्यर्थ ही हुआ । सचमुच हम लोग अकिंचित्कर ही हैं । लोग हर एक बात आसानीसे कह तो देते हैं परन्तु फिर उसका निर्वाह करना उन्हें भारी दुर्लभ पड़ जाता है । यह सुन कर केशवने कहा कि महाराज, आप कोई शंका न करें । आपके सब कार्य निर्विघ्न सिद्ध होंगे । और आप ही कुरुजांगल देशका राज्य करोगे । इसी समय पार्थने प्रणाम कर युधिष्ठिरसे कहा कि देव, आज्ञा कीजिए जो मैं आपको अपनी भुजाओंका पराक्रम दिखाऊँ । यह सुन महामना युधिष्ठिरने धनंजयको बड़ी प्रसन्नतासे युद्ध-प्रयाणकी आज्ञा दी । युधिष्ठिरकी आज्ञा पाते ही अर्जुन रथ पर सवार होकर कृष्णके साथ-साथ चला । युद्धके सूचक भयंकर बाजे बजे । रण नाद करते हुए सैनिक, चिंघाड़ते हुए हाथी, हींसते हुए घोड़े विजयके गीत गाते हुए करोड़ों पयादे और रथ-समूह चले । युद्ध-स्थलमें पहुँच कर वे धीर सुभट वैरियोंके मस्तकोंको छेदते हुए तथा पृथ्वीको खूनसे तर करते हुए उमड़ उमड़ कर घमासान युद्ध करने लगे । वीर पार्थने शत्रुके रथोंको तोड़ गिरा या । चिंघाड़ते हुए हाथियोंके सुण्डादण्डोंको छिन्न कर उन्हें भी धरा-शायी कर दिया, जिनसे मार्ग-बिल्कुल रुँध गया । कहींसे निकलनेको जगह न रही । बातकी बातमें योद्धाओंके धड़ नाचने लगे । लहू-लुहान मस्तकोंसे पृथ्वी तर हो गई ।

इस महारणमें ऐसा कोई सुभट न रहा जो कि खूनसे न रँगा गया हो । यहाँ तक कि वहाँ रक्तका बड़ा भारी प्रवाह बह निकला, जिसमें तैरनेके लिए असमर्थ होकर योद्धा कहीं ठहर न सके; जैसे अगाध समुद्रमें न तैर सकनेके

कारण लोग कहीं ठहर नहीं सकते। इसी समय अपनी सेनाको मारके मारे भागती हुई देख कर द्रोणने उसे धीरज देते हुए कहा कि वीर भट-गण, आप लोग न भागें, न भय करें। ऐसा करनेसे हम लोगोंको बड़ा लज्जित होना पड़ेगा। और जहाँ मैं हूँ वहाँ आप लोगोंको भय ही क्या है। आप लोग स्थिर हो निर्भय होइए। द्रोणके वचनोंको सुन सब सुभटगण भागते हुए ठहर गये। इसी बीचमें अर्जुन और कृष्णने आकर द्रोणको प्रणाम कर कहा कि प्रभो, आपसे हमारी प्रार्थना है कि इस युद्धमें योग न देकर आप रण-स्थलसे वापिस चले जाइए। आपके होते हुए हम अपने पूज्य गुरुको लाँघ कर शत्रु-सेनाका विध्वंस कैसे करें।

यह सुन उत्तरमें द्रोणने कहा मैं रण-स्थलसे वापिस कैसे जा सकता हूँ। मुझे तो तुम लोगोंके साथ युद्ध करना होगा। एक बात और है जो तुम्हारे ध्यान देने योग्य है। और वह यह है कि मैंने आज तक जिसकी भी रक्षा की है संसारमें वही पुरुष अमर हो गया है; और जिसे मारा है वह सदाके लिए सो गया है। अत एव इस पर विचार कर ही तुम्हें युद्धमें बढ़ना चाहिए। यह सुन कर पार्थका हृदय क्रोधसे भर आया। वह फिर उसी समय रथमें सवार हो, धनुष संधान कर युद्धके लिए चल पड़ा। उसी समय भटोंको भय देनेवाले भयंकर बाजे बजे। रण आरंभ हुआ। बलशाली पार्थने पहले ही द्रोणको नौ बाण मारे, जिनको कि द्रोणने उसी समय अपने बाणोंसे छेद दिया। इसके बाद पार्थने फिर दूने दूने बाण छोड़े; और जब तक वे पूरे एक लाखकी संख्या तक पहुँच न गये तब तक वह बराबर बाण छोड़ता ही चला गया। द्रोणने रणके सन्मुख हो अपने बाणों द्वारा उन्हें भी निवार दिया। यह देख हरिने पार्थसे कहा कि तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो। क्या वैरियोंके सुभटोंके साथ तुम्हें गुरु-शिष्य कैसा युद्ध करना युक्त है? सुन कर अर्जुन हाथमें तलवार ले शत्रुकी सेनामें मार्ग करता हुआ चला। यह देख द्रोणने उससे कहा कि अर्जुन, ठहरो, तुम कहाँ जा रहे हो। यह सुन पार्थने हँसते हुए कहा कि गुरुवर्य, आप युद्ध न कीजिए। आपको यह युक्त नहीं है। कारण हम सब आपहीके पुत्र हैं। आपके लिए तो जैसे ही अश्वत्थामा और जैसे ही हम सब और विष्णु हैं। फिर आपको हमारे साथ युद्ध करना युक्त है क्या? गुरुवर्य, पिता-पुत्रोंका दुःखमद युद्ध शोभा नहीं देता। व्यर्थ ही इसमें योद्धाओंका संहार होता है। इस लिए प्रभो, आप युद्धके संकल्पसे लौट जाइए—युद्ध न कीजिए। पांडवोंकी इस प्रार्थनासे

द्रोण लौट गये और अब अकेला अर्जुन ही अपने पराक्रमसे वैरियोंका ध्वंस करने लगा; जैसे अकेला सिंह अपने पराक्रमके बलसे मतवाले हाथियोंका ध्वंस करता है। इसके बाद, गांडीव धनुषकी भीषण टंकारसे प्रलय कालके समुद्रकी तुलना करनेवाले पार्थने दुःख देनेवाले कौरवोंकी सारी सेनाको ही भेद डाला।

इस समय पार्थको अपनी ओर बढ़ते हुए देख कर राजे लोग कहने लगे कि द्रोणने ही जान-बूझ कर यहाँ पार्थको भेजा है। यह सेनामें प्रविष्ट हो कर बड़ा अनर्थ करेगा। इसे द्रोणका सहारा न होता तो यह कभी इधर नहीं बढ़ सकता। यह सुन कर शतायुधको बड़ा क्रोध आया और उसने उसी वक्त कृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब उन दोनोंने भी क्रोधमें आकर शतायुधके रथ, घोड़े और हाथी वगैरह सब छिन्न-भिन्न कर डाले। इसके बाद शतायुधने मन-ही-मन गदाका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह दासीकी भाँति उसके हाथमें आ गई। यह देख कृष्णने पार्थसे कहा कि पार्थ, अब तुम्हारा कार्य सिद्ध होता नहीं दीखता। परन्तु खैर, तुम कोई चिन्ता न करो। मै अपने बुद्धि-बलसे ही वैरीका नाश कर दूँगा। इसके बाद कृष्णने शतायुधसे ललकार कर कहा कि तुम अपनी गदा मुझ पर प्रहार करो; विलम्ब मत करो—और शस्त्रोंसे युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। यह सुन चंचल-चित्त शत्रुने मन-ही-मन सोचा कि अर्जुन और कृष्ण ही इस युद्धके मूल कारण है, अतः यदि मै गदाके प्रहारसे इन दोनोंको ही कालका ग्रास बना दूँ तो दुर्योधन अवश्य ही आनन्दित होगा और वह मेरा अच्छा मान करेगा। यह सोच कर उसने पहले ही कृष्णके वक्षःस्थलमें गदाका प्रहार किया। कृष्णके महान् पुण्यसे वह गदा सुगन्धसे परिपूर्ण पुष्पोंकी मालाके रूपमें परिणत हो गई और उसके हृदयकी शोभा बढ़ाने लगी। इसके बाद वह कृष्णकी पूजा करके वापिस जाकर वैरीके मस्तक पर पड़ी और उसने उसी समय शतायुधका सब गर्व उतार दिया; उसे यमलोक पहुँचा दिया। यह देख कौरवोंकी सारी सेना युद्धकी इच्छासे उठ खड़ी हुई। उसे कृष्ण और अर्जुने शरोंकी प्रबल मारसे क्षणभरमें ही तितर-बितर कर दिया।

इसके बाद कृष्णने पार्थसे कहा कि पार्थ, हम लोगोंके घोड़े बहुत प्यासे हैं, अतः अब वे मार्गको तय नहीं कर सकते। ऐसी हालतमें हमें पैदल ही शत्रुका-

विनाश करनेके लिए सिपाहीके रूपमें युद्ध करना चाहिए । सुन कर धनंजयने कहा कि प्रभो, खंडवनमें एक देवताने मुझे महत्त्वशाली दिव्य बाण दिया था। उसके प्रभावसे मैं अभी ही गंगाके जलका प्रवाह यहीं प्रगट किये देता हूँ । यह कह कर उसने वह बाण छोड़ा और एक क्षणमें ही अनन्त कल्लोलोंसे व्याप्त गंगाका प्रवाह वहाँ जारी हो गया। उसमें उन्होंने अपने घोड़ोंको नहलाया और पानी पिलाया, जिससे वे फिर तरो ताजे हो गये। यह देख आकाशमेंसे देवतोंने कहा कि जो महा पुरुष पातालसे पृथ्वी पर जल ले आया, फिर वे लोग कितने जड़ हैं जिन्होंने उसीके साथ युद्ध ठाना है । ये लोग इसके साथ कभी विजय नहीं पा सकते ।

इसके बाद ही कृष्ण युद्धके लिए उठा और साथ ही रथमें सवार हो पार्थ भी चला। कृष्णने शत्रुओंका विनाश करनेके लिए एक साथ लाख बाण छोड़े। जिनके द्वारा कौरवोंकी सेनाके हाथी, घोड़े, पयादे वगैरह सब वेध दिये गये । रथ नष्ट हो गये; और सेना भाग छूटी । यह देख दुर्योधनने सेनाके लोगोंसे कहा कि तुम लोग क्यों भाग रहे हो? भागनेका कारण ही क्या है । क्या तुममें यही शूरता है? यह सुन संजयन्त बोला कि राजन्, क्या आपने कृष्ण और अर्जुनकी वीरता नहीं देखी जो ऐसा कह रहे हैं। उन लोगोंने आपकी सेनाको वेध डाला, दुमर्षणकी सेनाको परास्त करके भगा दिया; दुःशासन डरके मारे उनके सामने ही नहीं आया; द्रोणको उन्होंने गुरु जान कर छोड़ दिया; युद्ध-तल्लीन कृतकर्माको मार गिराया; शिशु, दाक्षिण, मुख आदि राजोंको बाणोंसे वेध दिया; शतायुध, वृन्द तथा विदके प्राणोंको हर लिया; पातालसे वे परम पावन गंगाको यहाँ ले आये—फिर भी आप कहते हैं कि क्यों भागते हो! राजन्, वे बड़े वीर हैं। उनकी वीरताका कोई अन्दाजा नहीं लगा सकता है।

यह सुन कर दुर्योधनका क्रोध उबल उठा और वह द्रोणकी निंदा करता हुआ बोला कि द्रोण, तुमने यह क्या किया जो शत्रुको रास्ता देकर इस महायुद्धमें वैरीके द्वारा सबका अपमान कराया। तुम्हें पांडवोंका पक्ष करते संकोच नहीं होता। यही क्या तुम्हारी बुद्धिकी बलिहारी है । दुर्योधनकी मर्मवाणी सुन खेदखिन्न हुए द्रोणने कहा कि देखो, मैं पार्थके बाणसे वेधा गया हूँ, मैं उसकी बराबरी नहीं कर सका और न कर ही सकता हूँ । यह तुम ही सोचो कि कहाँ तो वह जवान और कहाँ मैं वृद्ध। फिर उसके साथ युद्ध करनेको मैं कैसे समर्थ

हो सकता हूँ । बात यह है कि इस वक्त तुम यौवन-श्री करके युक्त हो, अत एव तुम्हें ही इसके साथ युद्ध करना चाहिए ।

यह सुन कर दुर्योधन बोला कि अच्छी बात है आप देखते रहिए कि मैं पार्थको क्षणभरमें यमपुरका पथिक बनाये देता हूँ । इसके साथ ही वह हाथमें धनुष उठा पार्थके साथ युद्धके लिए उद्यत हुआ । उधरसे पार्थ भी उससे युद्धके लिए तैयार हो कर आया । उन दोनोंके साथ और भी बहुत वीर-गण थे । उन दोनोंका शरीर रणश्रीसे भूषित हो रहा था । युद्ध करते हुए दुर्योधनने पार्थके बाणोंको छेद दिया और अभिमानमें आकर वह पार्थकी यह कह कर हँसी उड़ाने लगा कि तुम्हारा गांडीव धनुष अब तक काम नहीं आया ! यह देख नारायणने हँस कर अर्जुनसे कहा कि पार्थ, तुम थक तो नहीं गये हो ? पार्थने कहा कि नहीं, मैं तो सिर्फ वैरियोंको मार कर कुछ शान्तिके लिए बैठ गया हूँ । मैं अभी इन सब शत्रुओंको धराशायी किये देता हूँ । आप तो मेरे अपूर्व पराक्रमको देखते जाइए । विश्वास रखिए कि मैं कौरवोंको जीत कर चन्द्र जैसे स्वच्छ, उत्तम यशको संचित करूँगा । यह कह जोशमें आ पार्थने शरोंकी प्रबल मारसे दुर्योधनको वेध डाला । उसके द्वारा अपनी सेनाको छिन्न-भिन्न देख कौरव हाहाकार कर उठे । इसी समय कृष्णने अपने पाँचजन्य शंखको फूँका । उसके शब्दको सुन कर जयार्द्रको बड़ा क्रोध हो आया । वह भयभीत हो प्रभा-विहीन हो गया । उधर कौरवोंकी उद्धत हुई सेनाको अकेले पार्थने ही तितर-बितर कर भगा दिया । फिर वह कृष्णके आगे भी मस्तक न उठा सकी । इस समय इतना भयंकर युद्ध हुआ कि सारी पृथ्वी रुंड-मुंड-मय हो गई । सारी युद्धभूमिमें श्वास-उच्छ्वास रहित मुर्दे-ही-मुर्दे देख पड़ने लगे ।

इसके बाद पार्थने ज्यों ही जयार्द्रको देखा त्यों ही उसे बड़ा भारी क्रोध आया और उसने मर्मभेदी वचनों द्वारा उसके हृदयको भेदते हुए कहा कि नीच, तूने ही न युद्धमें अभिमन्युका अन्यायसे वध किया है ! अब मेरे सामने आ और मुझे अपना पराक्रम और अपनी वीरविद्या बता । नीच, मैंने तुझे बड़ी देरमें देख पाया । अब भी तुझमें शक्ति हो तो तैयार हो रणांगणमें आकर मेरे साथ युद्ध कर और इन कौरवोंको बचा । पार्थके वचनोंको सुन कर देवतोंको बड़ा सन्तोष हुआ । वे उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे । इसी समय धनंजयने अपने बाणों द्वारा जयार्द्रके धनुष, घोड़े और धुजा वगैरहको छेद दिया । और उधरसे कृष्णने उसके कवचको भेद कर अर्जुनसे कहा कि पार्थ,

सूरज अस्त होनेके पहले पहले ही तुम अपने तीव्र वाणोंके द्वारा इसके मस्तकको धड़से जुदा कर दो तभी तुम्हारी वीरता है ।

यह सुन पार्थने उस नागवाणको हाथमें लिया, जिसे कि शासनदेवताने साँपके रूपमें अर्जुनको दिया था । इसके वाद अर्जुनने देखते देखते ही उस वाणसे जयार्द्रका मस्तक धड़से जुदा कर दिया और उस मस्तकको लेकर वह आकाश मार्गसे वहाँ गया जहाँ उसका पिता तप कर रहा था । जाकर उसने सिरको उसके हाथोंमें रख दिया । इसके साथ ही जिस तरह तालावमें लगा हुआ कमल काट देने पर गिर जाता है उसी तरह उस मस्तकको देखते ही उसका पिता भी गत-चैतन्य होकर पृथ्वी पर लोट गया ।

उधर जयार्द्रके मारे जाते ही पांडवोंकी सेनामें जय जयकार शब्द होने लगा । और जयसे प्राप्त हुई पार्थकी कीर्ति सारे भूतल पर विस्तृत हो गई । उधर कौरवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया । जयार्द्रकी मृत्युसे दुर्योधनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह निकली । वह रो उठा और विलाप करने लगा कि जयार्द्र, तुम्हारे विना आज मेरी सारी सेना शून्य हो गई ।

इसी समय दुर्योधनको धीरज वँधाते हुए अश्वत्थामाने कहा कि राजन्, तुम दुःख क्यों करते हैं । मैं तुम्हारे दुःखके कारणको अभी दूर किये देता हूँ । यह कह कर हाथमें धनुष ले वह पार्थके ऊपर टूट पड़ा और क्रोधमें आ उसके साथ तीव्र वाणोंके प्रहार द्वारा युद्ध करने लगा । थोड़े ही समयमें गुणी अश्वत्थामाने पार्थके धनुषकी डोरी छेद दी । यह देख पार्थका चेहरा प्रफुल्लित हो उठा । वह साथ ही धनुप लेकर अश्वत्थामाको दवाने लगा; जैसे सिंह मत्त गजेन्द्रोंको दवा देता है । एवं थोड़ी ही देरमें पार्थने छह वाणोंके द्वारा उसके सारथीको पृथ्वी पर गिरा उसे भी धराशायी कर दिया, जिससे वह वे-सुध हो गया; उसे कुछ चेतना न रह गई । पार्थने उसे गुरु-पुत्र समझ कर छोड़ दिया । उससे कुछ भी न कहा और न उसे कैद ही किया । इसी प्रकार अर्जुनने और भी वहुतसे राजोंको पृथ्वी पर लिटा दिया; जैसे सिंह मतवाले हाथियोंको जमीन पर लिटा देता है । युद्ध करते करते रात हो गई । और सव सेनायें अपने अपने डेरों पर चली आई ।

अपनी यह दुर्दशा देख क्रोध-वश हुए दुर्योधनने द्रोणसे कहा कि यह सव तुम्हारा ही किया हुआ है । यदि तुम पार्थको मार्ग न देते तो वह हाथी, घोड़े

और वीर योद्धाओंको कभी नहीं मार सकता था। दुर्योधनके इन मर्मभेदी वचनोंको सुन कर क्रुद्ध हुए द्रोणने कहा कि राजन, आपका यह ख्याल ठीक नहीं, किन्तु उसने मुझे ब्राह्मण और गुरु समझके ही छोड़ा है । हाँ, तुम क्षत्रिय-पुंगव हो, अतः उसके साथ युद्ध करो। अच्छा मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि तुमने युद्ध करते हुए पार्थको क्यों छोड़ दिया। बात यह है दुराग्रहके कारण तुम अपने दोषको नहीं देखते और व्यर्थ ही दूसरेको दोष देते हो। मैंने पार्थके बलको कई वार देख निर्णय किया है कि मैं उसकी बराबरी नहीं कर सकता। अब तुम्हें जो रुचे वह करके तुम अपने दिलका भाव पूरा कर लो।

यह सुन दुर्योधन बड़ा घबराया। वह तब बहुत नम्र होकर बोला—प्रभो, आप महान् हैं, महापुरुषोंके भी गुरु हैं, अतः मेरे अपराधों पर आप ध्यान न देकर ऐसा उपाय कीजिए जिससे आज रातमें ही शत्रु नष्ट हो जायँ। उन्मत्त दुर्योधनने यह मंत्र कर्णके कानों तक भी पहुँचा दिया।

इस निश्चयके बाद कौरवोंकी निर्दय सेना रातों रात ही रण-स्थलको चली। धीरे धीरे वह रण-स्थलके पास पहुँची और उसने पांडवोंकी सोती हुई सेनामें प्रवेश किया; जैसे अँधेरेमें कोकिलाएँ कौओंमें प्रवेश करती हैं। इसके बाद कौरवोंने एकदम बाणोंकी बरसा कर पांडवोंकी सेनाको छिन्नभिन्न कर दिया, जिससे पांडवोंकी पक्षके राजा उनके सामने क्षणभर भी नहीं ठहर सके और इधर उधर भागने लगे। यह देख कौरवोंने एक साथ दस बाणों द्वारा भीमको और तीन बाणों द्वारा उद्धत हुए नकुल और सहदेवको वेध दिया। साथ ही उन्होंने दस बाणोंसे भीमके पुत्र घटुकको, पाँच बाणोंसे अर्जुनको और छह बाणोंके द्वारा शिखंडीको वेध दिया। एवं सात बाणोंसे धृष्टद्युम्नको और पाँच बाणोंसे प्रसिद्ध शासक कृष्णको वेध दिया। इसी समय क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर युद्धके लिए उठा और उसने अपने बाणोंकी प्रबल मारसे दुर्योधनको बड़ी बुरी तरह वेध डाला, जिससे वह बे-होश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसे प्राणोंके लाले पड़ गये।

यह देख द्रोण युद्धके लिए युधिष्ठिरके सामने आये और उन्होंने पांडवोंकी सेनामें प्रवेश किया। इस वक्त वह ऐसे जान पड़े मानों आकाशमें उन्नत सूरज ही उदित हुआ है। इसी समय सवेरा हो आया। पांडवोंकी सेनाको द्रोणने एक क्षणमें ही पीछे हटा दिया। यह देख वीर पार्थने अपने शस्त्र-कौशलसे ब्रह्मास्त्र

छोड़ा और वातकी वातमें द्रोणको वेध कर विवश दिया । इसके वाद ही उसने द्रोणाचार्यको छोड़ दिया और उनकी पूजा कर अपना अपराध क्षमा कराया। द्रोण तव कुछ लज्जितसे हुए और अव वे युद्धसे उदासीन हो, युद्ध छोड़ कर चुप बैठ गये।

इसके वाद पार्थने अपने चतुर सारथीसे कहा कि अव रथ कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामाकी ओर बढ़ाओ। अर्जुनका यह पराक्रम देख दुर्योधनने भयभीत हो और कर्णके रथको अपने हाथसे रोक कर उससे कहा कि कर्ण, हमारी सव सेना नष्ट हो चुकी, अव क्या किया जाये। सुन कर कर्णने कहा कि इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो। मैं पहले पार्थको मार कर ही दूसरे शत्रु-राजोंकी खवर लूँगा। इसके वाद क्रोधसे उन्मत्त होकर कर्णने अर्जुनके साथ युद्ध छेड़ दिया और उधरसे सव कौरव युधिष्ठिरके साथ भिड़ गये।

घोर युद्ध हुआ। योद्धाओंकी वाण-वरसासे सारा आकाश-मंडल ढँक गया। उनके रणनादसे दिशाएँ वहिरी हो गईं। यह देख पार्थने वाणोंकी प्रवल मारसे कर्णके रथको छिन्न-भिन्न कर दिया और मय डोरीके उसके धनुषको तोड़ डाला। उधर रथमें सवार हो द्रोणने धृष्टार्जुनको धर ललकारा। यह देख धृष्टद्युम्नने द्रोणसे कहा कि जरा ठहरिए, मैं अभी ही आपको यमपुरकी सैर कराता हूँ। यह कह कर उसने द्रोण पर वाण-प्रहार शुरू कर दिया। द्रोणने अपने शर-कौशलसे उसके वाणोंको वीचमें ही छेद दिया—उसने उन्हें अपने पास तक भी न आने दिया। एवं उस गुण-गरिष्ठ द्रोणने उसके रथ-धुजा वगैरहको भी नष्ट कर वीस हजार क्षत्रियोंको यमपुरका पथिक वना दिया। उस समय द्रोणने कोई एक लाख सुभटोंको धराशायी किया और हाथी, घोड़े तो इतने मारे कि उनकी कोई गिनती ही नहीं। तात्पर्य यह है कि उन्होंने सारी एक अक्षौहिणी सेनाको नष्ट कर जीवनसे निराश कर दिया। इतनेमें द्रोणको इस महा हिंसा करनेसे रोकती हुई आकाशमें देववाणी हुई कि "द्रोण, तुम इतना भारी पाप काहेके लिए करते हो और क्यों इन राजोंके साथ विरोध मानते हो। तुम्हें इन झगड़ोंमें न पड़ना चाहिए; किन्तु हृदयको पवित्र कर तुम स्वर्गके अतिथि ब्रह्मेन्द्र वनो"। यह सुन भीम वोला—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, सचमुच तुम्हें पाप करना उचित नहीं है। इससे कुछ लाभ नहीं। अतः गुरुवर्य, पांडवोंको कुरुजांगल देशका राज्य देकर आप सुखसे रहो। यह सुन द्रोणने कहा कि यह नहीं हो

सकता। मैं कौरवोंका राज्य कौरवोंको ही दूँगा। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं अपना जीवन कौरवोंको देकर ही सुखी होऊँगा। इसके बाद द्रोण और धृष्टार्जुन फिर युद्धके लिए उद्यत हुए।

उधर अश्वत्थामाने भीमके पुत्र घटुकको ललकारा। घटुकके सामने आते ही क्षणभरमें अश्वत्थामाने उसे धराशायी कर दिया। उसकी मृत्युसे पांडवोंको बड़ा दुःख हुआ। वे विलाप करने लगे। यह देख कृष्णने उनसे कहा कि क्षत्रिय वीर रण-स्थलमें शोक नहीं करते। यह शोकका अवसर नहीं है। उधर पांडवोंको शोक-संतप्त देख कर कौरवोंकी सेना युद्धके लिए फिर उठ खड़ी हुई। यह देख भयंकर भीमने अश्वत्थामाको ललकारा और कहा कि गुरु-पुत्र होनेसे पहले मैंने तुझे जीता छोड़ दिया था; परन्तु अब मैं तुझे जीता कभी छोड़नेका नहीं। यह कह कर भीमने उस पर गदाका एक ऐसा प्रहार किया कि जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद भीमने उसके हाथीको भी धराशायी कर दिया। इसी समय पांडवोंकी सेनाने जाकर युधिष्ठिरको नमस्कार किया और उनसे कहा कि देवोंके देव, पूर्ण विचार कर अपने कर्तव्यका शीघ्र निश्चय कीजिए। क्योंकि द्रोणने घोर युद्ध करके आपकी सेनाको बिल्कुल ही जर्जरित कर डाला है; जैसे कि वज्र पहाड़को और वायु मेघोंको जर्जरित कर देता है। महाराज, हमारी सेनामें ऐसा कोई भी समर्थ वीर नहीं जो उन्हें रोक सके। इसके लिए एक उपाय है। वह यह कि द्रोणको पुत्र पर बड़ा प्रेम है। अतः आप यह कह दें कि अश्वत्थामा मारा गया है, तो काम बन जाय। पुत्र-वध सुन कर द्रोण अवश्य ही युद्धसे विमुख हो जायगा। सुन कर युधिष्ठिरने कहा कि तुम लोग झूठ क्यों बोलते हो, तुम नहीं जानते कि झूठ बोलनेमें बड़ा दोष है, जिससे कि अशुभ कर्मोंका बंध होता है और उससे दुःख प्राप्त होता है। परंतु अन्तमें उनके आग्रहसे लाचार हो युधिष्ठिरने उक्त बातको स्वीकार किया और जाकर कहा कि युद्धमें अश्वत्थामा मारा गया है। पुत्र-वध सुन कर द्रोणको इतना भारी शोक हुआ कि उनके हाथसे धनुष छूट पड़ा और वह आँसुओंकी धारासे पृथ्वीको सींचते हुए रो उठे। उनका धैर्य छूट गया।

यह देख युधिष्ठिरने थोड़ी देर बाद कहा कि मनुष्य नहीं, किन्तु हाथी मारा गया है। यह सुन कर द्रोणका शोक कुछ शान्त हुआ। उन्हें कुछ धीरज बँधा। वे चेत हुए कि उधरसे धृष्टार्जुनने तलवारसे उनका मस्तक धड़से जुदा कर

दिया। महावीर द्रोण धराशायी हो परलोकको प्रयाण कर गये। यह देख कौरवों और पांडवोंको बड़ा दुःख हुआ। वे विलाप करने लगे और दुःखके आवेगसे कहने लगे कि हे परम वीर गुरु, तुम्हारे चले जानेसे आज हमारी छत्र-छाया ही चली गई है। इससे संसारमें हमारी जो अपकीर्ति हुई वह हमारी सब कृति पर पानी फेरनेवाली है। अथवा हे गुरुवर्य, यह सब दुर्योधन जैसे पुरुषकी संगतिका परिणाम है। द्रोणकी मृत्युसे दुखी होकर पार्थने क्रोधके साथ युधिष्ठिरसे कहा—धृष्टार्जुन हमारा कोई नहीं होता। फिर इसने हमारे गुरु द्रोणका क्यों वध किया। यह सुन धृष्टार्जुन बोला कि पार्थ, इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है; किन्तु बात यह है कि युद्ध-स्थलमें जब घमासान युद्ध होता है तब सुभट सुभटों पर प्रहार करते ही हैं; फिर उसमें चाहे जिसका नाश क्यों न हो। बतलाइए ऐसी हालतमें मेरा क्या अपराध है। यह सुन अर्जुन शान्त तो हो गया, पर उसके हृदयमें विषाद बहुत हुआ।

इसके बाद फिर कौरवोंकी सेना युद्धके लिए उठ खड़ी हुई और उसने अपने रणनादसे सारे आकाशको पूर दिया तथा पृथ्वीको पद-दलित कर डाला। इसी बीचमें उधर युधिष्ठिरने शल्यके मस्तकको धड़से जुदा कर दिया, जिसने कि विराटके आगे अपने पराक्रमकी अद्भुतताका वर्णन कर अपना अभिमान प्रकट किया था। एवं पार्थने भी इस वक्त दिव्य-अस्त्रके प्रहारसे हजारों राजोंको धराशायी कर दिया था। इस समयके युद्धमें योद्धा रात-दिन युद्ध करते। जब नींद आती तब चाहे जहाँ भूमिमें लुढ़क रहते। तात्पर्य यह कि इस युद्धमें योद्धा लोगोंको मार-काटके सिवा और कुछ काम ही न था। इस प्रकार कौरवों और पांडवोंमें प्रतिदिन भयावना युद्ध होता रहा और इस तरह युद्ध होते होते सत्रह दिन बीत गये।

इसके बाद अठारहवें दिन प्रातःकाल ही कौरव और पांडवोंकी चतुरंग सेना युद्ध-स्थलमें पहुँची और उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। दोनों सेनाओंमें मकर व्यूहकी रचना हुई। उनमें मेरु जैसे उद्यत हाथी चिंघाड़ रहे थे, घोड़े हींस रहे थे और सुभटोंकी तलवारें चमक रही थीं। इसी समय कौरव-पांडव कुरुक्षेत्रके क्षयंकर और भयंकर युद्ध-स्थलमें आये और युद्धके लिए उद्यत योद्धा परस्परमें मार-काट करने लगे। इस वक्त कौरवोंकी सेना समुद्रसी देख पड़ती थी। क्योंकि उसमें वाहन और हथियार वगैरह मीन-मच्छकी जगह थे और

खून जलकी जगह था। यह देख भीम उसे नष्ट करनेके लिए रथ-रूपी नौका पर सवार होकर उसमें घुस पड़ा और उसे छिन्न-भिन्न करने लगा। एवं एक ओर मतवाले हुए कर्ण और अर्जुन युद्ध करने लगे और थोड़ी ही देरमें अर्जुनने अपने बाणोंके तीव्र प्रहारसे कर्णका धनुष छेद डाला। उधरसे कर्णने भी छेदनेमें कुशल अपने शरोंसे पार्थका छत्र छेद दिया। तब वे परस्परमें एक दूसरेके घोड़ोंको छेदने लगे। इसी समय कर्णने लाख-बाण छोड़ कर पार्थका दूसरा धनुष भी छेद दिया। तब पार्थने तीसरा धनुष लिया और वह कर्णसे बोला कि कर्ण, तुम कुन्तीके पुत्र और मेरे भाई हो, यह बात सारा संसार जानता है। इस लिए अब तुम भाई-भाईके युद्धमें धीरजके साथ मेरे घनके जैसे आघातोंको सहो। देखो कहीं पीठ दिखा कर भाग न जाना। मैंने पहले रणमें तुम्हें पकड़ कर कई बार छोड़ दिया; परन्तु अब मैं छोड़नेका नहीं। तुम या तो अति शीघ्र युद्धके लिए तैयार हो अथवा रण-स्थल छोड़ कर अपने घरका रास्ता लो; यहाँ एक क्षण भी न ठहरो। इसीमें तुम्हारी भलाई है।

यह सुन वीर कर्णने कहा कि रे जड़ात्मा और अविनयी पार्थ, तू व्यर्थ ही बकता है। देख मैं तुझे अभी धराशायी किये देता हूँ। और यह तो तू भी जानता है कि तेरे आगे ही पहले मैंने अनेकानेक राजोंको धराशायी किया है। इस लिए अब तू व्यर्थ ही अपने मुँह अपनी बड़ाई न कर और न व्यर्थ ही खोटे वचन बोल; किन्तु मेरे प्रहारोंको सह। इसी बीचमें कृष्णने आकर कर्णसे कहा, तुम्हारा पुत्र विश्वसेन धराशायी हो कालका अतिथि बन चुका है। यह सुन कर कर्ण शोकके मारे विह्वलसा होकर बड़ी विषम चिन्तामें पड़ गया। वह सोचने लगा कि हाय! यह कैसा अनर्थ है जो एक तुच्छ राज्यके लिए भाई भाईको भी मार डालते हैं। इस प्रकार कर्णको शोकाकुल देख उससे दुर्योधनने कहा कि वीरवर, यह शोकका अवसर नहीं है। इस लिए तुम शोकको छोड़ दो और अर्जुनका वध करो। इसीसे कौरवोंके हाथमें जय-लक्ष्मी आयेगी। सुन कर कर्ण उठ खड़ा हुआ और अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। इस वक्त उन दोनोंने ऐसी अविरल बाणोंकी बरसा की कि जिससे सारा गगन-मण्डल छा गया। इसी समय कृष्णने पार्थसे कहा कि पार्थ, शीघ्रतासे बाण चलाओ और शत्रुओंको मार गिराओ। कृष्णकी उत्तेजनासे अर्जुनको बड़ा जोश आया और तब वह अति शीघ्रतासे बाण छोड़ने लगा। फल यह हुआ कि उसने थोड़े ही समयमें कर्णके धनुष-बाणको छेद दिया। तब उधरसे कर्णने

भी अपना जोर चलाया और धनंजयके धनुषको वे-काम कर दिया। बाद पार्थ दिव्य-अस्त्र हाथमें लेकर और दिव्यास्त्रके रक्षक देवोंसे बोला कि हे दिव्य-अस्त्र और दिव्य देहके धारक शरासन, तुम सब सुनो कि यदि तुममें कुछ सत्य है, हम सच्चे कुल-रक्षक हैं और युधिष्ठिरमें कुछ धर्म है तो तुम इस वैरीका विध्वंस कर दो। यह कह कर उसने अपने दिव्य-अस्त्रको छोड़ा और क्षणभरमें ही कर्णके मस्तकको धड़से जुदा कर दिया। देखते देखते वीर कर्ण धराशायी हो गया।

इस प्रकार चंपा नगरीके वीर राजा कर्णको धराशायी होता देख कर कौरव रोने-विलाप करने लगे कि आज आकाशसे सूरज ही पृथ्वी पर पड़ गया है और सदाके लिये अँधेरा कर गया है। हा कर्ण, तुम्हारे विना अब रणमें अर्जुनका सामना और कौन करेगा। हममें ऐसा शक्तिशाली कोई नहीं जो उस वीरका सामना करे और उसे नीचा दिखावे। इसी समय उधर दुःशासन आदि राजे युद्ध-स्थलमें आ उपस्थित हुए। उन्हें अकेले भीमने ही यमके घर पहुँचा दिया; जैसे कि बहुतसे वृक्षोंको एक आगका कण खाकमें मिला देता है—जला डालता है। यह देख नृप-गण कहने लगे कि देखो, जिस तरह जंगलमें क्रुद्ध हुआ एक ही सिंह बहुतसे गजोंको धराशायी करता जाता है उसी तरह भीम भी इन कौरवोंको धराशायी करता जा रहा है। इसे धन्य है।

इसी समय किसीने दुर्योधनके पास जाकर उससे उसके बान्धवोंकी मृत्युका हाल कहा, जिन्हें कि भीमने मारा था, जिनकी मृत्यु दुर्योधनको अत्यन्त दुःख देनेवाली थी। उनका हाल सुन कर उस पुरुषके वचन दुर्योधनके कानोंमें ऐसे लगे जैसा कि मस्तक पर वज्र गिर पड़ता है। उससे वह बड़ा भयभीत हुआ। उसका चित्त व्याकुल हो उठा। इसके बाद वह वहाँ गया जहाँ कि उसके भाई मरे हुए पड़े थे। उन्हें देख सारथीने उससे कहा कि राजन्, उद्धत शूरवीर होने पर भी देखिए ये कैसे मरे पड़े हैं! दुर्योधनने भी उन्हें देखा। देखो, जो ऐसे विकराल थे कि ग्रह-भूत-पिशाच आदिके मांससे तृप्त होते थे वे ही आज मृत्युके ग्रास होकर पृथ्वी पर लेटे हुए हैं। यह दशा देख सारथीने दुर्योधनसे कहा कि महाराज, इस समय अब युद्धका मौका नहीं है आप युद्धकी इच्छा छोड़ कर घर लौट चलिए। यह सुन कर दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया और वह आपेसे बाहिर हो गया। यह देख सारथीने रोषमें आकर कहा कि महाराज, प्रभो, आपने न पांडवोंको पहिले उनके

हिस्सेका आधा राज्य दिया और न अब भी अपना दुराग्रह छोड़ते हैं। इसीका यह फल है कि इस युद्धमें आपके सौ भाइयोंका सर्वनाश हो गया। और अन्य-सेनाका तो इतना संहार हुआ कि उसका तो कुछ पता ही नहीं है। अतः नाथ, अब आप स्थिर होकर रहें तो अच्छा है, जिससे कुछ और उपद्रव खड़ा न हो। सुन कर दुर्योधनने उससे कहा कि कायर ! तू यह क्या कहता है। देख, मैं तभी मरूँगा जब पांडवोंकी सत्ता भी संसारसे उठा दूँगा; और तरह मैं कदापि मरनेका नहीं। यह कह कर वह प्रचंड पांडवोंकी सेनाके साथ फिर युद्ध करनेको चला।

दोनों ओरकी सेनायें महान् अहंकारसे भरी हुई दौड़ी। तलवारें हाथमें लिये हुए उनके शूरवीर योद्धा 'मारो मारो कहते हुए परस्परमें भिड़ गये। वे एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय एक योद्धा दूसरेसे कहता था कि वीरो, या तो अपना शरीर हमें सौंपदो या युद्धकी लालसाका शमन करो। और तरह तुम्हारी भलाई न होगी। इसी समय युधिष्ठिर मद्राधिपके साथ और भीम महान् युद्ध करनेवाले दुर्योधनके साथ भिड़ पड़ा। उधर कर्णके तीन पुत्र नकुलके साथ युद्ध करने लगे। वीर नकुलने थोड़े ही समयमें अपनी तलवारको आठ योद्धा-ओंका खून पिला कर उन्हें धराशायी कर दिया। उसने कर्णके पुत्रोंके साथ भी डटके युद्ध किया। इसी समय बुद्धिमान् दुर्योधनने भीमके धनुषको छेद डाला। तब भीमने हाथमें शक्ति ली और दुर्योधनके वक्षःस्थलमें एक ऐसा प्रहार किया कि वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद वह थोड़ी देरमें जब होशमें आया तब उसे बड़ा भारी क्रोध आया और वह एक दम भीम पर टूट पड़ा। फल यह हुआ कि उसने जलचर, नभचर और थलचर बाणोंके द्वारा भीमको बिल्कुल ही पूर दिया और उसका कवच छेद डाला।

अपना यह हाल देख भीमके क्रोधका कुछ पार न रहा और गदा हाथमें लेकर उसने कोई बीस हजार योद्धाओंको यमपुर भेज दिया और आठ हजार रथोंको चूर डाला; तथा असंख्य हाथी-घोड़ोंको प्राण-रहित कर दिया। सच तो यह है कि भीम जहाँ जहाँ जाता था वहाँ वहाँ उसके डरके मारे कोई भी राजा न ठहरता था—सब अपने अपने मनोरथ व्यर्थ समझ कर भागते थे। अथवा यों कहिए कि भीम जिस किसीके ऊपर अपनी दृष्टि डालता था वही यमलोकका शरण लेता था।

इसी समय रणोद्धत दुर्योधनसे युधिष्ठिरने कहा कि तुम मेरी अधीनता स्वीकार कर जी चाहे वहीं सुखसे रहो और रथ, हाथी, घोड़े आदि जो कुछ सम्पत्ति चाहिए वह मुझसे लो। तात्पर्य यह कि मेरी भृत्यता मान लेने पर तुम्हें किसी भी तरहकी तकलीफ न होगी। तुम जो चाहोगे वही तुम्हारी चाह पूरी होगी। देखो, आज सारे दिन इस बातकी मैं प्रतिक्षा करूँगा कि तुम मेरी आज्ञा स्वीकार कर दयालु होओ, जिससे व्यर्थ ही इन हजारों योद्धाओंकी बलि न चढ़े। तुम सच्चे क्षत्रिय बन कर आज भी सिंहासन पर आरूढ़ हो उन्नत राजा बन सकते हो। ऐसा करनेसे तुम अपने कर्तव्यका पालन कर सकोगे। संसारमें तुम्हारी कीर्ति होगी। मेरा यही कहना है कि अब भी तुम अपनी दुष्टता छोड़ कर मेरे साथ मैत्रीभाव स्वीकार करो। सुन कर दुर्योधन अभिमानके साथ बोला कि तुम्हारे साथ मेरा तो जन्मसे ही वैर है, वह आज कैसे मिट सकता है। मैं तुम्हारी अधीनता स्वीकार करूँ, यह असंभव है; किन्तु याद रखिए मैं अकेला ही सारे संसारसे तुम लोगोंकी सत्ता उठा दूँगा—तुममेंसे एकको भी मैं जीता न छोडूँगा। और एक बात है कि मैं यदि पृथ्वीको नहीं भोग सकूँगा तो तुम्हें भी नहीं भोगने दूँगा। सच तो यह है कि तुम सज कर रण-स्थलमें उतरो और मेरे साथ युद्ध करो। तुम्हारा मेरा फैसला युद्धमें ही होगा। यह कह कर क्रोधके मारे काँपते हुए दुर्योधनने युधिष्ठिरके ऊपर तलवारका एक वार किया। युधिष्ठिरने उसे अपनी तलवार पर रोक लिया। इसी बीचमें वहाँ, अपनी भृकुटी मात्रसे वैरीके सेनाको कंपित कर देनेवाला भीम आ गया और कौरवोंकी प्रबल सेनाको ललकारता हुआ कि ठहरो ठहरो भागो मत, रण-स्थलमें डट गया।

वह गदा हाथमें लेकर युद्ध करने लगा। उस समय वह गदा उसके हाथोंमें ऐसी जान पड़ी मानों बिजली ही है या यमकी जीभ है; अथवा नागकन्या ही है। इसके बाद भीमने क्रोधित हो जो गदा-प्रहार किया वह जाकर दुर्योधनके मस्तक पर गिरा। उसने दुर्योधनको कंठ-गत प्राण कर दिया। वह जमीन पर धड़ामसे गिरा। अपने जीवनका कोई उपाय न देख उसने धीमेसे कहा कि क्या अब भी कौरवोंकी सेनामें कोई ऐसा वीर जीता बचा है जो पांडवोंका सर्वनाश कर सके। यह सुन किसी पास खड़े हुए भृत्यने कहा कि हाँ, है, और वह पवित्र गुरु-पुत्र अश्वत्थामा है। वह पांडवोंका विध्वंस कर सकता है। उसे वैरी दबा नहीं सकते। वह उनके लिए दुर्जेय है। उधर ज्यों ही अश्वत्थामाने दुर्योधनके

वधका हाल सुना त्यों ही वह क्रुद्ध होकर जरासंधके पास गया और बोला कि प्रभो, दस हजार राजोंके साथ ही आज दुर्योधन भी धराशायी हो गया है। यह सुन जरासंधको बड़ा शोक हुआ। वह व्याकुल हो उठा। इसके बाद ही उसने अपने सेनापति आदिके साथ ही प्रचंड अश्वत्थामाको पांडवोंके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश किया। अश्वत्थामा वहाँसे दुर्योधनके पास आया और उसकी यह दशा देख शोकसे बोला कि हे वीरवर, आपके विना आज यहाँ सब शून्य देख पड़ता है; कुछ भी अच्छा नहीं लगता। राजन्, अब तक तुम्हारे ही प्रसादसे हम ब्राह्मण लोग इस उज्ज्वल राज्यको भोगते थे। परन्तु अब तुम्हारे बिना हम क्या करेंगे। इतनेहीमें जरासंधने मधु राजाके सिर पर भी वीरपट्टक बाँध कर उसे बहुत सेना देकर पांडवोंसे युद्ध करनेके लिये भेज दिया। वह अपने दिलमें यह ठान कर चला कि मैं अभी जाकर पांडवोंका विनाश किये डालता हूँ और साथ ही कृष्णका मस्तक भी धड़से जुदा किये देता हूँ। इस बातको क्रोधमें आकर उसने बड़-बड़ाते हुए कह भी डाला।

अश्वत्थामाको देख कर मृत्यु-मुखगत दुर्योधनने उससे कहा कि वीर अश्वत्थामा, लो मैं तुम्हारे मस्तक पर वीरपट्टक बाँधता हूँ। तुम अभी जाओ और शत्रुके साथ युद्ध कर उसे यमालयको भेजो। इसके बाद अश्वत्थामा अपनी सेनाको साथ लेकर चला और जाकर ही उसने सब ओरसे पांडवोंकी भयंकर सेनाको घेर लिया। उसने इस समय माहेश्वरी विद्याको याद किया। वह त्रिशूलको हाथमें लिये उसी वक्त दौड़ी आई। उसके मस्तकमें चंद्रका चिन्ह था। वह उससे बड़ी सुशोभित हो रही थी। उसके प्रभावको विष्णु और पांडवोंकी सेना न सह सकी और वह भाग छूटी। और जो कुछ थोड़ी बहुत रही थी उसे अश्वत्थामाने चूर डाला। उसने हाथी, घोड़े, रथ और राजा वगैरह सबको पद-दलित कर पांचालके राजाका मस्तक छेद दिया। इस प्रकार वह जय-लक्ष्मीसे भूषित हो पांचालके राजाका सिर लेकर दुर्योधनके पास गया और उसे उसने उसके आगे रख दिया। दुर्योधनको वह मस्तक देख कर कुछ संतोष हुआ। वह बोला कि संसारमें क्या कोई ऐसा शक्तिशाली भी है जो पांडवोंको विध्वंस करे, जिन्होंने कि सुर-असुर और नर सबको ही परास्त कर द्रोण और कर्णको कालके घर पहुँचा दिया है। और जिनमेंसे अकेले भीमने ही हजारों राजों महाराजोंको यमलोकको पहुँचा कर मुझे भी इस हालतमें ला दिया है। सच तो यह है कि जब पाँचों ही पांडव जीते हैं तब इन

तुच्छ पांचाल आदि राजोंको मारना तो किसी भी कामका नहीं; व्यर्थ ही है। इन निरीह राजोंके मारनेसे क्या लाभ होगा। मारना तो चाहिए उन पांडवोंको जिन्होंने कि जगत् भरको ही जेर कर रक्खा है।

उधर हरि, पांडव और बलभद्र आदिके कानोंमें जब यह बात पहुँची कि अश्वत्थामाने सेनानी सहित पांचालके राजाका मस्तक छेद डाला तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। यह देख कृष्णने कहा कि इस वक्त शोक न कीजिए, यह शोकका मौका नहीं है। एक पांचालपति मारा गया तो क्या हुआ, हम सब तो अभी जीते हैं। उधर कौरवोंकी दुर्दशा सुन कर जरासंध क्रोधसे प्रलय-कालके समुद्रकी भाँति उमडा हुआ वहाँ आया। यह देख देवतोंने कृष्णसे कहा कि केशव, समय आ गया है, अब आप विलम्ब न कर मगधाधिपति जरासंधका शीघ्र काम तमाम कीजिए। यही आपके महोदयका समय है। सुन कर भविष्य चक्रवर्ती कृष्णने उसी समय जरासंधको ललकारा। फिर क्या था, यादवोंकी सेना तैयार होकर चली, जिसे देख कर जरासंधने सोमक नाम दूतसे कहा कि तुम मुझे इन सब राजोंका परिचय दो। दूत भिन्न भिन्न सब राजोंके चिन्ह बताता हुआ उसे उनका परिचय देने लगा। वह बोला कि देखिए, महाराज, वह समुद्रविजयका रथ है, जिसमें सोने जैसे वर्णवाले घोड़े जुते हुए हैं और सिंहकी धुजा है। वह रथनेमिका रथ है, जिसमें हरे रंगके घोड़े जुते हैं और बैलकी धुजा है। सेनाके आगे वह कृष्णका रथ है, जिसमें सफेद घोड़े जुते हैं और गरुड़की धुजा हैं। यह दाहिनी ओर रामका रथ है, जिसमें नीले वर्णके घोड़े हैं और तालकी धुजा है। यह नीले घोड़ोंवाला युधिष्ठिरका रथ है और वह विचित्र रथ भीमका है। महाराज, भीम भीतिको दूर करनेवाला अद्भुत वीर योद्धा है। वह सफेद घोड़ों और वानरकी धुजावाला अर्जुन है। वह उग्रसेन है, जिसके रथको लाल वर्णके घोड़े खींच रहे हैं। वह पीले घोड़ोंवाला और हिरणकी धुजावाला जरत्कुमार है। शिशुमारकी धुजावाला और लाल-पीले घोड़ों-वाला वह मेरुका रथ है। वह सूक्ष्मरामका रथ है, जिसमें कि कांबोजके घोड़े जुते हैं और सिंहकी धुजा है। कमल जैसे लाल रंगके घोड़ोंवाला यह रथ पद्मरथका है। यह पंचपुंड्र देशके घोड़ोंवाला और कुंभकी धुजावाला रथ विदूरथका है। कपोत जैसे रंगके जिसमें घोड़े जुते है तथा पद्मकी जिसकी धुजा है वह रथ शारणका है। और यह अनावृष्टि नाम सेनापतिका रथ है जिसमें कि हाथीकी धुजा है और काले घोड़े जुते हुए हैं।

पांडवोंकी इस प्रकार विशाल सेनाका हाल सुन जरासंधको बड़ा क्रोध आया। इसके साथ ही वह कृष्णके साथ भिड़ गया। वे धनुषके टंकारसे दिशाओंको शब्द-मय करते, धनुषोंकी डोरियों पर बाणोंको चढ़ाते ऐसे शोभते थे मानों दो पराक्रमी सिंह ही आपसमें भिड़ रहे हैं। इसी समय कृष्णने एक अग्नि बाण छोड़ा। उससे जरासंधकी सारी सेनामें आग लग उठी। चक्रीने जल-बाण छोड़ कर कृष्णके अग्निबाणको वारण किया और सेनामें शान्ति की। इसके बाद जरासंधने नागपाश चलाया, जिसे कृष्णने गरुड़ बाणसे वारण किया। तब जरासंधने बहुरूपिणी, स्तंभिनी, चक्रिणी, शला आदि बहुतसी विद्याओंको भेज कर कृष्णकी सारी सेनाको अचेत कर दिया। कृष्णने उन सबको भी महामंत्रके बलसे भगा दिया। यह देख जरासंधकी बहुरूपिणी विद्या भी चली गई। इससे जरासंध बड़ा खेद-खिन्न हुआ। उसके विषादका कुछ पार न रहा।

इसके बाद जरासंधने चक्ररत्नको याद किया। वह उसी समय उसके हाथोंमें आ गया। उसकी सूरज जैसी प्रभा थी। उसकी किरणें चारों ओर फैल रही थी। पहिले जरासंधने उसकी पूजा की और बाद उसे कृष्ण पर चलाया। वह अपनी किरणोंसे यादवोंकी सारी सेनाको त्रसित करता हुआ सेनाके भीतर घुसा; जैसे अपनी किरणोंसे सुशोभित सूरज आकाशमें प्रवेश करता है। इस समय उसके तेजके मारे वहाँ कोई भी नहीं ठहर सका—सब भाग खड़े हुए। केवल शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाले निर्भय कृष्ण, बलदेव तथा पांडव ही रहे। जरासंधका चलाया हुआ चक्र कृष्णके पास आकर और कृष्णकी तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथमें आ गया। उसे कृष्णके हाथोंमे आते ही यादवोंकी सेनामें जयध्वनि हुई।

इस वक्त कृष्णने मधुर मीठे वचनोंमें जरासंधसे कहा कि जरासंध, अब भी समय है, मेरे चरणोंमें मस्तक नमा कर राज्यभोग करो। देखो, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है, चेतो, इसीमें तुम्हारी भलाई है। मेरी आज्ञा शिरोधार्य कर तुम पहिलेकी नाँई ही सुखसे राज्य भोगो। कृष्णकी यह मर्मवाणी सुन कर जरासंधको बहुत क्रोध आया और वह विषाद करता हुआ बोला कि ओह, भूल गया कि तू एक ग्वाल है और मैं राजा हूँ! मैं तुझे नमस्कार करूँ? यह कभी नहीं हो सकता। तू चक्रका कुछ गर्व न कर। चक्र तो

कुँम्हारके पास भी होता है । सच तो यह है कि तू यहाँसे शीघ्र ही भाग जा, व्यर्थ ही मेरी भुजाओंका बलि न बन। क्या तुझे याद नहीं है कि समुद्रविजय सदासे मेरा सेवक रहा है; और तेरा पिता वसुदेव पहले मेरे यहाँ पयादा था। तू तो एक दीन ग्वालका पुत्र है, फिर रे खल, जान पड़ता है तेरे पापका ही उदय आ पहुँचा है जो तू जान-बूझ कर मृत्युके मुखमें प्राप्त होना चाहता है। सुन कर कृष्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । उसने उसी समय जरासंध पर चक्र चलाया। चक्रने उसका मस्तक धड़से जुदा करके पृथ्वी पर गिरा दिया। इसके बाद चक्र लौट कर वापिस कृष्णके हाथमें आ गया । यह देख देवतों, राजों और यादवोंने बड़े प्रसन्न होकर कृष्णका जय-जयकार किया । उस जयध्वनिसे सब दिशायें गूँज उठीं। कृष्ण पर फूलोंकी बरसा करते हुए देवतोंने कहा कि कृष्ण, तुम तीन खंडके स्वामी नौवें नारायण हो । अतः अपने पुण्यसे पाई हुई इस पृथ्वीका अब तुम भरण-पोषण करो; इसका शासन करो।

इस विजयके बाद कृष्ण रण-भूमिमें पहुँचे । जब उनकी दृष्टि मरे पड़े जरासंध पर पड़ी तब उन्हें बड़ा विषाद हुआ । इसी तरह जरासंधको देख कर पांडव भी बड़े दुःखी हुए। कृष्णने वहीं एक जगह निसाँसें छोड़ते हुए दुर्योधनको देखा । देख कर वे साम्यभावसे बोले कि भाई, अब तुम दया-मय धर्मको याद करो और द्वेषकी भावनाको बिल्कुल ही भूल जाओ । देखो, जीवोंको जो जन्म जन्ममें सुख मिलता है वह सब इस धर्मका ही प्रभाव है। इस लिए अब तुम अपने आत्माको और और झंझटोंसे निकाल कर इसीकी ओर झुकाओ। इसीमें तुम्हारी भलाई है । सुन कर निर्लज्ज दुर्योधनको उस दशामें भी बड़ा क्रोध आया और वह बोला कि तुम घबराओ मत, मैं निश्चयसे जीऊँगा और तुम्हारा सर्वनाश करूँगा । तुम मुझे क्या सीख देते हो, मैं कभी तुम्हें छोड़नेवाला नहीं । तुम चाहे कैसी ही बातें क्यों न बनाओ । उसके ऐसे उत्तरको सुन कर कृष्णने समझ लिया कि यह बड़ा अधर्मी है—इसे धर्मकी बात कभी नहीं सुहायेगी। इसके बाद निसाँसें छोड़ता हुआ वह धर्म-हीन अधर्मी दुर्योधन थोड़ी ही देरमें अशुभ लेश्यासे मरा और मर कर पापके उदयसे दुर्गतिमें गया, जो बड़ा भारी दुःखका स्थान है।

इसके बाद सेना, द्रोण तथा कर्णको मृत्युके मुखमें पड़े देख कर पांडव, कृष्ण, बलदेव आदि बड़े शोकाकुल हुए और उन्होंने उसी वक्त जरासंध आदि

सब राजोंकी चन्दन, अगुरु आदिसे दग्ध-क्रिया की। इसी समय जरासंधके मंत्रियोंने सहदेव नाम उसके पुत्रको लाकर उसे कृष्णकी गोदमें रख दिया; और कृष्णने भी उसे अपने पिताकी गादी पर बैठा कर मगध देशका राजा बना दिया। सच है कि गंभीर पुरुषोंका क्रोध तभी तक रहता है जब तक कि शत्रु नम्र नहीं होता है। शत्रुके नम्र हो जाने पर तो वे और भी नम्र हो जाते है और वैर-विरोधको एकदम जलांजलि दे डालते हैं।

इसके बाद तीन खंडके स्वामी होकर कृष्णने बलभद्र सहित भाँति भाँतिके उत्सवों और बाजोंके साथ रमणीक द्वारिकामें प्रवेश किया। इधर पांडव भी अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें आ गये। वहाँ वे धर्म-युक्त कर्मोंको करते हुए रहने लगे। उन्हें सब सुख प्राप्त हुए—किसी भी बातकी उनके लिए कमी न रही।

जो वैरियोंके समूहका नाश कर सब मनुष्योंसे सेवित हुए—इन्द्र-तुल्य हुए, जो कल्याण-समुद्रके पूर और संसारके भयको हरनेवाले धर्मके धारक हुए, पुण्य-योगसे जो उत्तम राज्यको प्राप्त कर हस्तिनापुरमें अपूर्व संतान सुखके भोक्ता हुए और अनेक भव्य पुरुषोंने जिनसे सुख पाया उन शत्रुके भयको दूर करनेवाले पांडवोंकी जय हो।

धर्मात्मा युधिष्ठिर शत्रुओंके भयको हरनेवाले हुए हैं; भीमसेन सेनामें बड़े प्रसिद्ध वीर हुए हैं; पार्थ अपने पृथु गुणोंसे बंदीजनों द्वारा प्रार्थित हुए हैं; इसी प्रकार मद्रीके पुत्र पवित्र नकुल और सहदेव वीरतामें प्रख्यात हुए हैं ये असाधारण गुणोंके भंडार पाँचों ही पांडव चिरकाल तक पृथ्वीका पालन करें।

बावीसवाँ अध्याय।

उन मल्लिनाथ प्रभुको नमस्कार है जो शल्यको हरनेवाले और कर्म-मल्लको जीतनेवाले हैं। मल्लिकाके फूलके जैसा सुगंध देनेवाला जिनका उत्तम शरीर है तथा जो उन्नत और सत्पुरुषोंके पालक हैं।

एक दिन भीम आदि द्वारा पूजित युधिष्ठिर हर्षके साथ सिंहासन पर विराजे थे। उनके ऊपर चँवर ढोरे जा रहे थे और उनकी सेवामें बहुतसे नृपति उपस्थित थे। उनके ऊपर जो छत्र लग रहा था उसके द्वारा सूरजकी किरणोंके रुक जानेसे उनकी और भी अधिक शोभा हो गई थी।

इसी समय उनकी सभामें स्वर्गसे नारद आये। महाभाग पांडव उन्हें देखते ही उठ खड़े हुए और उनका उन्होंने उचित आदर किया। नारदने पांडवोंको इधर उधरकी विविध दन्तकथाएँ सुनाईं। इसके बाद वह सुमना पांडवोंके साथ साथ उनके अन्तःपुरमें गये। वहाँ मनुष्य द्वारा वन्दित उन महापुरुषने दीप्ति-पूर्ण झरोखों, छज्जोंवाले और मनको मुग्ध करनेवाले द्रौपदीके सुंदर महलको देखा। इस समय द्रौपदी वहाँ खूब ही बढ़िया शृंगार किये, मस्तक पर मुकुट दिये सिंहासन पर विराजी थी। वह अपने विशाल भालमें तिलक दिये थी और हृदयमें सर्वोत्तम सारभूत हार पहिने थी। उसने इस समय घर आये हुए नारदको न देख पाया; और दर्पणमें पड़े हुए नारदके चेहरेको देख कर भी वह न तो उठ खड़ी हुई और न उनको उसने नमस्कार ही किया। इस अपमानसे नारद बड़े ही क्रुद्ध हुए और वह मस्तक धुनते तथा मन-ही-मन रोष करते वहाँसे उसी क्षण चले आये।

वह बड़-बड़ाते हुए आकाशमें घूमने लगे। परन्तु जब उन्हें कहीं सन्तोष न मिला तब वह आकाशमें दूर तक चल कर एक विशाल एकान्तमें पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वह सोचने लगे कि मैं वही न नारद हूँ जो सदा ही हर्षका भरा बिना बाजोंके ही नाचा करता हूँ। लेकिन जब कारण मिल जाता है तब तो मेरे आनन्दका पार ही नहीं रहता। इस द्रौपदीने मेरा अपमान कर मुझे व्यर्थ ही कितना दुःखी किया है। अब तो मै जब इसका बदला ले लूँगा मुझे तभी सन्तोष होगा; मेरे इस अपमानका तभी प्रायश्चित होगा। इसके सिवा मुझे किसी तरह

भी सन्तोष होनेका नहीं । यह अपने स्वामी आदि प्रिय पांडवोंका समागम पाकर ही इतनी निरंकुश हो रही है। इसे दूसरे द्वारा हरवा देकर प्रिय-वियोगमें डालूँ तभी यह दुःखिनी होगी । मैं इसे मार कर भी अपना बदला ले सकता हूँ; परंतु यह घोर पांप है । इस लिए ऐसा करना मुझे उचित नहीं है । अतः यही ठीक है कि किसी लंपटी पुरुषको खोज कर इसे उसके द्वारा हरवा ही दूँ ।

नारायण, बलभद्र तथा और और सब राजे महाराजे तो मेरी वन्दना करें, मैं सबका गुरु और विशेष कर स्त्री-जातिका गुरु, उस मेरे साथ इसकी यह कष्टदायी धृष्टता तथा दुष्टता जो गर्वके आवेशमें इसने मुझे कुछ भी न गिना और आप मजेके साथ आसन पर बैठी रही । बात तो यह है कि मैं भी अब कोई ऐसा ही प्रयत्न करूँ कि जिसके द्वारा जो शृंगार-रस इसे इतना प्रिय है वह सब इसका छूट जाय । यह निश्चय है कि जब मैं इसके सौभाग्यको दूर कर दूँगा— मेरे मनोरथ भी तभी पूर्ण होंगे । मुझे जो अपमानका दुःख है वह मेरे हृदयसे तभी निकलेगा जब कि मैं आकाशमें होकर इसके हरे जानेको आँखों देखूँगा । मन-ही-मन यह सब सोच कर कोपके भरे और उपायकी ताकमें लगे नारद ऋषि किसी परस्त्री-रत राजाको देखते हुए आकाश मार्ग होकर चले । खिन्न-चित्त हुए नारदने बहुत जल्दी सारी ही पृथिवी घूम डाली । उन्हें कोई परस्त्री-रत राजा न देख पड़ा । वह बड़े दुःखी हुए । सब जगह घूम फिर आये और जब जम्बूद्वीप भरमें भी उन्हें कोई ऐसा राजा नजर न आया तब वह परस्त्रीगामी राजाकी खोजमें धातकीखंड दीपमें गये ।

यह दीप विविध खंडों द्वारा समुन्नत है । चार लाख योजनका इसका विस्तार है । इसकी पूर्व दिशामें एक मंदर नाम पहाड़ है जो बहुत अधिक मनोहर है, चौरासी हजार योजन ऊँचा है और जिस पर चार विशाल वन हैं । उन वनोंसे उसकी और भी अधिक शोभा है । इसकी दाहिनी बाजूमें जगत् विख्यात, अत्यन्त शोभा-सम्पन्न और छह खंडों द्वारा मंडित भरत नाम क्षेत्र है । इस क्षेत्रके बीचों बीच अमरकंका नामकी एक पुरी है जो कि भूमंडलकी शोभा है, सुहावनी है, संसार भरमें उत्तम है, सार है और सुखकी खान है । इसका रक्षक है पद्मनाभ नामक महीपति । यह राजा इस नगरीकी बड़ी प्रीतिके साथ पालना करता है; जिस तरह कि उन्नत पद्मनाभ—कृष्ण—सदा काल ही लक्ष्मीके मन्दिर (महल) की रक्षा—पालना—करता है; उसे आश्रय दिये

रहता है। इसने अपने बाहुदंडों द्वारा वैरियोंको दण्डित किया था, अतः सब राजे इसकी स्तुति करते हैं। यह सब पाप-विद्याओंका ज्ञाता विद्वान् था। विशाल और निर्मल इसका वक्षःस्थल था। पृथिवीकी रक्षा करनेमें यह बड़ा चतुर था। यह कभी भी शत्रुका लक्ष्य न होता था और रूपके द्वारा यह कामदेवको जीतता था।

उधर नारदने यह किया कि एक चित्र पट्ट पर अपनी सुन्दरताके द्वारा सारे स्त्रीसमूहको जीतनेवाला और बड़े अचम्भेमें डालनेवाला द्रौपदीका सुंदर चित्र खींचा और लेजा कर अपनी दीप्तिसे सूरजको जीतनेवाले उस चित्रको उसने पद्मनाभ राजाको भेंट किया। उस चित्रमें सोनेकी जैसी उज्ज्वल और सुंदर हार द्वारा शोभित कुचोंवाली द्रौपदीको देख कर वह मन-ही-मन विचार करने लगा कि यह कौन है! स्वर्गसे आई हुई शची है या अपना महल छोड कर लक्ष्मी ही आ गई है। यह रोहिणी है या सूरजकी पत्नी ही पृथिवी पर आ पहुँची है; अथवा किन्नरी या खेचरी तो नहीं है; एवं गुणशालिनी यह कामकी पत्नी रति तो नहीं है। यह कौन है—किसका यह चित्र है। यों नाना विकल्प कर उसने बहुत विचार किया, पर वह उसके विषयमें कुछ भी निश्चय नहीं कर सका कि यह मोहनवल्ली कौन है, इस तरहका विचार करता करता ही वह मोह-वश होकर मूर्च्छित हो गया। उसकी यह दशा देख महलके सब लोग हाहाकार करते हुए वहाँ दौड़े आये। उन्होंने तुरंत शीतोपचार आदि उपाय किये तब चिंतासे पीड़ित पद्मनाभ कुछ होशमें आया। होशमें आते ही नारदको देख उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा कि प्रभो, यह उत्तम स्त्री कौन है कि जिस महान् रूपवाली, सुविभ्रमा और विभ्रम-पूर्ण भ्रूयुक्त आननवालीका यह चित्र है। भव्येश, सब बातें ठीक ठीक कहिए, ताकि मुझे पूरा पूरा निश्चय हो जाय। उत्तरमें नारदने कहा कि राजन्, यदि आपको इस अपूर्व सुंदरीके विषयमें जिसका कि यह चित्र है, जाननेकी इच्छा हो तो जरा ध्यान देकर सुनिए। मैं उसका सब वृत्तान्त कहता हूँ। निश्चय है कि उसको सुननेसे आपका चित्त स्थिर हो जायगा।

सब द्वीपोंके ठीक बीचमें एक जम्बूद्वीप नामक द्वीप है जो कि बड़ा ही मनोहर और महान् है; और जिसने कि अपने वृत्त (गोलाकार) द्वारा चंद्रमा और योगियोंको भी जीत लिया है। (योगियोंके पक्षमें वृत्तका अर्थ चारित्र समझना

चाहिए।) इसके बीचमें दीप्त सुदर्शन नाम मंदर (पहाड़) है जो लाख योजनका ऊँचा है और पृथिवीका तिलक जैसा है। इसके दक्षिण ओर चढे हुए धनुषके आकारका कलाओंसे पूर्ण, छह खंडोंमें विभक्त और संसार भरमें उत्तम भरत नाम क्षेत्र है।

इसमें एक कुरुजांगल नाम देश है जो कि बहुत सुंदर है, कुरुभूमि तुल्य देशोंसे परिपूर्ण है, अपनी बड़ी चढ़ी विभूति द्वारा सुशोभित है। इस देशमें हाथियोंके समूह द्वारा सर्वोत्तम हस्तिनापुर नाम नगर है। जिसकी खाई सदा ही गंगाके जल द्वारा भरी रहती है। हस्तिनापुरके राजा युधिष्ठिर हैं। वह कौरवाग्रणी हैं और पृथिवीको धारण करनेके लिए पूर्ण समृद्ध हैं। संसार-प्रसिद्ध सार्थक नामधारी पार्थ उनका एक भाई है। उसकी पत्नीका नाम है द्रौपदी। बस, इस चित्रमें लिखा हुआ यह उसी सुरूपिणीका रूप है। सच कहता हूँ कि यदि आपको संसारका सार सुख भोगनेकी इच्छा हो तो आप इस स्त्रीरत्नको हस्तगत कीजिए। राजन्, इसके विना पाये आप अपने जीवनको व्यर्थ ही समझिए। अब आपको जो रुचे वही कीजिए। इतना कह कर नारद तो आकाशमार्ग द्वारा चले गये और इधर उधर राजा द्रौपदीके रूप द्वारा चित्तके हरे जानेके कारण उसको याद करता हुआ बड़ा भारी दुःखी हुआ। यहाँ तक कि उसे उसके मिले विना चैन ही नहीं पड़ने लगा। अन्तमें उसके प्राप्तिका कोई उपाय न देख वह वनमें गया और वहाँ मंत्रकी आराधनामें चित्त देकर उसने बहुत जल्दी एक गदाधारी संगम नाम सुरको साध लिया। संगमने आकर, प्रणाम कर कहा कि देव, मुझे अपनी उस इष्ट-सिद्धिकी आज्ञा दीजिए जिसके द्वारा आपका चित्त प्रफुल्ल हो; आप खुश हों।

तब राजाने सन्तुष्ट होकर उससे कहा कि, देव, परमोदयशाली, अनुपम रूप-सम्पन्न और मानिनी द्रौपदीको लाकर मुझसे मिला दो। बस, मेरी यही कामना है। और इसी लिए ही मैने तुम्हें कष्ट दिया है। राजाके बचन सुन कर अनुरागका भरा कार्य-कुशल वह देव आकाश-मार्ग द्वारा बहुत जल्दी दो लाख योजन वाले समुद्रको बातकी बातहीमें लाँघ कर, विना किसी रोकटोकके हस्तिनापुर पहुँच गया। वहाँ वह रातमें द्रौपदीके महलमें गया और उसने सोई हुई साक्षात् लक्ष्मी जैसी द्रौपदीको हर लाकर, सोई हुई अवस्थामें ही, पद्मनाभके उद्यानके एक सुंदर महलमें छोड़ दिया। नींदके वश हुई द्रौपदीको इस समय हेय-उपादेयका

कुछ भी भान न था—वह वहाँ शय्या पर पड़ी हुई प्रातःकाल तक बराबर सोती ही रही। इसके बाद ही उसके हर ले आनेकी बातकी सूचना देवने पद्मनाभको दी। वह सहसा जाग कर और अपनेको संभाल कर बड़ी सावधानीके साथ आदरका भरा द्रौपदीके पास आया। वह उस सोने जैसी उज्ज्वल, स्थूल और कठिन कुचोंवाली और सुन्दर जाँघों द्वारा सुशोभित चन्द्रवदनी द्रौपदीकी नींदसे भरी हुई छविको देख कर बड़ा खुश हुआ। वह प्रेमके आवेशमें आकर बोला कि भद्रे, रात्रि चली गई और सवेरा हो गया। अतः भामिनि, अब नींदको छोड़ो और उठो। सुलोचने, कला-कौशलमें पारको प्राप्त हुई देवि, अपनी सुंदर वाणी बोलो। पद्मनाभने इस प्रकार अमृत-तुल्य सुमधुर वाक्यों द्वारा जब उसे जगाया तब आँखें खोलते ही वह भयभीत मृगीकी भाँति व्याकुल नेत्रों द्वारा सब दिशाओंमें देखने लगी। वह बड़ी चिन्तामें पड़ गई कि यह देश कौन है, यह मुझसे कौन बातचीत कर रहा है, यह जो सामने खड़ा है कौन है, यह उद्यान किसका है और यह महल किसका है। जान पड़ता है यह सब स्वप्न है, साक्षात्में ऐसा दृश्य कहाँसे आ सकता है। यह सोच कर, वह आँखें मींच और मुँह ढँक कर फिर सो रही। उसकी यह हालत देख कामपीड़ित राजा उसके मनकी बात जान कर बोला कि कमलनयनी देवि, देखिए यह स्वप्न नहीं है। महर्षिणि, जिसे कि तुम स्वप्न समझ रही हो वह सब सच्चा दृश्य है। उसके वचन सुन कर द्रौपदीको जान पड़ा कि वह स्वप्न नहीं देख रही है। उसने चारों दिशाओंमें दृष्टि डाली तो उसे छोटी छोटी घंटियोंसे युक्त एक सुंदर शोभमान विमान दिखाई दिया।

इसके बाद परस्त्री-लंपट, लोभी, कपटी, और पटु पद्मनाभ द्रौपदीसे बोला कि भामिनि, जिस देशमें इस समय तुम हो वह घातकीखंड नाम द्वीप है। इसका चार लाख योजनका विस्तार है और यह सब तरफसे कालोदधि समुद्र द्वारा घिरा हुआ है। और यह सोनेकी कान्ति युक्त गृहों द्वारा सुदीप्त, मणि-मुक्ताफलों द्वारा भरी-पुरी प्रसिद्ध अमरकंका नाम नगरी है। इसका स्वामी मैं पद्मनाभ राजा हूँ, जिसने कि अपने पराक्रमसे सब दिशाओंको वश कर लिया है और शत्रुओंको जड़से उखाड कर फेंक दिया है तथा जो इन्द्रके तुल्य है। भामिनि, तुम्हारे लिए मैंने बड़ा कष्ट उठा कर हठ-पूर्वक एक देवताको साधा और उसीके द्वारा तुम्हें बुला मँगाया। तुम्हारे बिना मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। देखो तुम्हारे विरहमें मै मरेके जैसा हो गया हूँ। उस देवताने बड़ी कृपा की जो कि वह तुम्हें ले आया। भीरु, अब तुम भय मत करो; किन्तु प्रसन्न होकर मेरे साथ

भोग विलास करो; और देश, खजाना, पुर, रत्न, हाथी-घोड़े, महल वगैरह जो कुछ तुम्हें अच्छा जान पड़े उसे ग्रहण कर अपना मन बहलाओ—आनंद करो । सुंदरि, मेरे हृदयमें जो विरहकी आग जल रही है उसे बुझाओ—शान्त करो । विरहकी आग द्वारा जलते हुए मेरे मर्म-स्थल पर भोग-रूपी जल सींचो । हे कामदेवकी प्रतिमा रूपी देवि, तुम विषाद छोड़ कर मेरी तरफ सीधी दृष्टि डालो और भव्ये, मेरे साथ सुख-भोग भोगो । हे सुख देनेवाली महादेवी, तुम मेरे मनकी व्यथाको दूर करनेवाली राज-रानी बनो और भव्य भाव—सीधे-साधे स्वभाव—का परिचय दो ।

पद्मनाभके ऐसे वचनोंको सुन कर शोकमें निमग्न हुई वह सती थर थर काँपने लगी और जब वह अपने हृदयके वेगको न रोक सकी तब एकदम रो पड़ी । उसकी आँखोंसे आँसू बह चले । गरज यह कि वह पद्मनाभकी चापलूसीकी बातोंसे बड़ी खिन्न हुई । वह युधिष्ठिर आदिको याद कर विलाप करने लगी कि हा पूज्य युधिष्ठिर, तुम धर्म-बुद्धिके धारक हो; हा भीम, तुम बड़े वीर और पवित्र कहे जाते हो तथा हा रणमें सामर्थ्य दिखानेवाले और शत्रुओंको वश करनेवाले स्वामी अर्जुन, देखते नहीं कि मुझ पर यह कैसा दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है । बतलाओ यहाँ मेरी कौन रक्षा करेगा । तुम ऐसे अचेत—सावधान—रहे जो तुम्हें मेरे हरे जानेकी भी खबर न हुई । यही तुम्हारी वीरता है ! बतलाओ अब मेरी क्या गति होगी । परन्तु इसमें तुम्हारा भी क्या दोष है । तुम्हें मेरे हरे जानेकी खबर ही नहीं है । और जब तक तुमको मेरी खबर न मिले तब तक भला तुम प्रयत्न ही क्या कर सकते हैं । हा, देवताने मुझे सोई अवस्थामें हर लिया और लाकर यहाँ छोड़ दिया । उसने मेरे साथ बड़ा अनुचित काम किया है—उसे ऐसा करना उचित नहीं था । इस तरह विलाप करती द्रौपदी तो रंज कर रही थी और पद्मनाभ अपनी बात सोच रहा था । बाद वह द्रौपदीसे बोला कि सुश्रोणि, तुम शोक काहेको करती हो । यहाँ तुम्हें कष्ट ही किस बातका है । तुम शोक छोड़ कर आनन्दसे रहो और सुखकी प्राप्तिके लिए मेरे साथ रमण करो । मेरे साथ रमनेसे तुम्हें अपूर्व सुख होगा । प्रिये, धनंजयकी आशा छोड़ो और विषाद त्याग कर भोगोंका आनन्द लो ।

पद्मनाभके शीलको भंग करनेवाले इन वचनोंको सुन कर द्रौपदीने सोचा कि मनुष्योंका सच्चा गहना शील-रूपी रत्न ही है । यही एक ऐसा मंत्र है कि जिसकी वजहसे

सुर-असुर और नरेश्वर भी उसके दास बन जाते हैं। शीलसे ही उज्ज्वल, सुंदर शरीर मिलता है—उच्च कुलमें जन्म होता है, स्वर्गकी प्राप्ति होती है और उसीसे चक्रवर्तीका पद मिलता है। शीलके द्वारा ही स्त्री जातिकी शोभा होती है और उसीके प्रभावसे जलती हुई आग भी पानी हो जाती है; जैसी कि सीताके लिए हुई थी। शीलके प्रभावसे जिस तरह सुलोचनाके लिए गंगा जैसी नदी भी थल हो गई, उसी तरह और भी जो जो स्त्री-जन शीलका परिपालन करेंगी उनके लिए भी जल थल हो जायगा। अधिक कहाँ तक कहा जाय यह शील ऐसा है कि इसका पालन करनेसे जीवोंको सब सुख प्राप्त होते हैं—उनके लिए बड़ा भारी समुद्र भी क्षणभरमें गायके खुर तुल्य छोटासा गढ़ा हो जाता है। इस सम्बन्धमें श्रीपालकी स्त्री मैनासुंदरी स्मरणीय उदाहरण है। शीलव्रतका पालन करनेमें प्राण भी चले जायँ तो भवभवमें सुख प्राप्त होता है। अतः प्राण जायँ तो भी मैं किसी तरह शीलको नहीं छोड़ूँगी। उसे प्राणोंके बदलेमें रक्खूँगी।

यह सब सोच कर वह साहसके साथ पद्मनाभसे बोली—तुम नहीं जानते कि किससे ऐसी वेहूदी बातें कह रहे हो। जानते हो संसार प्रसिद्ध पाँच पांडव मेरे रक्षक हैं, वे अखंड धनुर्धर हैं, इन्द्रोंके भी विजेता हैं। उनके प्रभावसे दृढ़-चित्त देवता भी थर-थर काँपते हैं। उनके रहते किसी शत्रुकी ताब नहीं जो उन्हें युद्धमें विचरते जरा भी रोक सके वा उनके आत्मीयको कष्ट दे सके। सच कहती हूँ कि वे ऐसे वीर हैं कि अपने सघन आघातों द्वारा वैरियोंको बातकी बातमें नष्ट कर डालते हैं। इतने पर भी तीन खंडके स्वामी, सुर-असुरों द्वारा पूजित और भारतके भूषण कृष्ण-बलदेव जैसे जिसके भाई हैं उसी द्रौपदीके न साथ तुम्हारा यह वर्ताव है। तुम्हारी तरह ही एक वार कीचकने मेरे शीलको बिगाड़नेकी चेष्टा की थी। फिर मालूम है कि उसे उसके सौ भाइयोंके साथ प्रचंड पांडवोंने एकदम मार डाला था। हे मानी राजा, तुमने जो कुछ किया सो तो किया, पर अब अपनी पाप-वासना त्याग दो। देखो, तुमने एक नागिनको या यों कहो कि विषकी वेलको अपने घरमें बुलाया है। इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। तुम मेरी आशा छोड़ कर सुखसे रहो। इतने पर भी तुम्हें मेरे कहनेका विश्वास न हो तो एक महीना ठहरो। तब तक बहुत करके पाण्डव भी यहाँ आ जायँगे। तब तुम्हें अच्छा जान पड़े सो करना। द्रौपदीके वचन सुन कर पद्मनाभने मन-ही-मन यह सोचा कि यह कहती तो है, पर इतने विशाल रत्ना-

करको पार कर यहाँ पाण्डव आ ही कैसे सकते हैं । इसके बाद राजा चुप हो रहा । और द्रौपदी आहार-पानी, वेष-भूषा आदि सब छोड़ चित्रमें लिखी हुई काठकी पुतलीकी भाँति हो रही ।

उधर हस्तिनापुरमें सबेरा हुआ । तब पांडवोंको जान पड़ा कि सर्वोत्तमा द्रौपदी महलमें नहीं है—वह शत्रु द्वारा हरी गई । उसे बहुत देखा-भाला, पर कहीं उसका पता न पाया—उन्होंने उसकी भर सक खोज की, पर उसे कहीं भी न देखा ।

इसी समय एक अपरिचित जनने द्वारावती जाकर कृष्णको प्रणाम कर उनसे द्रौपदीके हरे जानेका सारा हाल कहा । जिसे सुन कर रण-विषम कृष्णको बहुत दुःख हुआ । उसका परिणाम यह निकला कि उन्होंने क्रोधमें आकर युद्धकी घोषणा कर दी । कृष्णकी आज्ञा पाते ही उनके हींसते हुए घोड़े, गर्जते हुए हाथी और चीत्कार करते हुए रथ चले । पयादे नंगी तलवारें, भाला, धनुष वगैरह हाथमें लिये हुए राज-आँगनमें आये । इधर जब तक कृष्ण चतुरंग सेना ले चलनेको तैयार हुए तब तक उधर नारद अमरकंकापुरी पहुँचे । वहाँ उन्होंने तपे सोनेके जैसी प्रभावती कृशोदरी द्रौपदीको बाल बिखरे और आँसुओंसे मुँह भींगे हुए देखा । वह मारे रंजके अपने हाथ पर कपोल रखे बैठी थी। ऐसी हालतमें उसे देख कर यह जान पड़ता था मानों हलन-चलन आदि क्रिया रहित प्रतिमा ही है । अथवा कामसे बिछुड़ी हुई रति या इन्द्रसे बिछुड़ी हुई इन्द्राणी ही है; और वह अपने अनुपम रूप रूपी तलवार द्वारा लक्ष्मीको जीत कर ही यहाँ स्थिर हो गई है । द्रौपदीको ऐसी हालतमें देख कर कलहप्रिय नारद मन-ही-मन सोचने लगे कि हाय, मानके वश होकर मुझ पापीने इस सतीको व्यर्थ कष्टमें डाला । यह मैंने अच्छा नहीं किया ।

इसके बाद वह रणके लिए उद्यत हुए कृष्णके पास पहुँचे और उनसे बोले कि नारायण, तुमने यह विशाल सेना किस लिए एकत्र की है । द्रौपदीके लिए हो तो वह तो धातकीखंड दीपकी अमरकंकका पुरीमें मौजूद है । पूछो कि वह वहाँ कैसे पहुँची तो इसका उत्तर यह है कि जिस तरह रावणने सीताको हरा था उसी तरह वैरियोंके वंशभरका नाश करनेवाले पद्मनाभ राजाने एक देवताकी आराधना कर उसे हरा है—उसे देवताके द्वारा वहाँ बुला मँगाया है । चाहे कैसा ही बलवान मनुष्य क्यों न हो वहाँ जानेकी किसीकी भी शक्ति नहीं । अतः आप बेफिक्र

होकर बैठिए। कारण वहाँसे द्रौपदीको लाना बहुत ही दुर्घट है—कठिन है। यह सुन कर कृष्णने सारी सेनाको तो वहीं छोड़ा और आप अकेला ही रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर गये। वहाँ पाण्डवोंने कृष्णको द्रौपदीके हरे जानेका सारा हाल सुनाया, जिसे सुन कर बड़ा भय मालूम पड़ता था।

इसके बाद उन सबने मिल कर विचार किया और यह निश्चय किया कि लवण-समुद्रका लाँघना बहुत कठिन है, अतः इसके लिए कोई दूसरा ही उपाय करना चाहिए। यह विचार विचार कर वे निष्पाप लवण समुद्रके तीर पर गये और वहाँ शक्तिशाली कृष्णने तीन उपवासके बाद उस समुद्रके स्वामी स्वस्तिक नाम देवको साधा। उसने इन्हें जल पर चलनेवाले शीघ्रगामी छह रथ दिये। जिन पर सवार होकर ये छहोंके छहों ही बातकी बातमें अमरकंकापुरी पहुँच गये। वहाँ जाकर विष्णु और पांडवोंने सिंहनाद किया। कृष्णने सार्ङ्ग-धनुष चढ़ा कर भीषण टंकार किया। भीमने बिजलीके जैसी गदाको वेगके साथ घुमाया। नकुलने शत्रुको भेदनेवाला भाला हाथमें लिया और सहदेवने दीप्तिशाली तलवार हाथमें ली। एवं धर्म पुत्र-युधिष्ठिरने जीतनेवाली शक्तिको धारण किया। अपने सब भाइयोंको युद्धके लिए उद्यत देख कर युधिष्ठिरको प्रणाम कर पार्थने कहा कि आप सब तो विश्राम कीजिए—मैं अकेला ही क्षणभरमें शत्रुको वारण कर दूँगा। आपको कष्ट उठानेकी जरूरत नहीं है।

यह कह पार्थने देवदत्त नाम शंखको फूँकते हुए एक उत्तम रथमें सवार हो, धनुष सँभाल शत्रु पर धावा मारा। कृष्णने लोगोंको भय देनेवाला पाँचजन्य शंख बजाया। उसको सुन कर बलसे उद्धत पद्मनाभ पुरसे बाहिर निकला; और उस बलीने रणके बाजोंके शब्द द्वारा सब दिशाओंको बधिर करते हुए तथा धूल द्वारा आकाशको ढँकते हुए वेगके साथ पार्थसे खूब युद्ध किया। पार्थने अपने महान् तीखे शरों द्वारा उसे जर्जरित कर दिया, जिससे वह रणको पीठ देकर भागा और फाटक बंद कर पुरीमें छिप रहा। कृष्णने जाकर पाँवोंके कठिन प्रहारों द्वारा फाटकको तोड़ डाला। वे सब नगरीके भीतर गये और वहाँ उन्होंने सब लोगोंको भय भीत कर दिया। भीमने अपनी गदाके द्वारा बहुतसे मंदिर-महल गिरा दिये और उनकी सब लक्ष्मी लूट ली। यह देख लोग भागे। उनके साथ ही राजा भी भागा। वह भाग कर त्राहि त्राहि कहता द्रौपदीके शरण पहुँचा और बोला कि देवी, मैंने तुम्हें हर कर जो पाप किया उसीका यह फल मुझे

मिल रहा है। मेरी तुम रक्षा करो । द्रोपदी बोली कि मूढ़, मैंने तो तुझसे पहले ही कहा था कि पाण्डव बहुत जल्दी आवेंगे और तुझे नष्ट कर देंगे । भला, जिन्होंने दुर्योधन आदिको क्षणभरमें जीत लिया उनके आगे तेरी तो बात ही क्या है। राजा द्रोपदीकी खुशामद कर ही रहा था कि उसी समय वहाँ हाथी जैसे निरंकुश पांडव पहुँच गये । उन्हें देखते ही रक्ष-रक्ष कहता हुआ पद्मनाभ एकदम नम्र हो गया। वह द्रोपदीकी ओर देखता हुआ भयसे आतुर हो बोला कि देवी, तुम अखंड शील पालनेवाली सच्ची सुशीला हो । तुम मुझे अभयदान दो, जिसके द्वारा कि इनसे मेरे प्राण बचें। यह सुन द्रोपदीने उसे अभयदान दिया— उसके हृदयसे पांडवोंकी तरफका भय निकाल दिया । इसके बाद विनयके साथ कृष्ण और पांडवोंको नमस्कार कर उसने उनका भोजन आदिसे बड़ा सत्कार किया। इस समय पांडवोंने द्रोपदीके साथ स्नान कर और अर्हन्त देवके चरण-कमलोंकी पूजा कर उसको पारणा कराया।

शुभचन्द्र जिनेन्द्रको उत्तम भक्तिसे नमस्कार कर भव्य-भावको प्राप्त हुए सुभव्य पांडवोंने द्रोपदीको प्राप्त कर जो सर्वोत्तम लोक-व्यापी उज्ज्वल यश प्राप्त किया वह सब पुण्यका ही प्रभाव है।

देखो, वह सब जिनदेवके बताये धर्मका ही प्रभाव है जो कि राजों द्वारा पूजित पद्मनाभ राजाको जीत कर पांडवोंने दूर देश घातकीखंड द्वीपमें प्रतिष्ठा पाई और पार्थ-पत्नी द्रोपदीको प्राप्त किया । यह जान कर हे भव्य-गण, सदा धर्मका सेवन करो।

तेबीसवाँ अध्याय।

मैं उन उत्तम मुनि, सुव्रत धारण करनेवाले और मुनियोंको सुव्रत—उत्तम व्रत—देनेवाले मुनि-सुव्रत जिनको नमस्कार करता हूँ जिनके आश्रयसे मनुष्य मुनि-सुव्रतका धारी हो जाता है।

पांडवोंने कृष्णके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—इन शब्दोंमें हर्ष प्रगट किया कि हमने जो वैरीके द्वारा हरी गई द्रौपदीको प्राप्त किया, यह सब आपहीका प्रभाव है। इसके वाद मनोरथ सफल होनेसे प्रसन्न-चित्त पांडव सुंदरी द्रौपदीको लेकर, रथ पर सवार हो वहाँसे चले। चलते समय कृष्णने महान् नाद करनेवाले और समुद्र जैसी गंभीर ध्वनिवाले अपने पाँचजन्य शंखको पूरा। जिसके पृथ्वीको कँपानेवाले शब्दको सुन कर धातकीखंडकी चंपापुरीका स्वामी त्रिखंड-मण्डल-पति महामना कपिल नारायण जो कि जिन देवकी वन्दनाको आया था, चौंक पड़ा और उस अर्द्धचक्रीने वहीं समवसरणमें स्थित मुनिसुव्रत स्वामीसे प्रश्न किया कि प्रभो, यह शंखध्वनि किसकी है—या किसने की है। उत्तरमें भगवान वोले कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें द्वारावती नामकी पुरी सुशोभित है। वहाँका राजा तीन खंडका प्रभु कृष्ण नारायण है। वह पार्थप्रिया द्रौपदीके लिए यहाँ आया है और उसीने यह शंखध्वनि की है।

इसके वाद कपिल चक्रीको कृष्णसे मिलने या उसे देखनेका इच्छुक देख कर भगवानने कहा कि नारायण, देखो, यह नियम है कि चक्री चक्रीको, नारायण नारायणको, तीर्थंकर तीर्थंकरको और वलभद्र वलभद्रको देख नहीं सकते; और न ये आपसमें मिल-जुल ही सकते हैं। लेकिन यदि तुम चाहो तो जाते हुए उनकी ध्वजाका अवश्य ही दर्शन कर सकते हो।

भगवानके द्वारा यह सुन कर भी कपिलके हृदयसे कृष्णको देखनेकी इच्छा दूर न हुई और वह उसको देखनेकी इच्छासे गया भी; परन्तु जिन देवके कहे अनुसार उन दोनोंको परस्परमें एक दूसरेकी धुजाका ही दर्शन हो सका। दोनोंने अपने अपने शंख फूँके। उनका शब्द भी दोनोंने ही सुना। इसके वाद कृष्णको समुद्रमें प्रवेश कर गया जान कर कपिल पीछा लौट आया और चंपामें आकर उसने परस्त्री-लंपट पद्मनाभकी पूरी-पूरी भर्त्सना की। वाद इसके वह तीन खंडका पति वहाँ सुखसे रहने लगा।

उधर वे सब पहलेकी भाँति ही समुद्रको पार कर उसके इस तट पर आ गये। वहाँ आकर कृष्णने पाडवोंसे कहा कि आप चालिए और जब तक मैं स्वस्तिक देवको विसर्जन करके आता हूँ तब तक यमुनाको पार कर मेरे लिए नौका पीछी भेजिए । कृष्णकी आज्ञा पाकर पांडव द्रोपदी-सहित यमुना पार कर उसके दाहिने किनारे जा बैठे। वहाँ यमुनाको पार करते समय कृष्णका बाहुबल देखनेकी इच्छासे भीमने यह धूर्तता की कि नौकाको उठा कर एक किनारे रख दिया । इसी समय देवताको विदा करके कृष्ण आ गये और यमुनाके जलको अथाह देख कर उन्होंने पांडवोंसे कहा कि आप लोगोंने इतनी जल्दी यमुना कैसे पार कर ली । सुन कर पांडवोंने यह छलभरा उत्तर दिया कि हमने जो यमुनाको पार किया है वह बाहुदंडों द्वारा पार किया है । यह सुन कृष्णने उसी क्षण कूद कर हाथोंसे ही यमुना पार करना शुरू किया और वे बहुत जल्दी उसके पार पहुँच गये । वहाँ जाकर कृष्णने पांडवोंको देख कर बड़ा हर्ष प्रगट किया । इस समय कृष्णको देख कर पांडव खूब ही खिलखिला कर हँस पड़े । उन्हें हँसते देख कर कृष्णने पूछा कि आप लोग इतना क्यों हँस रहे हैं । मुझे इसका भेद बताइए। सुन कर पांडवोंने कहा कि हम सब तो यमुनाको नौकाके द्वारा ही पार कर यहाँ आये—लेकिन तुम्हारा बाहुबल देखनेकी इच्छासे हमने वह नौका छुपा दी थी। महाराज, आपने हमारे साथ जैसा अघटित कार्य किया वैसा कोई नहीं कर सकता। अतः हम कहे बिना नहीं रह सकते कि आप वैरी रूपी हाथियोंके कुंभ-स्थलोंको विदारनेके लिए हरि—हरि (सिंह)—हो, यह बिल्कुल ठीक है । पांडवोंकी ऐसी छलभरी बातें सुन कर कृष्णने दिखाऊ क्रोधसे होंठ डसते हुए कहा कि सचमुच तुम लोग बड़े छली हो, स्वजनके स्नेह-रहित और मायाके पुतले हो और सदा ही दुष्टता किया करते हो। अच्छा, बताओ कि नदीको तैरते समय तुमने हमारा कौनसा माहात्म्य देखा, जिसे कि तुमने गोवर्धन उठानेके समय, कालिन्दी नागके मर्दनके समय, चाणूर मल्लको चकनाचूर करते वक्त, कंस-घातके समय, अपराजितके नाशके वक्त, गौतम अमरके संस्तवके समय, रुक्मिणी हरणके समय, शिशुपाल-वधके समय, जरासंधके वधके समय, चक्ररत्नकी प्राप्तिके समय और तीन खंडके परम ऐश्वर्यके समय नहीं देख पाया था । नदी तैरते समय किसीका बल देखनेमें कौनसा महत्त्व है—यह तो बहुत ही छोटा काम है। बात यह है कि तुम लोग

दुष्टात्मा हो, अतः तुम्हारी जड़ता नहीं जाती। अब तुम लोग यहाँसे सौ योजन दूर जाकर चिरकाल तक दक्षिण मथुरामें रहो। यहाँ तुम्हारा कुछ काम नहीं है। कृष्णके इन वचनोंसे पांडवोंको बड़ा दुःख हुआ। वहाँसे वे हस्तिनापुर चले गये। कृष्णने तब वहाँका राज्य सुभद्राके पौत्र, विराट राजाकी पुत्री उत्तरा देवीसे पैदा हुए अभिमन्युके पुत्र पारीक्षितको दिया। इसके बाद कृष्ण द्वारावती चले आये। और उद्धत पांडव मातृकान्त आदि पुत्रों सहित दक्षिण मथुरा चले गये।

द्वारावतीमें एक दिन नेमिनाथ भगवान और कृष्ण राजसभामें विराज रहे थे। बलके महत्व पर चर्चा छिड़ी कि दोनोंमें कौन अधिक बलवान् है। उस समय वहाँ नेमिनाथ स्वामीका बल लोगोंने कृष्णसे कम बताया। यह देख नेमि प्रभुने अपना बल बतलानेके लिए कृष्णको अपनी उँगली सीधी कर देनेके लिए कहा। कृष्ण उँगली पकड़ कर उसे सीधी करने लगे, पर वे कर नहीं सके। प्रभुने विनोदमें उन्हें ऊपर उठा लिया। कृष्ण एक दम लटक गये और नेमिनाथ उन्हें झुलाने लगे। इससे कृष्णने अपना अपमान समझा। और इसका फल यह हुआ कि अब कृष्ण नेमिनाथ स्वामीकी तरफसे राज-काजसे उदास हो गये। इसके बाद एक दिन जलक्रीड़ाके समय नेमिनाथ प्रभुने कृष्णकी रानी जाम्बूवतीसे अपना कपड़ा निचोड़ देनेके लिए कहा। उस समय अभिमानमें आकर उसने नेमि जिनेश्वरकी बात पर कुछ ध्यान न दिया। वहाँसे नेमि प्रभु कृष्णकी शस्त्रशालामें गये। वहाँ जाकर प्रभु नागशय्या पर लेट गये। फिर उन्होंने सार्ङ्ग नाम धनुष चढ़ाया और नाकके द्वारा पाँचजन्यको शंखको पूरा। शंखके शब्दको सुनते ही वहाँ कृष्ण आये और उन्होंने नेमि प्रभुके चरण-कमलोंको नमस्कार कर उनके बलकी बड़ी तारीफ की। मौका देख कर उन्होंने प्रभुसे ब्याहके लिए भी प्रार्थना की।

इसके बाद कृष्णने नेमिनाथके लिए उग्रसेनसे जायावती रानीके गर्भसे पैदा हुई राजीमती नाम पुत्रीकी याचना की। राज्यके लोभसे कृष्णने यह प्रपंच रचा कि नेमिनाथ प्रभु किसी तरह विरक्त हो जायँ। बारात आनेके दिन कृष्णने मार्गमें जगह जगह बहुतसे पशु बँधवा दिये। विवाहके अर्थ जाते समय उन बँधे हुए पशुओं देख कर नेमिनाथ प्रभुने उनके रखवालोंसे पूछा कि ये पशु काहेके लिए घेरे गये है। उन्होंने उत्तर दिया कि बारातमें जो मांसभक्षी लोग आये हैं उनके अर्थ ये वध किये जायँगे। बस यह सुनते ही नेमिनाथ विरक्त हो गये। रागसे उनका आत्मा बहुत-अधिक दूर हट गया। वे बारह भावनाओंका विचार करने लगे। फिर क्या था, नियोग-वश तत्काल ही लौकान्तिक देव आये और उन्होंने प्रभुके वैराग्यकी बड़ी भारी प्रशंसा की।

इसके बाद देवकुरु नामकी पालकी पर सवार होकर भगवान वनको चले गये। और वहाँ सहस्राम्रवृक्षके नीचे बैठ कर सावन सुदी छटके दिन हजार राजोंके साथ साथ प्रभुने दीक्षा ग्रहण की । थोड़े ही समयके बाद भागवानको मनःपर्यय ज्ञान हो गया । इसके बाद आसन्न-केवली नेमिप्रभु षष्ठोपवासके बाद पारणाके लिए द्वारावती आये। उन्हें पारणाके लिए आया देख कर कनकाभ नाम राजाने भक्ति-पूर्वक पड़गाहा; ऊँचे आसन पर बैठा कर उनके पाँव धोकर उनकी पूजा की और मन-वचन-कायकी शुद्धिके साथ उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद नरेश्वरने अन्न-शुद्धि पूर्वक उन्हें आहार-दान दिया । तव श्रद्धा आदि गुणोंके भंडार कनकाभके यहाँ पाँच आश्चर्यमयी बातें हुईं । देवतोंने साड़े बारह करोड़ रत्न बरसाये, फूल बखेरे, शीतल सुगन्धित पवन चलाई, सुगन्धित जल बरसाया और दुन्दुभि बाजे बजाये । इसके बाद आहार करके प्रभु वनको चले गये और वहाँ स्थिर होकर चिद्रूप परमात्माका ध्यान करने लगे।

इस प्रकार ध्यान करते प्रभुको छप्पन दिन छद्मस्थ अवस्थामें बीते। यहाँसे प्रभु रैवतक गिरि पर जाकर ध्यान करने लगे। वहाँ षष्ठोपवास धारण कर महाव्रतके धारी, गुप्तियों द्वारा अलंकृत तथा समितियोंके पालक प्रभु परीषहोंके तेजसे बड़े सुशोभित हुए। उन योगी जिनने धर्मध्यानके बल आयुकर्मके बिना तीन कर्मको गला दिया। और फिर दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन और चरित्र मोहिनीय कर्मकी चार अनन्तानुबन्धी कषाय इस प्रकार सात प्रकृतियोंको, जो कि आत्माके सम्यक्त गुणको घातती हैं, आत्मासे नष्ट कर दिया। इसके बाद शुक्लध्यानके बलसे उन्होंने घातिया कर्मोंकी शेष ४० चालीस तथा नामकर्मकी तेरह—नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय एके-न्द्रिय आतप, उद्योत, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर—प्रकृतियोंका नाश किया, जिससे प्रभुकी आत्मामें अद्भुत केवलज्ञान-ज्योति प्रगट हो गई। तब कुँवार सुदी पड़वाके दिन उनके केवलज्ञानकी पूजाके लिए मनुष्य, सुर-असुर सभी आये। भगवानके वरदत्त आदि ग्यारह गणधर हुए। और तव कृष्ण आदि राजों द्वारा पूजित प्रभुकी अपूर्व ही शोभा हुई।

इसके बाद वैरियों और पापों पर विजय पानेवाले उन भगवानके लिए धनदने आकर समवसरणकी रचना की। उसकी अद्भुत शोभा थी। समवसरण प्रासादों, परिखाओं, लताओं, उद्यानों, कल्पवृक्षों, गृहों, पीठों आदिसे बड़ा शोभित था। मानस्तंभ, नाट्यशालाएँ, उन्नत स्तूप, मार्ग,

धूपघट, धुजाएँ और तालाव आदि उसकी अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे। सभाके ठीक बीचमें आठ प्रातिहार्यों और महान् चौंतीस अतिशयों द्वारा अलंकृत भगवान सुशोभित थे। समवसरणमें बारह सभाएँ थी, जिनके सभ्य क्रमसे इस प्रकार थे—निर्ग्रन्थ मुनि-गण, कल्पवासी देवोंकी स्त्रियाँ, अर्जिकाएँ, ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियाँ, व्यन्तर देवोंकी स्त्रियाँ, भवनवासी देवोंकी स्त्रियाँ, भवनवासी देव, व्यन्तरदेव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, गौ आदि पशु। इन बारह प्रकारके सभ्यों द्वारा शोभित चतुरानन (चतुर्मुख) प्रभुने वरदत्त गणधरके लिए उत्तम धर्मका उपदेश किया। भगवान बोले कि जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये जिनमतके सात तत्व—पदार्थ—हैं। इसके वाद प्रभुने छह द्रव्य और पाँच अस्तिकायोंका उल्लेख कर उनके समुदाय रूप लोकका कथन किया और उसकी ऊर्द्ध, अधः, मध्य-रूपसे तीन तरहकी स्थिति बताई। उन्होंने लोकका हाल बताते हुए कायका उत्सेध, सात नरकोंके संस्थान, स्वर्गलोककी कल्पना तथा द्वीप-सागरोंके भेद कहे। इसके बाद भगवानने चार गति, पाँच इन्द्रिय, छह काय, पन्द्रह योग, तीन वेद, पच्चीस कषाय, आठ मद, सात संयम, चार दर्शन, छह लेश्या, भव्य-अभव्य, छह सम्यक्त्व, संज्ञा और आहारके भेद, यों चौदह मार्गणाओंका कथन किया; और चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छह पर्याप्तियाँ, दस प्राण, चार संज्ञाएँ और बारह उपयोग—इनका दिग्दर्शन कराया।

एवं प्रभुने जीव-जातियों, कुलों, यतिधर्म और श्रावक धर्मके अध्ययनका भी क्रम बताया। गरज यह कि भगवानने क्रमसे सभी पदार्थ समझाये। भगवानके द्वारा इस तरह शुभ धर्मको सुन कर कितनेहीने ग्यारह प्रतिमारूप श्रावक धर्मको ग्रहण किया और कितनोंने महाव्रत-पूर्वक संयमका आश्रय लिया। इस तरह धर्मवृष्टि कर भव्योंको संबोध देते हुए नेमिनाथ प्रभुने देश-विदेशमें विहार किया। इसके बाद तेजस्वी और आर्जव धर्मधारी भगवान सब देशोंमें विहार कर ऊर्जयंत पहाड़ पर आये। प्रभुको वहाँ आया जान कर उद्यमी यादव-गण बलदेवको आगे कर उनकी वन्दनाके लिए हर्षके साथ आये। वे भव्य भगवानकी स्तुति कर, उनको नमस्कार कर अपने योग्य स्थानमें बैठ गये और एक-चित्त होकर उन्होंने धर्म-श्रवण किया।

इसके बाद जिन भगवानको नमस्कार कर कृष्णके साथ-साथ बलदेवने प्रभुसे पूछा कि भगवन्, कृष्णका यह विशाल राज्यका ऐश्वर्य कब तक रहेगा

और द्वारावतीकी स्थिति कितनी है । भगवानने उत्तर दिया कि नृप, द्वारावती पुरी आजसे बारह वर्ष बाद मदिराके हेतुसे द्वीपायन मुनि द्वारा नष्ट होगी; और कृष्णकी जरत्कुमारके द्वारा लगभग तभी मौत होगी । भगवानकी यह वाणी सुन कर और संयम लेकर द्वीपायन दूर देश चले गये और जरत्कुमार जाकर कौशाम्बीके वनमें रहने लगा । इसके बाद भगवान भी फिर वहाँसे अन्य देशको विहार कर गये ।

इसके बाद जब समय पूरा हुआ तब द्वीपायन वापिस आ गये और अपनी दुर्दशा करनेवाले यादवों पर क्रोध करके उन्होंने सारी द्वारिकाको भस्ममें मिला दिया । सच है कि जिन-भाषित बात मिथ्या नहीं होती । इस तरह जब द्वारिका भस्म हो गई तब कृष्ण और बलदेव जाकर कौशाम्बीके गहन वनमें पहुँचे । वहाँ कृष्णको प्यासकी बड़ी बाधा हुई । बलदेव उनके लिए पानी लेने गये और कृष्ण अकेले ही वहीं रहे । इसी बीचमें दैवयोगसे वहाँ जरत्कुमार आ गया और कृष्ण उसके बाणोंका निशाना बन परलोक यात्रा कर गये । जब बलदेव पानी लेकर लौटे तो उन्होंने कृष्णको गत-प्राण पाया । बलभद्र और नारायणमें पूर्व भवकी बहुत ही गाढ़ी प्रीति होती है, अतः प्रीतिके वश हुए बलदेव कृष्णके मृत-शरीरको छह महीना तक छातीसे लगाये लिये फिरे । सिद्धार्थ देवने उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर वे कृष्णके शरीरको किसी तरह भी मृत शरीर माननेको तैयार नहीं हुए और उसे लिये लिये ही फिरते रहे ।

इसके बाद जरत्कुमार पांडवोंके पास गया और उसने अपने द्वारा हुई कृष्णकी मृत्युका हाल उनसे कहा । कृष्णका मरण सुन कर वे बड़े दुःखी हुए । साध्वी कुन्तीने भी बड़ा विलाप किया । इसके बाद बलदेवको देखनेकी इच्छासे जरत्कुमारको आगे कर सब पांडव बन्धु, मित्र, कलत्र आदि सहित वनमें चले । कितने ही दिनों तक चल कर वे जब वनविहारी बलदेवके पास पहुँचे तब उन्हें दुःखकी दशामें देख कर उन सबके हृदय दहल गये और दुःखी होकर उन्होंने बड़ा विलाप किया । इस समय उन्हें देख कर बलदेवको कुछ चेत हुआ और उठ कर उन्होंने कुन्तीको नमस्कार कर सबसे भेंट की । इसके बाद वहाँ कुछ देर बैठ कर पांडवोंने कहा कि बलदेव, आप विष्णुके महा शोकको अब छोड़ दीजिए और संसारकी विचित्र दशाको जान कर कृष्णके मृत शरीरका जल्दी ही संस्कार कीजिए । यह सुन कर मोहके वश हुए बलदेवने कहा कि जाइए, ऐसी बातें न कीजिए । तुम ही न अपने मित्र, पुत्र, बन्धु-बान्धवों सहित

अपने माता-पिताको स्मशान भूमिमें लेजा कर चितामें झोंक दो। मुझे न समझाओ। मुझे सीख देनेकी जरूरत नहीं है। इसके बाद प्रबोध देते हुए पांडवोंने बलदेवके साथ सारा चौमासा बिना नींद लिये ही बिता दिया। एक दिन उसी सिद्धार्थ नाम देवने मृत-देहका संस्कार करनेके लिए बलदेवको फिर भी समझाया। तब प्रबोधको प्राप्त होकर बलदेव बोले कि तुम बहुत अच्छे आये। तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इसके बाद बलदेवने पांडवोंके साथ-साथ तूंगीगिरि पर जाकर कृष्णके देहकी दग्ध क्रिया की और बाद पिहितास्रव मुनिके पास जाकर उन्होंने संयम ले लिया।

जिन उत्तम धर्म-रथकी धुराको धारण करनेवाले नेमि प्रभुने राज्यको तथा सुंदरी राजीमतीको त्याग कर दीक्षा धारण की, जो इन्द्रों द्वारा पूजित, कामको हरनेवाले, अतुल समभाव युक्त और भयको दूर करनेवाले हुए तथा जिन्होंने कर्मोंका नाश कर केवल-ज्ञान प्राप्त किया वे प्रभु अंतमें संसारको धर्मामृतका पान करा कर गिरनार पर्वतके शिखर पर विराजमान हुए और वहाँसे उन्होंने मोक्ष लाभ किया।

जो नेमिप्रभु अखिल नरेशों द्वारा संसेवित हैं, जिनको देवोंके इन्द्र भी आकर पूजते और मानते हैं और जिन्होंने धर्मतीर्थको प्रवर्तित किया है उन नेमिनाथ भगवानके लिए मेरा बार-बार नमस्कार है।

नेमिनाथ भगवानमें बड़े मोहक गुण हैं और उनका शासन सर्वोत्तम है। यही कारण है जो मेरा हृदय उन पर अटल विश्वास रखता है। वे महान् नेमि प्रभु मुझे धर्म-दान दें।

चौबीसवाँ अध्याय।

उन नमि जिनको नमस्कार है जो सच्चे धर्म-रूपी अमृतके दाता हैं, जिनकी विविध नर, सुर और मुनीश्वर वन्दना करते हैं तथा जो जितेन्द्रिय और विपक्ष रहित हैं।

इसके बाद करुणाके भरे पांडव जारसेयको साथ लिये द्वारिका आये। उन्होंने परमोदयशाली तथा प्रशस्त गृहों द्वारा उस पुरीको फिरसे बसाया और वहाँकी राजगादी पर जरा-पुत्रको बैठाया। इस समय वे कृष्ण-बलदेवके पुरातन

प्राज्य राज्यका स्मरण करते हुए बड़े ही शोकाकुल हुए। बोले कि आश्चर्य है जो देवतोंके द्वारा रची हुई भी यह पुरी भस्म हो गई—आँखोंको आनन्द देनेवाली गगनपुरीकी भाँति आँखोंकी ओट हो गई—अदृश्य हो गई। बड़ा दुःख होता है कि जिनके यहाँ नित नये उत्सवोंकी भीड़ रहा करती थी और जो सर्वोत्तम पूजाके योग्य थे वे दशार्ह कहाँ गये। वे कृष्ण-बलदेव कहाँ हैं जिनका कि पराक्रम देखते ही बनता था। हा! रुक्मिणी आदि स्त्रियोंके वे निवास-महल तो एक भी दृष्टि नहीं पड़ते, जिनको देख कर देवगण भी लज्जित होते थे। उनके वे पुत्र-गण कहाँ हैं जो कि सदाकाल ही हर्षके उत्कर्ष द्वारा उन्नत रहते थे। सच बात तो यह है कि यह स्वजन-समागम बिजलीकी भाँति क्षण-नश्वर है और मनुष्योंका जीवन चुल्लुके पानी-तुल्य है। यही कारण है कि जो पुरुष स्त्रियोंके रागसे रँगे हुए हैं वे भी संसारकी यह दशा देख माहुरकी भाँति बहुत जल्दी विरक्त हो जाते हैं। जिस तरह माहुरका रंग बहुत जल्दी छूट जाता है उसी तरह उनका राग भी थोड़े ही समयमें ढ़ीला पड़ जाता है। सच है कि ऐसे पदार्थोंमें अचल-बुद्धि करेगा ही कौन। इसी प्रकार पुत्र-पौत्र आदि जो पवित्र पदार्थ हैं वे भी वास्तवमें अपने नहीं है; अपने अपने कर्मोंके कर्ता-भोक्ता हैं—अपनेको सिर्फ संकल्प मात्रसे सुखदायी भास पड़ने लगते हैं—वास्तवमें सुख तो आत्मामें है। इसी तरह महल-मकान भी मनुष्योंके लिए विकारमें डालनेवाले ग्रह हैं, पर पदार्थोंमें प्रेम करानेवाले हैं, इस लिए आपत्ति रूपी रोगमें फँसानेवाले और सम्पदाको हरनेवाले हैं। गरज यह कि वे परमें प्रेम करा कर निज सम्पदाको भुला कर आपदामें फँसाते हैं। धन-दौलत मेघ-मण्डलकी भाँति चंचल और क्षण-क्षणमें आत्माको लुभानेवाली है। यह प्राणियोंके शरीर भी विनाशशील हैं, चंचल है, सूखे पत्तोंकी भाँति कालका निमित्त पाकर नष्ट हो जाते है। हमारा यह शरीर भी जिसको कि हम त्रिविध भाँतिके तेल-फुलेल लगा कर बढ़ाते है, कालका निमित्त पाकर विपरीतता धारण कर लेता है—काँपने लगता है और काम देनेमें आनाकानी करने लगता है। बात यह है कि इसका स्वभाव दुर्जन पुरुषके जैसा है। दुर्जन पुरुषको चाहे जैसा ही क्यों न रक्खो वह निमित्त पाकर विपरीत हो ही जायगा। यह कितने दुःखकी बात है कि उत्तम उत्तम आहारों द्वारा पुष्ट किया गया भी यह शरीर शत्रु-समूहकी भाँति एक क्षणमें ही विमुख हो जाता है, जरा भी लिहाज नहीं करता है। जब कि यह शरीर सात धातुमय है, नाश-युक्त है, पापका पिटारा है, दुर्गन्धि-युक्त है तब फिर न जाने इसमें मनुष्योंकी थिर बुद्धि कैसे होती है। आश्चर्य है

कि कामके रँगसे रँगे हुए कामी पुरुष सुंदरी कामिनियोंके साथ चिरकाल तक रमा करते हैं, न जाने उन्हें सुख क्या होता है। भला जिनके शरीरोंमें करोड़ों रोगोंका निवास हैं और जो साँपके बिल जैसे है उनमें उन्हें क्या सुख हो सकता है। यह दूसरी बात है कि वे मोहान्ध हुए उनके साथ रमनेमें सुखकी कल्पना करें—सुख मानें। पर वास्तवमें सुखका लेश भी स्त्रियोंके साथ रमनेमें प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार ये भोग भी क्षण भंगुर हैं। ये पुरुषोंको केवल भोगनेके समय ही सुखदायी प्रतीत होते है। अन्तमें इनमें कुछ भी स्वाद नहीं प्रतीत होता—नीरस जान पड़ते हैं। फिर कहा नहीं जाता कि उनमें मनुष्य सुख मानते हैं तो कैसे मानते है। समझ नहीं पड़ता कि जब विषय-रूपी आमिष प्राणहारी विष-तुल्य हैं तब क्षयके उन्मुख हुए मनुष्य उसके साथ क्यों प्रीति करते हैं? मनुष्योंकी यह बडी भारी मूर्खता है जो विषयोंके द्वारा ठगे गये जीव दुःखदायी दुर्गतिको जाते हैं, यह जानते बूझते हुए भी वे फिर विषयोंका सेवन करते हैं और दुर्गतिको जाते है। बात यह है कि संसारमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब क्षण-स्थायी हैं। यदि चित्तको स्थिर करके देखा जाय तो इन्द्रियाँ, शरीर, धन-दौलत, राज-पाट, मित्र- बान्धव कहीं भी कोई स्थिर नजर नहीं आता। ये भोग भोगी (साँप) के जैसे चंचल और भव्य प्राणियों-को भय देनेवाले हैं। सेवन करनेसे इनकी लालसा अधिकाधिक बढ़ती है; जैसे कि आगके निमित्तसे खुजली। भोगोंके द्वारा भजे गये विषय और और अधिक बढ़ते हैं, कभी भी उनकी शान्ति नहीं होती; जैसे काठके मिलते हुए आग शान्त नहीं होती। यही कारण है जो बड़े बड़े दुःखोंके द्वारा पचता हुआ यह जीव खूब लम्बे-चौड़े पंच परावर्तन-रूप संसारमें चक्कर काटा करता है। और अनादि वासनासे जाग्रत हुई मिथ्यात्व-बुद्धिके मोहके मारे, हित-अहितकी पहिचान न होनेसे धर्मकी तरफ इसकी रुचि ही नहीं होती—उसे यह अपनाता ही नहीं; किन्तु उसकी तरफसे बहुत उदास रहता है—उसे घृणाकी दृष्टिसे देखता है। फल यह होता है बारह प्रकारकी अविरतिमें रत-चित्त होकर यह विषय रूपी आमिषका भक्षण करता है और संसारकी घोर विपदामें जा पड़ता है।

बुद्धिशाली जीवोंके सद्गुणोंको जो कषें—विगाड़ें—बुद्धिमान् लोगोंने उन्हें कषाय कहा है। कषाय मोक्ष सुखकी प्राप्तिमें अटकाव डालती है, अत जिन्हें मोक्ष सुखकी लालसा है उन्हें चाहिए कि वे कषायोंको छोड़ें। जिनके द्वारा जीवोंका कर्मोंके साथ योग होता है बुद्धिमानोंने उन्हें योग कहा है। वे स्थूलपने शुभ तथा अशुभ इस प्रकार दो भेद रूप हैं; परन्तु बारीकीके साथ देखा जाय तो वे श्रेणीके

असंख्यात भाग मात्र हैं। मदसे उद्धत हुए जीव जिनके द्वारा मदिराकी भाँति प्रमादी हो जाते हैं उन्हे प्रमाद कहते हैं। प्रमाद भी त्यागने-योग्य हैं; क्योंकि इनसे संसार बढ़ता है।

पांडव बहुत-काल मन-ही-मन यों संसारकी दशाको विचार कर बाद वहाँसे निकले और पल्लव नाम देशमें आये; जहाँ कि जिन भगवान विराजमान थे।

वहाँ उन्होंने सुर-असुरों द्वारा सेवित और तीन लोकके स्वामी नेमि प्रभुकी वन्दना की। नेमिप्रभु छत्रत्रय द्वारा शोभित थे, शोक हरनेवाले अशोक वृक्ष द्वारा अंकित थे। उनके ऊपर सुंदर चौंसठ चॅवर ढोरे जा रहे थे। वे सिंहासन पर विराजे हुए ऐसे जाने जाते थे जैसे कि तीन लोकके सिखर पर ही विराजे हों। उनकी देह स्वयं ही सुगंध-पूर्ण और दिव्य थी, अतः पुष्पोंकी वरसासे उसकी और अधिक शोभा हो गई थी। भगवानने कर्म-वैरियोंका नाश कर दिया था, जिसकी घोषणाके लिए जो दिव्य दुन्दभियाँ वजती थीं उनसे उनकी और भी शोभा बढ़ गई थी। वे अठारह महा भाषा-रूप एक महाध्वनिमें उपदेश करते थे। करोड़ सूर्योंकी प्रभासे भी कहीं अधिक भासमान प्रभावाला उनका निर्मल भामंडल था। ऐसे प्रभुको देख कर पांडवोंने भक्तिके साथ, विविध सामग्री द्वारा उनकी पूजा की—सेवा की।

इसके बाद वे पवित्र पांडव उनकी यों स्तुति करने लगे कि नाथ, इस संसार रूप समुद्रमें मनुष्योंके लिए यदि कोई नौका है तो तुम्हीं हो। तुम्हीं संसारके स्वामी और परमोदयशाली हो। तुम्हीं जगत्के रक्षक और परमेश्वर हो। तुम्हीं हितैषी और भवसे पार करनेवाले हो। तुम्हीं केवलज्ञान द्वारा भासमान और परम गुरु हो। यही कारण है कि जीव तुम्हारे प्रसादसे ही संसार-समुद्रको पार करते हैं और तुम्हारे प्रसादसे ही अविनाशी मोक्ष पदको पाते हैं। हे भगवन्, तुम अव्यय हो, विभु हो, दीप्तिशाली हो, भर्ता हो, भव-भयके हर्ता हो, भव्यजीवोंके ईश हो, भय-संकटोंको भग्न करनेवाले हो। यही कारण है जो गणनायक तुम्हें कैवल्य, विपुल, देव, सर्वज्ञ, चिद्गुणाश्रय, मुनीन्द्र और गणेश कहते हैं। प्रभो, धन्य है आपको जो आपने एक विपुल राज्यके होते हुए भी बाल-कालमें भी गज, घोड़े आदि लक्ष्मी और राजीमतीको स्वीकार न किया। इसी लिए कहते हैं कि आप कंदर्प-दर्प-सर्पको मारनेके लिए गरुड़के जैसे हो। प्रभो, आप लोकको हितका उपदेश करते हो, अतः सबके हितैषी हो। भगवन्, आप अनन्त बुद्धिशाली है, अतः आपके काम भी बुद्धिसे पूर्ण होते हैं। अतः हे चिदात्मा-मय जिनेन्द्र, हम तुम्हारे लिए नमस्कार करते हैं—बार-बार तुम्हारे चरणोंमें धोक देते हैं। हे केवलज्ञान-रूप महात्मा, तुम्हारे लिए नमस्कार है। केवल-

आत्मा और शिवके भंडार, तुम्हें नमस्कार है। शत्रुओंके विजेता और ज्ञान-साम्राज्यके राजा, तुम्हें हमारी वन्दना है। बाल ब्रह्मचारी, अनंत सुखके खजाने अनंत ज्ञानके धनी, विशुद्ध आत्मा आपको नमस्कार है। नाथ, सूरजके जैसी प्रभावाली, तन्वी, चन्द्रवदनी, रति जैसी रूपशालिनी, गुणोंकी खान, निर्दोष जिस राजीमतीको आपने बाल्यावस्थासे छोड़ दिया वैसी सुंदरी युवतीको कौन छोड़ सकता है—काम-जयकी हद हो गई! प्रभो, तीन लोकमें ऐसा कौन है जो आपके सब गुणोंकी गाथाको गा सके। इस प्रकार स्तुति कर दीप्तिशाली पांडव सभामें बैठ गये।

इसके बाद भगवानने उनके लिए धर्मका उपदेश करना शुरू किया। भगवान बोले कि पांडवो, अब तुम हर-प्रयत्नके साथ एकाग्र-चित्त होकर उस धर्मका उपदेश सुनो कि जो सुखका मुख्य साधन है। राज-गण, धर्म जीवदयाको कहते हैं। वह विशद धर्म एक भेद-रूप ही है। दया—सर्वोत्तम दया—छह कायके जीवोंकी रक्षाको कहते हैं। इस धर्मके इस प्रकार दो भेद हैं, एक यतिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म। इनमें यतिधर्म उसे कहते हैं जिसमें कि पाँच प्रकारके आचारका पालन किया जाता है। निर्मल सम्यग्दर्शनके पालनेको दर्शनाचार कहते हैं। जिसके द्वारा ज्ञान विशुद्ध होता है उसे ज्ञानाचार कहते हैं। तेरह प्रकारके चारित्रको ठीक-ठीक पालनेका नाम चारित्राचार है। विचार-शील मनुष्योंने बाह्य और अभ्यंन्तरके भेदसे बारह प्रकारके तप तपनेको तपाचार माना है। और जो वीर्यको प्रगट करके उत्तम आचरण करना है उसे वीर्याचार कहते हैं। पांडवोंको नेमि जिनने इस तरह धर्मका उपदेश किया। बाद वे भव-भेदी नेमि भगवान् बोले कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके भेदसे धर्म तीन प्रकारका भी है। शंका आदि आठ दोष रहित तथा आठ अंग सहित जो पदार्थोंका श्रद्धान करना है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिनदेवने तत्त्वोंके सच्चे, निर्मल ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहा है। वह शब्द और अर्थके भेदसे दो तरहका है। कर्मोंको दूर करनेवाले चारित्रके तेरह भेद है और कर्मोंको दूर करनेवाले आचरणको चारित्र कहते हैं। अथवा क्षमा आदिके भेदसे धर्म दस प्रकारका भी है। क्रोधके जीतनेको क्षमा कहते है। मान नहीं करनेका नाम मार्दव है। मायाचारके त्यागको आर्जव कहते है। लोभ नहीं करनेका नाम शौच है। सच बोलनेको सत्य और जीवोंकी रक्षाको संयम कहते हैं। देहके तपानेको तप और धनके छोड़नेको त्याग कहते हैं। शरीर आदिसे ममत्व नहीं करनेका नाम

आकिंचन्य और आत्मामें लीन होनेका नाम ब्रह्मचर्य है । अथवा सब स्त्री मात्रका त्याग करना ब्रह्मचर्य है । अथवा मोहसे उत्पन्न हुए विकल्प-जालोंके बिना निर्मलताके साथ आत्म-स्वरूपमें लवलीन होनेको धर्म कहते कहते हैं । गरज यह कि जो ऊपर धर्मके भेद-प्रभेद बताये गये हैं वे व्यवहारनयकी दृष्टिसे कहे गये हैं । नीचे जो आत्म-स्वरूपमें लीन होना धर्म बताया गया है वह निश्चयनयकी दृष्टिसे कहा गया है । और वास्तवमें चिद्रूप, केवलज्ञान स्वरूप, शान्त, शुद्ध और सर्वार्थवेदक तथा उपयोग-मय आत्मा ही सच्चा धर्म है । और यही कारण है जो मन-वचन द्वारा मैं चैतन्य-स्वरूप और उपयोग-मय हूँ, इस तरहके दृढ़ विचारको धर्म कहा गया है । धर्म शब्दका अर्थ है कि जो संसार-सागरसे निकाल कर जीवोंको मुक्तिमें पहुँचा दे । और ज्ञान द्वारा आत्माकी जो विशुद्धि होती है वही सच्चा धर्म है । और वही एक ऐसा कारण है जो कि जीवोंको संसारके बंधनसे छुड़ा सकता है । तात्पर्य यह है कि आत्माकी बिल्कुल ही शुद्ध अवस्थाको धर्म कहते हैं और सिवा इसके जो भेद-प्रभेद रूप धर्म है वह इसी निश्चयका साधन है । गरज यह कि व्यवहार धर्म द्वारा ही निश्चय धर्म प्राप्त होता है ।

इस तरह धर्मका पूर्ण स्वरूप सुन कर कुन्ती-पुत्र पांडवोंने सीधे-साधे वचनों द्वारा आत्म-शुद्धिके अभिप्रायको लेकर प्रभुसे अपने भवान्तरोंको पूछा । वे बोले कि भगवन्, हमने कौनसा ऐसा पुण्य किया कि जिसके प्रभावसे हम लोग परस्पर स्नेहके भरे महाबली और निर्मल-चित्त हुए । और पांचालीने वह कौनसा पुण्य पैदा किया था जिससे कि वह ऐसी अद्भुत सुन्दरी हुई और फिर उससे ऐसा कौनसा पाप बन गया कि जिससे उसे पाँच पुरुषोंका दोष लगा अर्थात् वह पंचभर्तारी कही गई । उत्तरमें भव्य पुरुषोंके उद्धारके लिए तत्पर भगवान् बोले कि जम्बूवृक्ष द्वारा शोभित जम्बूदीपमें भरत नाम क्षेत्र है । उसमें सब प्रकारसे सुशोभित अंग देश है, जो कि ऐसा जाना जाता है जैसे कि शुभ लक्षण-पूर्ण अंगोंवाला महान् अंगी ही हो । इस देशमें कहीं भी शत्रुका नाम-निशान नहीं था । यही कारण है जो कि इसकी ख्याति सारी पृथ्वी पर थी । इसमें एक चंपा नामकी नगरी है जो कि प्राकार, परिखा द्वारा बेढ़ी हुई होनेसे भूतल पर बहुत अधिक शोभाशाली है । वह बहुत अधिक पवित्र है, अतः ऐसी जानी जाती है जैसे पवित्र मनुष्योंको वह और भी पवित्र बनाती हो । उसके राजाका नाम मेघवाहन था । वह कौरववंशी था । मेघवाहनके समय इस नगरीमें एक बड़ा भारी गुणी ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम था सोमदेव । सोमदेवकी स्त्रीका

नाम सोमिला था और यह बहुत ही काले रंगकी थी। सोमदेवके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति। सोमिलाके भाईका नाम अग्निभूति था और उसकी स्त्री थी अग्निला। अग्निभूतिके अग्निलाके गर्भसे चंद्रमा तुल्य सुंदर मुखवाली तीन पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम थे धनश्री, मित्रश्री और नागश्री। नागश्री तो इनमें सचमुच दूसरी श्री जैसी ही थी। इन तीनोंका क्रमसे सोमदत्त आदिके साथ पाणिग्रहण (विवाह) हो गया।

एक दिनकी बात है कि निमित्त पाकर सोमदेव संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो गया और जाकर उसने मिथ्या मार्गसे हटानेवाले गुरुके निकट जिनदीक्षा धारण कर ली। उधर भव्य गुणोंके भंडार, भक्त, भव्य और धर्मात्मा सोमदत्त आदि तीनों भाई भी धीरताके साथ श्रावक धर्मका अध्ययन करने लगे। और सम्यक्त्व व्रत धारण करनेवाली निर्मल-चित्त सोमिला भी परम धर्मको धारण कर सिद्धान्त सुननेके लिए उद्यत हो गई। वह उत्तम भावोंवाली अपनी पुत्र-वधुओंको सदाकाल यही आदेश देती रहा करती थी कि बुद्धिमानोंने अहिंसा, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्यको व्रत कहा है। तुम्हारा धर्म है कि तुम सब इनका पालन करो। इसके साथ तुम्हें यह भी उचित है कि तुम इन व्रतोंकी रक्षाके लिए खाँडना, पीसना, चोका-चूल्हा, पानी छानना आदि विधि बड़ी सावधानीके साथ करो और यथोचित्त तथा पूरी शुद्धिके साथ पात्र-दानादि धर्मोंको निवाहो। सोमिलाके इन वचनोंको सुन कर दो वधुओंने तो धर्मका बहुत जल्दी और बड़े हर्षके साथ श्रद्धान कर लिया, लेकिन नागश्रीको उसकी ये बातें न रुचीं और उसने उससे विमुख होकर मिथ्यात्वकी ही अभिलाषा की। वह बड़ी दुष्टा थी, उसे धर्म-कर्म सुहाता ही न था। वह क्रोधकी खान और कलह-प्रिया थी। सदा ही पाप कर्मोंमें रत रहती थी।

यह सब होते हुए भी सोमिलाने उससे फिर भी कहा—उसकी भलाईके लिए उसे उपदेश दिया कि बेटी, मिथ्यात्व सेते सेते तो बहुत काल बीत गया; अब तो धर्मकी तरफ ध्यान दे और विषादको पैदा करनेवाले मिथ्यात्वको छोड़, जिससे तेरे आत्माका भला हो—तेरा संसार-जाल कटे। देख, संसारकी यह दशा है कि जो जीव मिथ्यात्वके नशेसे मोहित हैं वे धर्म पर श्रद्धा ही नहीं लाते; जैसे कि पित्त-ज्वरवाले जीवको मीठा दूध भी रुचिकर नहीं होता। जो जीव पापी हैं या पापाचरणमें मग्न रहते हैं उन्हें चाहे जितना ही धर्मका उपदेश क्यों न दिया जाय कभी भी [illegible] न होगा। जैसे कि चाहे जितना ही प्रयत्न

क्यों न किया जाय पर उल्लूका बच्चा चमकते हुए सूरजको कभी अच्छा कहेगा ही नहीं । बात यह है कि मिथ्यात्वके मदसे मत्त हुए मोही जीव सदाकाल संसारमें चक्कर काटा करते हैं---उन्हें कहीं भी सुखका लेश नहीं मिलता; जैसे कि मृग मृगतृष्णाके वश दौड़ा करता है पर वह जल कहीं भी नहीं पाता । इस लिए जो प्राणी अपना हित चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे मिथ्यात्वको बहुत-जल्दी छोड़ दें; जैसे कि लोग घरके मैले-कुचैले मलको निकाल कर फेंक देते हैं । सोमिलाने इस तरह नागश्रीको बहुत कुछ धर्मका उपदेश सुनाया, पर उसके मनमें एक भी बात न ठहरी; जैसे कि कमलिनीके पत्ते पर पानीकी बूँदें नहीं ठहरतीं ।

इसके बाद एक दिनका जिक्र है कि धर्मरुचि नाम प्रवर-दृष्टि एक बड़े भारी योगी भिक्षाके लिए सोमदत्तके घर आये । देख कर सोमदत्तने उन्हें पड़गाहा और नमस्कार कर ऊँचे आसन पर बैठाया । इसके बाद उसने प्रासुक जल द्वारा उनके पाँव धोये और वह नागश्रीको दानकी विधि बता कार्य-वश कहीं बाहर चला गया । इधर नागश्रीने जब दान देनेमें कुछ गड़बड़ीकी तब उसकी सास सोमिलाने उससे कहा कि बहू, दीप्त देहके धारक इन मुनिको तुम उत्तम रीतिसे तैयार किया आहार दो और नवधा भक्ति-जन्य पुण्यका उपार्जन करो । सासके ये वचन सुन कर मिथ्यात्व-रूपी मदिराके मोहसे मदोन्मत्त हुई नागश्री बड़ी बिगड़ी और मन-ही-मन इस प्रकार बुरे विचार करने लगी कि यह नग्न मुनि कौन है? अन्नका नाश करनेवाला दान क्या पदार्थ है? दान देनेसे होता क्या है? और इस नंगेको दान देनेसे फल ही क्या होगा? इस प्रकार बुरे विचार कर क्रोधसे वह थर थर काँपने लगी । उसे वह सब बड़ा बुरा लगा । उसने तब भोजनमें विष मिला दिया; जैसे नागिनने जहर ही उगला हो । उसकी सास बड़ी सरल-चित्त थी, अतः उसने न जान पाया कि इस आहारमें विष मिला हुआ है । सो उस बेचारीने मुनिको वही आहार दे पात्र-दानके प्रभावसे पुण्य उपार्जन किया । उधर भोजन करते ही मुनिके शरीरमें क्षण भरमें ही व्याधि बढ़ गई; जैसे कि वर्षाकालमें लताएँ बढ़ जाती हैं । यह देख योगी भी जान गये कि उन्हें विष दिया गया है । तब बड़ी शान्तिके साथ धर्ममें लीन हो, सावधानी पूर्वक संन्यास लेकर उन्होंने परम तप तपना आरंभ किया और विशुद्ध-बुद्धिके साथ आराधनाओंकी आराधना कर प्राणोंको छोड़ा । वह सर्वार्थसिद्धि गये ।

उधर नागश्रीकी इस करतूतका पता जब सोमदत्त आदिको लगा तब उन भव्योत्तमोंका चित्त बड़ा उदास हुआ और वे संसार-देह-भोगोंसे विरक्त

हो गये । इसके बाद उत्तम आचरणोंके धारक सोमदत्त आदिने वरुण नाम गुरुके पास जाकर, उन्हें नमस्कार कर उनसे जिनदीक्षा ले ली । इसी प्रकार नागश्रीकी कृतिको जान कर परस्परमें परम प्रीति रखनेवाली धनश्री और मित्रश्री भी विरक्त हो गईं और उन्होंने गुणवती आर्जिकाके पास जाकर दीक्षा ले ली । उक्त तीनोंहीने धर्मध्यानमें लीन होकर पाँच आचारोंका पालन किया और बाह्य तथा अभ्यन्तर तपोंको तपा; तथा अन्त समय संन्यास धारण कर, शम-दममें उद्यत हो, प्राणोंको छोड़ कर वे आरण और अच्युत स्वर्गमें गये। इसी प्रकार धनश्री और मित्रश्री भी शुद्धिके साथ उत्तम आचरण करती हुई शील-रक्षाके हेतु सिर्फ एक सफेद साड़ी पहिने हुए बड़ी ही सुशोभित हुईं और अंतमें परिग्रहसे विमुख हो, संन्यास ले, सम्यग्दर्शनके बलसे स्त्रीलिंग छेद कर, आरण-अच्युत स्वर्गमें गईं। आरण और अच्युत नामके स्वर्गोंमें उक्त पाँचों ही जीव सामानिक जातिके देव हुए। और वे परमोदयशाली वहाँ सर्वोत्तम सुख भोगते हुए चिरकाल तक रहे। वहाँ उन्होंने उपपाद शिला पर दिव्य शरीर पाया और सूरजके तुल्य उनकी प्रभा हुई । वे अवधिज्ञान द्वारा अपना पहलेका वृत्तान्त जानते थे, विविध नृत्य कला पारंगत थे, शोक रहित और शंका आदिसे विहीन थे, देवतोंके द्वारा नमस्कृत थे और नाना तरहकी सेनासे विराजित थे। वे शुद्ध जलमें स्नान करते थे और जिन-पूजा द्वारा पवित्र थे। वे बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर मानसिक आहार लेते थे और बारह पक्ष चले जाने पर श्वासोच्छ्वास लेते थे। उनकी बाईस सागरकी आयु थी और उन्हें बड़ा ही सुख था। जिनदेवके बताये धर्मके निमित्तसे उनका मोह रूपी अँधेरा दूर हो गया था। उनकी हजारों देव पूजा करते थे। वे तीन लोकमें स्थित जिन भगवानकी यात्रा करते थे और हजारों सुंदर देवांगनाएँ उनकी सेवामें उपस्थित रहती थीं। वे जयवन्त हों।

जो बुद्धिधनके धनी संसारमें मनुष्य-जन्म-जन्य सारभूत उत्तम सुखोंको भोग, चौदह प्रकारके परिग्रहसे मोह छोड़, बारह प्रकारके घोर तर तपको तप कर अच्युत-आरण नामके देवस्थानको गये वह सब धर्मका ही पवित्र प्रभाव है। ऐसा जान कर बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि वे अपनी भलाईके लिए सिद्ध-पदके दाता धर्मका सेवन करें।

सच बात एक ही है कि संसारमें धर्म ध्यान करना ही सार है और जो यह विभूति दिखाई देती है वह सब असार है—क्षणभंगुर है।

पच्चीसवाँ अध्याय।

उन अरिष्ट नेमिनाथको नमस्कार है जो दो प्रकारके धर्म-रथकी धुरा हैं, जिनको नर-सुर-असुर सभी नमस्कार करते हैं; एवं जो न्यायकारी हैं।

इसके बाद नागश्रीका मुनिको जहर देने रूप पाप सब पर प्रगट हो गया। लोग उसकी निन्दा करने लगे और उसे पीड़ा देने लगे। इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने उसका मस्तक मुँडवा कर उसे गधे पर चढ़ाया और सारे नगरमें फिरा कर नगरके बाहिर निकाल दिया। लोगोंने पत्थरोंसे मारा—बड़ा दुःख दिया। अन्तमें वह कोढ़के दुःखसे मरी और पापके वश पाँचवें नरकमें पहुँची। वहाँ उसने छेदन, भेदन, शूलारोहण, ताड़न आदि विविध दुखोंको भोगा और बड़े कष्टोंसे वहाँ सत्रह सागरकी आयुको बिताया। बाद आयु पूरी होने पर जब वह दुर्बुद्धि वहाँसे निकली तब स्वयंप्रभ नाम दीपमें दृष्टि-विष जातिका सर्प हुई। उसकी चंचल जीभ थी। क्रोधसे नेत्र लाल थे। वह बड़ा हिंसक था और कृष्ण लेश्याका धारक अतिशय कृष्ण था। फणकी फूत्कारसे वह बहुत भयावह था। उसकी पूछ बहुत चंचल थी और वह कषायके मारे एकदम विवश हो रहा था। जान पड़ता था मानों वह मूर्ति धारण कर क्रोध ही आया हो।

वह यहाँसे आयु पूरी कर मरा और पापके फलसे दूसरे नरकमें पहुँचा। वहाँ उसने तीन सागरकी आयु-प्रमाण दुःखके पूरमें खूब ही गोते मारे। एवं वहाँसे निकल कर वह कुछ कम दो सागर तक त्रस तथा स्थावर योनिमें फिरा और उसने अगणित जन्म-मरण किये; जिनके दुःखका कुछ ठिकाना ही नहीं। इसके बाद वह पापी जाकर चंपापुरीमें चांडालिन हुआ। दैव-संयोगसे एक दिन वहाँ वह उदम्बर फल आदि खानेके लिए जंगलमें गई थी कि सहसा उसे समाधिगुप्त नाम योगीन्द्र दीख पड़े। उन्हें देख कर सुखकी इच्छासे वह धीरे धीरे उनके पास गई। वे मौन धारण किये स्थिर बैठे थे। वे किसीसे कुछ कहते बोलते न थे। वे ध्यानमें निमग्न थे। उनको इस तरह ध्यानमें बैठे देख कर उस चांडालिनने पूछा कि महाराज, आप यह क्या करते है? उसके मुँह इस तरहका प्रश्न सुन कर उनका ध्यान भंग हुआ। वह उससे शान्तिके साथ बोले कि भव्ये, भय द्वारा आकुल हुए ये प्राणी संसारमें चक्कर लगाते हैं और पापके वश हो कर दुर्गतिमें जाते हैं। इतने पर भी जो बड़ी कठिनाईसे हाथ आने

वाले मनुष्य-जन्मको पाकर धर्म नहीं करते वे अधम पुरुष पुनः पुनः दुर्गतिमें पड़ते है और विविध दुःख भोगते हैं।

इस लिए मनुष्यको चाहिए कि वह मद्य, मांस, मधु और पंच उदम्बर फलोंको छोड़ दे। एवं प्राणियोंकी हिंसा भी न करे। जो मनुष्य ऐसा करता है—वही संसारमें धर्म-प्रिय होता है। इसके सिवा रात्रि-भोजन और अनंत-कायका त्याग करे, कभी बिना छाना पानी न पीवे और न बहु बीजवाले पदार्थ खावे। मक्खन और द्विदलको छोड़ दे। इसी प्रकार दो दिनके रक्खे हुए मठा वगैरहको भी न खावे, फूलोंका खाना छोड़ दे और जिन फलोंमेंसे दूध निकलता है उन्हें काममें न लावे। कभी झूठ न बोले और न चोरी करे। हमेशा शीलको पाले और परिग्रहकी मर्यादा करे। पर बात यह है कि जो श्रद्धा-पूर्वक इन त्यागोंमें बुद्धिको निर्मल रक्खेगा फल उसीको मिलेगा। और जो केवल बाहिरी दिखावके लिए त्यागी बनेगा वह उल्टा फल पावेगा—दुःख भोगेगा। इसके सिवा जिनदेवके बताये मार्गका श्रद्धान रखना, सद्बुद्धिके साथ ध्यान करना और पंच मंत्रका जाप जपना—यही आत्माकी स्वतन्त्रता है और यही सच्चा धर्म है। इसको पालना और इसकी भावना करना मनुष्यका पूरा-पूरा कर्तव्य है। जो सर्वोत्तम मनुष्य-जन्मको पाकर ऐसे धर्मका पालन नहीं करता उस अधर्मीके लिए दुर्गति-रूपी खाड़ा खुदा हुआ तैयार है ही। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

यों धर्मका उपदेश देकर उन मुनिनाथने कहा कि ऊपर जो कुछ भी कहा गया है यह सब तुम्हें विधि-पूर्वक पालन करना चाहिए। मुनिनाथका यह पवित्र उपदेश सुन कर उस चांडालिनने उसी क्षण पंच मंत्रको स्वीकार किया और यथायोग्य पवित्र व्रतोंको लेकर मद्य-मांस आदिका त्याग किया। इसके बाद वह धर्मका पालन करती हुई जब मरी तब जाकर मनुष्य भवको प्राप्त हुई। चंपा नगरीमें एक सुबन्धु नामका धन्यात्मा और बहुत धनी वैश्य था। इसे राज-सम्मान प्राप्त था और सभी स्वजन इसकी सेवा करते थे। इसकी स्त्रीका नाम धनदेवी था। वह बड़ी चतुर और कुलको पालनेवाली कुलपालिका थी। उस चांडालिनने आकर इसीके यहाँ जन्म लिया—वह इसके यहाँ पुत्री हुई। उसके शरीरसे बड़ी दुर्गन्ध आती थी, इस लिए उसका नाम भी दुर्गन्धा पड़ गया था।

इसी पुरीमें एक दूसरा और भी वैश्य था । जिसका नाम धनदेव था और जो विलकुल ही दरिद्र था । उसकी स्त्रीका नाम अशोकदत्ता था । इसके गर्भसे दो पुत्र हुए । एक जिनदेव और दूसरा जिनदत्त । ये दोनों विद्याभ्यास करते हुए थोड़े दिनोंमें यौवन दशाको प्राप्त हुए । एक दिनका जिक्र है कि सुवन्धुने आकर धनदेवसे वहुत मान-पूर्वक प्रार्थना की कि आप धर्मात्मा जिनदेवके साथ दुर्गन्धाके विवाहकी स्वीकारता दीजिए । राज-मान्य सुवन्धुकी वात सुन कर धनदेव चुप रहा और उसने सोचा कि यदि ऐसा ही भवितव्य है तो उसे कौन रोक सकता है । इसके वाद सुवन्धुने जव दुवारा प्रार्थना की तब धनदेवने तथेति कह कर उसे अपनी स्वीकारता दे दी । सच है कि धनकी चतुराईके आगे मनुष्यकी चतुराई जरा भी काम नहीं देती । यह वात जव जिनदेवने सुनी तव वह वड़ा संकटमें पड़ा । वह मन-ही-मन सोचने लगा कि यदि मेरी ऐसी जाया हुई तो यह खोटे कर्मका फल ही समझना चाहिए । यदि सचमुच ही मेरे साथ दुर्गंधाका विवाह हो गया तो मेरा यौवन विफल ही हुआ । जैसे वकरीके गलेके स्तन निस्सार होते हैं वैसे ही मेरा यौवन भी निस्सार है । वड़ी भारी संकटकी यह वात है कि दुर्गंधाका पिता एक वड़ा भारी श्रीमान् और राज-मान्य मंत्रवित् पुरुष है, इस कारण मेरे पिता उसके वचनको किसी तरह भी नहीं टाल सकते । यदि दुर्गन्धा जैसी दुष्टा, अभागिनी, दुःखिनी और दीन-चित्त स्त्री मेरी जाया हुई तव तो मैं फिर भोगोंको भोग ही चुका । ऐसे बुरे सम्वन्धसे तो मनुष्यके लिए मर जाना ही अच्छा है । जिस तरह रोगके सम्वन्धसे जीवोंको दुःख होता है उसी तरह बुरे सम्वंधसे भी पीड़ा पहुँचती है । इस समय न तो उसकी आँखोंमें नींद थी और न उसे खाने पीनेकी ही सुध थी । सिर्फ वह इसी एक चिन्तामें लीन था ।

इसके वाद वह अपने छुटकारेका कोई उपाय न देख माता-पितासे विना कहे ही घरसे निकल वनको चला गया । वहाँ वह समाधिगुप्त नामक मुनिको नमस्कार कर उनके आगे वैठ गया । मुनिसे उसने धर्मोपदेश सुननेकी जिज्ञासा प्रकट की । उत्तरमें योगी वोले कि जिनदेव, जरा सावधान चित्त होकर सुनो, मैं तुम्हारे लिए धर्मका स्वरूप कहता हूँ । सम्यक्त्व-सहित ज्ञान-चारित्रको धारण करना ही धर्म है और मोक्षके अर्थी पुरुषोंको उचित है कि वे इसे धारण करें । छह कायके जीवोंकी रक्षा करना, सच वोलना, परधन और पराई स्त्रीका त्याग करना भी

धर्म है। पर ध्यान रहे कि यह त्याग जब परिणामोंकी विशुद्धिके साथ किया जायगा तभी धर्मका रूप पावेगा। नहीं तो वह धर्म नहीं, किन्तु ढकोसला कहा जायगा। देखो, यह धर्मका ही फल है जो जीवोंको सारभूत सुखका कारण अच्छा संयोग मिलता है और मनचाही वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। ऐसा जान कर हे धीमन् जिनदेव, तुम धर्म-रूपी अमृतको हृदयमें धारण करो। मुनिनाथके द्वारा धर्मका स्वरूप सुन कर जिनदेवको वैराग्य हो गया और उसने व्रत धारण कर लिये; उन व्रतोंका आश्रय लिया जो कि संसार-सागरसे पार होनेके लिए नौकाके जैसे हैं—संसारसे पार पहुँचानेवाले हैं।

इसके बाद सुबन्धुने बड़े हठ-पूर्वक, नाम और गुण दोनोंसे ही दुर्गन्धा जैसी अपनी लड़कीका विवाह जिनदत्तके साथ कर दिया। जिनदत्त उस नवोढ़ाके गाढ़ आलिंगनकी इच्छासे उसे अपने घर लिवा गया और वहाँ वह उसके साथ एक शय्या पर बैठा। पर उसके शरीरसे निकलनेवाली दुर्गन्धको न सकनेके कारण वह भी माता-पितासे कुछ बहाना बना सवेरा होते ही घरसे निकल भागा। उसके चले जाने पर दुर्गंधा बड़ी दुःखी हुई और अपनी जिन्दा करती हुई विलाप करने लगी कि हाय! मैंने ऐसे कौनसे पाप किये जिनसे इस समय मेरे ऊपर यह दुःख आकर पड़ा। इसके बाद जिनदत्तके चले जानेकी खबर जब दुर्गन्धाकी माताको मिली तब उसने दुर्गन्धाको अपने घर बुला लिया और उसे यह सीख दी कि बेटी, अब तू धर्ममें अपनी बुद्धि लगा। तेरा कल्याण होगा। देख पापका कैसा बुरा फल है। इसके बाद दुर्गंधा माताके पास ही रहने लगी। परंतु दुर्गंधसे उसके स्नेहियोंको दुःख होने लगा तब उन्होंने उसे हमेशाके लिए ही एक जुदे मकानमें रख दिया। इससे वह बड़ी दुःखी हुई।

इसके बाद एक दिनका जिक्र है कि अक्षुण्ण व्रतोंकी पालनेवाली एक अर्जिका उसके पिताके घर आई। दुर्गन्धाने जाकर उसे नमस्कार किया और पड़गा कर विधिपूर्वक उज्ज्वल आहार दिया। अपनी साथकी दो अर्जिकाके साथ ग्लानि-रहित और निर्मल मनवाली उस अर्जिकाने आहार लेकर क्षणभर समता भावके साथ वहाँ विश्राम किया। तब दुर्गन्धाने उससे पूछा कि आर्ये, ये दो युवती अर्जिकाएँ कौन हैं? और इनके दीक्षित होनेमें क्या कारण है? उत्तरमें अर्जिका बोली कि ये दोनों पहले स्वर्गमें सौधर्म-इन्द्रकी विमला और सुप्रभा नामकी देवियाँ थीं। एक समय ये दोनों पूजाके लिए उद्यत होकर अपने देवके साथ नन्दीश्वर दीप गईं और वहाँ इन्होंने हर्षके साथ जिनेन्द्र भगवानके चरण-कमलोंकी पूजा की। इसके

साथ ही इन्होंने गीत, नृत्य आदि उत्सव कर यह प्रतिज्ञा की कि हम मनुष्य भवमें नियमसे तप करेंगी । इसके बाद आयुको पूरी होने पर वहाँसे चय कर आईं और आकर यहाँ अयोध्याके श्रीषेण राजाकी श्रीकान्त नाम रानीके गर्भसे पुत्रियाँ हुईं। इनका नाम हरिषेणा और श्रीषेणा है । कुछ कालमें ये युवती हुईं । मदनाधिष्ठित इनका रम्य रूप बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ने लगा। तब कल्पनातीत सैकड़ों उत्सवोंके साथ राजाने इनके स्वयंवरकी तैयारी की । उस समय बुलाये हुए देश विदेशोंसे बड़े बड़े विद्वान और मंगल-रूप गहनोंसे मंडित राज-गण आये और मंडपमें इकट्ठे हुए । इस समय अपनी कमला नामकी वेत्रधारिणी दासीके साथ ये मंडपमें आईं और वहाँ बैठे हुए राजोंको देख कर इन्हें जाति-स्मरण हो आया । ये तब अपने पहले भवके पिताओंकी याद कर, अपने गुजरे हुए भवोंका हाल कह कर और सब भूपोंको वापस विदा कर वनको चली आईं । वहाँ उत्तम संयमी ज्ञानसागर मुनिको नमस्कार कर उनसे इन्होंने यह प्रार्थना की कि जिसमें फिर इन्हें स्त्री-पर्याय न धारण करना पड़े । इसके बाद इन दोनोंने उन मुनिसे दीक्षा ली और विहार करती करती ये यहाँ आई हैं ।

उस अर्जिकाके ऐसे वचन सुन कर दुर्गन्धा भी विरक्त हो कर मन-ही-मन बोली कि धन्य है इनको जो ये बड़भागिनी राज-पुत्रियाँ इतनी सुंदर और सुकोमल होकर भी भोगोंको छोड़ कर दीक्षित हुईं । और मैं ऐसी बुरी—देहवाली जिसके पास दुर्गन्धके मारे कोई खड़ा तक भी नहीं होता—सदा दुःखिनी रहती हुई भी विषयोंकी वाञ्छा रक्खूँ तो कहना पड़ेगा कि मेरा बड़ा भारी दुर्भाग्य है—मुझ-सदृश अभागिनी कोई नहीं है । यह कह कर लज्जासे नत-मस्तक हुई उसने संयमके लिए उस अर्जिकासे प्रार्थना की और अपने माता पिताको समझा-बुझा कर तप धारण कर लिया—वह तपस्विनी हो गई । इसके बाद तीव्र तप तपते और परीषहोंको सहते हुए उसने भव्यशान्तिका (अर्जिका) के साथ पृथिवी-तल पर विहार किया ।

एक दिनकी बात है कि अपने पाँच विट पुरुषोंको साथ लिये वसन्तसेना नामकी एक सुन्दरी वेश्या वनमें पहुँची । उसे देख कर इस दुःखिनीने निदान किया कि मैं भी ऐसी ही होऊँ । इसके बाद ही जब उसे ख्याल हुआ तो वह बड़ी पछताने लगी कि धिक्कार है मुझे जो मैंने सुखको जलांजलि देनेवाली बातको हृदयमें स्थान देकर दुष्ट चित्त द्वारा मिथ्या पापका उपार्जन किया । इसके बाद वह घोर तप तप कर और अन्तमें संन्यास लेकर, प्राणोंको छोड़ अच्युत नाम

स्वर्गमें गई और वहाँ जो पहले सोमभूति नाम देव था उसकी देवी हुई। वहाँ उसकी पचपन पल्यकी आयु हुई। उसने देवोंके साथ वहाँ मन-चाहे सुखोंको भोगते हुए और मानस प्रवीचारका सेवन करते हुए बहुत समय बिताया।

इसके बाद वे देव वहाँसे चये और हस्तिनापुरके राजा पाण्डुकी कुन्ती और मद्री दोनों रानियोंके गर्भसे उत्तम पुत्र हुए। देखो जो पहले सोमदत्त था वह तो तुम निर्भय युधिष्ठिर हुए हो। सोमिल नाम तुम्हारा जो भाई था वह यह निर्भीक भी हुआ है। और शत्रुको जीतनेवाला यह अर्जुन सोमभूतिका जीव है। तुम लोग तीन जगतमें प्रसिद्ध हो और अपने ही बल द्वारा उन्नत हुए हो। इसी तरह जो धनश्रीका जीव था वह मद्रीका पुत्र महान् नकुल और मित्रश्रीका जीव तुम्हारा छोटा भाई सहदेव हुआ है। एवं जो पहले सुकुमारिका (दुर्गन्धा) थी वह कांपिल्यपुरीके पति द्रुपद राजा और दृढ़रथा रानीकी द्रौपदी नामकी पुत्री हुई। इसने पहले भवमें समिति, गुप्ति, व्रत और उत्तम भावना आदि द्वारा जो पुण्य पैदा किया था उसके प्रभावसे तो यह उत्तम रूप और कान्तिवाली हुई और भोग-उपभोगकी इसे पूर्ण सामग्री प्राप्त हुई। और वसन्तसेना नामकी वेश्याको देख कर जो निदान किया था यह उसका प्रभाव है जो सारे संसारमें इसकी यह अपकीर्ति उड़ी कि द्रौपदीके पाँच पति हैं—वह पंचभर्तारी है। बात यह है कि जीव मन, वचन और काय द्वारा जिस तरहके कर्म करता है उसे वैसा ही उनका फल भी भोगना पड़ता है; जैसे कि खेतमें जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल होता है। ऐसा जान कर जो सुकृती पुरुष हैं उन्हें चाहिए कि वे पापसे दूर रहें और धर्मका सेवन करें, जिसके प्रभावसे संसारमें सब सुख प्राप्त होता है। पहले भवमें युधिष्ठिरने जो उज्ज्वल चारित्र धारण किया था यह उसीका फल है जो इस भवमें उनकी सत्य-जन्य कीर्ति हुई। एवं भीमने पहले भवमें जो वैयावृत्य किया था उसका यह फल है कि यह वैरियों द्वारा दुर्जय अत्यन्त बली हुआ। पार्थने जो पवित्र चारित्रको धारण किया था उसका यह फल मिला कि यह धनुष-कलाका अच्छा ज्ञाता धनुर्धर हुआ। नागश्रीके ऊपर इसका तब अति स्नेह था। यही कारण है कि द्रौपदी पर इसका अब भी बहुत स्नेह है। क्योंकि प्राणियोंका अत्यन्त स्नेह पूर्व भवके निमित्तसे ही होता है। इसी प्रकार धनश्री और मित्रश्री नामकी दो ब्राह्मण स्त्रियोंने जो कर्मोंको नाश करनेके लिए सम्यक्त्व-सहित उज्ज्वल तप रूपी विचित्र चारित्र धारण किया था यह उसीका प्रभाव है जो वे दोनों यहाँ आपके अति प्यारे और प्रसिद्ध

नकुल और सहदेव भाई हुई हैं । इस प्रकार नेमिनाथ भगवानके द्वारा अपने भव्य भवोंको सुन कर पांडव बड़े शान्त हुए । उनके चित्तमें जो उद्वेग था वह अब एक दम जाता रहा ।

जो इस तरहके शुभ भावोंवाले हैं, संसार वनके लिए दावानल हैं, जिन-वाणीके रसिक हैं, विकार भावोंसे रहित हैं, अत्यन्त पवित्र और कर्म-वनके लिए वह्नि हैं और जिन्होंने जिन यतियोंके आचरण किये हैं वे सुधी तुम्हें सिद्धि दें।

चिर काल घोर तप तए कर जिन्होंने ब्राह्मणके भवमें बहुत पुण्य संचय किया, खोटे कर्मोंका नाश कर उत्तम देव पद पाया, बाद वहाँके सर्वोत्तम सुखोंको भोग वहाँसे यहाँ आ राज-पद प्राप्त किया—मनुष्योंके मुकुट हुए, युद्धमें दुर्योधन आदि राजोंको जो कि बड़े ही संमरशाली थे, पराजित किया, हरिकी सहाय पाकर जो महा समुद्र पार करनेके लिए समर्थ हुए तथा महा समुद्रको पार कर द्रौपदीको लाये वे वैरियों पर विजय पानेवाले अमर जैसे पाँचों पाण्डव जयवन्त रहें।

छब्बीसवाँ अध्याय ।

उन पार्श्वनाथ प्रभुको प्रणाम है जो शुभचन्द्रके आश्रय स्थान हैं, श्रीपाल हैं, प्राणियोंके पालक हैं और जिनके सुहावने पार्श्वभागोंमें भव्यवर्ग सदा ही बैठे रहते हैं ।

इसके बाद सुर-असुर और नर-पूजित नेमिनाथ प्रभुको नमस्कार कर, हाथ जोड़ मस्तक पर लगा पाण्डव बोले कि प्रभो, जिसमें दुःखकी ज्वाला शरीर रूपी वृक्षोंको भस्म कर रही है, कराल काल द्वारा जो बड़ा गहन है, नाना दुर्जय दुःखरूपी खोटे मार्गोंसे दुर्गम और मनुष्योंके लिए बड़ा भयानक है, अनेक क्रूर कर्म जिनके उदयमें आ रहे हैं ऐसे प्राणियोंका जो स्थान है, तथा जो खोटे भावों-रूपी बिलों द्वारा भरा-पुरा और भीषण है ऐसे संसारमें जो भय-त्रस्त प्राणी जन्म-मरणके चक्कर लगा रहे हैं वे सब एक आपके शरण बिना ही दुःखी हो रहे हैं । यदि उन्हें आपका शरण मिल जाता तो वे कभीके पार हो गये होते ।

जो कि विविध जन्म-रूपी जलसे सब दिशाओंको लाँघता है; क्लेशकी लहरोंसे परिपूर्ण है, दुष्कर्म-रूपी जिसमें विविध बड़वानल हैं और खोटे भाव-रूपी भँवर उठा करते हैं ऐसे संसार समुद्रसे प्राणियोंको तारनेके लिए आप अद्वितीय नौका हैं ।

हे धर्मेश, पाप कर्मोंने हमें संसार-रूपी अंधकूपमें गिरा रक्खा है, अतः कृपा कर आप धर्म-रूपी हाथका सहारा देकर हमारा उद्धार कीजिए। प्रभो, हम संसार-रूपी जंगलमें पड़े हुए हैं, सो आप हमें धर्मकी सवारी देकर बहुत जल्दी मोक्ष-क्षेत्रमें पहुँचा दीजिए। आज ही हमारा बेड़ा पार कर दीजिए। हे दक्ष, आपके प्रसादसे अब हम बहुत जल्दी शिव प्राप्त करना चाहते हैं। अतः आप हमें वह दीक्षा दीजिए जो कि हमारा कल्याण कर दे। इस तरह प्रभुसे प्रार्थना कर पांडव दीक्षाके लिए उद्यत हो गये। इसके बाद उन्होंने मनुष्यों द्वारा स्तुत्य भाज्य राज्य पुत्रोंको सौंपा और क्षेत्र, वास्तु आदि बाह्य तथा मिथ्यात्व आदि अंतरंग परिग्रहका त्याग कर, केशलोंच कर, तेरह प्रकार चारित्र धारण कर जिनदीक्षा धारण की।

इनके साथ ही कुन्ती, सुभद्रा और द्रोपदीने राजीमती अर्जिकाके पास जाकर, केशोंका लोंच कर संयम धारण किया। इनके अतिरिक्त उस समय संसारसे भयभीत होकर और भी बहुतसे राजा तथा बन्धु-गण शुभ परिणामोंके साथ दीक्षित हुए।

इसके बाद जगद्गुरु गरिष्ठ युधिष्ठिरने बिना किसी कष्टके निष्ठुर मोह-मल्लको जीता। भव्य सम्पदाके भावुक, पापसे डरनेवाले लेकिन निर्भय तथा संसार-वैरीके लिए भय देनेवाले भीमने भी मोह पर विजय पाई। सद्बुद्धि धनंजयने चित्तमें मुक्ति-रूपी वधूको स्थान दिया और धृतिके साथ आराधनाओंको आराधा। एवं मद्रीके पुत्रोंने भी द्रव्य, पर्याय आदिका अनुभव कर, परिग्रहसे विमुक्त हो, नासादृष्टि ध्यान लगा उत्तम तप किया। इस तरह कर्मोंके शमनके लिए उद्यत हुए पाँचों ही पांडवोंने दृढ़तासे पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियोंको वश करना, छह आवश्यक पालना, केशलोंच करना, नग्न रहना, स्नान नहीं करना, भूमिमें सोना, दाँत नहीं धोना और एक बार दिनमें खड़े आहार लेना—इन मूल गुणोंका पालन किया। इसके बाद उत्तर गुणोंकी भावना करते हुए उन धीर धर्मात्मा तपोधनोंने धर्म-ध्यान किया। गुप्तियों द्वारा आत्माको रक्षित रखते हुए गौरवके साथ द्वादशांगका मनन किया। इस प्रकार अपने वीर्यको प्रगट कर उन गुणाग्रणी पांडवोंने निःशंक होकर नेमिनाथ प्रभुके पास कठिन तप किया और कर्मोंके नाशके लिए उद्यत होकर उन नरोत्तमोंने कर्मोंकी खूब निर्जरा की। उन्होंने छह छह सात सात उपवास किये और पारणाके दिन केवल बत्तीस ग्रास मात्र आहार लेकर अवमौदर्य किया। मार्ग, घर, गली आदिकी प्रतिज्ञा द्वारा वृत्तिपरिसंख्यान

कर भोजनकी इच्छाको रोका। पारणा करते हुए रसपरित्याग किया शून्यागार, गुहा, वन, पितृवन (मशानभूमि), वृक्षोंके कोटर, पहाड़ और निर्जन स्थान जैसे भयावने स्थानोंमें सिंहकी भाँति निर्भय होकर शय्या-आसन लगाया। शरीरसे ममता भाव छोड़ कर चोराहे आदि जगहमें काय-क्लेश किया। इस प्रकार छह बाह्य तपोंका आचरण करते हुए और निर्विघ्न विविध तप करते हुए पांडव पर्वत आदि स्थानोंमें ठहरे। वहाँ आत्माकी और व्रतकी शुद्धिके लिए वे आलोचना आदिके भेदसे दस दस प्रकार प्रायश्चित्त करते; ज्ञान-दर्शन-चारित्र और उपचारके भेदसे चार प्रकारका विनय पालते; चारित्राचरणके लिए उद्यत हो आचार्य आदिके भेदसे दस प्रकार विशुद्धि करनेवाला वैयावृत्य पालते; ध्यानकी सिद्धिके लिए वाचना, पृच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेश एवं पाँच प्रकारका स्वाध्याय करते; कषाय और आत्माका भेद समझ कर निर्जन स्थानमें शरीरसे ममता छोड़ने रूप व्युत्सर्ग करते; और आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय नाम चार प्रकार धर्मध्यान साधन करते। इस प्रकार तप करते हुए उन धीरवीरोंने शुक्ल नामके पहले शुक्लध्यानको साधा। इस तरह छह प्रकारके भीतरी तपोंको तप कर उन कर्मशूरोंने कर्मोंको अत्यन्त कमजोर कर दिया; जिस तरह कि गरुड़ साँपोंको कमजोर कर डालता है। देखो, तपका ऐसा प्रभाव है कि उसकी वजहसे हृदयमें किसी तरहकी भी व्याधि स्थान नहीं पाती। बस यही कारण हुआ जो तप तपते हुए पांडवोंके पास विविध-समृद्धि, उपस्थित हो गई। तपके प्रभावसे ही वे खूब ऋद्धिशाली हुए। गरज यह कि पांडवोंने चाहिए जैसा बारह प्रकारके तपको तपा, जिसके प्रभावसे उन्हें विविध ऋद्धियाँ प्राप्त हुई।

वे बड़े धर्मात्मा थे। यही कारण है कि वे सभी प्राणियोंमे मैत्रीभाव, अधिक गुणवालोंसे प्रमोदभाव, दुःखी, दरिद्री जीवोंसे करुणाभाव और विपरीत चलनेवालोंसे मध्यस्थभाव रखते थे। हमेशा अपने शुद्ध-बुद्ध-निरंजन आत्माकी भावना करते और बारह भावनाओं द्वारा उसे स्थिर रखते थे। आत्माको आत्मामें लीन रखते थे। इससे उनकी आत्मामें रत्नत्रयका स्वच्छ प्रकाश हो कर मोहरूपी अँधेरा जड़ मूलसे नष्ट हो गया। उन्होंने शुद्ध चिन्मय आत्मामें लीन हो कर बड़ी धीरताके साथ तिर्यञ्च, मनुष्य और देवोंके किये घोर उपसर्गोंको सहा और निर्मल चित्त द्वारा भूख-प्यास आदि परीषहोंको जीता। वे ब्रह्मचारी थे, धीर थे, अप्रमादी थे, चारित्रके पालनेवाले थे और पवित्र तथा हाथीके जैसे

निर्भय थे । वे विशुद्ध-चित्त संयमको धारण कर मोह और प्रमादको क्षीण कर चुके थे और ध्यान द्वारा रहे-सहे पाप-समूहको और क्षीण करना चाहते थे ।

इसके बाद विहार करते करते वे सौराष्ट्र देशमें पहुँचे । एक समयकी बात है कि वहाँ उन्होंने शत्रुंजय गिरिके शिखर पर ध्यान दिया । वे पंच परम पदका स्मरण करते हुए धीरताके साथ शत्रुंजय गिरि पर कायोत्सर्ग ध्यानसे स्थित हुए । और थोड़े ही कालमें आतापन आदि योग द्वारा सिद्धिके साधक घोरसे भी घोर उपसर्ग सहनेके लिए समर्थ हो गये । उन तपधनोंने वहाँ स्थित हो कर अक्षय, परम शुद्ध, चिन्मात्र और शरीरसे भिन्न परमात्माका ध्यान किया । इस प्रकार योगी पांडव निर्मल चित्तके साथ निर्ममत्व भाव धारण कर वहाँ स्थित थे । इसी समय अचानक वहाँ दुर्योधनका भानजा क्रूरचित्त कुर्युधर जो कि बड़ा दुष्ट और वज्र शठ था, आ गया । वह दुष्ट उन्हें धर्मध्यानमें स्थित देख कर मार डालनेके लिए तैयार हुआ । वह मन-ही-मन सोचने लगा कि मेरे मामाको मार कर ये मदमत्त पाण्डव यहाँ आ छिपे हैं । अब तो मैंने इन्हें देख लिया । अब ये कहाँ जाँयगे । इस समय बदला लेनेके लिए मुझे पूरा अवसर आ मिला है । कारण कि ये ध्यानमें आरूढ़ हो रहे है, अतः युद्ध जरा भी नहीं करेंगे । इस लिए मैं इन वाचंयम (मौनधारी) और यम अर्थात् जन्म भरके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध तथा बली हो कर भी निर्बल मानियोंको पूरे तिरस्कारके साथ ही क्यों न मारूँ—मुझे अवश्य ही ऐसा करना चाहिए । इसके बाद उसने लोहेके सोलह आभूषण बनवाये और उन्हें जलती हुई आगमें खूब तपा कर अग्निके जैसा ही लाल करवाया । इसके बाद उसने जलती हुई ज्वाला जैसे लोहके मुकुटको उनके मस्तक पर रक्खा, कानोंमें कुंडल पहिनाये, गलेमें हार डाले, हाथोंमें कड़े और कमरमें करधौनियाँ पहिनाईं । पाँवोंमें लंगर और अँगुलियोंमें मुदरियाँ पहिनाईं । उस धर्महीन अधर्मीने इस तरह उन्हें दुःख देनेके लिए तपे हुए लाल, लोहेके गहने पहिनाये और पूरा-पूरा दुःख दिया । उन मुनियोंके शरीरमें ज्यों ही वे भूषण पहिनाये गये कि उसी क्षण उनका शरीर जलने लगा; जैसे कि आगके योगसे काठ जलता है । उनके जलते हुए शरीरसे सब दिशाओंको व्याप्त करनेवाला वैसा ही घोर धुआँ निकला; जैसा लकड़ीके जलनेसे अग्निमेंसे धुँआ निकलता है । इस समय अपने शरीरोंको जलता देख कर उन श्रेष्ठ पांडवोंने दाहकी शान्तिके लिए हृदयमें ध्यानरूपी जलको स्थान दिया । जिन, सिद्ध, सर्व साधु और सबे धर्मका उन्होंने

आश्रय लिया वे उत्तम मंगल और शरण-रूप हैं । अब आत्माको नहीं, किन्तु शरीरको जलाती हुई आगने एक विपुल रूप धारण किया और जिस तरह वह एक कुटीको जलाती हुई गगन-तलमें फैलती है उसी तरह गगन-तलमें फैल गई । वे सोचने लगे कि अग्नि मूर्त है, अत एव यह मूर्त शरीरको ही जला सकती है—हमारे अमूर्त आत्माओंको तो यह छू भी नहीं सकती; क्योंकि सदृश पर ही सदृशका वश चलता है । यह आत्मा शुद्ध-बुद्ध और सिद्ध है; निराकार और निरंजन है, उपयोग-मय और ज्ञाता-दृष्टा तथा निरत्यय है । यह तीन प्रकारके कर्मोंसे जुदा है । देहके बराबर है; परन्तु देहसे भिन्न है । अनंतज्ञान आदि अनंत चतुष्टय द्वारा समुज्वल है । इस तरह आत्म-स्वरूपका विचार करते करते वे विपक्षके क्षयके लिए अनुप्रेक्षाओंका चिंतन करने लगे ।

शुद्ध मनसे यों विचार करने लगे कि संसारमें जीवोंका जीवन क्षण-स्थायी है—मेघकी भाँति नष्ट होनेवाला है । फिर इसमें स्थिरताका भान तो हो ही कैसे सकता है । शरीर चंचल है, यौवन वृक्षकी छाया-तुल्य है या जलके बबूलों जैसा है; तथा चित्त मेघ-तुल्य है। विषय, पदार्थ वगैरह जब कि चक्रवर्तियोंके यहाँ भी स्थिर नहीं रहते तब औरोंके पास स्थिर रहनेकी तो कथा ही क्या है । अतः विद्वानोंको चाहिए कि वे मोक्षकी सिद्धिके लिए विषयोंको स्वयं ही छोड़ दें और इस विनश्वर शरीर द्वारा अविनश्वर पदको साधनेमें कुछ भी उठा न रक्खें—इसीमें उनकी बुद्धिमानी है । सच पूछो तो इस लोकमें अपने आत्माके सिवा और कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है । सब इन्द्र धनुषकी भाँति केवल देखने मात्रके लिए प्रिय है; वास्तवमें संसारमें कोई प्रिय वस्तु नहीं । यदि कोई प्रिय वस्तु है तो वह एक आत्मा ही है । जब कि संसारमें भरतचक्री आदिके जैसे महा-पुरुषोंका जीवन भी स्थिर नहीं देखा गया तब फिर हे आत्मन्, तू व्यर्थ ही क्यों दुःख करता है; अपने जन्मको सफल क्यों नहीं करता । तुझे तो यह चाहिए कि तू अपने एक क्षणको भी व्यर्थ न जाने दे ।

इति अनित्यानुप्रेक्षा ।

जिस तरह कि अशरण वनमें सिंहों द्वारा घेर लिये गये मृगके बच्चेको कोई भी बचानेवाला नहीं होता उसी तरह जब इस जीवको यमके नौकर घेर लेते हैं तब इसे कोई भी बचा नहीं सकता । यह यमराज ऐसा बली है कि जीवको चाहे शस्त्रधारी सुभट, भाई-बन्धु और हाथी घोड़े वगैरह क्यों न घेरे रहें पर वह कभी छोड़नेका नहीं; जैसे बिल्ली चूहेको नहीं छोड़ती—लपक कर

झटसे पकड़ लेती है। अतः कहना चाहिए कि मंत्र, यंत्र आदिक आत्माके लिए कोई भी शरण नहीं है। एक मात्र शरण है अपना किया हुआ पुण्य। जिस तरह समुद्रके बीच जाकर जिस पक्षीने नौकाका सहारा छोड़ दिया उसके लिए कोई भी शरण नहीं होता उसी तरह आयु कर्मके पूर्ण हो जाने पर इस प्राणीके लिए कोई शरण नहीं होता। जब कि सुरेन्द्र भी अपनी देवियोंकी कालकी-चालसे रक्षा करनेको समर्थ नहीं होता तब दूसरा कौन है जो उससे हे आत्मन्, तेरी रक्षा कर सके। तात्पर्य यह कि चिद्रूप, काल द्वारा अगम्य, अविनश्वर और शुद्ध आत्माके बिना मोहित-चित्त प्राणियोंके लिए और कोई भी शरण नहीं है—एक आत्मा ही शरण है। इति अशरणानुप्रेक्षा।

आचार्योंने संसारके पाँच भेद बताये हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। इस पाँच प्रकारके संसारमें इस जीवने ऐसे अनंत चक्कर लगाये हैं जिनका एक एकका काल भी अनंत है और एक एकका अनेक बार नम्बर आया है। फिर हे प्राणी, तू शुभकी आशा कर संसारमें व्यर्थ ही काहेको अनुरक्त होता है; अपने चिद्रूप आत्मामें ही लीन क्यों नहीं होता। देख, ऐसा करनेसे तुझे संसारमें चक्कर लगानेके सिवा और कुछ भी लाभ न होगा।

इति संसारानुप्रेक्षा।

हे आत्मन्, संसारमें चक्कर लगाता हुआ तू जन्म-मरण, लाभ, अलाभ, सुख-दुःख और हित-अहितमें अकेला ही है—कोई भी तेरा साथी नहीं है। जो बन्धु-बान्धवके रूपमें तुझे नजर आते हैं वे सब स्वार्थके सगे हैं। वे तुझसे भिन्न हैं। तू ही एक कर्मोंका कर्ता है और तू ही अकेला उनका भोक्ता है। यह शरीर भी तेरा साथी नहीं, फिर तू इसे छोड़ कर मुक्तिके लिए यत्न क्यों नहीं करता। एक चिद्रूप, रूपातीत, निरंजन, स्वाधीन और कर्मसे भिन्न सुखरूप आत्मामें लीन हो। इति एकत्वानुप्रेक्षा।

देख, कर्म भिन्न है, क्रिया भिन्न है और देह भी तुझसे भिन्न है; फिर तू ऐसा क्यों मानता है कि ये इन्द्रियोंके विषय आदि पदार्थ मेरे हैं—मुझसे अभिन्न है, मैं देह-रूप हूँ। तू अपने चित्तमें ऐसा ख्याल भूल कर भी मत ला। सच तो यह है कि यह तेरा शरीर साँपकी काँचलीके जैसा है। जिस तरह काँचली साँपके चारों ओर लिपटी रहती है उसी तरह यह तेरे चारों ओर लिपटा हुआ है। तू देहसे बिल्कुल ही भिन्न है, ज्ञानी है, चारित्रधारी है, दर्शन-सम्पन्न है या यों कहिए कि रत्नत्रयका पिटारा है, कर्मातीत है, शिवाकार है और आकार रहित है।

इति अन्यत्वानुप्रेक्षा।

हे आत्मन्, यह शरीर मास, हड्डी, लोहू वगैरहका बना हुआ है, विष्टाका खजाना है, मेद, चर्म और केशोंका घर है। इसमें तू चित्तको अनुरक्त क्यों करता है—इसे क्यों अपनाता है। देख तो सही कि इसके सम्बन्ध मात्रसे ही एकसे एक बढ़-कर पवित्र वस्तुएँ भी क्षण भरमें अपवित्र हो जाती है। फिर कौनसा ऐसा कारण है कि जिसको देख कर तू शुक्र-शोणितके पिटारे इस शरीरसे मोह करता है। तेरा कर्तव्य तो यह है कि तू सब अशुचियोंसे रहित, सब शरीरोंसे भिन्न, ज्ञानरूप, निराकार और चिद्रूप आत्माको ही सदा भजे। इति अशुचित्वानुप्रेक्षा।

जिस तरह समुद्रमें पड़ी हुई सछिद्र नौकामें छिद्र द्वारा जल आता है उसी तरह संसार-समुद्रमें पड़े हुए प्राणियोंके भी मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता है। पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पचीस कषाएँ और पन्द्रह योग ये आस्रवके भेद हैं। आस्रवके निमित्तसे जीव संसार-समुद्रमें काठकी नाँई तैरा करता है। इस लिए तुझे चाहिए कि तू आस्रवोंको छोड़ कर एक चिद्रूप-शाश्वत आत्माको भजे। इति आस्रवानुप्रेक्षा।

आस्रवके रोक देनेको संवर कहते हैं और वह संवर समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्ष, तप और ध्यानके द्वारा होता है। देखो, कर्मोंका संवर हो जाने पर फिर आत्मा संसार-समुद्रमें नहीं डूबता; किन्तु अपने इष्ट पद पर पहुँच जाता है। अतः हे आत्मन, तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम सदा काल अक्लेश-गम्य और आत्माधीन मोक्षमार्गमें बुद्धि दो—व्यर्थ ही बाह्य आडम्बरमें भूल कर मत भटको। इति संवरानुप्रेक्षा।

रत्नत्रयके निमित्तसे पहलेके बँधे हुए कर्मोंकी निर्जरा होती है। जिस तरह चेतन की गई आग द्वारा दाह्य वस्तु निःशेष जल जाती है वैसे ही निर्जरा द्वारा पहलेके बँधे हुए सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। निर्जराके दो भेद हैं। एक सविपाक और दूसरी अविपाक। इनमें पहली तो सर्व साधारणके होती है और दूसरी व्रतधारी मुनियोंके होती है; और यही वास्तवमें कामकी है। हे आत्मन, संवर हो जाने पर जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उससे तुम्हारे केवली होनेमें जरा भी देर नहीं रह जाती। क्योंकि जिस नावमें पानी आनेका रास्ता बन्द कर दिया गया और पहलेका पानी उलिच दिया गया उसमें फिर न तो पानी आ सकता है और न पानी रह सकता है। इति निर्जरानुप्रेक्षा।

कटि पर हाथ रख कर, पाँव फैला कर खड़े हुए पुरुषके जैसे आकारका यह लोक आद्यनन्त रहित अकृत्रिम है—इसे किसीने बनाया नहीं है। इसमें प्राणी अज्ञानके वश होकर बार-बार चक्कर लगाया करते हैं। क्योंकि निश्चित

बात है कि कारण समर्थ रहते हुए कभी कार्यका क्षय नहीं हो सकता। उर्द्ध, मध्य और अधःके भेदसे हुई लोककी विचित्रताको देख कर स्वसंवेदनकी सिद्धिके लिए हे आत्मन्, तुम शान्त हो ताकि तुम्हें सुख मिले। इति लोकानुप्रेक्षा।

हे आत्मन्, पहले तो भव्यपना ही दुर्लभ है और भव्य होकर भी मनुष्य-जन्म, उत्तम क्षेत्र और उत्तम कुल पाना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। कदाचित् उत्तम कुल भी मिल गया तो सत्संगतिका पाना बहुत दुर्लभ बात है। मान लीजिए कि कभी सत्संग भी मिल गया और धर्मबुद्धि न हुई तो उसका पाना भी व्यर्थ ही गया। जैसे कि धान्य अधिकतासे उगा और उसमें यदि बाल न निकली तो वह उसका अधिकतासे उगना कौन काम आया। एवं कभी धर्म भी हाथ आ गया तो फिर मुनिधर्म पाना दुर्लभ ही है और उसके मिल जाने पर भी आत्मबोध होना कोई हँसी-खेल नहीं; किन्तु अत्यंत दुर्लभ है। यदि सौभाग्यसे कदाचित् स्वात्मबोध हो गया जो कि योगीन्द्रोंको ही होता है, तो उसका फिर सदा ही चिन्तन रहता है; वह फिर नहीं छूटता। जैसे कि किसीका धन चोरी चला जाता है या और किसी तरह खो जाता है तो उसे उसके प्राप्त करनेकी सदा ही चिन्ता रहती है। गरज यह कि योगीन्द्रोंके होनेवाला स्वात्म-बोध हुआ कि वह फिर आत्मासे जुदा नहीं होता। इसी लिए कहा जाता है कि आत्म-लाभके सिवा न कोई ज्ञान है, न सुख है, न ध्यान है और न कोई परम पद ही है; जो कुछ भी है वह एक आत्मबोध ही है, अतः बुद्धिमानोंको चाहिए कि आत्मबोधको पाकर फिर बुद्धिको न डुलावें। क्योंकि जिसके हाथ चिन्तामणि रत्न आ गया वह काचके लिए बुद्धि करे यह ठीक नहीं। इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा।

उस जिनधर्मका सदा सेवन करना उचित है जिसके प्रभावसे मनुष्य उत्तम-उत्तम पदोंको पाकर सर्वोत्तम सुखोंको भोगता है। वह दुर्लभ धर्म दस तरह-का है। योगीजन इस धर्मको तेरह प्रकारके चारित्रके रूपमें पालते हैं और मुक्ति-पद पाते हैं। देखो, उत्तम धर्म वही है जो कि जीवको दुःखकी अवस्थासे निकाल कर शिव-रूप सुधा-धाममें पहुँचा दे। मोहसे उत्पन्न हुए विकल्पोंको छोड कर शुद्ध चिद्रूपमें लीन होना भी धर्म है। और आत्माकी विशुद्धिको भी धर्म कहते हैं। यही धर्म आत्माको मुक्ति देनेवाला है। याद रखनेकी बात है कि जब तक आत्माकी शुद्धि नहीं होती तब तक जीवोंको हेय-उपादेयका ज्ञान भी नहीं होता। एवं आत्माका ध्यान ही उत्तम धर्म है और वही उत्तम तप है। इसके विना आत्माको हेय-उपादेयका ज्ञान हो ही नहीं सकता। इति धर्मानुप्रेक्षा।

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओंका चिंतन करनेसे उनकी विरक्तता बिल्कुल ही अचल हो गई। सच है कि समर्थ कारण मिलने पर सत्पुरुषोंका शील—स्वभाव—स्थिर हो जाता है। उन्होंने शरीर आदि परिग्रहको तृणकी बराबर भी न समझा। बुद्धिमान् जन अमृत हाथ लग जाने पर विषको कभी पसंद नहीं करते। इस तरह मनोयोगको रोक कर, शुद्ध योगका आश्रय ले तीन पाण्डवोंने तो बहुत जल्दी क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया; और प्रबुद्ध होकर शुद्ध ध्यानके बल निर्विकल्प चित्तसे आत्माका ध्यान किया। वे अधःकरणका आराधन कर अपूर्व करण पर चढ़े और बाद अनिवृत्तिकरण पर पहुँचे। एवं परिणामोंको शुद्ध करते हुए उन्होंने अप्रमत्तगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय तक तिरेसठ कर्म-प्रकृतियोंका नाश किया और केवलज्ञान उपार्जन कर तथा बाद अघातिकर्मोंको भी नाश कर तीन पांडव अन्तकृत् केवली होकर मोक्ष गये—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शिवधाम पहुँचे। वे सिद्धगति लाभ कर सम्यक्त्व आदि आठ गुण तथा अनंत सुखके भोक्ता हुए। अब उन्हें न तो पाँच प्रकारके संसारकी बाधा रही और न क्षुधा आदि अठारह दोषोंका कोई जंजाल रहा—वे निर्दोष और अनंत सुखके भोक्ता हुए। जिनके सब मनोरथ पूर्ण हो गये हैं और जो अनंतानंतकाल अभय—मोक्ष—के सुखको भोगेंगे वे सिद्ध पाण्डव हमें भी सिद्ध-पद दें। इस प्रकार उन तीनों पांडवोंको केवलज्ञान और निर्वाणकल्याण दोनों एक साथ हुए जान कर तत्क्षण देवगण आये और उन्होंने उनके ज्ञान और निर्वाण कल्याण-का महोत्सव मनाया।

इधर पाप-रहित नकुल और सहदेव चित्तमें कुछ अस्थिरता हो जानेके कारण स्वर्गके सन्मुख हुए। उपसर्ग सहते हुए मरे और जाकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए। वहाँ वे तेंतीस सागर तक सुख-भोग भोगेंगे। बाद वहाँसे चय कर मनुष्य-लोकमें मनुष्य होंगे और फिर आत्म-साधन कर तप द्वारा सिद्ध होंगे—शिवधाम जावेंगे। इसी प्रकार राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा और द्रौपदीने भी धर्म-साधनके लिए तत्पर होकर सम्यक्त्वके साथ-साथ व्रत धारण किये और चिरकाल तक शुद्ध भावोंके साथ उनका पालन किया। वे आयुके अन्त चार आराधनाओंको आराधते हुए संन्यास धारण कर सोलहवें स्वर्ग गईं और स्त्री-लिंग छेद कर वहाँ उन्होंने देव-पद पाया—वे सब सामानिक देव हुईं। इसके बाद बाईस सागर तक वहाँके सुख भोग कर जब वे वहाँसे

च्युत होंगी तब मनुष्य-लोकमें आ, नर-जन्म धारण कर तप करेंगी और ध्यानके योगसे कर्म-क्षय कर शिवधाम जावेंगी ।

इसके बाद ज्ञानी नेमिप्रभु भी विविध देशोंमें विहार करते रैवतक पहाड़ पर आये । अब उनकी आयु सिर्फ एक महीनेकी रह गई थी । वहाँ उन्होंने वचनयोग रोक कर योगनिरोध किया और पर्यंकासन लगा निष्क्रिय स्थित हुए । इसके बाद वे अन्तके गुणस्थानमें शेष रहीं पचासी प्रकृतियोंका नाश कर शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन पाँच सौ छत्तीस योगियोंके साथ मुक्तिधाम पधारे । उनके निर्वाण-महोत्सवके लिए सब सुर-असुर आये और प्रभुके गुणोंको चाहते हुए निर्वाण-कल्याण कर अपने अपने स्थान चले गये ।

जो क्रमसे विंध्याचल पर भील हुए, उत्तम गुणोंके धारक वणिक् हुए, इभकेतु देव हुए, चिंतागति विद्याधर राजा हुए, सुमना महेन्द्र हुए, पराजित राजा हुए, अच्युतेन्द्र हुए, सुमतिष्ठ राजा हुए और अन्तमें जयंत विमानमें अह-मिन्द्र होकर यहाँ नेमिप्रभु हुए—वे नेमिप्रभु हम सबकी रक्षा करें ।

वे पांडव लक्ष्मी दें जो पहले परमोदयशाली ब्राह्मण हो, तीव्र तप कर अच्युत स्वर्गमें देव हुए और वहाँसे चय कर यहाँ युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हुए तथा पीछे तप कर तीन मोक्ष गये और अन्तके दो मद्री-सुत स्वर्गधाम गये ।

जो दीप्तिशाली देव हैं, पाप-दर्प-रूपी दावके लिए अग्निके कंद हैं, भयको दूर करनेवाले हैं, दिव्य चक्षु और दिव्य वीर्यशाली हैं, कीर्तिके दाता हैं, शम-दमसे युक्त हैं, महान् दीप्तिशाली देहके धारक है और सर्वदर्शी हैं वे दुरितको दारण करनेवाले प्रभु हमें शिव दें ।

कहाँ तो श्रीगौतम आदि द्वारा कहा गया पांडवोंका विशाल चरित और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान जो पूर्णपने कर्मरूपी आवरणसे ढँका हुआ है । यद्यपि मेरे ज्ञानकी इस विशाल चरितके साथ कुछ भी तुलना नहीं हो सकती तो भी मैंने इसके रचनेका जो प्रयत्न किया है यह मेरी धृष्टता ही है ।

मैंने जो इस उत्तम कथाके कहनेका साहस किया है वह वैसा ही है जैसा बालक तारागणके गिननेकी कोशिश करते हैं, मेंढक समुद्रके जलकी थाह लेनेका यत्न करता है और भीरु पुरुष अपने पराक्रमको दिखानेका साहस करता है ।

मैं ऐसे साधुओंकी हृदयसे चाह करता हूँ जो उत्तम शास्त्रके दूषण हरनेवाले और परतोष देनेवाले हैं; मुझे उन असाधुओंकी जरूरत नहीं जो प्रयत्न द्वारा रचे गये शास्त्रमें भी दोष बताते हैं और परको दूषण देते हैं । भूतल पर जो परकार्य करनेमें अनुरक्त साधु-पुरुष हैं उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दोष देख कर भी किसी पर विकार भाव नहीं दिखाते; किन्तु चंद्रमाकी भाँति ही निज करों (किरणों और हाथों) द्वारा नक्षत्र-वंश-विभव होते हुए भी औरोंको परितोष देते है । और जो तामस स्वभावसे पूर्ण हैं वे निरन्तर उत्तम मार्गको बिगाड़नेमें ही दत्तचित्त रहते हैं, कुमार्ग पर चल कर अपने आपको भी कीचड़में लथोड़ते हैं और लोकमें अज्ञानांधकारका प्रसार करते हैं ।

देखिए संसारमें अच्छे बुरे जो जो पुरुष हुए यदि जगह जगह उनके अच्छे और बुरे कृत्य न भरे-पड़े होते तो फिर लोगोंको अच्छे बुरेकी पहिचान ही कैसे होती; जैसे काचके अभावमें रत्नकी पहिचान नहीं हो सकती ।

मैं उन साधुओंकी क्या प्रार्थना करूँ जो पर गुणोंको ही सदा कहते और सुनते है; पराये दोषोंको कभी न कहते और सुनते । और न भूलें हो जाने पर वे हितकारी दंड ही देते हैं । वे तोष-भावके निधान साधु संसारकी शोभा बढ़ावें ।

मै उन दुष्टोंकी प्रशंसा करता हूँ जो पराये दोष कहनेके लिए सदा ही टकटकी बाँधे रहते है और जहाँ दोषका लेश मात्र भी पाया कि उसे सारे संसारमें गाते फिरते हैं और कहते हैं कि अमुककी कृति सारी ही इसी तरह तरह दोषोंसे भारी हुई है ।

पाण्डवोंके इस पवित्र ही नहीं, किन्तु परम पवित्र पुराणको बना कर मैं न तो राज-सुख चाहता हूँ और न और ही कोई वस्तु चाहता हूँ; किन्तु मुक्ति-पदकी याचना करता हूँ । भक्तिसे सब मनचाहा फल होता ही है ।

यदि इस पुराणमें कहीं व्याकरण, युति, छंद, अलंकार, काव्य आदिके विरुद्ध बात कही गई हो तो उसे बुद्धिमान् जन शुद्ध कर लें; क्योंकि शुद्ध भावोंके धारक बुधजन जो कुछ भी प्रयास करते है वह परोपकारके लिए ही करते हैं । मैंने न छंदशास्त्र देखा है और न अलंकार तथा गणोंको सीखा है; न मैं काव्य आदि जानता हूँ और न मुझे जैनेन्द्र आदि किसी व्याकरणका ही ज्ञान है; इसी प्रकार त्रैलोकसार आदि लोक-ग्रन्थ और गोम्मटसार आदि

जीव-ग्रन्थ भी मैंने नहीं देखे हैं; और न अष्टसहस्री आदि तर्कशास्त्र ही पढ़े हैं। इसका कारण यह है कि मेरा अन्तःकरण मोहसे विवश है । मेरी यह दशा होने पर भी मैं जिनदेवका पूर्ण भक्त हूँ, उनकी उत्तमोत्तम गुणों द्वारा स्तुति करता हूँ । इस कारण सत्पुरुषों तथा अन्य साधारण जनको चाहिए कि वे क्रोध वगैरह छोड़ कर सदा ही मुझ पर क्षमाभाव रक्खें । जो बालक होता है—अबोध होता है—उसका कौन हित नहीं करता ।

श्रीमूलसंघमें पद्मनन्दी आचार्य हुए । उनके पट्ट पर सकलकीर्ति हुए, जिन्होंने मर्त्यलोकमें शास्त्रार्थकर्त्री कला प्रगट की । उनके बाद भुवनाधिपों द्वारा स्तुत्य, उत्तम तप तपनेके लिए उद्यतमना, भव-भयरूपी साँपके लिए गरुड और पृथ्वीकी भाँति क्षमाके धारक भुवनकीर्ति हुए । उनके बाद चिद्रूपके वेत्ता, चतुर, चिद्भूषण और पूजित पाद-पद्मके धारी चन्द्रसूरि हुए—वे हमारे चारित्रकी शुद्धि करें । उनके बाद सत्पुरुषों द्वारा सेवित, राजों द्वारा मान्य, सुमतिके धारी और मुदित-आत्मा विजयकीर्ति हुए । वे विभु हमारी संसारसे रक्षा करें । उनके पट्ट पर गुण-समुद्र, व्रती, गुण-गरिष्ठ, सर्वोत्तम श्रीमान् वादीभसिंह शुभचन्द्र हुए, जिन्होंने उत्तम रुचिके धारक पाण्डु पुत्रोंकी सिद्धिको लेकर यह विचार-सुकर और शुभ, सिद्धि तथा सुख देनेवाला चरित रचा । इन्हीं शुभचन्द्र यतीन्द्र चन्द्रने नीचे लिखे ग्रन्थ और भी रचे हैं ।

चन्द्रप्रभचरित, पद्मनाभचरित, मन्मथमहिमा, जीवन्धरचरित, चन्दनकथा, नंदीश्वरकथा, आशाधरकृत अनगार धर्मामृतकी आचारवृत्ति टीका, तीसचौवीसी पूजा, सिद्धपूजा, सरस्वतीपूजा, पार्श्वनाथकाव्यकी पंजिका । इनके सिवा इन्होंने कितने उद्यापन भी रचे हैं । और संशय-वदन-विदारण, अपशब्दखंडन, सत्तत्व-निर्णय, स्वरूपसंबोधिनीवृत्ति, अध्यात्मपद्यवृत्ति, सर्वार्थपूर्व, सर्वतोभद्र और चिंतामणि नाम व्याकरण—आदि ग्रन्थ भी इनकी कृति हैं । एवं सर्वांगार्थ-प्ररूपिका अंगप्रज्ञप्ति तथा जिनदेवके कितने पवित्र स्तोत्र भी इन्होंने रचे हैं ।

इन्हीं शुभचन्द्र देवने प्रीतिके वश हो यह पांडवोंका परम पवित्र महान्-पुराण बनाया है । यह दीप्तिशाली वंशोंका भूषण है, शुभका स्थान है, शोभा-पूर्ण है, इसमें बहुतसे निर्मल गुण हैं, उत्तम छन्द-रूपी चिंतामणियों द्वारा यह गूँथा गया है और सरल है । इसका दूसरा नाम 'जैन महाभारत' भी है । इन्हीं शुभचन्द्रदेवका समृद्धिशाली बुद्धि-विशद, तर्कशास्त्रका पंडित, वैराग्य आदि विशुद्धियोंका जनक

श्रीपाल नामका एक ब्रह्मचारी शिष्य था। उसने पांडवोंके इस पूरे चरितको सोधा और पहले पहल इस अर्थपूर्ण पुराणको उत्तम पुस्तक पर लिखा । इस शास्त्रके अर्थ-संग्रहमें श्रीपाल ब्राह्मचारीने मुझे बहुत सहायता दी, अतः वह श्रेष्ठ विद्या-विभूषण चिरंजीवी रहे ।

जो पांडवोंके इस पवित्र पुराणको आदरके साथ लिखते पढ़ते और सुनते हैं—वे लक्ष्मी, राज्य, नराधिपत्व, देवाधिपत्व आदि उत्तम पदोंके भोगोंको भोग कर उन्नत होते हैं और क्रमसे संसार-समुद्रको पार कर अविनाशी सुखके भोक्ता होते हैं ।

उत्तम वचनों द्वारा भव्योंके प्रसन्न करनेवाले अर्हन्त, सिद्धि-समृद्ध सिद्ध, शिवदाता सिद्धि-शुद्ध साधु, रत्नत्रयरूपी जिनोक्त धर्म, जिनदेवकी रम्य प्रतिमाएँ और जिनालय ये सब सिद्धि दें ।

जब तक चाँद-सूरज, तारा, सुरपतिसदन, समुद्र, शुद्ध धर्म है; जब तक धरणेंद्र, सुर-निलय-गिरि और देवगंगा है और जब तक त्रिभुवन-महित कल्पवृक्ष हैं तब तक इस भारत भूमि पर शुभ देनेवाला यह पांडवोंका भारत नाम पुराण भी रहे ।

श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहतस्पष्टाष्टसंख्ये शते,
रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ।
श्रीमद्वाग्वरनीवृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे ।
श्रीमच्छ्रीपुरुधाम्नि वे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरं ।

भावार्थ—इस पुराणके रचे जानेका समय वि० सवत् १६०८ भादों सुदी दूज है । यह वागड़ प्रान्तके सागवाड़ा नगर-स्थित श्रीआदिनाथ भगवान्के मंदिरमें रचा गया। यह चिरकाल तक रहे ।

इति शुभचन्द्राचार्यविरचित पांडवपुराण ।

मंगलं भूयात् ।